समकालीन हिंदी और नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन में राजनीतिक चेतना

SAMKALIN HINDI AUR NEPALI STREE UPANYAS LEKHAN MEIN RAJNITIK CHETANA

POLITICAL CONSCIOUSNESS IN CONTEMPORARY HINDI AND NEPALI WOMEN'S NOVEL WRITING

पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

शोध निर्देशक
प्रो. देवेन्द्र कुमार चौबे

शोधार्थी
कुमारी लक्ष्मी जोशी

भारतीय भाषा केंद्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - 110067

2022

Dated: 29 /11/2022

Declaration

I hereby declare that the Ph.D. thesis entitled **"Samkalin Hindi Aur Nepali Stree Upanyas Lekhan Mein Rajnitik Chetana"Political Consciousness in Contemporary Hindi and Nepali Women's Novel Writing** submitted by me is the original research work.It has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/ Institution to the best of my knowledge.

I further declare that no plagiarism has been committed in my work. If anything is found plagiarised in my Thesis, I will be solely responsible for the act.

Kumara Laxmi Joshi
Name of Students

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 29 /11 /2022

Certificate

This is to certify that the Ms. Kumari Laxmi Joshi a bona-fide Research Scholar of Centre of Indian Languages, SLL&CS has fulfilled all the requirements as per the University Ordinance for the submission of Ph.D. thesis entitled "**Samkalin Hindi Aur Nepali Stree Upanyas Lekhan Mein Rajnitik Chetana"Political Consciousness in Contemporary Hindi and Nepali Women's Novel Writing.**

This may be placed before the examiners for evaluation for the award of the degree of Ph.D.

29/11/22

Prof. Devendra Kumar Choubey
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Prof. Devendra Kumar Choubey
Acting Chairperson
CIL/SLL&CS/JNU

कार्यकारी अध्यक्ष / Acting Chairperson
भारतीय भाषा केन्द्र / CIL
भा. सा. एवं सं. अ. सं. / SLL & CS
ज. ने. वि. / J.N.U
नई दिल्ली / New Delhi-110067

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217;
Email: chair_cil@mail.jnu.ac.in, jnucil@gmail.com

विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावना 1-4

अध्याय एक

१. राजनीतिक चेतना : अर्थ, परिभाषा, स्वरुप और इतिहास 5-62

१.१ चेतना : एक संक्षिप्त परिचय 5

१.२ राजनीति का अर्थ एवं परिभाषा 11

१.२.१ राजनीति का स्वरुप 16

१.३ समकालीन राजनीतिक चेतना भारत और नेपाल के संदर्भ में 19

१.३.१ भारत में राजनीतिक चेतना का परिदृश्य 19

१.३.२ नेपाल में राजनीतिक चेतना का परिदृश्य 23

१.४ स्त्री राजनीतिक चेतना का इतिहास भारत और नेपाल के संदर्भ में 29

१.४.१ भारत में स्त्री राजनीतिक चेतना का इतिहास 33

१.४.२ नेपाल में स्त्री राजनीतिक चेतना का इतिहास 38

१.५ हिंदी एवं नेपाली साहित्य और राजनीतिक चेतना 44

१.५.१ हिंदी साहित्य और राजनीतिक चेतना 44

१.५.२ नेपाली साहित्य और राजनीतिक चेतना 52

अध्याय दो

२. समकालीन हिंदी और नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन की परंपरा : एक सर्वेक्षण .. 63-138

२.१ उपन्यास की परिभाषा और स्वरुप 63

२.२ हिंदी स्त्री उपन्यास लेखन की परंपरा 71

२.२.१ आरंभिक काल (1890-1950) 72

२.२.२ उत्कर्ष काल (1950-1990) 79

२.२.३ वर्तमान काल (1990….) 85

२.३ नेपाल में स्त्री उपन्यास लेखन की परंपरा 93

२.३.१ आरंभिक काल (1932-1965) 99

२.३.२ उत्कर्ष काल (1965- 2000) 103

२.३.३ वर्तमान काल (2000 …..) 109

२.४ हिंदी और नेपाली स्त्री लेखन: चुनौती और संभावनायें 118

२.४.१ हिंदी स्त्री लेखन चुनौतियां और संभावनाएं 118

२.४.२ नेपाली स्त्री लेखन चुनौती और संभावनायें 129

अध्याय तीन

३. समकालीन हिंदी और नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन में राजनीतिक चेतना की स्थिति एवं विचार दृष्टि..... 139-196

३.१ हिंदी और नेपाली साहित्य एवं विचार दृष्टि 139

३.२ समकालीन हिंदी स्त्री उपन्यासों में राजनीतिक चेतना की स्थिति एवं विचार दृष्टि 147

३.२.१ महाभोज 150

३.२.२ आवां 152

३.२.३ चाक 157

३.२.४ तालाबंदी 161

३.२.५ खुले गगन के लाला सितारे 165

३.३ समकालीन नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन में राजनीतिक चेतना की स्थिति एवं विचार दृष्टि 170

३.३.१ पर्खालभित्र र बाहिर (दीवार के अंदर और बाहर) 174

३.३.२ ताप 178

३.३.३ कल्ली 182

३.३.४ योगमाया में राजनीतिक दृष्टि एवं विचार 186

३.३.५ मान्छेको रंग (आदमी का रंग) 189

अध्याय चार

४. स्त्री आंदोलन का परिप्रेक्ष्य : स्त्री विमर्श के सवाल और संदर्भ 197-244

४.१ पाश्चात्य नारीवादी आंदोलन का इतिहास और स्त्री मुक्ति के सवाल 198

४.२ भारतीय नारीवादी आंदोलन का इतिहास एवं स्त्री मुक्ति के सवाल 207

४.२.१ उपनिवेशकालीन भारत और नारीवादी आंदोलन 207

४.२.२ लोकतान्त्रिक भारत और नारीवादी आंदोलन 211

४.३ नेपाल में नारीवादी आंदोलन का इतिहास एवं स्त्री मुक्ति के सवाल 215

४.३.१ राजतंत्र व्यवस्था और नारीवादी आंदोलन 215

४.३.२ पंचायत एवं बहुदलीय व्यवस्था और नारीवादी आंदोलन 221

४.३.३ लोकतंत्र व्यवस्था और नारीवादी आंदोलन 225

४.४ समकालीन हिंदी स्त्री उपन्यासों में स्त्री विमर्श और मुक्ति के सवाल 228

४.५ समकालीन नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन में स्त्री विमर्श और मुक्ति के सवाल. 235

अध्याय पांच

५. समकालीन स्त्री उपन्यासों में ग्रामीण राजनीति : जाति का सवाल एवं वर्ग संघर्ष की स्थिति 245-305

५.१ समकालीन भारतीय ग्रामीण समाज आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति 245

५.१.१ भारतीय ग्रामीण समाज और आर्थिक स्थिति 248

५.१.२ भारतीय ग्रामीण राजनीति और स्त्री 254

५.१.३ हिंदी स्त्री उपन्यास लेखन में ग्रामीण राजनीति का यथार्थ 261

५.२ हिंदी स्त्री लेखन और जाति का सवाल 266

५.३ वर्ग संघर्ष की स्थिति और समकालीन हिंदी स्त्री साहित्य 273

५.४ समकालीन नेपाली ग्रामीण समाज : आर्थिक और राजनीतिक स्थिति 281

५.४.१ नेपाली ग्रामीण समाज और आर्थिक स्थिति 284

५.४.२ नेपाली ग्रामीण राजनीति और स्त्री 288

५.५ नेपाली स्त्री लेखन और जाति का सवाल 290

५.६ वर्ग संघर्ष की स्थिति और समकालीन नेपाली स्त्री लेखन 298

अध्याय छह

६. स्त्री भाषा का राजनीतिक संदर्भ 306-364

६.१ स्त्री भाषा की पृष्ठभूमि 306

६.२ समकालीन हिंदी विमर्शवादी साहित्य और स्त्री भाषा 312

६.३ समकालीन हिंदी स्त्री भाषा का राजनीतिक संदर्भ 324

६.४ नेपाली स्त्री भाषा की पृष्ठभूमि 335

६.५ समकालीन नेपाली विमर्शवादी साहित्य और स्त्री भाषा 343

६.६ समकालीन नेपाली स्त्री भाषा का राजनीतिक संदर्भ 354

उपसंहार 365-377

संदर्भ ग्रन्थ सूची 378-390

कृतज्ञता ज्ञापन

अनुसंधान अपने आपमें एक गहन, गंभीर और उत्तरदायित्व बोध कराने वाला कार्य है । इसके दौरान शोधार्थी को कई उतार-चढ़ावों से गुजरना पड़ता हैं । समाज के लिए यह जितना उपयोगी होता है, शोधार्थी के व्यक्तित्व विकास के लिए भी उतना ही उपयोगी होता है । इस शोध का उद्देश्य केवल पीएच.डी. की उपाधि लेना या नेपाली और हिंदी स्त्री लेखिकाओं की रचनाओं में राजनीतिक चेतना का मूल्यांकन करना मात्र नहीं है बल्कि दोनों देशों के साहित्यिक संबंध को प्रगाढ़ करना भी है । इस महत्वपूर्ण कार्य को संपन्न करने या इसको अर्थ पूर्ण बनाने के पीछे बहुत से लोगों का महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं । जिन्होंने अपने समय की परवाह किये बगैर मेरा मार्गदर्शन किया हैं । प्राज्ञिक सल्लाह, कुशल निर्देशन, सही पथ प्रदर्शन के साथ-साथ मुझे अपने काम के प्रति सदैव प्रोत्साहित करने वाले मेरे गुरु एवं शोध निर्देशक प्रो. देवेन्द्र कुमार चौबे का मैं हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ । भारत और नेपाल की राजनीति एवं दोनों देशों की भाषा, साहित्य और कला के ज्ञाता, राजनीतिक चिंतक और विश्लेषक प्रो. एस. डी मुनि ने समय-समय पर मुझे दोनों देशों की राजनीति संबंधी आवश्यक जानकारी देकर मेरे शोध को और अधिक प्रभावशाली बानाने में मेरी मदद की हैं । अत: मैं उनके इस सहयोग के लिए आभारी हूँ । असंभव जैसी कोई चीज नहीं होती बस हौसले की आवश्यकता होती हैं जैसे विचारों से अवगत कराने और मुझे शोध के लिए उचित वातावरण एवं अवसर प्रदान कराने वाले आदरणीय व्यक्तित्व मेरे सहयात्री डॉ. अमरेश कुमार सिंह के प्रति मैं सदैव कृतज्ञ रहूँगी । आज के समय में स्त्री को अपनी पहचान बनाने के लिए सबसे पहले उसे शिक्षित बनना होगा और शिक्षा के महत्व के साथ-साथ उसे अपने अधिकार के लिए लड़ना भी होगा । तभी एक स्त्री सही मायने में स्वतंत्र और आत्मनिर्भर हो सकती है का ज्ञान देने वाली मेरी माँ भी धन्यवाद की अधिकारिणी है । वैसे तो जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय का देश दुनिया में अपना ही एक अलग योगदान रहता आया हैं । परंतु मेरे लिए यह केवल ज्ञान का पर्याय

नहीं था यहां मैंने अपने अंदर की कुंठा और ड़र को पिघलते हुये देखा है । आत्मविश्वास इस तरह भरा है कि जीवन की जटिलताओं को ही जीवन को सार्थकता का पर्याय समझने लगी हूँ। जेएनयू के मेरे इस सफर में बहुत से मित्रों ने मुझे प्यार, साथ और समर्थन दिया परंतु सेफाली यादव एक येसी मित्र रही जिसने मुझे कभी अकेला, हतास, निराश नहीं होने दिया । अद्‌भुत मानवीय गुणों की धनी सेफाली के व्यक्तित्व से मैं हमेसा प्रभावित रही । इसलिए वो इस शोध का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है । इसके अलावा शोध संबंधी मुझे महत्वपूर्ण सुझाव देकर मेरी छोटी-बडी़ समस्याओं को सुलझाने में मेरी मदद करने वाले मेरे अन्य मित्र गणों का भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ। नीलम कार्की (निहारिका) जो नेपाली साहित्य की एक बहुत बडी़ हस्ताक्षर है जिनका उपन्यास 'योगमाया' मदन पुरस्कार से संमानित हैं । उन्होंने नेपाली स्त्री साहित्य से जुडी़ महत्वपूर्ण जानकारी देकर मेरे शोध को और अधिक प्रभावकारी बनाने में मेरी सहायता की है । इसलिए वह भी इस शोध का महत्वपूर्ण हिस्सा है । उनके इस महत्वपूर्ण योगदान के लिए मैं आभार व्यक्त करती हूँ। कृष्ण धरावासी नेपाली साहित्य का एक प्रसिद्ध नाम है । लीला लेखन इनके साहित्य की विशेषता है । कहानी, उपन्यास आलोचना विधा में यह सिद्धहस्त है । येसे महान व्यक्तित्व का सहयोग पान मरे लिए किसी उपहार से कम नहीं था । कोरोना काल में इन्होंने मुझे अपना प्रयाप्त समय देकर नेपाली साहित्य के इतिहास को विस्तार से समझाया । इसीका प्रतिफलन है कि मैंने अपने शोध में नेपाली साहित्य को विस्तार से लिखने का प्रयास किया है । आदरणीय धरावासी जी को इस सहयोग के लिए हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। इसके अलावा मैं उन सभी भारत और नेपाल के आदरणीय गुरु और पुस्तकालय के सहयोगी मित्रों का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रुप से मुझे सहयोग दिया ।

कुमारी लक्ष्मी जाशी

प्रस्तावना

राजनीति और स्त्री उपहास के शब्द थें। बीस और इक्कीसवीं शताब्दी तक पहुंचते-पहुंचते इसमें कुछ तबदीली आई है। इसका श्रेय स्त्री शिक्षा और चेतना को जाता है। मानव जाति के अस्तिव एवं सभ्यता के विकास के लिए स्त्री पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं, सहयात्री हैं, न कि स्त्री पुरुष के भोगने के लिए बनाई गई कोई वस्तु या साधन है। भारतीय और नेपाली समाज में सदियों से धर्म, दर्शन, संस्कार, रीति-रिवाज, संस्कृति, परंपरा के नाम पर स्त्री का शोषण होता रहा है। स्त्री पुरुष की तरह सक्षम होते हुए भी उसे दूसरे दर्जे के प्राणी के रुप में स्थापित किया जाना पितृसत्ता की एक सोची समझी साजिश थी। जिसके कारण स्त्री का जीवन कष्टकर ही नहीं बना बल्कि उसे अपने अस्तित्व का विसर्जन करने की स्थिति में पहुंचना पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दी में चले नारीवादी आंदोलन ने दुनियाभर की स्त्रियों को अपने अधिकार के लिए सचेत किया। सर्वप्रथम स्त्री की स्वतंत्रता, उसके नागरिक होने का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, रोजगारी या आत्मनिर्भरता का अधिकार आदि मुद्दें इस आंदोल के दौरान उठाये गयें। यही से स्त्री चेतना का आरंभ माना जाता हैं। स्त्री का उत्पीड़न अथवा शोषण समाज के संतुलित विकास का बाधक है। जिस तरह शरीर का एक अंग स्वस्थ और दूसरा अंग अस्वस्थ्य होने से पूरा शरीर प्रभावित होता है उसी तरह इस स्थिति को भी लिया जा सकता है। मानव समाज में योजनाबद्ध तरीके से विकास करने की आवश्यकता को नारीवादी आंदोलन ने मेहसूस किया। इसके लिए राजनीति को महत्वपूर्ण साधन माना गया क्योंकि मानव अधिकार से जुड़े सभी मुद्दें राजनीतिक पहल के बिना संभव नहीं हो सकते हैं। राजनीति में योजनाबद्ध तरीके से समाज में परिवर्तन लाने की क्षमता होती है। राजनीतिक पहल से ही महिलाओं की भूमिका को सशक्त एवं प्रभावकारी बनाया जा सकता है। नागरिक के सर्वोपरि हित की कामना ही लोकतांत्रिक व्यवस्था का मूल उद्देश्य है। इसी कारण स्त्री को राजनीति से जुड़ने की बात सभी स्त्रीवादी लेखिकाओं और समाज सेविकाओं ने स्वीकार की हैं। भारत और नेपाल के संविधान

में 33 प्रतिशत स्त्री सहभागिता को अनिवार्य बताया गया है परंतु यथार्थ यह है कि एक तरफ स्त्रियां इस अवसर का लाभ उठाने से चुक रही है तो दूसरी तरफ पुरुष उनकी इस कमजोरी का लाभ उठा रहें हैं । शिक्षा ने स्त्री जीवन को एक नया लक्ष्य प्रदान किया है । यह पितृसत्ता से लड़ने का एक सबसे बड़ा हथियार बना है । एक लंबी लड़ाई लड़ने के बाद स्त्रियों को देश का नागरिक समझने की मानसिकता विकसित हो पाई है । भारत में स्त्री राजनीतिक चेतना का प्रारंभ स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान से हुआ तो नेपाल में स्त्री राजनीतिक चेतना का विकास बहुदलीय प्रजातंत्र व्यवस्था के लिए संघर्ष के दौरान से हुआ। दोनों समाज पाश्चात्य देशों के स्त्री समाज की तुलना में बहुत पीछे दिखाई पड़ते हैं । नेपाल और भारत का स्त्री समाज विकास के शैशव काल की स्थिति में है । नब्बे के दशक से यह धीरे-धीरे विकास की गति पकड़ता हुआ नजर आता है । दोनों देशों में लोकतंत्र व्यवस्था की स्थापना ने स्त्री समाज को कुछ हद तक खुला किया है । इसका फायदा वे महिलायें अधिक उठा रही हैं जो उच्च वर्ग से संबंध रखती है या जो थोड़ा बहुत पढ़ी लिखी हैं । मध्य और निम्न वर्ग की महिलायें जो आर्थिक एवं शैक्षिक रुप से विपन्न हैं वे आज भी दयनीय अवस्था में हैं। निम्न वर्ग की महिलायें अभी भी शिक्षा की पहुंच से दूर है इसलिए उनमें संकोच की भावना आज भी बरकरार हैं। सन् 2022 की जनगणना के मुताबिक नेपाल में महिलाओं की जनसंख्या पुरुषों से ज्यादा है और भारत में पुरुषों की जनसंख्या ज्यादा है । कहने का तात्पर्य समाज में संख्या के हिसाब से स्त्री कम नहीं है परंतु सामाजिक उपस्थिति स्त्री की तीस प्रतिशत से भी कम है। स्त्री की इसी उपस्थिति को बढ़ाने के लिए सामाजिक लगायत राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्र से पहल की जा रही हैं । संविधान में स्त्री आरक्षण का उल्लेख किया जाना राजनीतिक तौर से स्त्री सहभागिता को बढ़ाने की पहल है । साहित्य में नेपाली और हिंदी का नब्बे का दशक क्रांतिकारी दशक के रुप में जाना जाता है । इसी दौरान विमर्शवादी साहित्य का विकास हुआ और स्त्री लेखिकाओं ने सामाजिक राजनीतिक अधिकार के मुद्दों की चर्चा और बहस साहित्य

के माध्यम से करना आरंभ कर दिया यह एक बहुत बड़ी उपलब्धी मानी जाती है । स्त्री लेखिकाओं ने सामाजिक और राजनीतिक स्तर को ऊपर उठाने के लिए स्त्री जीवन से जुड़ी सभी समस्याओं को साहित्य के माध्यम से उठाया हैं । स्त्री स्वतंत्रता, शिक्षा, प्रजनन और यौनिकता का अधिकार उनके साहित्य के केन्द्र में रहें हैं । नेपाली और हिंदी स्त्री लेखन एक तरफ पितृसत्ता की क्रूर मानसिकता एवं व्यवहार का चित्रण करता है तो दूसरी तरफ परनिर्भरता की जाल से बाहर निकलने की अनिवार्यता को भी जाहिर करता है । इस शोध का उद्देश्य हिंदी और नेपाली स्त्री लेखन में राजनीतिक चेतना की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना है । शोध के प्रारुप निर्माण के दौरान इसे छः अध्यायों में बांटा गया था ताकि उन सभी विषय वस्तुओं समेटा जा सके जो स्त्री लेखन का विषय बनें हैं और स्त्री के राजनीतिक चेतना को प्रस्तुत करते हैं । शोध प्रबंध लेखन में हिंदी और नेपाली स्त्री राजनीतिक चेतना की स्थिति का मापन करने लिए पांच हिंदी के और पांच नेपाली के समकालीन उपन्यासों का चयन किया गया था । इन दश उपन्यासो के आधार पर स्त्री राजनीतिक चेतना के विविध पक्ष पर प्रकाश डा़ला गया हैं । शोध का प्रथम अध्याय 'राजनीतिक चेतना : अर्थ, परिभाषा और इतिहास है ।' इस अध्याय के अंतर्गत राजनीति का सामान्य परिचय भारत और नेपाल के राजनीतिक परिवेश, स्त्री राजनीतिक चेतना का विकास, हिंदी और नेपाली साहित्य में राजनीतिक चेतना की स्थिति आदि विषय वस्तुओं को विश्लेषणात्मक रुप में प्रस्तुत किया गया हैं । शोध का दूसरा अध्याय 'समकालीन हिंदी और नेपाली में स्त्री लेखन की परंपरा : एक सर्वेक्षण है ।' इस अध्याय में दोनों भाषाओं में रचे गये उपन्यासों का उनके विकास क्रम के आधार पर काल विभाजन किया गया है और लेखन की प्रवृत्ति एवं विशेषताओं को बताने की कोशिश भी की गई हैं । इसके साथ-साथ स्त्री लेखन की चुनौती और संभावनाओं पर भी प्रकाश डा़ला गया है । तृतीय अध्याय 'समकालीन हिंदी और नेपाली स्त्री उपन्यासों में राजनीतिक चेतना की स्थिति एवं विचार दृष्टि है ।' इस अध्याय के माध्यम से हिंदी और नेपाली लेखिकाओं

में विकसित राजनीतिक विचारधारा और समझ का मूल्यांकन किया गया है । लेखिकाओं द्वारा उठाये गयें राजनीतिक मुद्दें चाहे वह भ्रष्टाचार के हो या मानव अधिकार के हो या बेरोजगारी के हो या असुरक्षा के हो इन सभी विषय वस्तुओं का विश्लेषण विस्तार से किया गया हैं । चौथा अध्याय 'स्त्री आंदोलन का परिप्रेक्ष्य : स्त्री विमर्श के सावाल और संदर्भ है ।' यह अध्याय स्त्री विमर्श के सैद्धांतिक पक्ष और व्यवहारिक पक्ष की जानकरी देता है । साथ ही हिंदी, नेपाली और पाश्चात्य स्त्री आंदोलन के इतिहास पर तुलनात्मक दृष्टि भी डालता है । पंचम अध्याय 'स्त्री उपन्यासों में ग्रामीण राजनीति : जाति का सवाल एवं वर्ग संघर्ष की स्थिति है ।'' यह अध्याय भारत और नेपाल के ग्रामीण परिवेश उनकी राजनीतिक, आर्थिक स्थिति की जानकारी देने हेतु लिखा गया हैं । साथ ही स्त्री लेखन में उठाये गयें जाति और वर्ग संघर्ष के सावालों का विश्लेषण भी इस अध्याय में किया गया हैं । षंष्टम अध्याय 'स्त्री भाषा का राजनीतिक संदर्भ है ।' इस अध्याय में स्त्री भाषा की आवश्यकता, विशेषता और उसके स्वरुप पर प्रकाश डाला गया है । विमर्शवादी साहित्य ने स्त्री भाषा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । इन्हीं समग्र विषयवस्तुओं की जाँच-पड़ताल इस शोध के अंतर्गत की गई हैं । शोघ प्रस्तावना में जो परिकल्पना तैयार की गई थी बहुत सी चीजें उसीके मुताबिक निष्कर्ष के तौर पर समाने आई हैं । पूर्ण रुप से यह शोध उपलब्धि मूलक है । इसमें भारत और नेपाल के सामाजिक, राजनीतिक और स्त्री जीवन के विविध पक्षों का विश्लेषण तर्कसंगत रुप में किया गया हैं । स्त्री राजनीतिक चेतना का पक्ष इस शोध के मूल में है ।

अध्याय एक

१. राजनीतिक चेतना : अर्थ, परिभाषा, स्वरुप और इतिहास

१.१ चेतना : एक संक्षिप्त परिचय

चेतना सामान्यतया किसी भी विषय वस्तु संबंधी ज्ञान एवं सूझबूझ को कहा जाता है । दूसरे शब्दों में कहे तो यह मानव की जागृत अवस्था है । संस्कृत के आचार्यों ने चेतना को बुद्धि, सुधि, ज्ञान, जीवन शक्ति, भावना, विचार आदि के रुप में ग्रहण किया है । इनके मुताबिक चेतना जीवन का लक्ष्यण है । चेतना ही एक ऐसी चीज है जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग होने का प्रमाण देती है । अंग्रेजी में चेतना को (consciousness) कहा जाता है तो उर्दू में चेतना के लिए (शऊर) शब्द का प्रयोग हुआ है । यद्यपि दुनिया भर की भाषाओं मे चेतना को अलग-अलग शब्दों में समझा जात है परंतु इसका अर्थ समान रुप में लगाया जाता है । मानव जीवन में इस शब्द को विशेष तवज्जो भी दी जाती है क्योंकि मानव की समग्र क्रियायें चेतना से जुड़ी होती है । सभ्यता, धर्म, संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज, कला, साहित्य, दर्शन आदि चेतना की ही परिणति है । मानव सभ्यता जंगली युग से होते हुए अंतरिक्ष युग एवं विज्ञान युग तक पहुंची है तो इसके पीछे भी चेतना की ही अहम भूमिका है । चेतना एक ऐसी शक्ति है जो निरंतर प्रवाहमयी एवं परिवर्तनशील होती है । चेतना का प्रभाव हमारे अनुभव वैचित्रय एवं व्यवहार से प्रमाणित होता है । इसे सजीव और निर्जीव के बीच भेद कराने वाले तत्व के रुप में भी जाना जाता है । मानव के व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया हो या समाज निर्माण की सभी में चेतना की अहम भूमिका होती है । चेतना की ही प्रेरणा से मनुष्य अपनी आस-पास की चीजों को देखता, परखता, सुनता है और उस पर आवश्यक प्रतिक्रिया भी देता है । इसको मनुष्य की बुद्धि या विचार शक्ति भी कहा जाता है । चेतना मानव मन एवं मस्तिष्क से जुड़ी एक ऐसी शक्ति है जिसके कारण वह व्यक्तिगत एवं सामाजिक कियाकलाप को करने में सक्षम होता है । यह मन और मस्तिष्क की

एक विशेष प्रक्रिया के तहत अभिव्यक्त होती है । चेतना को मुख्य रुप से तीन भागों में विभाजन किया गया है । ज्ञानात्मक चेतना, भावात्मक चेतना और क्रियात्मक चेतना । इस विभाजन ने चेतना को समझने में और इसकी व्याख्या करने में विश्लेषको को आसान कर दिया है । चेतना के तीनों रुप एक आपस में अंतर्संबंध रखते हैं । ज्ञानात्मक चेतना बुद्धि एवं विचारों को महत्व देती है, इस आधार पर मस्तिष्क चेतना का मुख्य अंग माना जाता है । इस चेतना के मुताबिक हम अपने आस-पास के पदार्थों को पहचानते हैं । उसके रंग, रुप, आकार, प्रकार, गुण, दोष आदि का पता लगाते हैं । भावात्मक चेतना भावों को महत्व देती है, इस चेतना के अंतर्गत हम पता लगाए गयें पदार्थों पर अपने भाव या विचार व्यक्त करते हैं । क्रियात्मक चेतना मानवीय व्यवहार वैचित्रय को महत्व देती है । इस चेतना के अंतर्गत पता लगाए गयें पदार्थों की उपयोगिता देखी जाती है, यदि वे अपने लिए उपयोगी है तो उन्हें प्रयोग में लाया जाता है यदि नहीं है तो हटा दिया जाता है । यानी मनुष्य के व्यवहार में देखा जाने वाला परिवर्तन कियात्मक चेतना का उदाहण है । उपर्युक्त प्रक्रिया के माध्यम से चेतना अनेकों रुपों में हमारे सामने आती है और व्यक्ति उसे अपने हित के लिए प्रयोग करता है । चेतना को व्यक्ति के हित और अहित दो आधार पर देखा जा सकता है । व्यक्ति के हित के लिए प्रयोग की गई चेतना सकारात्मक चेतना कही जाती है और व्यक्ति के अहित के लिए प्रयोग की गई चेतना नकारात्मक चेतना कही जाती है, मसलन दया, प्रेम, सदभावना, क्षमा, करुणा आदि सकारात्मक चेतना के भीतर आते है तो घृणा, अहंकार, क्रोध, ईष्या, लोभ, स्वार्थ आदि नकारात्मक चेतना के अंतर्गत आते है । चेतना क्या है ? इसके अर्थ एवं महत्व को समझाने का प्रयास अनेकों विद्वानों ने किया है परंतु सभी के विचार में थोड़ा बहुत अंतर के बावजूद भी एक रुपता दिखाई पड़ती । पाश्चात्य विद्वान एरिच न्यूमैन ने चेतना के संदर्भ में कुछ अलग तथ्य खुलाया है । 1949 में उनके द्वारा लिखी गई पुस्तक (The Origens and History of concisouness) में उन्होंने चेतना के विकास के मूल चरणों पर प्रकाश

डा़ला है । यह भी बताया है कि स्त्री में भी चेतना का विकास मर्दाना ही होता है । यानी स्त्री और पुरुष की चेतना में उन्होंने कोई भेद स्वीकार नहीं किया है लेकिन बाद में जेम्स हिलमैन ने उनके इस विचार का खंडन करते हुये कहा कि स्त्री और पुरुष की चेतना में अंतर होता है । स्त्री पुरुष के बीच का जैविक अंतर इस बात का प्रमाण है । वे लिखते है कि न्यूमैन ने इस विशेष पक्ष को नजरअंदाज किया है । हिलमैन की इस तरह की अभिव्यक्ति स्त्री और पुरुष के बीच बौद्धिक विभेद को दर्शाती है । गौरतलब बात यह है कि यदि दोनों की चेतना में अंतर होता तो क्या स्त्रियां पुरुषों की तरह कार्य करने में सक्षम होती ? जो कार्य वर्षों से पुरुषों ने खुद के लिए चुना था । आज वही कार्य स्त्रियां पुरुषों से बेहतर कर रही हैं । चाहे वह सामाजिक कार्य हो, राजनीतिक कार्य हो, साहित्यिक कार्य हो या फिर कोई भी तकनीकी विषय से जुड़ा हुआ कार्य हो । इस आधार पर चेतना की भिन्नता की यह मान्यता कमजोर प्रतीत होती है । हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि सामाजिक वातावरण एवं परिवेश का प्रभाव चेतना पर पड़ता है और इसका स्तर कम और ज्यादा हो सकता है । जो व्यक्ति जितना सामाजिक क्रियाकलापों से जुड़ेगा वह अन्य की तुलना में अधिक चेतनशील होगा चाहे वह स्त्री हो या पुरुष । चेतना के संदर्भ में यदि पुरुषों का इतिहास देखा जाए तो वह आदि काल से ही स्त्री की तुलना में अधिक स्वतंत्र रहा है । कबीलाई समाज के नेत्रृत्व से लेकर नीति निर्धारण और नियंत्रण सभी में पुरुषों की ही अग्रता दिखाई पड़ती है । इसी कारण स्त्री से वह अधिक जानकार हो पाया है लेकिन यह कतई सत्य नहीं है कि स्त्री चेतना पुरुषों से कमतर है । अत: चेतना के संदर्भ में हिलमैन की यह अभिव्यक्ति एरिज न्यूमैन की तुलना में कमजोर और असान्दर्भिक दिखाई पड़ती है । सत्य तो यह है कि चेतना की क्षमता और उसका क्षेत्र मापा नहीं जा सकता । चेतना एक असीमित क्षेत्र और संभावनाओं को लेकर चलती है । कुछ विद्वानों का तो यहां तक कहना है कि चेतना की परिभाषा नहीं दी जा सकती क्योंकि इसकी शक्ति और क्षेत्र इतना विशाल है कि उसे शब्दों में समेट पाना नामुमकिन है । यदि समेट

भी लिया जाये तो उसकी शक्ति और सामर्थ्य में संकुचनता आ जाती है । इसी संदर्भ में पाश्चात्य विद्वान सर विलियम हेविल्टन ने कहा है **"चेतना अपरिभाषेय शब्द है । चेतना की परिभाषा नहीं हो सकती हम केवल अनुभव कर सकते है कि चेतना क्या है लेकिन दूसरों को नहीं बता सकते ।"**[1]

वास्तव में चेतना की परिभाषा गढ़ना एक चुनौति पूर्ण कार्य है । मानव जीवन के साथ जुड़े हुए इस विशाल अति आवश्यक एवं संवेदनशील विषय को किसी शब्द परिधि में बाधंना सामान्य कार्य नहीं है लेकिन यह भी सत्य है कि यदि इसकी परिभाषा नहीं गढ़ी गई होती तो क्या चेतना को हम अलग-अलग संदर्भों में उसकी महानता, उपयोगिता एवं महत्व को समझ पाते ? चेतना की परिभाषा ने हमें न सिर्फ उसे अलग-अलग विषय वस्तु के संदर्भ देखने का नजरिया दिया है बल्कि समय परिस्थिति के मुताबिक इसके प्रभाव एवं उपयोगिता को देखने की वैज्ञानिक दृष्टि भी दी है । चेतना को प्राचीन काल से लेकर आज तक के विद्वानों ने अपने-अपने विषय वस्तु की आवश्यकता के आधार पर परिभाषित किया है । अस्तित्ववादी लेखक चेतना को एक पद्धति या साधन के रुप में स्वीकार करते है तो मनोवैज्ञानिक इसे मानवीय अनुभूति मानते हैं । इसलिए वे चेतना को व्यक्ति की केन्द्रीय शक्ति, अनुभूति, विचार, चिंतन, कल्पना आदि के रुप में स्वीकार करते हैं । आध्यात्मवादियों ने चेतना को एक ज्योतिपुंज माना है, उनकी धारणा है कि चेतना मनुष्य के अंतर और बाह्य दोनों जगत को प्रकाशमय करती है । यह मनुष्य को आनंद भी देती है और उत्साहित भी करती है । चेतना आत्मा और परमात्मा को जोड़ने का तत्व है । इसलिए यह प्राणी जगत का गुणधर्म है जिसके अभाव में उसका कोई मूल्य या महत्व नहीं रह जाता । अतः दर्शन या आध्यात्म के क्षेत्र में आत्मबोध आत्मा का ज्ञान ही चेतना है । दर्शन में परम चेतन तत्व के सत-चित-आनंद स्वरुप का वर्णन है किंतु वह सच्चिदानंद प्रकाश रुप भी है । इसलिए चेतना को चैतन्य भी कहा जाता है । साहित्य की यदि बात करे तो रामधारी सिंह दिनकर ने चेतना के संदर्भ

में लिखा है **"मनोविज्ञान के अनुसार चेतना मन की एक स्थिति है, जिसके अंतर्गत बाह्य जगत के प्रति संवेदनशीलता तीव्र अनुभूति का आवेग, चयन या निमार्ण की शक्ति इन सब के प्रति चिंतन विद्यमान रहता है, ये सब बाते मिलकार किसी व्यक्ति की पूर्ण चैतन्य अवस्था का निर्माण करती है ।"[2]**

दिनकर चेतना संबंधी मनोविज्ञान की विचारधारा स्वीकारते हुए दिखाई पड़ते है इनके मतानुसार चेतना बाह्य जगत से प्रभावित होकर मनुष्य के अतंर जगत को प्रभावित करती है उसी आधार पर मनुष्य प्रतिक्रिया स्वरुप अपना व्यक्तित्व निर्माण करता है । मार्क्स चेतना को मनुष्य की रचनात्मक प्रेरणा और विचारधारा के संवंध में चेतना दर्शन और सौन्दर्य बोध की सीमाएं निर्दिष्ट करते है । उनका मानना है **"क्रियाशील मानव जिस रुप में अपनी उत्पादन शक्तियों के निश्चित विकाश और उनसे संबंधित घनिष्ट पारस्परिकता की फलीभूत अवस्था में अंतिम रुपों में भी वे ही अपनी धारणाओं, विचार आदि के निर्माता है । चेतना तो चेतन अस्तित्व है और वही अस्तित्व जो मनुष्य की अपनी वास्तविक जीवन प्रक्रिया में निरंतर रहता है । इसके अतिरिक्त चेतना और कुछ भी नहीं ।"[3]**

हिंदी साहित्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. नगेन्द्र चेतना के संदर्भ में अपनी संपादित पुस्तक मानविकी परिभाषिक कोश में लिखते है **"consciousness" वह सत्ता या शक्ति है जो ज्ञान का मूल आधार है और इसलिए जो स्वयं अपरिभाष्य है । अंतर्निरीक्षण द्वारा ही चेतना का ज्ञान संभव है । बाह्य निरीक्षण चेतना की क्रियाओं का परिचय मात्र दिला सकता है, वह भी परोक्ष रुप से । कभी-कभी चेतना संकल्प (conation), भाव (affection) और ज्ञान (congnition) की समविष्टि को भी कहा जाता है ।"[4]**

चेतना के संदर्भ में उपर्युक्त परिभाषाओं से दो तथ्य हमारे सामने आते है एक वह जो चेतना को वस्तु के प्रति बौद्धिक आयाम पर सोचता, समझता और जागरुक

मानने की स्थिति को स्वीकार करता है और दूसरा वह जो मन की प्रतिक्रिया के आधार पर वस्तु को स्वीकारता है । दोनों तथ्यों में यह समानता है कि मन और मस्तिष्क की जागरुक अवस्था को ही चेतना हैं । यह व्यक्ति के पर्यावरण एवं परिवेश के संपर्क में आकर अधिक सक्रिय हो जाती है । आधुनिक समय में जितना भौतिक स्रोत साधनों का विकास होता जा रहा है उतना ही चेतना का क्षेत्र भी विस्तार होता जा रहा है । चेतना को अपने विषय वस्तु की सुविधा अनुकूल विद्वानों ने अलग-अलग रुप में विभाजित कर दिया है । समाजशास्त्रियों ने चेतना को समाजशास्त्रीय दृष्टि से इसका विश्लेषण किया है तो वैज्ञानिकों ने इसे विज्ञान की दृष्टि से विश्लेषण किया है । परंतु हमें इसे राजनीतिक दृष्टि से देखना है । राजनीति चेतना व्यवहारिक और सैद्धान्तिक दो रुपों में दिखाई पड़ती है । व्यवहारिक चेतना वह है जो राजनीति के बाहरी अर्थात क्रियात्मक रुप को दर्शाती है । मसलन आंदोलन, नारेबाजी, चुनावी गतिविधि, विकास एवं योजनायें आदि यह चेतना परिणात्मक होती है । इसकी गतिविधियों को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । सैद्धान्तिक चेतना राजनीति विचारधारा, पद्धति, शैली, व्यवस्था आदि विषयों के संबंध में वैज्ञानिक जानकारी से संबंधित है । राजनीतिक विश्लेषक, विचारकों में राजनीतिक चेतना का यह रुप दिखाई पड़ता है । प्लेटो, अरस्तू, सिसरो, दांते एलीगिएरी, निकोलो मेकियावेली, मार्टिन लूथर, जेम्स मिल, जाँन स्टुआर्ट मिल, कार्ल मार्क्स, माओत्से तुंग, महात्मा गांधी आदि ने राजनीतिक चेतना की अवधारणा और इसके गुण-दोषों का सूक्ष्म रुप से विश्लेषण किया है । इन चिंतकों ने राज्य की अवधारणा से लेकर शासन सत्ता और जनता के बीच के अंर्तसंबंधों की भी व्याख्या की हैं । राजनीति का उद्देश्य और इसके घटकों की विवेचना इनके राजनीतिक सिद्धांतों में देखी जा सकती है । यह सत्य है कि समय के साथ-साथ राजनीति के स्वरुप और प्रयोग में परिवर्तन आया है । वर्तमान समय में राजनीति राज्य का एक महत्वपूर्ण एवं अपरिहार्य अंग बन चुकी है । इसके अभाव में राज्य में शांति, सुरक्षा एवं विकास की कल्पना तक संभव नहीं है । राजनीति राज्य के विविध पक्षों को प्रभावित

करती है। व्यक्ति, परिवार, समाज राष्ट्र का अभिन्न अंग है, इन सभी को व्यवस्थित रुप से संचालन करने के लिए राजनीति की आवश्यकता होती है। यह सभी कार्य राजनीति चेतना के बिना संभव नहीं हैं। इसलिए वर्तमान समय में राजनीतिक चेतना के पक्ष को जानना आवश्यक है।

१.२ राजनीति का अर्थ एवं परिभाषा

राजनीति मूलतः राज्य, शासन और सत्ता से जुड़ा हुआ विषय है। मनुष्य ने अपनी चेतना के कारण किसी व्यवस्था या पद्धति के माध्यम से व्यवस्थित जीवन शैली की अवधारणा का विकास किया यह मनुष्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इससे मानवीय समाज व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक तो बना ही है साथ ही विकास की प्रक्रिया भी निर्धारित रुप में गतिमान हुई है। जिस तरह एक व्यक्ति व्यवस्थित एवं सफल जीवनयापन करने के लिए अपने जीवन के सिद्धांत, मूल्य, मान्यताएं और पूर्व योजनाएं निर्धारित करता है उसी तरह समाज एवं राष्ट्र को व्यवस्थित रुप से संचालन कर उसे समृद्ध बनाने और देश में न्याय, शांति, सुरक्षा कायम करने के लिए भी एक व्यवस्था की आवश्यकता होती है। इसी व्यवस्था को कार्यान्वयन करने के लिए जनता कुछ खास योग्य व्यक्ति को विशेष प्रक्रिया के तहत चुनकर भेजती है यही चुने हुए व्यक्ति नेता और उनकी गतिविधियां राजनीति कहलाती है। संक्षिप्त रुप में कहे तो राज्य के लिए नीति निर्धारण करने वाली प्रक्रिया राजनीति कहलाती है। मैक्सबेबर का मानना है कि **"किसी संगठन को राजनीतिक संगठन तभी और वहीं तक मानना चाहिए जब और जहां तक किसी निर्दिष्ट भूक्षेत्र के अंतरर्गत उसके आदेशों का निरंतर पालन होता हो।"**[5]

यानी राजनीति वह सर्वमान्य संस्था है जिसके द्वारा बनायें गयें नियमों का पालन उसके अंतर्गत आने वाले सभी लोगों को करना अनिवार्य होता है। यह लोगों की गतिविधियां, व्यवहार एवं आचरण तक को प्रभावित करती है। राजनीति के इतिहास के अध्ययन से भी यह ज्ञात होता है कि राजनीति की अवधारणा का विकास भी

कबीलाई समाज में नियंत्रण एवं अनुशासन बनाए रखने के लिए हुआ था परंतु धीरे-धीरे राजनीति का स्वरुप और उद्देश्य बदलता गया इसलिए प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक आते-आते राजनीति के संबंध में कई विचारधाराएं सामने आयी । पाश्चात्य राजनीति शास्त्री अरस्तू ने तो यहां तक कहा कि **"मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है और हम जिस युग में रह रहें है वह राजनीति का युग है ।"**[6] अर्थात राजनीति मनुष्य के संपूर्ण जीवन को समेट लेती है । हमारे दैनिक जीवन में राजानीति का प्रभाव व्यापार, व्यवसाय, रोजगार लगायत शिक्षा, स्वास्थ, सुरक्षा, न्याय जैसी अति आवश्यक चीजों पर सहज ही देखा जा सकता है । राजनीति से कोई भी व्याक्ति नहीं बच सकता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से व्यक्ति पर इसका प्रभाव पड़ ही जाता है । राज्य का प्रत्येक व्यक्ति सर्वप्रथम परिवार से जुड़ता है फिर समाज से फिर राष्ट्र से इन तीनों स्थिति में उसकी अलग-अलग भूमिका रहती है । राज्य की भूमिका में उसे जिम्मेदार नागरिक बन्ने के लिए राज्य द्वारा निर्धारित सभी प्रक्रिया में सहभागी होना पड़ता है, चाहे राज्य को कर देना हो या चुनाव प्रक्रिया में मतदाता के रुप में हिस्सा लेना हो । ये सभी स्थितियां कहीं ना कहीं राजनीति से जुड़ी हुई है परंतु आम आदमी की नजर में राजनीति मंत्रियों एवं विधायको की गतिविधि, नारा, जुलूस, चुनावी पैतरे आदि हैं । राजनीति के संदर्भ में आम आदमी की इस समझ को गलत तो नहीं माना जा सकता परंतु संकुचित अवश्य माना जा सकता है । क्योंकि राजनीति निर्णायक तौर से सामाजिक संरचना का वह क्रियाशील क्षेत्र है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से समाज के अनेकों स्तर पर प्रभाव डालती है । किसी भी जाति, वर्ग, समुदाय की समस्या राज्य से जुड़ी होती है । राज्य के सहयोग और समर्थन के बिना आधिकारिक पहचान की संभावना नहीं होती अर्थात हम यह कह सकते है कि राजनीति एक व्यापक सामाजिक अधिरचना का एक अत्यंत सुनम्य रुप है । ये न केवल सामाजिक कारकों से प्रभावित होती है अपितु व्यक्ति के हितों, जनता के विचारों एवं संस्कृति से भी प्रभावित होती है । वर्तमान समय में औद्योगिक क्रांति और आधुनिक राष्ट्र राज्यों

के उदय के बाद इसके स्वरुप सामर्थ्य और मानव जीवन में इसकी भूमिका का व्यापक विस्तार हुआ है। आज राजनीति केवल परंपरागत राज सत्ता तक सीमित नहीं है। आधुनिक समाज में इसका प्रकटीकरण राज्य के साथ मनुष्य की अथवा मानव समूहों की अंतः क्रियाओं में ही नहीं होती बल्कि किसी समाज के सदस्य या राज्य के नागरिक के रुप में हम अपने रोजमर्रा के जीवन में जो कुछ भी करते है वह किसी न किसी सत्ता संबंधी दायरे में आता है। राज्य, अर्थ व्यवस्था, कानून, परिवार, धर्म, विद्यालय आदि अनेक संस्थाएं है ये संस्थायें किसी न किसी राज्य का अंग है और राज्य किसी सत्ता द्वारा संचालित होता है। इतना ही नहीं सत्ता हमारे सोचने के तरीके, हमारे विचार, व्यवहार, हमारी पसंद ना पसंद को भी नियंत्रण करती है। हालांकि एक संप्रभु राष्ट्र के स्वतंत्र नागरिक होने के नाते हमें यह लगता है कि हम अपने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक गतिविधियों और अपनी दिन चर्या संबंधी क्रियाकलापों में पूर्ण स्वतंत्र है परंतु वर्तमान समय के राष्ट्र सत्ता में यह इतना आशान भी नहीं हैं। 'द आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ वेस्टर्न फिलोसफी' के अनुसार **"सत्ता कुछ लोगों की दूसरे पर अभीष्टव पूर्वज्ञात प्रभाव हासिल करने की क्षमता है। यह हमेशा एक अंतः क्रिया प्रक्रिया है। इसका अस्तित्व इसके प्रयोग में ही है। यह एक संबंध आधारित अनुभव है, जो दूसरों से अंतः क्रिया पर निर्भर करता है प्रकटीकरण में दूसरे की उपस्थिति अनिवार्य है। चाहे वह वास्तविक हो या उपलक्षित।"**[7]

इस आधार पर हम यह कह सकते है कि राजनीति एक सामूहिक कार्य है। जनता और नेताओं के अभाव में इसका कोई अस्तित्व नहीं होता। दोनों की उपस्थिति में इसके स्वरुप को निर्धारित किया जाता है। समाज एवं राष्ट्र के हित का उद्देश्य इसके मूल में निहित होता है। एक विशेष प्रक्रिया के तहत चलने वाली प्रणाली होने के कारण यह एक औपचारिक व्यवस्था है। सरकार और जनता के समन्वय के संबंध में जाँन लाँक लिखते है **"सरकार ऐसा गठबंधन है जिसे समुदाय के लोग**

अपनी पसंद से चुनते है अतः सरकार स्वयं समुदाय के प्रति निष्ठा से बधी होती है और उसे समुदाय से प्राप्त दिशा निर्देश अनुरुप कार्य करना होता है। राजनीतिक सत्ता किसी दैवीय विधान के अंतर्गत स्थापित नहीं होती। सरकार निर्माण करने के बाद समुदाय निश्चित होकर सो नहीं जाता बल्कि उसकी निगरानी करता है।"[8]

लाँक का यह विचार लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति को स्पष्ट करता है। लोकतंत्र व्यवस्था में जनता और सत्ता पक्ष दोनों की जिम्मेदारियां राज्य के लिए बराबर होती है। जनता को सरकार की गतिविधियों पर निगरानी रखने का पूरा अधिकार होता है तो सत्ताधारियों को जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने का दवाब रहता है। राजनीति में मुख्य रुप से राजतंत्र और लोकतंत्रात्मक व्यवस्था प्रचलन में देखी जाती है। लोकतंत्र व्यवस्था को जनता द्वारा जनता के लिए बनाई गई व्यवस्था के रुप में लिया जाता है इसलिए यह व्यवस्था जनमुखी कहलाती है। इस व्यवस्था के तहत जनता को अपने राज्य का नेत्रृत्व कर्ता (प्रतिनिधि) चुनने का अधिकार होता है। इसके अलावा इन व्यवस्थाओं को संचालन करने के पीछे कई विचारधाराओं की अहम भूमिका रहती है। मसलन उदारवादी विचारधार, समाजवादी विचारधारा, स्त्रीवादी विचारधारा, साम्यवादी विचारधारा और पूंजीवादी आदि। वर्तमान भौतिकवादी समाज में पूंजीवादी विचारधारा लोगों पर इनती हावी हो गई है कि जिसके कारण राजनीति की मूल्य मान्याताएं समाप्त होने लगी है। राजनीति भ्रष्ट नीति में तब्दील होती जा रही है। इसी पूंजीवाद के गर्भ से ही मार्क्स के समाजवाद का जन्म हुआ है। समाजवाद समाज के सभी वर्ग के नागरिकों के समान अधिकार की बात करता है। राज्य की पूंजी पर किसी विशेष वर्ग का नहीं बल्कि सबके समान अधिकार की मांग करता है। सामाजिक, धार्मिक रुढ़ियों को यह विचारधारा प्रगतिका बाधक मानती है। सर्वहारा एवं समाज के सभी उपेक्षित वर्ग के हक की बात को सर्वोपरि मानती हैं। इसके अलावा एक मुख्य बात यह है कि मार्क्स मानते हैं कि किसी भी शोषित या उपेक्षित वर्ग को अधिकार

इतनी आसानी से नहीं मिलता राज्य या सामंती समाज शोषण युक्त संस्कार का आदी होता है । वह गरीब सर्वहाराओं को अपनी सुविधा के लिए प्रयोग करता है । अत: उन पर उसके आँसुओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता इसलिए उपेक्षित वर्ग को अपने अधिकार के लिए संघर्ष करना पड़ता हैं । इसके लिए क्रांति ही एक प्रमुख हथियार है जिसके माध्यम से सामाज रुपांतरण किया जा सकता है । लोकतांत्रिक दृष्टि से यह विचारधारा विभत्स एवं विध्वंसकारी अवश्य लगती है परंतु इसके अन्य सभी पक्ष मानव कल्याणकारी है । दक्षिणपंथ को पूर्वीय देशों मे प्रचलित राजनीतिक विचारधारा के रुप में स्वीकार किया जाता है । यह विचारधारा राजनीति में उदारवादी प्रवृत्ति को मान्यता देती है । मानव अधिकार और उनकी सुरक्षा का सवाल इसके केन्द्र में रहता है । व्यवस्थित एवं शांतिपूर्ण तरिके से समस्या का समाधान करना या समाज रुपातंरण का मार्ग खोजना इसकी नीति होती है । यह विचारधारा धर्म, संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज आदि को समाज की पहचान के रुप में स्वीकार करती है । इसी कारण इसे परंपरावादी राजनीतिक विचारधारा भी कहा जाता है । अर्थ, समाज एवं राजनीति सभी पर इसकी उदारवादी दृष्टि रहती है । वर्तमान समय में समाजवाद को भी इसने स्वीकार कर लिया है । दक्षिण और वाम का यदि ऐतिहासिक संदर्भ देखे तो वाम और दक्षिण शब्द का प्रयोग राजनीति में फ्रान्स की क्रांति (1789) के समय से शुरु हुआ था । फ्रान्स में क्रांति से पूर्व एटेस्ट जनरल नामक संसद में सम्राट को हटाकर गणतंत्र का समर्थन करने वाले लोग और धर्म निरपेक्षता चाहने वाले लोग बायी तरफ बैठते थे इसलिए वे वाम कहलाए और बाद में इसे समाजवाद और साम्यवाद के समर्थकों के साथ जोड़ा गया । भारत में विशेषकर वामपंथी पार्टी के रुप में कम्युनिष्ट पार्टी (सी.पी.आई) और मार्क्सवादी कम्युनिष्ट पार्टी (सी.पी.एम) को जाना जाता है । ये पार्टियाँ भारत की कट्टर वामपंथी पार्टी कहलाती है । इनके अलावा अन्य राजनीतिक पार्टियाँ मध्य समाजवादी और दक्षिणपंथी के रुप में जानी जाती है जो लोकतंत्र की पक्षधर है और उदारवादी राजनीतिक दृष्टि को स्वीकार करती है । नेपाल के संदर्भ में बात

करें तो नेपाल कम्युनिष्ट पार्टी (एमाले) और नेपाल कम्युनिष्ट पार्टी माओवादी (नेकपा माओवादी) को कट्टर वामपंथी पार्टी के रुप में जाना जाता हैं। इनके अलावा जनता समाजवादी पार्टी को भी मध्य-वामपंथी पार्टी के रुप में पहचान मिली है। इन पार्टियों का मुख्य उद्देश्य लगभग सभी देशों की कम्युनिष्ट (वामपंथी) पार्टी की तरह ही है। वर्ग, रंग, जाति, लिंग भेद को मिटाकर साम्यवादी समाज की स्थापना करना और इस परिवर्तन के लिए ये किसी भी तरह के राजनीतिक हथकंडे को अपना सकते है। दक्षिणपंथी पार्टी की चर्चा करे तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई.एन.सी), राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (एन.सी.पी) और भारतीय जनता पार्टी (बी.जे.पी.) को जाना जाता है। नेपाल में नेपाली कांग्रेस, राष्ट्रीय प्रजातंत्र पार्टी, विवेकशील साझा पार्टी आदि को दक्षिणपंथी कहा जाता है। यह सच है कि वर्तमान समय में राजनीति के व्यवहारिक और सैद्धांतिक पक्षों में वाद प्रतिवाद चल रहा है इसलिए राजनीति के स्वरुप और उद्देश्य में बहुत कुछ परिवर्तन आता जा रहा है। राजनीति एक शक्ति संघर्ष के रुप में परिभाषित हो रही है यह शक्ति संघर्ष अनेक मूल्कों के बीच भी चल रहा है और एक ही मूल्क के भीतर के अनेकों समूहों के बीच में भी। दूसरे शब्दों में कहे तो राजनीति में एक जटिल प्रतिस्पर्धा की स्थिति बन गई है, इस स्थिति ने समाज के दुर्लभ संसाधनों पर भी अपना नियंत्रण करना आरंभ कर दिया है।

१.२.१ राजनीति का स्वरुप

वर्तमान समय में राजनीति के स्वरुप को लेकर अनेकों मतभेद पायें जाते हैं क्योंकि राजनीति का वास्तविक स्वरुप उसकी प्रकृति के अनुरुप परिवर्तित होता रहता है इसलिए इसको परिभाषित कर इसके स्वरुप को आंकना एक जटिल कार्य है। प्राचीन भारत की शास्त्रीय दृष्टि के अनुसार 'राजनीति' शब्द का निर्माण संस्कृत के राज और नीति शब्द के योग से बना है। पूर्वीय दर्शन में राज दरबार की गतिविधियों को राजनीति का नाम दिया गया हैं। पाश्चात्य दर्शन की यदि बात

करे तो राजनीति अंग्रेजी के 'पोलिटिक्स' का पर्यायवाची शब्द है । 'पोलिटिक्स' शब्द की व्युत्पत्ति 'पोलिस' शब्द से हुई है यह यूनानी शब्द है जिसका अर्थ है नगर । उस समय यूनानियों के लिए नगर ही राज्य थे इसलिए नगर राज्य से संबंधित विषय को उन्होंने 'पोलिटिक्स' नाम प्रदान किया । राजनीतिक सिद्धांतों में क्रांतिकारी परिवर्तन तब आया जब अरस्तू ने राजनीति संबंधि शोधमूलक ग्रन्थों की रचना की और उनमें राजनीति संबंधि विचारों का निरुपण एवं विवेचन किया । बाद में मेकियावेली ने राजनीति का आधुनिकीकरण कर राजनीति को धर्म और नैतिकता के बंधन से मुक्त कर दिया । सर फेडरिक पोलक ने राजनीति के स्वरुप को दो भागों में विभाजन किया सैद्धांतिक और व्यवहारिक । इस विभाजन का समर्थन बाद में आधुनिक राजनीतिक चिंतक जलीनेक, सिजाविक, होल्टन, जडार्फ जैसे राजनीतिक विचारकों ने भी किया और इन्होंने भी राजनीति को आदर्श और नैतिकता के खेमे से बाहर निकालने की बात का समर्थन किया । इन विचारकों का मानना है कि राजनीति यथार्थ मूलक होनी चाहिए समय परिस्थिति मुताबिक इसके स्वरुप में बदलाव आना स्वभाविक है, इसके अलावा इन विद्वानों ने राजनीतिक को राज और शक्ति का संबंध माना हैं । वर्तमान समय में राजनीति अपरिहार्य बन चुकी है । राजनीति ही एक ऐसी चीज है जिसके माध्यम से प्रत्येक राष्ट्र दुनिया में अपनी पहचान बनाने की जद्दोजहद में जुटा हुआ है । विश्वव्यापीकरण के इस दौर ने दुनियाभर के देशों को व्यापार और शिक्षा के माध्यम से एक दूसरे को जोड़ दिया है । जिससे लोगों का जीवन सरल सुलभ और समृद्ध बनता जा रहा है, इस सबको जोड़ने का माध्यम भी राजनीति ही है । वर्तमान समय में राजनीति के दो रुप दिखाई पड़ रहे है राष्ट्रीय और अंतर्रराष्ट्रीय राजनीति । अंतर्रराष्ट्रीय राजनीति दुनियाभर के देशों में अपने देश के हक अधिकार एवं सुरक्षा के लिए की जा रही है तो राष्ट्रीय राजनीति अपने देश के जनता को हक अधिकार एवं सुरक्षा देने के लिए की जा रही हैं । राजनीति के इस स्वरुप ने अंतर्रराष्ट्रीय स्तर पर सभी देशों को अपनी पहचान और पहुँच बनाने का अवसर दिया हैं ।

राजनीति को और अधिक गहन और गंभीर रुप से समझने के लिए इसके सैद्धांतिक और व्यवहारिक स्वरुप को समझना जरुरी है। राजनीति का सैद्धांतिक पक्ष राजनीति के ढ़ांचे को समझाने का प्रयास करता है। दूसरे अर्थ में कहे तो यह राजनीति का मार्ग दर्शन करने का साधन है । सैद्धांतिक राजनीति में राज्य की आधारभूत समस्याओं का अध्ययन किया जाता है । जैसे राज्य की उत्पत्ति, प्रकृति, उद्देश्य, राजनीतिक संगठन, प्रशासन आदि । सैद्धांतिक राजनीति के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए पाश्चात्य राजनीतिक चिंतक इ.जे. मिहान (E. J. Meehan) लिखते है **"A theory is a generalization or a set of generalization that explains general statements or explains other theories"**[9]

अर्थात सिद्धांत मूल रुप में विचारात्मक उपकरण है । यह राजनीतिक जीवन के तथ्यों को क्रमबद्ध करता है साथ ही घटनाक्रम को जोड़ने का काम भी करता है । संबंधित विषय के ज्ञान के साथ-साथ तथ्यों का विश्लेषण भी राजनीतिक सिद्धांतों के अंतर्गत पाया जाता है । व्यवहारिक राजनीति में राज्य के क्रियात्मक रुप का अध्ययन किया जाता हैं । यह सरकार की कार्य पद्धति तथा राजनीतिक जीवन की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करती है । समकालीन दौर में राजनीति ने स्वयं को सैद्धान्तिक पक्ष से अलग कर लिया है अब वह पूर्णत: व्यवहारिक हो गई हैं । वर्तमान में राजनीतिक सत्ता स्पष्ट करती है कि निर्वाचन का प्रकार कैसा होगा । कौन व्यक्ति राजनीतिक पार्टी के लिए उपयुक्त होगा। किस व्यक्ति को टिकट दिया जायेगा । किसे निर्वाचन अधिकृत के रुप में चुना जायेगा आदि । राजनीति का यही परिवेश आम आदमी की नजर में इसे संस्थागत न बनाकर पेशागत बना देता है । सामूहिक हित का प्रतिक न बनाकर व्यक्तिगत स्वार्थ का प्रतिक बना देता हैं । इसके विपरीत राजनीति का सैद्धांतिक पक्ष यह कहता है कि राजनीति जनता के हित के लिए, आर्थिक समृद्धि के लिए, सामाजिक विभेद अंत करने के लिए और राज्य का संरक्षण करने के लिए की जानी चाहिए परंतु व्यवहारिक यथार्थ यह है कि राजनीति समाज को जाति, धर्म, लिंग, क्षेत्र में बांट देती है और इसी को ढ़ाल

बनाकर राजनीतिनुमा व्यवसाय करती है । राजनीति के इसी परिवेश को मन्नू भण्डारी ने महाभोज उपन्यास में दिखाया है तो पारिजात ने दीवार के अंदर और बाहर में । इनका मानना है कि नेता अपना हित साधने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं और कोई भी हथकण्डा अपना सकते हैं । यह सत्य है कि वर्तमान समय में राजनीति में कई प्रकार की विसंगतियां आई हैं । जिससे राजनीति दुषित होती जा रही है परंतु इसके चलते राजनीति के महत्व और मानव जीवन के लिए इसकी उपयोगिता को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता । राजनीति मानव जीवन के लिए ही नहीं बल्कि राष्ट्र की समृद्धि के लिए भी अपरिहार्य है, इसलिए जनता की जिम्मेदारी है कि वह सचेत रहकर नेताओं की गतिविधियों पर नजर रखे एवं गलती करने वालों को सजाय दिलाए और मानव कल्याण के लिए संस्थागत की गयी इस व्यवस्थित और औपचारिक पद्धति को सुदिढ़ कर सके । यह पद्धति तभी पूर्ण रुप से सफल हो सकती हैं जब शासक और शाषित दोनों समन्वयात्मक रुप से आगे बढ़ते हैं । प्राचीन और मध्य युग में राजनीति की जितनी आवश्यकता थी वर्तमान समय में राजनीति की आवश्यकता और अधिक बढ़ती हुई दिखाई पड़ती है । इसका कारण वर्तमान समय में बढ़ती हुई असीमित मानवीय आवश्यकताएं, फैलती हुई विस्तारवादी नीति, शक्ति का प्रदर्शन, औद्योगीकरण, असुरक्षा आदि हैं । समकालीन परिप्रेक्ष्य में 'राजनीति' शब्द एक व्यापक फलक को समेटे हुए है इसलिए इसे राजाओं और नेताओं की गतिविधि में मात्र सीमित कर देना इसके व्यापक क्षेत्र को संकुचन कर देना होगा । तसर्थ बहुअर्थी प्रयोग के कारण राजनीति सर्वव्यापक और महत्वपूर्ण बनी हुई हैं ।

१.३ समकालीन राजनीतिक चेतना भारत और नेपाल के संदर्भ में

१.३.१ भारत में राजनीतिक चेतना का परिदृश्य

वर्तमान समय में राजनीतिक ज्ञान एवं चेतना के परिमाण में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है । राजनीति का महत्व और क्षेत्र भी तीव्र गति से बढ़ रहा है ।

इसका कारण शिक्षा, पत्र-पत्रिकाओं एवं संचार माध्यमों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग में आना है। साथ ही आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, व्यवसायिक क्षेत्र में बढ़ते राजनीतिक प्रभाव के कारण भी लोगों में यह चेतना व्यवहारिक रुप से बढ़ रही है। भारत में सन् 1947 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात लोकतंत्र व्यवस्था ने इसके लिए और अधिक सहज वातावरण निर्माण कर दिया हैं। प्राचीन राजनीतिक पद्धति हट जाने से नवीन राजनीतिक मूल्यों की स्थापना हुई। भारत सार्वभौमसत्ता संपन्न गणतान्त्रिक राष्ट्र के रुप में स्थापित हुआ । समानता और समावेशी जैसी अवधारणाओं ने जन्म लिया जिसके कारण भारतीय समाज के सभी उपेक्षित वर्गों में अपने अधिकार के प्रति सचेतना जागी। इसी संदर्भ में रजनी कोठारी अपनी पुस्तक भारत में राजनीति में लिखते है **"भारत में समाज के विखंडित ढ़ांचे में राजनीतिक संस्थाओं, मूल्यों और विचारों का प्रवेश हो रहा है। भारतीय समाज-व्यवस्था अराजनैतिक रही है, अब यहाँ एक राजनीतिक केन्द्र की स्थापना हो रही है और समाज के विविध वर्गों को राजनीतिक व्यवस्था में स्थान मिला है। उन्हें इसका लाभ और अधिकार मिला है और उन पर इसकी जिम्मेदरियां भी आई हैं। अब तक जो गाँव राजनीतिक व्यवस्था से दूर रहे वे इसके पास आ रहें हैं।"**[10]

कोठारी के इन विचारों से भी यह लगता है कि स्वतंत्रता ने जनता में अपने अधिकारों के प्रति सजकता और जिम्मेदारियां बढ़ा दी है, साथ ही देश का राजनीतिक स्वरुप भी बदल दिया हैं। जो भारतीय राजनीति सिर्फ केन्द्र तक सीमित थी अब धीरे-धीर गाँवों की तरफ भी फैलने लगी हैं। लोग अपने सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में सुधार लाने राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी पहुंच एवं सहभागिता बनाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। जुलूस, बंद, हड़ताल, नारेबाजी जैसी राजनीतिक प्रवृत्तियाँ राजनीतिक चेतना की ही देन हैं। राजनीति में आये इस बदलाव ने विकास की गतिविधियों को तो बढ़ाया ही साथ ही जनताओं में भी राज्य के प्रति अपनी भूमिका, महत्व एवं अधिकार संबंधी ज्ञान का भी विस्तार किया। यूं तो

उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष के समय से ही भारतीय जनताओं में अपने हक अधिकारों के प्रति जागरुकता आ चुकी थी। सन् 1859 में बंगाल के किसानों द्वारा किया गया नील विद्रोह ने यह प्रमाणित कर दिया था कि भारतीय गरीब जनता जो अपनी मेहनत मजदूरी से जीवन निर्वाह करती हैं। वह अपने हक अधिकारों को भी बखूबी समझती हैं और अन्याय, अत्याचार एवं शोषण के खिलाफ आवाज उठाने का सामर्थ्य भी रखती हैं। अपने फायदे के लिए किसानों पर किए जा रहे जबरजस्तीकरण को भाप लेना भी किसानों की चेतना के स्तर को दर्शाता हैं। देश के सभी सचेत नागरिकों ने मिलकर इस अभियान को सफल किया और स्वतंत्र भारत की स्थापना की। किंतु इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता की उस समय लोगों का सारा ध्यान केवल स्वतंत्रता प्राप्ति पर ही केन्द्रित था। राष्ट्र निर्माण के अन्य पक्ष लगभग गौण थे। स्वतंत्रता के बाद संविधान निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ हुई इसी दौरान लोगों का ध्यान राष्ट्र के गली-कूचों पर रहने वाले सदियों से उपेक्षित होते आ रहे जाति, वर्ग, लिंग के समुदायों पर गया। यही से आधुनिक भारत के निमार्ण की प्रक्रिया भी शुरु हुई। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने दुनियाभर के संविधान का अध्ययन कर भारत के संविधान का मसौदा तैयार किया 26 November 1949 को इसे भारतीय संविधान सभा के समक्ष लाया गया और उसी दिन इसे सर्व सहमति से पारित भी किया गया। भारत के इस नये संविधान के साथ कई लोगों की आशायें जुड़ी हुई थी। भारत के नव निर्माण का यह खाका उपेक्षित वर्गों में उत्साह भरने के लिए काफी था किंतु कुछ ही समय बाद इसके कार्यान्वयन में काफी चुनौतियाँ आने लगी। जिसके कारण जनताओं में निराशा उत्पन्न हुई और संविधान में उल्लेखित अपने हक अधिकार को प्राप्त करने के लिए उपेक्षित वर्गों को सत्ता पक्ष के विरुद्ध आवाज उठानी पड़ी। ये घटनायें भारतीय राजनीतिक चेतना का एक नया रुप थी। भारतीय समाज जो वैदिक काल से ही जाति, वर्ग और समुदायों में विभाजित था वर्तमान समय तक आते आते ये और अधिक विकराल हो चुका था। उच्च वर्गों का वर्चस्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा

था जमीदारी और पूंजीपति व्यवस्था के हाथ में देश की बागडोर थी। देश विदेशी शक्तियों से तो आजाद हो चुका था परंतु उनके संस्कारों से आजाद नहीं हो पाया था। आंतरिक शक्तियां विभेदकारी नीतियों को प्रश्रय दे रही थी जिसके कारण निम्न जाति एवं वर्गों का उत्पीड़न चरम रुप लेने लगा था ऐसी स्थिति में केवल संविधान उनको न्याय दिलाने के लिए काफी नहीं था। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए गरीब जनताओं का शोषण करना जमीदार और पूंजीपतियों का मानों जन्म सिद्ध अधिकार बनता जा रहा था। ऐसी स्थिति में ही अंग्रेजी हुकूमत एवं सामंती वर्गों के खिलाफ जनता को न्याय दिलाने के लिए 26 December 1925 में एम.एन राय के नेतृत्व में औपचारिक रुप से भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी की स्थापना हुई थी। जिसका उद्देश्य समाज के गरीब, मजदूर, उत्पीडित जनताओं के हक में आवाज उठाना था। स्वतंत्रता संग्राम में भी वामपंथियों की खासकर कम्युनिष्टों की उल्लेखनीय भूमिका रही वामपंथियों के दबाव के ही चलते कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव स्वीकार किया था। स्वतंत्रता आंदोलन के साथ मजदूरों और किसानों की मांगों को जोड़ने का श्रेय भी कम्युनिष्टों को जाता हैं। अंतर्रराष्ट्रीय मजदूर आंदोलन से भारतीय मजदूर आंदोलन से जोड़ने का काम भी इन्होंने किया था लेकिन भारतीय कम्युनिष्टों की एक कमजोरी यह थी कि इनमें हमेशा वैचारिक मतभेद चलते रहे स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ही वामपंथी शक्तियां कई धारा में बंट चुकी थी। इसी कारण सन् 1964 में अलग से मार्क्सवादी कम्युनिष्ट की स्थापना हुई। आरम्भ में इस पार्टी के नेताओं को काफी संघर्ष करना पड़ा। इसे विदेशी विचारधारा से संचालित पार्टी होने का आरोप भी लगाया गया। बाद में धीरे-धीरे जब यह पार्टी जनता की आवाज बनकर उभरने लगी तब जनताओं ने इस पर विश्वास ही नहीं किया बल्कि इसका साथ देना भी आरंभ किया। यह पार्टी गरीब, मजदूर, उपेक्षित एवं किसान वर्गों की पार्टी के रुप में देश भर में प्रसिद्ध हुई। भारत का किसान आंदोलन, नक्सलबाड़ी आंदोलन आदि सामाजिक शोषण एवं विभेद के विरुद्ध विद्रोह था। इन विद्रोहों को राजनीतिक चेतना के उदाहरण के रुप

में लिया जा सकता है । भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी एवं वामपंथी विचारधारा का राजनीतिक चेतना के स्तर को बढ़ाने में इस लिए महत्वपूर्ण योगदान दिखाई पड़ता है कि इन्होंने समाज के गरीब, अशिक्षित एवं उपेक्षित वर्ग को उनके अधिकार के लिए सचेत किया और उनके स्तर में सुधार लाने का प्रयास किया ।

१.३.२ नेपाल में राजनीतिक चेतना का परिदृश्य

नेपाल के संदर्भ में यदि राजनीतिक चेतना का जायजा लिया जाए तो राणा शासन (सन् 1846-1950) के विरुद्ध आंदोलन से लिया जा सकता है । राणाओं के तानाशाही प्रवृत्ति से जनता ऊंब चुकी थी । शिक्षा, स्वाथ्य और सुरक्षा जैसी आधारभूत एवं अति आवश्यक चीजों से उन्हें वंचित रखा जा रहा था । यदि ये आधारभूत चीजें उपलब्ध थी भी तो केवल उन लोगों के लिए जो उनका यशोगान करते थे । उनकी हाँ में हाँ मिलाते थे, बाकी गरीब जनताओं की स्थिति दिन प्रति दिन दयनीय बनती जा रही थी । राणाओं की शासन पद्धति आत्म केन्द्रित थी अपनी सुख सुविधाओं के अलावा उन्हें जनताओं के सुख सुविधाओं से कोई सरोकार नहीं था । तत्कालीन राजनीतिक परिवेश की चर्चा करते हुए बलराम आचार्य अपनी पुस्तक 'नेपाल में समाज और संस्कृति' में लिखते है **"समग्र में राणाकालीन नेपाली समाज का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक पक्ष मूलतः राणा केन्द्रित ही था । इस समय नेपाली समाज में परिवर्तन और विकास जैसे उल्लेखनीय काम नहीं हो सके । राजनीतिक दमन व्याप्त था, वास्तव में ही वह एकाधिकारवादी जहानिया शासन था । आर्थिक रुप में राणा शासन के अंत में इष्ट इण्डिया कम्पनी के स्वार्थ हेतु कुछेक चीनी और माचिस उद्योग नेपाल के तराई क्षेत्र में खोले गयें लेकिन इसके अलावा बाकी व्यापार व्यवसाय अभिवृद्ध करने का काम नहीं हुआ ।"**[11]

कुछ अन्य नेपाली इतिहासकारों का तो यह भी मानना है कि जिस षडयंत्र से राणाओं ने सत्ता को हथियाया था उन्हें यह ड़र था कि कहीं जनता पढ़ लिख कर

चेतनशील होगी तो उनके सत्ता के खिलाफ आवाज उठाने लगेगी और उन्हें सत्ताच्युत होना पड़ेगा इसी ड़र से राणाओं ने नेपाली जनता के लिए शिक्षा का सहज वातावरण निमार्ण नहीं किया था । वजह चाहे कुछ भी रही हो वास्तविकता यह थी कि जनताओं के लिए तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं शैक्षिक वातावरण सहज नहीं था । जनता सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तन चाहती थी । सामाजिक विभेद, कुरीतियां, गरीबी, बेरोजगारी से निजात पाने के लिए उनके पास आंदोलन के अलाव दूसरा कोई विकल्प नहीं था । अपने हक अधिकार के लिए लड़ने की प्रेरणा नेपाली जनताओं ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की सफलाता से लिया था । तत्कालीन भारत लम्बे अंग्रेजी हुकूमत से आजाद हो चुका था और नेपाल अपने ही देश के शासकों से उत्पीड़ित था । सर्वप्रथम सन् 1936 में नेपाली जनताओं के अधिकारों की प्रत्याभूति एवं निरंकुश शासन के विरुद्ध आवाज उठाने के उद्देश्य हेतु प्रजापरिषद् की स्थापना हुई । तत्कालीन समय में जनता राणाओं के दमन चक्र से इतनी त्रसित थी कि वह राणाओं के खिलाफ आवाज उठाने की कल्पना तक नहीं कर सकती थी । इस परिस्थिति को भाप कर सन् 1937 में जनताओं को एकजुट कर के उनमें अपने अधिकार के प्रति चेतना जगाने और अपने हक के लिए आवाज उठाने के लिए शुकराज शास्त्री और टंक प्रसाद आचार्य द्वारा नागरिक अधिकार समिति का भी गठन किया गया । राणाओं के निंकुश शासन के खिलाफ जिस रफतार से आंदोलन आगे बढ़ रहा था सत्ताधीश भी उतने ही सचेत होकर चल रहे थे । विद्रोहियों की योजना का पता लगाने की हर संम्भव कोशिश की जाती थी । चारों तरफ खुफिया पुलिस भेजे जाते थे ताकि घटना से पहले ही उसे समाप्त किया जा सके । किसी को पैसे से खरीद लिया जाता था तो किसी को डर दिखाकर अपने पक्ष में किया जाता था । इस परिस्थिति के कारण आंदोलनकारियों की योजना असफल हुई और संगठन के भीतर अंर्तघात होने के कारण प्रमुख नेता धर्मभक्त माथेमा, दशरथ चंद, शुकराज शास्त्री और गांगालाल श्रेष्ठ को मृत्यु दण्ड दिया गया । यह घटना नेपाली जनता के लिए बहुत

बड़ी क्षति थी । इस बड़ी घटनाने भी नेपाली जनता का मनोबल कमजोर नहीं किया बल्कि जनता और अधिक आक्रोशित हुयी । राणाओं के विरुद्ध संर्घष ने और जोर पकड़ा । विद्यार्थी पूरी तरह इस अभियान को सफल करने में जुट गये । सन् 1947 में 'जयतु संस्कृतम' नाम से विद्यार्थी आंदोलन चला इस आंदोलन में विद्यार्थियों ने शात्रावास की सुविधा और संस्कृत को अंग्रेजी की तरह मान्यता देने लगायत शिक्षा संबंधि अन्य मांगों को भी सरकार के समक्ष रखा लेकिन सरकार ने न सिर्फ इस आंदोलन को दबाया बल्कि आंदोलन में सरीक छात्रों को पकड़कर जेल में डाल दिया । एक तरफ नेपाली जनता गरीबी और बेरोजगारी से जूझ रही थी तो दूसरी तरफ सरकार के दमन और शोषण का शिकार बनती जा रही थी । स्थिति इतनी बिगड चुकी थी कि जो कोई सत्ता के संन्दर्भ में सामान्य बातचीत भी करता तो उसे पकड़कर जेल में डाल दिया जाता था । जनता का सामान्य मौलिक अधिकार भी छीना जा रहा था । इस स्थिति ने जनता को आर या पार की लड़ाई लड़ने पर मजबूर किया । सन् 1950 में बृहद संगठित आंदोलन की योजना तैयार की गई यह आंदोलन इसलिए महत्वपूर्ण और प्रभावकारी था कि इस समय विशेश्वर प्रसाद कोईराला के नेतृत्व में नेपाली कांग्रेस पार्टी की स्थापना की जा चुकी थी और सन् 1949 में पुष्पलाल नेपाली के नेतृत्व में नेपाल कम्युनिष्ट पार्टी का भी पंजीकरण हो चुका था । धीरे-धीरे लोग पार्टी से जुड़ते जा रहे थे और एक विशाल जनसमूह तैयार हो रहा था, जो बाद में पूरे देश भर में फैल गया पूर्व मेची से लेकर पश्चिम महाकाली तक इस आंदोलन को अभियान के रुप में फैलाया गया । मात्रिका प्रसाद कोईराला और विशेश्वर प्रसाद कोईराला ने इस अभियान की बागडोर संहाली । बाद में इस अभियान में श्री ५ त्रिभुवन वीरवीक्रम शाह भी जुड़े उनके जुड़ने से आंदोलन सफल होने की संभावना और अधिक बढ़ी क्योंकि उन्होंने आंदोलन के लिए अंतर्रराष्ट्रीय समर्थन जुटाने का महत्व पूर्ण काम किया । आखिरकार जवाहरलाल नेहरु की मध्यस्थता में राजा, राणा और कांग्रेस बीच दिल्ली समझौता हुआ और सन् 1950 मार्च 22 को नेपाल में प्रजातंत्र की स्थापना हुई ।

इस आंदोलन के सफल होने के संदर्भ में २००७ साल (1950) साल का पहला संगठित विद्रोह नामक लेख में रवि लमसाल ने लिखा है **"1950 (२००७) साल में प्रजातंत्र की स्थापना के लिए अंतर्रराष्ट्रीय सहयोग और आंतरिक परिस्थिति मजबूत बनी हुई थी। अतः आंतरिक रुप में राणाओं के विरुद्ध सशक्त आंदोलन और वाह्य रुप में भारत का सहयोग और नेपाली कांग्रेस का कुशल नेत्रृत्व ही इसे सफल कर पाया है।"**[12]

नेपाली राजनीति में यह परिवर्तन वास्तव में राजनीतिक चेतना का एक बहुत बड़ा उदाहण है। सन 1951 में नेपाल की राजनीतिक सत्ता पुनः शाहवंश के हाथ में आ गई। राजा त्रिभुवन वीरविक्रम शाह बहुदलीय व्यवस्था के अंतर्गत के पहले राजा बने। जनताओं में उत्साह और उमंग देखा गया परंतु यह उत्साह ज्यादा दिन तक नहीं टिक सका। नेपाल में बहुदलीय प्रजातंत्र तो आया परंतु यह इतना प्रभावकारी नहीं बन सका। इसका कारण तत्कालीन नेताओं में दूरदृष्टि एवं राजनीति ज्ञान का अभाव, आत्मविश्वास की कमी और राजा की बढ़ती महत्वकांक्षा थी जिसके कारण धीरे-धीरे नेता राजाओं के षडयंत्र का शिकार बनते चले गयें। राजा महेन्द्र वीरविक्र शाह ने नेताओं की इस कमजोरी का फायदा उठाकर बहुदलीय प्रजातंत्र व्यवस्था का अंत कर निर्दलीय पंचायत व्यवस्था लागू कर दी। यह व्यवस्था पूरी तरह राजा के नियंत्रण से संचालित होने लगी इसमें राजनीतिक दलों की उपस्थिति को नगन्य बनाया गया। पंच जो भी बनते थे वे राजा के आज्ञाकारी होते थे और उनकी सेवा में जुटे रहते थे। इस परिस्थिति ने नेपाली जनताओं के उस बलिदान को अर्थ हीन बना दिया था जिसके लिए उन्होंने राणाओं के विरुद्ध संघर्ष किया था। जल्द ही नेताओं को इस बात का अहसास हो गया कि उनके अधिकार उनसे छीने जा रहें हैं। अपने अधिकारों की पुर्नबहाली के लिए नेपाली जनताओं द्वार सन् 1979 में फिर आंदोलन शुरु हुआ। इस समय राजा वीरेन्द्र वीरविक्रम शाह और जनता के बीच पंचायती व्यवस्था और बहुदलीय व्यवस्था के

बीच जनमत संग्रह किए जाने की बात पर समझौता हुआ । लेकिन राजा ने बड़ी चालाकी से जनमत संग्रह अपने पक्ष में कर लिया । जनता ने इस जनमत संग्रह को अस्वीकार करते हुए संवैधानिक बहुदलीय प्रजातंत्र व्यवस्था की स्थापना के लिए सन् 1988/89 में फिर बृहद आंदोलन आरंभ कर दिया । इस आंदोलन में नेपाली कांग्रेस, नेपाली कम्युनिष्ट पार्टी लगायत, नेपाल विद्यार्थी संगठन और महिला, पुरुष सबने बढ़ चढकर हिस्सा लिया । चालीस दिन के आंदोलन बाद आखिरकार जनता के विरोध के आगे सरकार हार गई और सन् 1989 में बहुदलीय व्यवस्था की स्थापना हुई और कृष्णप्रसाद भट्टराई की अध्यक्षता में ग्यारह सदस्यीय मन्त्रिमंडल का गठन किया गया इस मंत्रिपरिषद को तत्काल संविधान निर्माण और आमनिर्वाचन कराने की जिम्मेदारी दी गई । तीन महिने के अंदर ही तत्कालीन सर्वोच्च अदालत के न्यायधीश विश्वनाथ उपाध्याय की अध्यक्षता में नौ सदस्यीय संविधान सुझाव आयोग का गठन हुआ और इसी आयोग मार्फत नेपाल अधिराज्य का संविधान 1989 पारित किया गया और उधर चुनाव में कांग्रेस बहुमत से विजय हुई । नेपाली राजनीति में यह परिवर्तन जनता की सचेतना का उदाहण है और नेपाली राजनीति में आधुनिकरण का प्रवेश भी है । प्राचीन काल से एक ही पद्धति पर चल रही राजनीति ने इस युग में आकर करवट बदली । यह परिवर्तन नेपाली जनता के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि रही क्योंकि नेपाल का परिचय विश्व समक्ष हुआ और नेपाल तत्कालीन राजनीतिक परिर्वतन के बाद विकास की ओर आगे बढ़ता चला गया । सन् 2000 में नेपाली राजनीति में एक बहुत बढ़ी दुर्घटना हुई दरबार हत्याकाण्ड में राजा वीरेन्द्र वीरविक्रम शाह के पूरे परिवार को मार दिया गया । इस घटना से संपूर्ण नेपाली जनता आहत हुई । देश की राजनीति अस्त-व्यस्त होती दिखाई पड़ी देश को गति देने के लिए राजा ज्ञानेन्द्र वीरविक्रम शाह को राज गद्दी सौंपने का निर्णय हुआ परंतु जनता ज्ञानेन्द्र को राजा स्वीकार नहीं कर पा रही थी । उधर माओवादी का विद्रोह भी जारी था । जनता को लग रहा था कि ज्ञानेन्द्र के षड़यंत्र से ही दरबार हत्याकाण्ड हुआ हैं । इस लिए जनता इस व्यवस्था के

विरोध में सड़क आंदोलन में उतर गयी। माओवादी पार्टी भी भूमिगत से सार्वजनिक हो गई थी पुष्पकमल दहाल 'प्रचण्ड' और बाबूराम भट्टराई पार्टी के प्रमुख नेता थे। वे भी अपने पार्टीगत ऐजेण्डों को लेकर आंदोलन में सहभागी हुई यह बृहद आंदोलन सन् 2006 में शुरु हुआ और उन्नीस दिन तक चला। आखिरकार 2037 साल पुरानी राज व्यवस्था का अंत हुआ और नेपाल लोकतांत्रिक संघीय गणराज्य के रुप में स्थापित हुआ। नेपाल के इस राजनीतिक इतिहास से यह ज्ञात होता है कि नेपाल निरंतर परिवर्तन के पक्ष में रहा है। नेपाली जनताओं ने कुशासन का हमेशा विरोध किया है और अपने हक अधिकार को प्राप्त करने के लिए प्राणों की आहुति देने से पीछे नहीं हटे हैं। दोनों देश के राजनीतिक घटनाक्रम का सामान्य तुलनात्मक अध्ययन करने से यह पता चलता है कि दोनों देशों में राजनीतिक उतार चढ़ाव की स्थिति हमेशा रही है। फर्क सिर्फ इतना है कि भारत विदेशी आक्रमणकारियों का शिकार बनकर उत्पीड़ित रहा और नेपाल अपने ही शासकों की महत्वकांक्षाओं और अहमवादी प्रवृत्ति का शिकार बना। भारत में अनेकों विदेशी संस्कृतियों का सामंजस्य देखा जा सकता है तो नेपाल में आंतरिक अर्थात स्वदेशी संस्कृति का सामंजस्य देखा जाता है। आर्थिक रुप से यदि दोनों देशों की स्थिति का जायजा लिया जाए तो तत्कालीन भारत और नेपाल की स्थिति समान थी परंतु अंग्रेजों के आगमन के पश्चात भारत में विकास के पूर्वाधार निरंतर बढ़ते गयें रेल, यातायात, डांक, अस्पताल, बैंक, आधुनिक शिक्षा, उद्योग का विकास दुगनी रप्तार से बढ़ा लेकिन नेपाल इन मामलों में भारत से पीछे छूट गया। नेपाल परंपरागत आर्थिक ढांचे के साथ ही आगे बढ़ता दिखाई पड़ता है। नेपाल के पीछड़ ने का दूसरा कारण यह भी है कि यहां कि राजनीति हमेशा अस्थिर रही है परंतु भारत में आजादी के बाद बहुत लम्बे समय तक स्थिर राजनीति रही है कांग्रेस पार्टी अन्य पार्टी की तुलना में वर्चस्वशाली रही हैं। नेपाल की तुलना में पढ़े लिखें शिक्षित नेता और कर्मचारी की संख्या भारत में अधिक थी जिसका प्रभाव भारत के आर्थिक

विकास पर देखा जा सकता हैं । इसके अलावा भारत का ट्रेड दुनिया के बहुत से देशों के साथ बढ़ता गया और भारत आर्थिक रुप से नेपाल से सबल बना ।

१.४ स्त्री राजनीतिक चेतना का इतिहास भारत और नेपाल के संदर्भ में

दुनिया का प्रत्येक समाज स्त्री और पुरुष के सह अस्तित्व के बिना गतिमान नहीं हो सकता । मनुष्यों का समाज अन्य प्राणियों के समाज से इसलिए विकसित और अलग है कि वह अपने विवेक और सामर्थ्य का प्रयोग अपनी स्थिति को सुधारने के लिए करता हैं । यथास्थिति से असंतुष्ट रहने की प्रवृत्ति ही उसे परिवर्तनशील बनाती है इसलिए परिवर्तन ही उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है । यह परिवर्तन उसके आचरण में हो सकता है, उसकी चेतना में हो सकता है अथवा उसके सामाजिक राजनीतिक परिवेश में हो सकता है । इसी परिवर्तन के कारण मनुष्य आज वैज्ञानिक युग तक पहुँच पाया है परंतु क्षोभ की बात यह है कि मानवीय समााज के यहां तक के सफर में पुरुष वर्ग केवल अपना ही योगदान स्वीकारता है । स्त्री की भूमिका को उसने पूरी तरह नगन्य बताया है बल्कि स्त्री जीवन को परनिर्भर बताते हुए पुरुष खुद को उसका रक्षक और मार्गदर्शक मानता है । वशिष्ट सूत्र एक-दो में लिखी गयी ऐ पंक्तियाँ .....

"पिता रक्षतु कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।

रक्षन्ति स्थावरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हति ।"[13]

इन पक्तियों का यह भाव है कि स्त्री स्वतंत्र योग्य नहीं है । बाल्यकाल में पिता उसकी रक्षा करता है । यौवन में पति रक्षा करता है और बृद्धावस्था में पुत्र उसकी रक्षा करता है । इसका तात्पर्य यह है कि पुरुष उसके जीवन का रक्षक है अकेले स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं है । यूं कहे स्त्री पर वह अपना मालिकाना हक समझता हैं । स्त्री को कमजोर और विवेक हीन बताकर उसे चार दीवारियों के भीतर सीमित कर दिया ताकि उसे बाहर की दुनिया के बारे में पता न चल सके शिक्षा और

स्वतंत्रता के अधिकार उससे छीन लिए गएं। स्त्री शिक्षा और अधिकार के बारे में रुसो ने अपने एक लेख 'फेमिली' में लिखा है **"स्त्री और पुरुष एक दूसरे के लिए बने हैं, लेकिन उनकी परस्पर निर्भरता समान नहीं थी.. हम लोग उनके बिना उनसे अच्छी तरह जी सकते हैं जबकि वे हमारे बिना नहीं... इसलिए महिलाओं की शिक्षा की संपूर्ण योजना पुरुषों को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए। पुरुष को खुश रखना/करना, उनके लिए उपयोगी बनना, उनका प्यार और सम्मान जीतना, उन्हें बच्चों जैसे बड़ा करना और बड़ों की तरह उनकी देखभाल करना, उनकी गलतियों को सुधारना और सांत्वना देना, उनकी जिंदगी को खुशहाल और अच्छा बनाना ये सब युगों से नारियों के कर्तव्य है, और इसके विषय में उन्हें बचपन से ही सिखाया-पढ़ाया जाना चाहिए।"**[14]

रुसो के इन विचारों से तत्कालीन पश्चिमी समाज में स्त्री की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का पता सहज ही लगाया जा सकता है। पूर्वीय देशों की यदि बात करें तो यहां स्त्रियों की सामाजिक राजनीतिक स्थिति और अधिक दयनीय दिखाई पड़ती है, जबकि यहां स्त्री को देवी का दर्जा दिया गया है। देवी शक्ति का प्रतीक है परंतु ये देवियां प्रत्येक घरों में शदियों से निर्बल और असहाय की स्थिति में दिखाई पड़ती है। स्त्रियों को देवी इसलिए कहां गया है कि उसमें त्याग और समर्पण की भावना बनी रहें जिससे षुरुषों को लाभ मिले और वे इस भ्रम में जिती रहें की उन्हें समाज में सम्मानित जीवन मिला हुआ है। और वे इस व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाने के बारे में सोच भी न सकें। सदियों से पूर्वीय समाजिक संरचना इसी मान्यता के आधार पर आगे बढ़ती आई है। स्त्रियों को घर के भीतर का काम सौंप कर उसकी स्वतंत्रता ही नहीं छीनी गई बल्कि उसे सार्वजनिक जीवन से दूर रखा गया इस स्थिति ने स्त्री को पुरुषों की हाथ की कठपुतली बना दिया। स्त्री के जीवन के सारे महत्वपूर्ण निर्णय और उसके जीवन की जरुरतों को भी पुरुष तय करने लगा। स्त्रियों को घर की रेख-देख करने का जिम्मा अवश्य

दिया गया परंतु घर खर्च की धनरासी पर नियंत्रण पुरुषों का ही बना रहा। स्त्रियों की अर्थ की स्थिति इतनी दयनीय थी की उसके गहनों पर भी उसका अधिकार नहीं था, वह गहने पहन अवश्य सकती थी परंतु उन्हें बेचने और खरीदने का अधिकार उसके पास नहीं था। घर, जमीन और संतान पर भी पुरुषों का ही पूर्ण एक तरफा अधिकार था। घर की लक्ष्मी कह कर उसे घर के पूजा-पाठ का जिम्मा दिया गया क्योंकि इस पूजा-पाठ में स्त्रियों को परिश्रम और समय की लगानी के अलावा और कोई प्रतिफल नहीं मिल पाता था परंतु मंदिरों के पूजा-पाठ के लिए पुरुषों को चुना गया और स्त्रियों को वर्जित किया गया इस पूजा-पाठ में भक्तों के द्वार चढ़ाई गयी सामग्रियों में पूजारी का अधिकार होता है। मंदिरों की पूजा अर्थ से जुड़ी होती हैं। अर्थ से जुड़ी हर चीज पर पुरुषों का अधिकार था। भारत और नेपाल लगायत लगभग विश्व के सभी देशों में स्त्रियों का जीवन अर्थ से वंचित किया गया था यही अर्थ पुरुषों को दिन प्रतिदिन मजबूत बनाता गया और स्त्रियों को कमजोर और परनिर्भर। स्त्री को अपनी इस स्थिति का ज्ञान सोरहवीं शताब्दी यानी फ्रान्स की क्रांति के समय से होने लगी। धीरे-धीरे स्त्रियाँ भी आंदोलनों से जुड़ने लगी और उन्हें राजनीतिक और सामाजिक जीवन का ज्ञान हुआ। सन् 1688 में इंग्लैंड की ग्लोरियस क्रांति ने सामंतवाद का अंत किया इसके साथ ही समानता और स्वतंत्रता जैसे मुद्दों ने जोर पकड़ा। सन् 1776 की अमेरिकन क्रांति ने इस अभियान को और अधिक पुख्ता किया इन क्रांतियों ने फ्रांस, इंग्लैंड, अमेरिका जैसे देशों में निरंकुश शासन और सामंती सत्ता का विरोध कर लोकतंत्र व्यवस्था के लिए पहल की मानवीय अधिकारों को केन्द्र में रखकर आंदोलन के मुद्दें तय किए जाने लगे तत्कालीन नागरिक अधिकार घोषणा पत्र में यह लिखा जाने लगा कि **"मनुष्य समान अधिकारों की स्वतंत्रता के साथ पैदा होता है और इनके साथ ही जीता है।"**[15]

रंग, वर्ग और लिंग भेद जैसे कई मुद्दें आंदोलन में जुड़ते गएं इसके साथ-साथ नागरिकों के मताधिकार की समस्या का भी समाधान खोजा गया । इस संघर्ष ने पुरुषों को तो अधिकार मिला परंतु स्त्रियों को अपने राजनीतिक अधिकार के लिए और अधिक संघर्ष करना पड़ा । पश्चिमी देशों की पढ़ी लिखी एवं मजदूर महिलाओं ने अपने अधिकार के लिए सत्ता से लड़ने का बीड़ा उठाया । इन महिलाओं का मानना था कि **"महिलाएं स्वतंत्र रुप से जन्मी है और इनके अधिकार पुरुष अधिकार के समान है.. कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति होना चाहिए, सभी नागरिकों, पुरुष हो या स्त्री की, इसे बनाने में हिस्सेदारी होनी चाहिए..., महिलाओं को फांसी के तख्ते पर जाने का अधिकार है, उसे संसद में भी जाने का अधिकार होना चाहिए ।"**[16]

इन घटनाओं के आधार पर हम यह कह सकते है कि महिला अधिकारों के लिए पहल सर्वप्रथम पश्चिमी देशों से हुई । मताधिकार के लिए महिलाओं के संगठित संघर्ष ने इसे महत्वपूर्ण और संवेदनशील मुद्दा तो बना ही साथ ही इसे लोकतांत्रिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी बना दिया । बीसवीं शताब्दी के आरंभ से तो स्त्री मुद्दे इतने व्यापक और महत्वपूर्ण हो गयें कि फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मन, यूरोप लगायत दुनियाभर के देशों में इसकी चर्चा होने लगी । स्त्री विमर्श की एक लहर चल पड़ी जिसके कारण पूर्वीय स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए लड़ना आसान हो गया और उन्हें अपनी क्षमता और राजनीतिक अधिकारों का ज्ञान भी हुआ । पश्चिमी महिलाएं अपने भीषण संघर्ष के बाद सर्वप्रथम सन् 1900 में न्यूजीलैंड की महिलाओं को मताधिकार दिलाने में सफल हुई इसके बाद फिनलैंड, जर्मनी की महिलाओं को मताधिकार मिला । परंतु फ्रान्स, इटली, बेल्जियम, पुर्तगाल, स्पेन और स्विट्जरलैंड में महिलाओं को द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मताधिकार प्राप्त हुआ । अमेरिका में सन् 1920 और इंग्लैंड में सन् 1928 में पुरुषों के समान शर्तों पर मताधिकार प्राप्त हुएं । भारतीय महिलाओं को स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सन्

1947 मताधिकार प्राप्त हुआ तो नेपाली महिलाओं को पद्म शमशेर राणा के शासन काल सन् 1947 में बहुत बड़े संघर्ष के बाद नागरिक होने का अधिकार दिया गया।

१.४.१ भारत में स्त्री राजनीतिक चेतना का इतिहास

भारत में स्त्रियों की आर्थिक एवं राजनीति चेतना का इतिहास वैदिक काल (1500-600) से आरंभ होता है । तत्कालीन समय में स्त्रियां शिक्षा एवं व्यवसाय के लिए स्वतंत्र थी । यह स्वतंत्रता इसलिए संभव हो सकी थी कि उस समय अर्थ केन्द्र में नहीं था जरुरत की चीजों को एक दूसरे से सट्टा-पट्टा किया जाता था । समाज वर्ग एवं जातियों में भी विभाजित नहीं था । लोग अपने क्षमता के मुताबिक कार्य को चुनते थे । इसी संदर्भ में ऋग्वेद में अंगिरस ऋषि के कथन को वेद व्यासने उल्लेख किया है वे कहते है **"मेरे पिता वैद्यय है, मै कवि हूँ मेरी मां अन्न पिसने का काम करती ।"**[17] यह अभिव्यक्ति तत्कालीन समाज की सामाजिक संरचना को व्यक्त करती हैं । यही सामाजिक परिवेश स्त्री को शिक्षा एवं स्वतंत्रता का अधिकार दिलाने में सहायक हुई हैं । स्त्रियों के लिए पुरुषों की तरह उपनयन संस्कार की व्यवस्था भी इसी की देन है । स्त्रियां सभाओं एवं सार्वजनिक कामों में भी पुरुष की तरह सक्रिय रह सकी । ऋषि-मुनियों एवं तपस्वियों के साथ उन्हें शास्त्रार्थ करने का अधिकार भी मिला । अपने आस-पास हो रहें अन्याय अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने एवं समस्याओं का निवारण खोजने की स्वतंत्रता भी मिली । विश्वआरा, अपाला, ब्रह्मवादिनी घोषा, गार्गी, लोपमुद्रा, मैत्रेयी, जैसी महिलाओं ने यह साबित किया है कि स्त्रियां बुद्धि विवेक के मामले में पुरुषों से कम नहीं हैं । प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अर्मत्य सेन ने भी ऋग्वेद में उल्लेख याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी के संवाद के बारे में लिखा है कि **"यह विकास एक व्यापक अवधारणा है जिसे केवल जीडीपी और जीएनपी जैसे मानकों से नहीं मापा जा सकता ।"**[18]

इन आधारों पर कहा जा सकता है कि स्त्री चेतना समाज के सभी अवयवों को समझने और समझाने का सामर्थ्य रखती हैं । इन सबके बावजूद भी पुरुषों की

तुलना में स्त्री स्वतंत्रता और अधिकार की बात की जाएं तो पुरुष स्त्रियों से ज्यादा अधिकार संपन्न और स्वतंत्र दिखाई पड़ता है क्योंकि वो कबीलाई समाज से ही नेत्रृत्व करता के रुप में आगे बढ़ा है। समूह पर नियंत्रण रखने नीति निर्माण करने, अर्थ व्यवस्थापन करने, हथियार तैयार करने आदि पर पुरुष का ही इक लौटी अधिकार होने के कारण वह समाज का वर्चस्वशील वर्ग के रुप में स्थापित होता चला गया और स्त्रियां धीरे-धीरे पुरुषों के तुलना में कमजोर पड़ती गई। उत्तरवैदिक काल में आकर स्त्रियों के अधिकार सीमित कर दिएं गयें। उन्हें कहने को तो देवी कहा गया परंतु शक्ति विहीन निर्बल और असहाय। मध्यकाल तक पहुंचते-पहुंचते स्त्रियां भोग्या बन गई भारत के संक्रमणकालीन राजनीतिक परिवेश ने इसके लिए और अधिक सहज वातावरण निर्माण किया। प्रों. सुगम आनंद लिखते है **"पुरुष मानसिकता और विदेशी आक्रमणों के घातक प्रभाव के कारण सदियों से महिलाओं में हीन भावना की ग्रन्थि पीढ़ी दर पीढ़ी बनती गई और उनकी स्थिति मूक प्रताड़ित पशु जैसी हो गई उन्हें बहुत कठोर व्यवहार और अनुशासन में रहना पड़ा और अपने सभी प्राचीन अधिकारों को छोड़ना पड़ा था जिससे वे अशिक्षा और अज्ञान के अंधकार में जकड़ गई थी।"**[19]

महिलाओं को असुरक्षित बताकर उनकी स्वतंत्रता को नियंत्रण में रखना ही पितृसत्ता की सफलता रही। स्त्रियों को कमजोर बनाने के लिए इसके अलावा जौहर और सती जैसी प्रथाओं का प्रचलन भी चलाया गया। यह कहा जा सकता है कि स्त्रियों ने अपने पूरे अधिकार गवा दियें। उनकी पहचान तक पितृसत्ता ने नियंत्रण कर लिया। वर्षों तक स्त्रियां इस स्थिति में रहने के लिए बाध्य की गई। उपनिवेश काल में स्त्रियों की स्थिति में कुछ परिवर्तन आया इसका कारण यह था कि पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का भारत में आगमन। उपनिवेशवादी सत्ता ने भारत की आर्थिक स्थिति को भले हीं तहस-नहस किया हैं परतुं भारत की शिक्षा प्रणाली, स्वाथ्य, और विकास के पूर्वाधार में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण सहयोग भी किया

है । राजा रामोहन राय के नेतृत्व में सती प्रथा का अंत इसी समय में हुआ । स्त्रियां विभिन्न संघ-संस्थाओं से जुड़ने लगी अपने अधिकारों के प्रति सचेत दिखाई पड़ी इस प्रक्रिया में विदेशी महिलाओं ने भी सहायता की । स्वतंत्रता संग्राम स्त्रियों के लिए एक बहुत बड़ा अवसर लेकर आया । पहली बार भारतीय महिलाएं स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी । भारतीय महिलाओं को इस आंदोलन में सहभागी कराने का श्रेय महात्मा गांधी को जाता हैं । वर्षों से चार दीवारियों को अपना संसार समझती आ रही स्त्रियों को गांधी ने न सिर्फ घर से बाहर निकाला बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर बनाने के लिए रोजगारी के विकल्प भी खोजे । असहयोग आंदोलन के दौरान विदेशी वस्तुओं का त्याग और स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग के अभियान के अंतर्गत कई महिलाओं को खादी के कपड़े बनाने का काम मिला तो कइयों को हस्तकला, मूर्तिकला के काम दिए गयें । महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि स्वतंत्रता आंदोलन एक धार्मिक आंदोलन की तरह बन चुका था स्त्रियों ने अपने देश को आजाद कराना अपना धर्म बना लिया इसके लिए वे त्याग और समर्पण की किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार थी । उनकी इस मानसिकता को तैयार करने में गांधी की महत्वपूर्ण भूमिका रही । लता सिंह अपने लेख 'राष्ट्रीय आंदोलन में महिला : भूमिका के सवाल' में लिखती हैं **"गांधी जी महिलाओं के भागीदारी के पूर्ण पक्षधर थे, वे महिलाओं की सभाओं में अपने भाषणों में, आंदोलन में उनकी भागीदारी अनिवार्य बताते थे और साथ ही उन्हें यह कहकर प्रेरित करते थे कि देवियों और वीरागंनाओं की तरह आंदोलन में उनकी अपनी अलग भूमिका है और उनमें इस भूमिका को निभाने की शक्ति और हिम्मत भी हैं । उन्होंने महिलाओं को विश्वास दिलाया कि आंदोलन को उनके महत्वपूर्ण योगदान की जरुरत है ।"**[20]

गांधी भली-भाँति जानते थे कि भारतीय महिलाओं में त्याग और समर्पण की भावना पुरुषों से अधिक है । यदि उन्हें स्वतंत्रता संग्राम के लिए तैयार किया जाये तो यह बहुत ज्यादा प्रभावकारी हो सकता है । गांधी ने स्त्रियों के इसी सबल पक्ष को

अपना हथियार बनाया सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा आंदोलन में स्त्रियों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया । जिसके कारण उपनिवेशवादी सत्ता पर और अधिक दबाव बढ़ा । स्त्रियों ने सत्याग्रह के अलावा क्रांतिकारी अभियान में भी पुरुषों के साथ कंधें से कंधा मिलाकर अपनी सहभागिता जताई । सच कहा जाएं तो इस परिवेश ने स्त्रियों का आत्मविश्वास तो बढ़ाया ही साथ ही उनके अंदर के भय का भी अंत किया । इसी संघर्ष के दौरान भारतीय स्त्रियों को अपने अधिकारों को सार्वजनिक रुप से रखने का मौका भी मिला और वे स्वतंत्रता के साथ-साथ अपने अधिकारों के लिए भी लड़ने लगी । गांधी के अलावा जवाहरलाल नेहरु भी भारतीय महिलाओं की स्थिति को सुधारने के पक्षधर थे वे पश्चिमी दर्शन के उदारवादी लोकतान्त्रिक अवधारणा से काफी प्रभावित थे इसलिए वह महिला के मताधिकार को सुनिश्चित करने के पक्षधर थे । उनकी धारणा थी कि केवल शिक्षा के माध्यम से महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं लाया जा सकता, उन्हें आर्थिक, राजनीतिक के साथ-साथ सामाजिक स्वतंत्रता की भी आवश्यकता हैं । स्त्री को अपनी स्थिति में सुधार लाने के लिए राजनीति में सहभागी होने की आवश्यकता महसूस करते हुए गोपाल राय लिखते हैं **"जब तक सत्ता स्त्री के हाथ में नहीं आती, पुरुष समाज के शोषण और उस पर होने वाला अत्याचार समाप्त नहीं हो सकता ।"**[21]

उन्नीसवीं शदी में स्त्री समाज में आयी इसी चेतना ने स्त्री को अपने अधिकार के लिए आंदोलन करने की प्रेरणा दी है और अब उसे शिक्षित होकर स्वावलंवन बनकर समाज की परंपरावादी सोच को तोड़ते हुए आगे बढ़ना हैं । इसी कोशिश में आज की स्त्रियां जुटी हुई हैं । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सन् 1931 में स्त्री-पुरुष समानता को अपने एक प्रमुख उद्देश्य के रुप में अपनाया । बीसवीं शताब्दी के पांचवे दशक तक भारत में कई महिला संगठनों का उदय हुआ । सन् 1917 में आयरिश महिला मारग्रेट कोसिन ने एक राष्ट्रवादी के साथ मिलकर वूमेन्स इंडिया असोसिएशन (WIA) की स्थापना की । सन् 1926 में नेशनल काउन्सिल आंफ इंडियन वूमेन्स

(NCIW) की स्थापना हुई तथा सन् 1927 में आंल इंडिया वूमेन्स कांन्फ्रेन्स हुआ और 1917 में वायसराय के समक्ष महिलाओं के लिए लिए मताधिकार की मांग रखी गई इस प्रतिनिधि मंडल में मारग्रेट कांसिन एवं सरोजनी नायडू सामिल थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी इसे पूरा समर्थन दिया और अंततः भारतीय महिलाओं को मताधिकार प्राप्त हुआ। सर्वप्रथ मद्रास प्रांत ने मुथुलक्ष्मी रेड्डी को मद्रास विधान परिषद की सदस्य निर्वाचित कर महिलाओं के मताधिकार हेतु महत्वपूर्ण कदम उठाया। इसके बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं महिला संगठनों ने एक साथ मिलकर स्त्री अधिकार के मुद्दों पर काम किया। ऐसा नहीं था कि स्त्रियां केवल कांग्रेस से जुड़ी हुई थी वामपंथी क्रांतिकारी बनकर भी वे स्वतंत्रता एवं महिला अधिकार के लिए लड़ रही थी। इन्होंने जेल में बंद राजनीतिक कार्य कर्ताओं को सूचना आदान- प्रदान करने का महत्वपूर्ण काम किया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार अभियान में दुकानों से चुन-चुनकर इन्होंने विदेशी सामानों को जलाया। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध चलाए गए नमक आंदोलन एवं दांडी पद यात्रा में भी हिस्सा लिया इसमें हजारों महिलाओं को गिरप्तार कर जेल में डाल दिया गया। जगह-जगह पर बम छुपाकर ले जाना और अंग्रेजों को डराने के लिए उसे विस्फोट करने का काम भी इन वामपंथी महिलाओं ने किया। इस तरह स्वतंत्रता सग्राम में क्रांतिकारी महिलाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा। वामपंथी और दक्षिण पंथी दोनों समूह की महिलाओं के योगदान से स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ महिला आंदोलन को भी तीव्रता मिली और आंदोलन सफलता की ओर बढ़ता गया। अपने राज्य को सुरक्षित रखने के लिए लड़ने वाली महिलाओं में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, दिल्ली की बेगम जीनत महल, लखनऊ की बेगम हजरत महल, रामगढ़ की रानी अवन्ती बाई, तुलसीपुर की रानी ईश्वर कुमारी, रानी बैजाबाई, जमानी बेगम, आरकाट की महारानी तपस्विनी माता, कुमारी मैना, नर्तकी अजीवन, पंजाब की रानी, जिन्द कौर आदि अनेकों महिलाएं थी जिन्होंने अंग्रेजी सत्ता विरुद्ध संघर्ष किया। इसके अलावा महिला अधिकार और स्वतंत्रता संग्राम दोनों के लिए आगे आने

वाली प्रमुख महिलाओं में कमला देवी चट्टोपाध्याय, अनसूया साराभाई, अन्ना चांडी, इंदरजीत कौर, रुकैया सखावत, रखमाबाई, डां. मुथुलक्ष्मी रेड्डी, मैडम वीकाजी कामा, एनी बेसेंट, कस्तूरबा गांधी, अरुणा आसफ अली, मारग्रेट कजिन्स, पेरिस कैप्टन, सरोजनी नायडू, मणिवेन, लक्ष्मी सहगल, सुचेता कृपलानी, विजयलक्ष्मी पंडित, कादिम्बनीबाई गांगुली, सरला देवी घोषाल, कुमुदिनी मित्रा, उमा कुण्डापुर, नंदूबेन कानुंगा, मालती पटवर्धन, उर्मिला देवी, सुनिता देवी, प्रीतीलता वाडेकर आदि सयौ महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । स्वतंत्रता के बाद राजनीति में सक्रिय रुप से भागलेने वाली महिलाओं में इंदिरा गांधी, नंदिनी सत्यपती, मोहसिना किदंवई, गिरिजा व्यास, सुषमा स्वराज, मायावती, वसुंधरा राजे, शीला दीक्षित, ममता बेनर्जी, रेणुका चौधरी, सोनिया गांधी आदि है । महिलाओं ने राजनीति में अपनी सक्रियता दिखाकर यह प्रमाणित कर दिया स्त्रियां घर के साथ-साथ देश भी चलाने का सामर्थ्य रखती है ।

१.४.२ नेपाल में स्त्री राजनीतिक चेतना का इतिहास

विश्व के स्त्री समााज के इतिहास के अध्ययन से यह तो प्रमाणित होता है कि दुनिया में पुरुष ने खुद को पहले दर्जे के प्राणी के रुप में एकतर्फी मानसिकता तैयार की थी । इसके पीछे का प्रमुख कारण यही रहा कि वह खुद को समाज का शासक समझता है और समाज की निर्णायक भूमिका का अकेला हकदार । स्त्रियों के जीवन को नियंत्रण करने के लिए अनेक तरह की लक्ष्मण रेखाएं खींची गयी, धर्म, संस्कृति परंपरा, रीतिरिवाज के नाम पर उन्हें जौहर और सती प्रथा जैसी अमानवीय यातना सहने पर बाध्य किया गया । स्त्रियां इसे अपना धर्म, कर्तव्य और परिवार की मर्यादा मान कर सहज स्वीकार करती चली गई । वर्षों तक समाज में स्त्रियों की यह स्थिति निरंतर चलती रही नेपाल और भारत जैसे देशों की महिलाओं को धर्म का पाठ इस तरह से पढ़ाया गया था कि उनमें इसका विरोध करने का साहस तक जुटाने की हिम्मत नहीं थी । धीरे-धीरे जब समाज में शिक्षा का प्रभाव बढ़ा तो इससे स्त्री समाज भी प्रभावित हुआ । स्त्रियों में अपने व्यक्तिगत हित और

अहित को देखने का नजरिया विकसित हुआ । परिवार से उपर उठकर वे अपनी निजी जिदंगी की तरफ झांकने लगी यहीं से स्त्री चेतना की शुरुआत मानी जा सकती है । नेपाल में स्त्री राजनीतिक चेतना के इतिहास को देखा जाए तो लिच्छवि काल से इसका इतिहास मिलता है । राजा मानदेव की माता राज्यवती अपने पति की मृत्यु के बाद उनके साथ सती नहीं गई बल्कि अपने पुत्र को राज्य संचालन में सहयोग किया । राज्यवती के मार्गदर्शन से ही राजा मानदेव लिच्छविकाल के शक्तिशाली एवं प्रसिद्ध राजा के रुप में प्रतिष्ठित हो सके । इसी तरह मल्ल काल के इतिहास में देवल देवी का नाम प्रसिद्ध है । इन्होंने चालीस साल तक भक्तपुर के मल्ल दरबार में अपना शासन चलाया । देवलदेवी को राजनीति का संपूर्ण ज्ञान था राजा जयराज देव की तरह ही उन्होंने शक्ति का पूरा प्रयोग किया । तत्कालीन राजा के विरुद्ध विद्रोही सेना को उन्होंने अपने नेतृत्व में लेकर राजा का समर्थक बनाया । उनकी पुत्रवधू नायकदेवी ने अपने पति के मृत्यु के बाद पुनर्विवाह कर सत्ता की बागडोर अपने हाथ में ली । नायकदेवी को नेपाल की पहली विद्रोही महिला एव वैधानिक महिला शासक के रुप में भी जाना जाता हैं । इसी काल में कांतिपुर, भक्तपुर, ललितपुर के दरबार में गंगारानी, लालमती, ऋद्धिलक्ष्मी, योगमती और दयावती जैसी साहसी महिलाएं भी देखी जाती है । शाह काल की चर्चा करें तो यह काल नेपाली राजनीति में स्वर्ण काल के रुप में जाना जाता है । इसी समय पृथ्वीनारायण शाह जैसे शक्तिशाली राजा का जन्म हुआ । ये गोरखा के शक्तिशाली राजा के रुप में अवतरित हुए बाद में इन्होंने नेपाल एकीकरण अभियान चलाया इस अभियान में ये सफल हुए और नेपाल की सीमा को पूर्व में टिष्टा और पश्चिम में कांगडा तक फैलाया । उनकी इस वीरता से अंग्रेज भी डरने लगे थे इसी कारण अंग्रेजों ने अपनी सीमा पर कडी निगरानी रखनी शुरु कर दी लेकिन गोरखा सेना निरंतर आगे बढ़ती गई बलभद्र कुंवर और भीमसेन थापा अंग्रेजों से लड़ते-लड़ते शहीद हुए । पृथ्वीनारायण शाह के मृत्यु के बाद उनके पुत्र प्रतापनरारायण शाह राजगद्दी पर बैठे परंतु दुर्भाग्यवश अल्प आयु में ही उनकी मृत्यु हो गई प्रतापनारयण

के नाबालिक पुत्र रण बहादुर को राजगद्दी पर बिठाकर राजेन्द्रलक्ष्मी देवी शाह ने सत्ता की बागडोर अपने हाथ में ली। इतना ही नहीं उन्होंने पृथ्वीनारायण शाह के अधूरे सपने को भी पूरा करने का अभियान आगे बढ़ाया लमजुङ, कास्की और तनहुं को नेपाल अधिराज्य में मिलाने का महत्वपूर्ण काम किया। तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद भी देश के आंतरिक और बाह्य शत्रुओं से लड़ते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल राजेन्द्रलक्ष्मी देवी शाह तत्कालीन शक्तिशाली पुरुष शासकों के श्रेणी में आती है। इसके अलावा राजराजेश्वरी देवी, सम्राज्यलक्ष्मी, ललितत्रिपुरासुंदरी और राज्यलक्ष्मी देवी जैसी स्त्रियों का नाम भी राजनीतिक सत्ता संयत्र को बारीकी से समझने बाली महिलाओं के रुप में जाना जाता है। गौर से देखने पर तत्कालीन रानियां काफी शक्तिशाली दिखाई पड़ती है। इसका कारण यह था कि उस समय राजा अक्सर युद्धों में व्यस्त रहते थें और रानियां दरबार की गतिविधियों को संभालती थी। इसी दौरान वे सेना, मंत्री, राज पुरोहित के प्रत्यक्ष संपर्क में आती थी जिसके कारण उन्हें राजनीतिक गतिविधियों एवं दांव-पेंचों को सीखने का मौका मिलता था। इसके अलावा एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि उस समय राजा को चार-चार विवाह करने का अधिकार था जिसके कारण रानियों के बीच एक प्रकार की प्रतिस्पर्धा की स्थिति बनी रहती थी। चाहे वह संपत्ति पर अपना अधिकार बनाएं रखने के लिए हो या अपने पुत्रों को राजा बनाने के लिए हो। दरबारों में राजनीतिक षडयंत्रों का माहौल हमेशा रहता था यही माहौल रानियों में आत्मविश्वास भरता था और वे अपने हक की लड़ाई खुद लड़ती थी। इन तथ्यों से यह तो पता चलता है कि तत्कालीन नेपाल की रानियां अधिकार सम्पन्न थी और बहुत हद तक स्वतंत्र भी थी लेकिन देश की अन्य सामान्य स्त्रियों की स्थिति इनकी तुलना में अति दयनीय थी आथिर्क, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक रुप से इनका शोषण यथा संभव चरम स्थिति में किया जाता था। सार्वजनिक जीवन की कल्पना तक ये नहीं कर पाती थी। पुरुष सत्ता के नियंत्रण में इस तरह जकड़ी हुई थी कि बाहर निकले की संभावना बहुत कम थी। राणा

काल में तो नेपाली स्त्रियों की स्थिति और दयनीय बनती गई इसी विषय पर शिवमाया तुम्बाहाङफे अपनी पुस्तक 'नेपाल में महिला आंदोलन' में लिखती है **"कोतपर्व के नरसंहार के बाद शक्ति में आयें हुए राणाओंने नेपाल के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक हरेक क्षेत्र में चरम शोषण, भेदभाव, और अन्याय को संस्थागत किया। इस अवस्था ने नेपाली जनता की स्थिति और अधिक दयनीय बना दी। महिलाओं की बात करें तो शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार जैसे आधारभूत मगर अतिआवश्यक न्यूनतम अधिकारों से भी वंचित किया गया। समाज में सती प्रथा, बालविवाह, बहुविवाह जैसी अमानवीय प्रथा विद्यमान थी। बालविवाह, दास प्रथा,आदि के कारण महिलाओं का जीवन नर्क तुल्य बना हुआ था।"**[22]

समाज की इस विकराल स्थिति ने महिलाओं के मन में व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश भर दिया। योगमाया न्यौपाने इस व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाते हुए सबसे पहले सामने आई। सन् 1867 में जन्मी योगमाया ने सामाज के परंपरागत नियमों का बहिष्कार कर पति की मृत्यु के बाद विधवा पुनर्विववाह कर नेपाली समाज में स्त्री विद्रोह की शुरुआत की। वाद ये भारतीय संतों के सम्पर्क में आई और एक पुत्री के जन्म के पश्चात इन्होंने पति को छोड़ दिया और सन्यास जीवन ग्रहण कर लिया। सन्यासिनी बनकर ही इन्होंने नेपाली समाज में प्रचलित कुरीतियों का विरोध करना शुरु किया। योगमाया न्यौपाने नेपाल की पहली ऐसी महिला है जिन्होने श्री तीन राणा सरकार को चुनौती देते हुए कहा कि यदि व्यवस्था में सुधार नहीं लाया गया तो हम विरोध जताते हुए जल समाधि लेंगे इसके बाद राणाओं ने ड़रकर योगमाया को झूठा आश्वासन दिया और जल समाधि को रोकने की कोशिश की। सन् 1917 में योगमाया के ही अध्यक्षता में 'महिला समिति' नामक प्रथम संस्था की स्थापना की गई। नेपाल के इतिहास में ही जनस्तर से महिला अधिकार के लिए स्थापित की गई यह पहली संस्था थी। इस संस्था में मोहनकुमारी उपाध्यक्ष पद पर चुनी गई तो दिव्यकुमारी सचिव पद पर चुनी गई थी। इस संस्था की

संगठनात्मक प्रक्रिया में कृष्णप्रसाद कोईराला की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही । इस संस्था का मुख्य उद्देश्य महिलाओं में चेतना जगाना, उन्हें घरेलू सीप कला सिखाकर आत्मनिर्भर बनाना था । इसके अलावा सन् 1896 में जब राणाओं के खिलाफ आंदोलन करने के लिए प्रजापरिषद् की स्थापना की गई थी । इस दौरान निरंकुश राणा शासन विरोधी जनचेतना जगाने के लिए रेवंतदेवी आचार्य और कामाक्षादेवी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इसके साथ-साथ आंदोलन में घायल लोगों के उपचार के लिए छुप-छुपकर दवाइयों को पहुंचाने का काम वीर अस्पताल में नर्स के रुप में कार्यरत अष्टकुमारी और चंचलामांनन्धर ने बहुत ही सावधानी से किया । रेवतंकुमारी और सीतादेवी ने राणा आंदोलन के दौरान जेल में डा़ले गए कैदियों की स्थिति का गोप्य रुप में फोटो खींचकर सार्वजनिक किया । इनके इस काम की काफी सराहना हुई और जनताआ कें मन में राणा के खिलाफ और अधिक आक्रोश भर गया । नेपाली महिलाएं यद्यपि पढ़ी लिखी कम थी परंतु उनमें साहस बहुत ज्यादा था । सन् 1946 में विराटनगर के जूट मिल में कार्यरत मजदूर महिलाओं ने समान काम की समान मजदूरी, प्रसूती सुविधा, शिक्षा, स्वाथ्य, सुरक्षा जैसी सेवा सुविधा मोहैया कराने के लिए आंदोलन शुरु किया । इस आंदोलन में दिव्या कोईराला, लगाायत अन्य आंदोलनरत महिलाएं पुलिस द्वारा गिरप्तार की गई । इस गिरप्तारी से राणाओं की आलोचना चारोंतरफ होने लगी । सन् 1947 में गिरप्तार किए गयें लोगों की रिहाई की मांग करते हुए और मानव अधिकार के पुर्नस्थापना के लिए साहना प्रधान लगायत अन्य तरुणदल की महिलाओं ने सामूहिक रुप में सत्ता का विरोध किया जुलूस, हड़ताल आदि की स्थिति देखकर आखिरकार तत्कालीन राणा प्रधानमंत्री पद्यम शमशेर ने महिलाओं को पुरुष शरह मतदान करने और शिक्षा का अधिकार देने की घोषणा की । इन अधिकारों की प्राप्ति के बाद नेपाली महिलाओं के समाजिक एवं सार्वजनिक जीवन में कुछ हद तक परिवर्तन देखा गया । स्त्रियां घर के कामों के अलावा रोजगारी में भी रुचि रखने लगी । अपनी व्यक्तिगत पहचान बनाने के लिए जागरुक हुई । महिलाओं के अधिकारों संबंधी सूचना गांव-

गावं तक पहुंचाने के लिए जन चेतना मूलक कार्यक्रम चलाये जाने लगे । प्रौढ़ शिक्षा, महिला शिक्षा को महत्व दिया जाने लगा इसके लिए जगह-जगह पर संघ-संस्थायें खुलने लगी । कुछ पुरुषों ने भी महिलाओं के इस अभियान में साथ देना शुरु किया । महिलाओं के हक अधिकार को सुनिश्चित करने, महिलाओं में जन चेतना जगाने असमानता, अन्याय एवं शोषण के खिलाफ आवाज उठाने के लिए मंगलादेवी सिंह ने सन् 1947 में 'नेपाल महिला संघ' की स्थापना की श्रीमाया, स्नेहलता, हीरादेवी तुलाधर, सीतादेवी नेपाल, गुनबदन ताम्राकार, प्रतिभा कर्माचार्य, चम्पा बज्राचार्य, तीर्थदेवी, श्रेष्ठ, और मोती देवी जैसी जागरुक महिलाएं इससे जुडीं । धीरे-धीरे महिलाएं राजनीति आंदोलन से भी जुड़ती गई । राणा सत्ता के विरोध में हुए सन् 1950 के आंदोलन में महिलाओं ने बढ़चढ़कर हिस्सा लिया । इस आंदोलन से पहले सन् 1949 में नेपाल कम्युनिष्ट पार्टी की भी स्थापना हो चुकी थी । बहुत सी क्रांतिकारी महिलाओं ने जनविद्रोह में सेना की तरह काम किया और नेपाली सेना को मुंह तोड जवाब दिया । भैरहवा, नुवाकोट, स्यांङजा, विराटनगर आदि जगहों पर क्रांतिकारी महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । मोतीदेवी गुरुङ, शांता श्रेष्ठ का नाम क्रांतिकारी महिलाओं में अग्रपंक्ति में आता है । भीषण संघर्ष के बाद नेपाली जनताओं ने राणा शासन का तो अंत किया परंतु इसके बाद पंचायती व्यवस्था के साथ सत्ता पर आये राजा महेन्द्रवीर विक्रम शाह ने और वीरेन्द्र वीरविक्रम शाह ने नेपाली जनताओं के अधिकार को छीन कर बहुदलीय प्रजातंत्र व्यवस्था को हटा दिया और पंचायती व्यवस्था को जनता पर लाद दिया । इसी वजह से जनता को फिर से अपने अधिकारों की पुर्नबहाली के लिए आंदोलन करना पडा़ । सन् 1979 में किया गया आंदोलन जनमत संग्रह के दौरान षडयंत्र करके असफल किया गया । इस असफलता के बाद जनता दुगनी चौकन्नी होकर सन् 1985/86 में पुनः आंदोलन में उतरी इस आंदोलन में शैलजा आचार्य, मंगलादेवी, दुर्गा दहाल, साहना प्रधान, उमा अधिकारी, आदि महिलाओं और कमला पंत, दुर्गा घिमिरे, मंजु थापा, नीरा खनाल आदि छात्राओं को गिरप्तार किया गया

। आंदोलन कारियों पर अमानवीय तरीके से दमन किया गया फिर भी जनता पीछे नहीं हटी आखिरकार जनता का बहुदलीय प्रजातंत्र की व्यवस्था करने का उद्देश्य पूरा हुआ । इस आंदोलन से नेपाली महिलाओं में साहस और आत्मनिर्भरता को बल मिला । स्त्री की भूमिकाए बढ़ने लगी राज्य के सभी क्षेत्र में महिला सहभागिता की जरुरत महसूस की गई । माओवादी सशस्त्र जनयुद्ध ने स्त्री के मुद्दों को और अधिक प्राथमिकता दी जिसके कारण बहुत सी महिलाएं और छात्रायें इससे जुड़ी पुरुषों की तरह युद्ध में सेना द्वार मारी गई अपहरण की गई बम द्वारा उड़ा दी गई । परंतु फिर भी उनका हौसला कम नहीं हुआ, उनके इन योगदान को देखते हुएं यह कहा जा सकता है कि नेपाल में संघीय लोकतंत्र की स्थापना में महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान है । महिला राजनीतिक चेतना का लाभ केवल नेपाली स्त्रियों को मात्र नहीं बल्कि सम्पूर्ण नेपाल को हुआ है । नेपाल में वर्तमान समय में राजनीति में संलग्न प्रमुख महिलाओं में विद्यादेवी भंडारी, पंफा भूसाल, अष्टलक्ष्मी शाक्य, हिसीला यमी, विंदा पाण्डेय, शशी श्रेष्ठ, रेखा शर्मा, यशोदा तिम्मिलसिना, गंगा चौधरी, शिवमाया तुम्वाहाङफे आदि महिलाएं वामपंथी पार्टियों से जुड़ी हुई है तो पुष्पा भुसाल, उमा रेग्मी, सुजाता कोईराला, आरजू राणा देउबा, सीतादेवी यादव, चित्रलेखा यादव, कमला पंत, तारादेवी भट्ट आदि कांग्रेस पार्टी से जुड़ी हुई हैं ।

१.५ हिंदी एवं नेपाली साहित्य और राजनीतिक चेतना

१.५.१ हिंदी साहित्य और राजनीतिक चेतना

साहित्य मानवीय चेतना की उपज है अतः इसका मूल आधार मानवीय जीवन से जुड़ी हुई वह प्रत्येक चीजें हैं, जिनसे वह प्रभावित होता है । साहित्यकार अपने आस-पास की चीजों को बड़ी सजकता से देखता-परखता है और उसे शब्दों से अभिव्यक्त करता है । जिस तरह समाज मानवीय जीवन को प्रभावित करता वैसे ही साहित्य को भी प्रभावित करता है । इस क्रिया-प्रतिक्रिया के बीच से ही साहित्यिक

विकास की प्रक्रिया भी शुरु होती है । इतिहास से हमें पता चलता है कि समाज विकास की एक लंबी प्रक्रिया रही है उसी साहित्य का इतिहास हमें यह बताता है कि साहित्य के विकास की भी एक लंबी प्रक्रिया है । आरंभ में साहित्य महज एक आनन्द और मनोरंजन का विषय रहा है । धीरे-धीरे सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ इस में भी परिवर्तन देखा जाने लगा । अपने उद्‌भव काल से लेकर वर्तमान तक पहुँचते-पहुँचते इसने कई पडाव पार किये । साहित्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं वैचारिक गतिविधियों का वाहक बन चुका हैं । समाज में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन साहित्य का विषय बनते हैं । किसी समय में कल्पना के आरोप से ग्रसित साहित्य अब मानव जीवन का सत्य बन चुका है । आज का साहित्य समाज, व्यक्ति, और राजनीति के उपरी सतह तक ही सीमित नहीं है वह परत दर परत उसकी गहराई तक पहुंचकर उसका यथार्थ बाहर निकालता है । वह यथार्थ किसी भी स्थिति में हो सकता है । शोषक के रुप में शोषित के रुप में, उत्पीड़न के रुप में, शासक के रुप में, शासित के रुप में, भ्रष्टाचार के रुप में । साहित्य समाज के संरचना की हर कडी को पकडता है इसलिए साहित्य और मानव समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है । इसी संबंध की गहराई को महसूस करते हुए माओ ने साहित्य और कला के संदर्भ में लिखा है **"हम यह समझते है कि कला-साहित्य जनता के लिए है । वर्तमान साहित्य उत्पीडितों के साथ खडा़ है । इसमें साहित्य की रचनात्मकता एवं प्रासंगिकता दोनों है ।"**[22]

यानी साहित्य उन करोडों मेहनतकशों और उत्पीडितों की आवाज हैं । जो वर्षों से समाज के हाशिये पर रहते आ रहें हैं । यह उनके संघर्षों की कथा-व्यथा उनके अधिकारों की बात और उनके भोगे हुए अनुभवों का यथार्थ और इतिहास को शब्द-बद्ध करता है । आज का विमर्शवादी साहित्य इसीका प्रतीक है । समय के साथ-साथ साहित्य का क्षेत्र, संभावनाएं और उद्देश्य बदलना ही साहित्य की सफलता है । ओमप्रकाश वाल्मीकि का मानना है कि **"जब समाज बदलता है तो साहित्य में**

भी परिवर्तन आता है। लेखकों को एक साथ कई मोर्चों पर ध्यान देना पड़ता है यदि साहित्यकार इस बदलाव को अनदेखा कर देगा तो वह समय के साथ नहीं चल पायेगा।"[24]

हिंदी साहित्य में यह बदलाव उन्नीसवीं शताब्दी अथार्त नवजागरण काल से देखा जा सकता है। यूं तो साहित्य में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विषय वस्तुओं का समावेश आदि काल से ही हो चुका था। आदिकालीन (सं.1050-1375) रासों ग्रंथ तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवेश का चित्र प्रस्तुत करते है तो जैन, सिद्ध, नाथ, साहित्य सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक परिवेश की झाँकी दिखाते है। हिंदी साहित्य का भक्तिकाल (सं.1375- 1700) सामाजिक चेतना का युग था। कबीर ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में व्याप्त विभेद एवं कुरीतियों को साहित्य का विषय बनाया। तुलसी ने आदर्श राज्य की कल्पना करके राम को आदर्श राजा और उनके शासन को सुशासन के रुप में चित्रित किया। जायसी हिंदू-मुस्लिम एकता का महत्व बताते हैं। मीरा पुरुष सत्ता का विरोध कर स्त्री की पीढ़ा को समाज के समक्ष रखती हैं । रीतिकाल (सं.1700- 1900) के प्रतिनिधि कवि बिहारी तत्कालीन विलासितापूर्ण राजनीतिक परिवेश को बेपर्दा करते हैं। भूषण रीतिकाल में शिवाजी की सौर्यता की व्याख्या करते हैं। घनानन्द, पद्यमाकर, केशव, चिंतामणि जैसे कवि साहित्य को नया रुप देते हुए दिखाई पड़ते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य अपने आरंभिक काल से ही समाजमुखी था। आधुनिक काल (सं.1900 ...) अन्य कालों से इसलिए भिन्न रहा कि इस समय साहित्य में नवीन विचारधाराओं का प्रवेश हुआ जो विचारधाराएं समाज एवं राजनीतिक परिवर्तन में क्रांतिकारी प्रभाव दिखा रही थी उनको साहित्कारों ने साहित्य में प्रयोग करना शुरु कर दिया । भारत में सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई यही से हिंदी साहित्य ने आधुनिक रुप धारण किया। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, यथार्थवाद, समाजवाद, स्त्रीवाद, अस्मितावाद,

संरचनावाद, उत्तरआधुनिकवाद जैसी विचारधाओं ने सामाजिक यथार्थ को साहित्य के केन्द्र में लाकर खड़ा कर दिया। समाज, राष्ट्र, क्षेत्र, अंचल, व्यक्ति, जाति, वर्ग, समुदाय, लिंग, जैसी नवीन अवधारणाओं को साहित्यकारों ने अपनाया। प्रेमचंद ने आधुनिक काल की शुरुआत की बल्कि साहित्य की एक नई परिभाषा गढ़ी उनका मानना हैं **"हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"**[25]

वास्तव में प्रेमचंद ने साहित्य को जगाया हैं। उसमें नवीन चेतना का संचार किया है यह चेतना भारत के दूर दराज गांव के किसानों में, अशिक्षित अनपढ़ स्त्रियों में, उद्योगपतियों में, पढ़े लिखे मगर अहंकारी लोगों में, जमीनदारों में, दलितों में, अहमवादी ब्राह्मणों में, धर्म के ठेकेदारों में, सत्ताधारियों में और प्रत्येक देश के नागरिकों में जगायी हैं। प्रेमचंद साहित्य के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम का युद्ध लड़ने वाले अमर सिपाही है। रंगभूमि और कर्मभूमि जैसी उनकी रचनाओं ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम के परिवेश को ही नहीं दिखाया है बल्कि उपनिवेशवादी सत्ता के क्रूर व्यवहार को समाज के समक्ष रखा हैं। प्रेमचंद के साहित्य की एक विशेष बात यह है कि उन्होंने समाज के उपेक्षित वर्ग के प्रति विशेष सहानुभूति दिखाई हैं। उनकी पीढ़ा और वेदना को जन-जन तक पहुंचाने का महत्वपूर्ण काम किया है। साहित्य में राजनीतिक विषय वस्तुओं का प्रवेश भारत में एक विशेष परिघटना हैं। इस विशेष घटना ने भारतीय साहित्य और समाज का स्वरुप परिवर्तन करने में काफी हद तक सहयोग किया है। स्वतंत्रता के बाद व्यक्ति के जीवन में जितनी तेजी से और जितने बहुमुखी परिवर्तन हो रहें है, उतने संभवतः देश के इतिहास में पहले कभी नहीं हुयें। भारतीय चेतना पर, वैयक्तिक और समूहगत स्तरों पर, जितनी क्रियायें- प्रतिक्रियायें राजनीतिक, आर्थिक, और सामाजिक क्षेत्रों के इस

दौरान हुए उतने शायद पहले कभी नहीं हुयें यही कारण है साहित्य में आये इस द्रुत परिवर्तन का । साहित्य ने इस तीव्र परिवर्तन को भी बहुत ही संवेदनशीलता और सजकता के साथ खुद में समेटा है । फणीश्वरनाथ रेणु का मैलाआंचल, बाबा नागार्जुन का बलचनामा, यशपाल का झूठा-सच, सुरेश सिन्हा का पत्थरों का शहर, राजेन्द्र यादव का उखड़े हुए लोग, मन्नू भंडारी का महाभोज, मैत्रेयी पुष्पा का चाक, कृष्णा सोबती का जिंदगीनामा, प्रभा खेतान का तालाबंदी, भगवतीचरण वर्मा का सामर्थ और सीमा, अमृतलाल नागर का बूंद और समुद्र, राजेन्द्र यादव का सारा आकाश, राही मासूम रजा का आधा गांव, श्रीनरेश मेहता का यह पथ बंधु था, मोहन राकेश का अंधेरे बंद कमरें, शिव प्रसाद सिंह का अलग-अलग वैतरणी, श्रीलाल शुक्ल का राग-दरबारी, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का एक और मुख्यमंत्री जैसी रचनाओं ने देश, समाज और राजनीति के भीतर की घुटन, अपराध, भ्रष्टाचार, षड़यंत्र, जातिय, लैंगिक विभेद आदि कैयों विषमताओं को दिखाने का प्रयास किया है । ये रचनाएं भारतीय राजनीतिक परिवेश का साक्ष्य मात्र नहीं हैं बल्कि यह भविष्य के लिए इतिहास और वर्तमान के लिए देश का मार्गदर्शन करने वाले दस्तावेज हैं । फणीश्वरनाथ रेणु भारतीय राजनीति में व्यप्त भ्रष्टाचार, आतंक, दोहरी मानसिकता, स्वार्थ लिप्सा, गैर जिम्मेदारिता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, संप्रदायवाद आदि राजनीतिक मुद्दों को उपन्यास के माध्यम से सरोकार वाले व्यक्तियों के समक्ष रखते हैं । इसी तरह अमृतलाल नागर ने अमृत और विष में तत्कालीन राजनीतिक परिवेश का चित्र कुछ इस तरह प्रस्तुत किया है **"दंद-फंद जाति विरादरी धर्म और धन सभी का प्रयोग सभी पार्टियों और व्यक्तिगत रुप से खड़े हाने वाले उम्मीदबारों ने बिना-शर्म लिहाज से किया । ज्यों-ज्यों चुनाव आंदोलन तेज होता गय, त्यों-त्यों जनता अपना असंतोष दबाकर गुंडों में चुनाव करने की मजबूरी से शांत गुंडी कांग्रेस के पक्ष में होने लगी । पैसे और सरकारी सत्ता का प्रभाव भी काम कर रहा था । ....डेमोक्रेसी के हामी धूम-धड़ल्ले से दिन-रात डेमोक्रेसी के सिद्धांतों पर खुलेआम बलात्कार कर रहें थे । साथ ही साथ चिल्ला चिल्लाकर कहते भी जाते**

थे कि हम डिमोक्रेसी के प्रेमी है। पूरी आपा-धापी करोडों का खर्च और गुंडागिरी तथा अनैतिकता की लहलही फसल उगाकर चुनाव का तमासा पूरा हो गया।"[26]

स्वतंत्रता के बाद जनता और नेताओं के बीच की दूरियां बढ़ने लगी जाहेर है कि इस दूरी का कारण नेताओं की पदलोलुपता और स्वार्थ था। यह स्थिति कम नहीं हुई बल्कि बढ़ती गई। साहित्यकारों ने इस स्थिति को जटिल बनते हुए देखा और जनता और नेताओं को सच का आईन दिखाया। साहित्य और कला किसी भी देश की समृद्धि का प्रतीक है जिस देश का साहित्य जितना प्रौढ़ होता है वह देश उतना ही समृद्ध माना जाता हैं। साहित्य में वह असीम शक्ति होती है जिसके माध्यम से मानव जीवन, समाज और देश का अंधकार मिटाया जा सकता हैं। अन्याय के विरुद्ध लडा़ जा सकता हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी इसी विचार का समर्थन करते हैं **"साहित्य का लक्ष्य मनुष्यता ही है, जिस पुस्तक से यह सिद्ध नहीं होता, जिससे मनुष्यका अज्ञान, कुसंस्कार और अविवेक दूर नहीं होता, जिससे मनुष्य शोषण और अत्याचार के विरुद्ध सिर उठाकर खडा़ नहीं हो जाता वह पुस्तक किसी काम की नहीं। किसी जमाने में विलास को भी साहित्य कहा जाता रहा होगा। किंतु इस युग में साहित्य वही कहा जा सकता है जिससे मनुष्य अथवा समाज का सर्वांगीण विकास हो।"[27]**

हिंदी साहित्य का एक व्यापक राष्ट्रीय फलक है। जिसके भीतर राजनीति, राष्ट्रीयता, एकता, अर्थ नीति, भाषा, धर्म, संस्कृति जैसे विषय आते हैं। भारतेन्दु युग से इसकी शुरुआत हो चुकी थी। उपनिवेशवादी सत्ता की क्रूरता और पराधिनता के परिवेश ने राष्ट्रीयता की चेतना को और अधिक बल मिला। समग्र भारत की जनता एक अभियान और एकता के सूत्र में बध गयी यही एकता और राष्ट्रीय भावना ने भारत को स्वतंत्र बनाया। इस स्वतंत्रता संग्राम में साहित्यकारों की अहम भूमिका रही, जब देश की जनता पराधीनता की मुक्ति के लिए लड़ रही थी, ऐसे समय में भारतीय साहित्यकार भी विचाराधीन थे कि कैसे साहित्य को तलवार बनाया जा

सकता हैं। उधर बंगाल में बंगाली लेखकों ने साहित्य के माध्यम से युद्ध का बिगुल फूंक दिया था। रवीन्द्रनथ टैगोर, बंकिमचन्द्र की रचनाओं से अंग्रेज घबराने लगे थे। इधर हिंदी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी खड़ीबोली हिंदी के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। भारतदुर्दशा, नीलदेवी, अंधेरनगरी, बिषस्य विषमौषधम् जैसी रचना से भारतीय जनताओं की तत्कालीन दशा और राजनीतिक अवस्था से सबको अवगत कराया। भारतदुर्दशा में लिखी गई इन पंक्तियों से तत्कालीन भारतीय जनता की मनोदशा और स्थिति का पता चलता है।

"आवहु हम सब मिली रोवहु भारत भाई
हाँ ! हाँ ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।
अंगरेज राज सुख साज साजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।
ताहू पै काल रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूने दुःख ईस देत हां हां री॥
सबसे ऊपर टिक्स की आफत आई।
हाँ हाँ ! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥"[28]

इसके अलावा भारतेन्दु युग में साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि इस समय हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की स्थापना हो चुकी थी। पंडित जुगल किशोर ने 'उदंत मार्तंड' (1826) नामक हिंदी की पहली पत्रिका का प्रकाशन किया। इसके पश्चात सन् 1829 'बंगदूत' 1845 में 'बनारस अखबार' और सन् 1850 में सुधाकर पत्रिका की स्थापना हुई। यह क्रम पूरे भारत में फैलता गया जिसके माध्यम से साहित्यकारों ने अपने -अपने स्थान से ब्रिटिश सत्ता का विरोध करना आरंभ किया और जनताओं को अपने अधिकारों के प्रति चेतनशील बनाने की प्रक्रिया भी शुरु हुई । सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय सामाजिक और सांस्कृतिक पुनरुत्थान और राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का अभियान जारी किया गया। इस समय पूरा भारत ईष्ट-इंडिया कम्पनी के हाथों से निकल कर विक्टोरिया के

हाथ में आ चुका था परिणाम स्वरुप दमनकारी नीतियों में वृद्धि होना स्वाभाविक था । दमन के बढ़ते इस प्रभाव ने क्रांति को और उग्र बना दिया और लोगों में स्वदेश प्रेम की भावना के साथ-साथ अपने अधिकारों के प्रति चेतना का भी विकास हुआ । इस कार्य में हिंदी साहित्य एवं पत्र-पत्रिकाओंने और अधिक जोश भरने का काम किया । भारतेन्दु ने अपने साहित्य के माध्यम से जनता में जो स्वाभिमान, नैतिकता, ईमानदारी और स्वदेशी मर्यादा का पाठ पढ़ाया था उसका परिणाम जल्द ही देखा गया । हिंदी के सभी लेखक इस अभियान में जुट गये । कहानी, उपन्यास, कविता, निबंध, आलोचना, नाटक, समीक्षा आदि में भारतीय राजनीति परिवेश, अंग्रेजी हुंकूमत का अन्याय, अत्याचार, दमन, शाोषण आदि का शब्द-शब्द अर्थ-अर्थ की व्याख्या की जाने लगी जिसके कारण लोगों में सत्ता के विरुद्ध दुगना आक्रोश पैदा हुआ । इस अभियान में भारतेन्दु के अलावा प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, बालकृष्ण भट्ट, जैसे कवि भी सम्मिलित थे । सन् 1868 जब 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन आरंभ हुआ इस पत्रिका ने अपने गौरवपूर्ण कलेवर के कारण केवल हिंदी पत्रकारिता अपितु हिंदी गद्य साहित्य में भी अभूतूर्व परिवर्तन ला दिया था । 'कवि वचन सुधा' में ही भारतेन्दु ने स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार के लिए अपना प्रतिज्ञा पत्र छापा था । खाना देश तथा खानदेश के बाढ़ पीड़ितो की सहायता की अपीलें, हिंदी के प्रचार-प्रसार और अंग्रेजी नीति का विरोध किया था । लोगों को भाषा-साहित्य और देश प्रेम की भी शिक्षा भी इसी के माध्यम से दिया । सन् 1873 में हिंदी की एक और पत्रिका 'हरिचन्द्र मैगजीन' की स्थापना की गई यह पत्रिका बाद में हरिशचन्द्र चन्द्रिका नाम से चलायी जाने लगी । इस पत्रिका का उद्देश्य भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को सफल करने में सहयोग देना था । स्त्री शिक्षा एवं जनचेतना को बढ़ावा देने के लिए सन् 1874 'बाला-बोधिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया गया । इसके बाद द्विवेदी युगीन साहित्य ने भी इस अभियान को निरंतरता दी । अतः हम देखते है कि हिंदी साहित्य के क्षेत्र में राजनीतिक चेतना की परंपरा आधुनिक काल तक पहुंचते-पहुंचते और अधिक

संवेदनशील हो गई । समय के दबावों से राष्ट्रीय चेतना का स्वरुप बदला मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह हरिऔध, भगवतीचरण वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, रामधारी सिंह दिनकर, जैसे कवियों ने राजनीति चेतना को नये रुप में प्रस्तुत किया । नयी रचनाशीलता ने प्रयोगवादी कवियों को जन्म दिया अज्ञेय, भरतभूषण अग्रवाल, मुक्तिबोध, प्रभावकर माचवे, गिराजकुमार माथुर, नेमिचन्द्र जैन, रामविलास शर्मा, आदि ने राज्य और तत्कालीन सरकार पर व्यंग्यात्मक दृष्टि अपनाई ये जनमानस में काफी चर्चित भी रहें । इन्हीं साहित्यकारों की वजह से हिंदी साहित्य जनसाहित्य बनने में सफल हो सका है ।

१.५.२ नेपाली साहित्य और राजनीतिक चेतना

साहित्य अपने आप में एक गंभीर और संवेदनशील विषय है । समय के साथ-साथ इसकी उपयोगिता और महत्व बढ़ता जा रहा है । प्राचीन काल से वर्तमान तक अनेकों देशों में इसका अपना ही एक अलग इतिहास रहा है । भारत में साहित्य काव्य के नाम से जना जाता था, वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि काव्य में लिखे गयें ग्रन्थ हैं । पाश्चात्य देशों में साहित्य को पोइट्री के नाम से जाना जाता था होमर, शेक्सपीयर, वर्डसवर्थ जैसे साहित्यकारों ने पाश्चात्य देशों में साहित्य को एक विशेष स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । नेपाल में भानुभक्त आचार्य, मोतिराम भट्ट और बलकृष्ण सम जैसे लेखकों ने नेपाली साहित्य और भाषा को समृद्ध बनाया । दुनिया में जब तक मुद्रण की व्यवस्था नहीं थी तब तक साहित्य संकुचित परिधि में बंधा रहा इसका एक कारण यह भी था कि उस समय लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था, इसलिए ज्ञान एवं उपदेश की सारी बातें मौखिक रुप से हस्तांतरित की जाती थी । बाद में पूर्व वैदिक काल में आकर लिपि का आविष्कार हुआ और वेदों की रचना की जाने लगी । वेद मूलतः तत्कालीन समाज में प्रचलित मौखिक ज्ञान का संकलन है । बाद में जब मुद्रण की व्यवस्था शुरु हुई तो साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन आने लगे । यही से साहित्य एक नया युग और नया परिवेश में प्रवेश करता है । नेपाली भाषा और साहित्य की यदि बात

करें तो नेपाली भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली अपभ्रंश भाषा से ही उत्पन्न भाषा है। यह भाषा नेपाल लगायत भारत, भूटान, म्यानमार आदि देशों में प्रयोग की जाती है। भाषाविद महानंद पौड्याल लिखते है कि **"संस्कृत शाखा उपशाखाओं से विकसित देवनागरी लिपि में लिखित नेपाली भाषा भारत में बोली जाने बाली हिंदी, मराठी, गुजराती, सिंधी, बंगाली, उड़िया आदि भाषाओं की भांति एक आधुनिक आर्य भाषा है।"**[29]

नेपाल में इसे खस भाषा के रुप में भी जाना जाता हैं। ग्रियर्सन लगायत कई अन्य पूर्वीय भाषाविदों ने भी इसे खस अपभ्रंश का ही विकसित रुप माना है। इसके साथ-साथ नेपाली भाषविद् चूडामणि उपाध्याय भी नेपाली भाषा को खस अपभ्रंश भाषा का विकसित रुप मानते हैं। इसका इतिहास नेपाली साहित्यकारों ने अनेकों उपलब्ध तथ्यों के आधार पर तैयार किया है। नेपाली साहित्य का इतिहास जितना पुराना है उससे भी पुराना इसके भाषा का इतिहास हैं। नेपाली भाषाविदों का मानना है कि आदिकाल में आर्य जाति का कोई समूह नेपाल में आया होगा और पहाड़ी भेग में बसा होगा। जब धीरे-धीरे ये स्थानीय वासियों के संपर्क में आये होंगे तब इनकी भाषा एक नये रुप में परिष्कृत होकर लोगों के सामने आयी जिसे गोर्खा या नेपाली भाषा का नाम दिया। बहुत से भाषाविद् इसे विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी से विकसित मानते हैं। नेपाल में उपलब्ध 'दामुल के दुल्लु' शिलालेख के मुताबिक सन् 1005 में इसका लिखित रुप मिला। रामशाह की जीवनी इस भाषा में लिखी गई प्रथम पुस्तक है। इसके बाद वाणीविलास, ज्वरोउत्पत्ति चिकित्सा आदि रचनाएं उपलब्ध हुई। यह भाषा सोरहवीं शताब्दी तक सुषुप्तावस्था में रही। नेपाल राज्य के विकास के साथ-साथ इसका भी विकास होता गया। बाद में यह भाषा गोर्खाली सैनिकों द्वारा बाली जाने वाली भाषा के रुप में चर्चित हुई। भानुभक्त आचार्य ने जब रामायण को नेपाली में अनुवाद किया तब इस भाषा ने साहित्य के क्षेत्र में अधिक प्रसिद्धि पाई। काफी उतार चढ़ाव के बाद सन् 1962

में राजा महेन्द्र ने इसे राष्ट्रीय भाषा के रुप में प्रतिष्ठित किया । नेपाल की प्रथम साहित्यिक पत्रिका की बात करे तो 'सुधासागर' पहली पत्रिका है जो कुछ समय चली फिर बंद हो गई इसके बाद शारदा, चन्द्रिका, रुपरेखा, इन्द्रेणी, मधुपर्क, जनमत आदि कई पत्र-पत्रिकाएं अस्तित्व में आई । इन के अलावा सन् 1901 में गोर्खा पत्र की स्थापना के बाद ही नेपाली भाषा और साहित्य को गति मिली । नेपाली साहित्य का इतिहास नेपाली भाषा के इतिहास और उसके महत्व को बारीकी से समझाने में सफल दिखाई पड़ता हैं । नेपाली साहित्य के इतिहासकारों में तारानाथ शर्मा, यज्ञराज सत्याल, बालचन्द्र शर्मा, ईश्वर बराल, बालकृष्ण पोखरेल, रत्नध्वज जोशी, दयाराम श्रेष्ठ और मोहनराज शर्मा आदि प्रमुख माने जाते हैं । दयाराम श्रेष्ठ और मोहनराज शर्मा ने अपनी पुस्तक 'नेपाली साहित्य को संक्षिप्त इतिहास' में नेपाली साहित्य को पाँच कालों में विभाजन किया है । आदिकाल या भक्तिकाल सन् (1742-1815), पूर्व मध्यकाल या भक्तिकाल सन् (1816-1882), उत्तरमध्यकाल या श्रृंगारकाल सन् (1883-1917), प्राक आधुनिक काल सन् (1918-150), आधुनिक काल सन् (1950 ...) । नेपाली साहित्य का आदिकाल सुवानन्द दास द्वारा लिखित पृथ्वीनारायण शीर्षक कविता से माना जाता है । इस काल में शक्तिवल्लभ अर्याल, उदयानन्द अर्याल, राधावल्लभ अर्याल आदि प्रमुख कवि के रुप में दिखाई पड़ते है, इन्होंने अपनी कविताओं में तत्कालीन राजाओं की वीरता, सौर्यता, युद्ध नीति आदि का वर्णन किया है अतः इस काल में वीर रस का प्रयोग अधिक दिखाई पड़ता है । साथ ही तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश को भी कवियों ने समेटने का प्रयास किया हैं । इस के साथ-साथ इस काल में धार्मिक रचनाएं भी हुई है । कवियों ने शिव पार्वती के भजन, कीर्तन और गीत भी लिखे हैं । राजा खुद भी कवि हुआ करते थे । पृथ्वीनारायण शाह गोरख नाथ के भक्त थे उन्होंने अपने गुरु गोरख नाथ की प्रशंसा में कविताएं लिखी है । हिंदी साहित्य के आदि काल के साथ इस काल की तुलना की जाए तो दोनों में काव्य, भाषा शैली, रस, परिवेश आदि में एकरुपता दिखाई

पड़ती है परंतु नेपाली साहित्य में हिंदी साहित्य की तरह रासो ग्रथ की रचनाएं नहीं हुई है। नेपाली साहित्कारों ने यह कोशिश अवश्य की है कि तत्कालीन परिवेश को साहित्य में समेट सके दूसरे शब्दों में यदि कहें तो यह नेपाली साहित्यकारों के चेतना का उदाहरण भी है। इसलिए नेपाली साहित्य का आदिकाल महत्वपूर्ण काल के रुप में स्थापित हो सका है। भक्तिकाल की यदि बात करें तो इस काल में मुख्य रुप से भक्ति की दो धारायें दिखाई पड़ती है सगुण और निर्गुण धारा। सगुण धारा में राम और कृष्ण भक्ति साथ-साथ चलती है। रामभक्ति धारा के प्रवर्तक भानुभक्त आचार्य को माना जाता हैं। भानुभक्त ने सरल नेपाली भाषा में वाल्मीकि रामायण का अनुवाद किया इसके अलावा इन्होंने प्रश्नोत्तरी, भक्तमाला, वधूशिक्षा जैसी रचनाएं लिखी और नेपाली साहित्य में अपना स्थान स्वर्णिम अक्षरों में दर्ज कराया। इनकी एक घांसी नाम की कविता नेपाली साहित्य में बहुत ही प्रसिद्ध कविता है। मानवीय धर्म, नीति और कर्तव्य का ज्ञान कराने वाली यह कविता मानवीय संवेदनाओं को चित्रित करती है।

"भर जन्म घाँस तिर मन दिई धन कमायो

नाम क्यै रहोस भनेर कुवा खनायों।

धाँसी दरिद्र घरको तर बुद्धि कस्तो

म भानुभक्त धनी भैकन किन यस्तो।"[30]

अर्थात एक घांसी जो घांस को बेचने का व्यवसाय करता है। उसकी इच्छा है कि वह घांस को बेचकर गांव में एक कुआं बनवाएगा तांकि गरीब, दु:खी लोगों का उपकार हो सके। भानुभक्त कहते है कि एक गरीब दरिद्र घांसी इतना विशाल हृदय रखता है और मैं एक अमीर आदमी होकर क्या ही कर सका ? नेपाली साहित्य का भक्तिकाल भी हिंदी साहित्य के भक्तिकाल की तरह सामाजिक विभेद जातीय एवं वर्गीय समानता, मानवीय धर्म और ज्ञान को सर्वोपरी मानने की बात करता है। भानुभक्त के अलावा यदुनाथ पोखरेल भी रामभक्ति धारा के कवि में

आते हैं । कृष्ण भक्तिधारा के इन्दिरस, विद्यारण्यकेशरी अर्ज्याल, वीरशाली पंत, पतंजलि गजुरयाल आदि प्रमुख कवि है । निर्गुणधारा नेपाली साहित्य में जोसमनी संप्रदाय के रुप में जानी जाती है । अगमदिलदास, शशीधर, प्रेमदिलदास, संतदिलदास, अखड्दिलदास, ज्ञानदिलदास आदि इस धारा के प्रमुख कवि है । श्रृंगारकाल नेपाल में श्रृंगारकाल राणाओं के भोगविलास के काल के रुप में भी जाना जाता है । इस काल में जंगबाहादुर राणा का उदय हो चुका था । जगंबाहादुर भारत के मुगलों की तरह आमोद-प्रमोद में लीन रहने वाला विलासी राजा थे । इसके बाद के राणा राजाओं की भी यही प्रवृत्ति रही हालांकि भारत में इस समय मुगलों का अंत होकर ईष्ट-इंडिया कंपनी का शासन शुरु हो चुका था । पृथ्वीनारायण शाह अंग्रेजी सत्ता विरोधि थे परंतु राणा उनके समर्थक बन चुके थे । अंग्रेजों की शक्ति के आगे उन्होंने पहले ही सिर झुका लिया था और उनसे मित्रता करली थी । नेपाली जनता राणाओं की इस नीति से खुश नहीं थी । राणाओं का विलासपूर्ण जीवन जनताओं के अधिकारों को छीनता हुआ आगे बढ़ रहा था इसलिए जनताओं में निराशा फैलती जा रही थी । राणाओं के ड़र से कवि अपनी कलम की स्वतंत्रता को बरकरार नहीं रख पा रहे थे । ऐसे परिवेश में नेपाली साहित्य में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त मोतीराम भट्ट का आगमन होता है और नेपाली साहित्य नये रुप में आगे बढ़ता हैं । मोतीराम भट्ट ने नेपाली साहित्य में भाषा शुद्धता के अभियान को महत्व दिया और साहित्य में पद्य के साथ-साथ गद्य लेखन की भी शुरुआत की । पत्रपत्रिकाओं का भी प्रकाशन होने लगा । साहित्य में गीत, गजल, मुक्तक जैसी पद्यात्मक मगर श्रृंगाारपरक रचाएं अधिक होने लगी । इसकाल के प्रमुख कवि शम्भु प्रसाद ढुंगेल, पहलमान सिंह स्वाँर, हरिप्रसाद नेपाल, तुलसीदत्त भट्टराई, तीर्थप्रसाद आचार्य, लक्ष्मीदत्त पतं, तेजबाहादुर राना, तीर्थराज पाण्डे, दानराज लामीछाने आदि श्रृंगारकाली कवि के रुप में जाने जाते है । नेपाली साहित्य का श्रृंगारकाल हिंदी साहित्य के श्रृंगारकाल से कुछ अलग दिखाई पड़ता है क्योंकि नेपाली मे हिंदी की तरह आचार्य कवि नहीं हुएं और ना ही इसकाल में कोई लक्षण ग्रन्थ लिखे गयें ।

हिंदी और नेपाली साहित्य के रीतिकाल की एक समानता यह है कि दोनों साहित्य में श्रृंगारपरक रचनाएं रची गई है । समय सीमा के हिसाब से भी यह काल हिंदी के रीतिकाल से बहुत पीछे का समय है । प्राक-आधुनिक काल अथवा नव्यकाल यह काल राणा शासन के अंत से पहले का काल माना जाता हैं । इस समय जनता राणा शासन के विरोध में सड़क पर उतर चुकी थी । इसलिए इस काल में राष्ट्रीय चेतना का स्वर अधिक दिखाई पडता हैं । इसे नवजागरण काल भी कहा जा सकता है क्योंकि यह समय नेपाल में सामाजिक एवं राजनीतिक रुपांतरण का समय था । जनताओं में नवीन चेतना प्रस्फुटित हो रही थी, परिवर्तन का आगाज हो रहा था । साहित्य में बुद्धिवाद, स्वच्छंदवाद, मानवतावाद, रहस्यवाद, मनोविश्लेषणवाद, प्रगतिवाद जैसी नवीन विचारधाराएं प्रवेश कर रही थी । लेखक यथार्थवादी होकर जनता की समस्याओं को पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समाज के समक्ष रखने का अभ्यास कर रहा था । इस काल में लेखनाथ पौड्याल, धरणीधर कोईराला, महानंद सापकोटा, रुद्रप्रसाद ढकाल, बालकृष्ण सम, लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा, सिद्धिचरण श्रेष्ठ, भीमनिधि तिवारी, गोपाल प्रसाद रिमाल, माधवप्रसाद धिमिरे, गोपालमान व्यथित, भवानी भिक्षु आदि इस समय के प्रसिद्ध कवि माने जाते हैं । आधुनिक काल यह काल नेपाली साहित्य जगत में एक क्रांतिकारी परिवर्तन का काल माना जाता हैं । एक सौ चार साल के राणा शासन के अंत के बाद नेपााली समाज निरंकुश सत्ता के चंगुल से मुक्त हुआ परंतु सामाजिक रुढ़ियां अभी तक यथावत थी । इसलिए इस काल का साहित्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक असमानताओं, रुढ़ियों, धार्मिक आडंबरों के खिलाफ आवाज उठाने लगा । मार्क्सवादी विचारधार साहित्य लेखन का आधार बनी जिसके कारण समाज के हाशियें का वर्ग साहित्य के केन्द्र में आया । वर्षों से उपेक्षित और शोषितों वर्ग दलित, स्त्री, आदिवासी, किन्नर आदि के अधिकारों की बात साहित्य में उठाई जाने लगी । दुनिया में यह विमर्श पहले से ही आ चुका था । नेपाल में सन् 1950 के बाद से शुरु हुआ इसके कारण साहित्य में वैज्ञानिकता और वैचारिकता का प्रवेश हुआ इसी कारण कल्पना के आरोप से

साहित्य मुक्त हुआ । इस काल के प्रमुख साहित्यकार राजनीतिक दृष्टि से यदि नेपाली साहित्य को देखे तो कृष्णलाल अधिकारी की 'मकै को खेती'(मक्के की खेती) नामक रचना पहली नेपाली राजनीतिक रचना है । यह रचना व्यग्यात्मक शैली में लिखी गई हैं । इस रचना में राणाओं के निरंकुश शासन का विरोध किया गया था इसलिए राणाओं ने उन्हें पकडकर जेल डाल दिया था और जेल में ही उनकी मृत्यु हो गई । इसके बाद गुरुप्रसाद मैनाली ने सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ को दिखाया । भवानी भिक्षु अपनी कहानी नये इतिहास का आरंभ में लिखते है **"नेपाल को स्वतंत्र करायेगा तेरे कारण हम लोगों की नोकरियां छुट गई है, इज्जत भी गुम गई, मालिक भी हमसे नाराज है, तेरा स्वतंत्र नेपाल कहां है ? तेरा विशेश्वर क्यों नहीं आता ? तेरा जिंदावादा मूर्दावाद का क्या हुआ ?"**[31]

भवानी भिक्षु की यह रचना राजनीतिक परिवर्तन के लिए संघर्ष कर रहें नेपाली युवकों की कथा-व्यथा को दर्शाती हैं । इसी तरह विशेश्वर प्रसाद कोईराला ने भी अपनी कहानी एक रात में राणकालीन क्रांति के परिवेश को कुछ इस तरह दिखाया है **"दरबार से मृत्युदंड का आदेश होने के बाद आजकल वह अंगुलियों में मृत्यु के दिन गिन रहा है । मृत्यु गति के नियम से नहीं आई न अकस्मात ही आई है । इसके लिए बहुत से षडयंत्र और योजनाएं बनाई गई है । थाने में, प्राइभेट न्याय गोष्ठी में और दरबार में खुली बहस भी हुई । कानून की ठेलियों से बहुत सी दफाओं को लेकर न्याय की व्याख्या हुई अभी भी मृत्यु के लिए यह वृहद योजना समाप्त नहीं हुई है । बाकी कागजों पर अफिसरों के दस्तखत हो रहें होंगे, अंतिम निर्णय लिखा जा रहा होगा । खुकुरी में धार लगाई जा रही होगी ।"**[32]

भवानी भिक्षु ने नेपाली राजनीति में देखे गये इस त्रासपूर्ण वातावरण को बड़ी ही गंभीरता से समाज के समक्ष रखा हैं । आधुनिक लेखको की यह महत्वपूर्ण विशेषता रही है कि उनकी पैनी नजरों से समाज की कोई भी घटना छूटी नहीं है । स्त्री के गर्भ में पल रहें बच्चे की गतिविधि से लेकर राज्य की बड़ी-बड़ी योजना तक को

साहित्य में समेटा गया है । प्रत्येक देश का साहित्य अपने देश का इतिहास और वर्तमान को लेकर चलता हैं । नेपाली साहित्य में भी उसका इतिहास और वर्तमान दोनों को सहज ही देखा जा सकता है । प्रथम विश्वयुद्ध के भीषण संघर्ष के बाद विश्व में जो राजनीतिक परिवर्तन हुयें है उसका प्रभाव नेपाली राजनीति में भी पड़ा है और साहित्यकारों ने भी उस भीषण युद्ध में देखी गई मानवीय वेदना, पीड़ा और अमानवीय गतिविधि को साहित्य में उतारा है । नेपाली साहित्य में राजनीतिक विषय वस्तुओं को महत्व देने वाले लेखकों में भवानी भिक्षु, विशेश्वरप्रसाद कोईराला, विजय मल्ल, मनु ब्रजाकी, रमेश विकल, जगदीश घिमिरे, परशु प्रधान, रमेश विकल, ध्रुव सापकोटा, खगेन्द्र संग्रोला, राजेन्द्र पराजुली, महेशविक्रम शाह, नवराज पाण्डे, अशेष मल्ल आदि पुरुष लेखक है तो पारिजात, पद्मावती सिंह, बेन्जु शर्मा, भागीरथी श्रेष्ठ, बानीरा गिरी, विन्द्या सुब्बा, शारदा शर्मा, हरिमाया भेटवाल, माया ठकुरी, नीलम कार्की आदि प्रमुख महिला लेखिका हैं । प्राचीन काल में लेखकों ने काव्य के माध्यम से राज्य और शासक वर्ग की गतिविधियों को साहित्य में समेटा तो मध्यकाल में आकर थोड़ा बहुत लेखन शैली और विषय वस्तुओं में विस्तार हुआ इस कालीन साहित्य में जनता की मनोदशा और उनकी आकांक्षाओं को भी महत्व दिया जाने लगा । नव्यकाल या आधुनिक काल में आकर साहित्य का स्वरुप पूरी तरह से बदल गया । प्रगतिवाद, छायावाद, प्रयोगवाद, संरचनावाद, समाजवाद, उत्तरआधुनिकवाद, और साहित्यिक विमर्शों के आगमन से साहित्य यथार्थ के धरातल पर खड़ा हुआ । यह परिवर्तन केवल नेपाली और हिंदी साहित्य में मात्र नहीं बल्कि दुनिया के सभी भाषाओं में लिखे जा रहें साहित्य में हुआ है । अतः हम यह कह सकते है कि साहित्य में यह परिवर्तन मानवीय चेतना का ही कारण है और इस चेतना के भीतर राजनीतिक चेतना एक छोटा सा अंश है । साहित्य की विशााल फलक पर राजनीतिक चेतना का अपना ही एक अलग महत्व है । इसने शासक, जनता और समाज को सचेत रखने का महत्वपूर्ण कार्य किया है ।

निष्कर्ष : राजनीति एक गहन और गंभीर विषय है । प्राचीन काल से ही इसके महत्व और उपयोगिता पर चर्चा परिचर्चा होती आ रही है । वर्तमान समय में मानव की भौतिकवादी प्रवृत्ति जिस रप्तार से बढ़ रही है, उसी रप्तार से उसकी आवश्यकतायें भी बढ़ रही हैं । मानव की इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक व्यवस्थित प्रभावशाली प्रणाली का होना आवश्यक है, जो समाज एवं राष्ट्र को व्यवस्थित और विधिवत रुप से संचालन करे और जनताओं की आवश्यकताओं के मुताबिक स्रोत-साधन मुहैया करा सके । समाज में न्याय, शांति, सुरक्षा कायम कर सके । भारत और नेपाल दोनों स्वतंत्र देश हैं, जिनकी अपनी एक अलग पहचान हैं । अनेकों राजनीतिक उचार-चढ़ाव को झेलते हुयें वर्तमान समय में दोनों देशों में संघीय लोकतांत्रिक व्यवस्था कायम है । जिसके अंतर्गत अनेकों राजनीतिक पार्टियां सक्रिय हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. त्रिपाठी, रामप्रसाद, हिंदी विश्वकोश, पृ. १८२
2. ठक्कर, डॉ. पुष्पा, दिनकर काव्य में युगचेतना, पृ.४
3. https://www.rajaneeti.com
4. डॉ. नगेन्द्र, मानविकी परिभाषिक कोश, पृ. ५०
5. गावा, ओ.पी., राजनीतिक चिंतन की रुपरेखा, पृ. ४
6. गावा, ओ. पी. राजनीतिक चिंतन की रुपरेखा, पृं .४९
7. शुक्ला, रुपेश कुमार, साठोत्तरी कविता में सत्ता और समाज का अंतर्संबंध, पृ. ३२
8. गावा, ओ. पी., राजनीतिक चिंतन की रुपरेखा, पृ. १०४
9. शिवाकोटी, प्रा.डॉ.गोपाल, राजनीतिक विचारधारा और विश्लेषण, पृ. ५०
10. कोठारी, रजनी, भारत में राजनीति, पृ. ९
11. आचार्य, बलराम, नेपाल में समाज और संस्कृति, पृ. ३१
12. https//www.nagariknews.com
13. श्रीवास्तव, कृष्णचन्द्र, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ. ४७
14. (सं) आर्य, साधना, मेनन, निवेदिता, लोकनीता, जिनी, नारीवादी राजनीति एवं मुद्दें, पृ. ५९-६०
15. (सं) आर्य, साधना, मेनन, निवेदिता, लोकनीता, जिनी, नारीवादी राजनीति एवं मुद्दें, पृ. ५९
16. (सं) आर्य, साधना, मेनन, निवेदिता, लोकनीता जिनी, नारीवादी राजनीति एवं मुद्दें, पृ. ६१
17. https://www. Nios.ac.in
18. https:/ shoodhganga.infilbenet.ac.in
19. आनंद, प्रो. शुगम, भारतीय इतिहास में नारी, पृ.१०२-३
20. (सं) आर्य, साधना, मेनन, निवेदिता, लोकनीता, जिनी, नारीवादी राजनीति एवं मुद्दें, पृ. १५७

21. राय, गोपाल, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ. ५७
22. तुम्बाहाङफे, डाँ. शिवमाया, नेपाल में महिला आन्दोलन, पृ. १००
23. माओत्से तुङ की रचनाएं प्रतिनिधि चयन, पृ. ७
24. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, मुख्यधारा और दलित साहित्य, पृ. १६६
25. मिश्र, सत्यप्रकाश, प्रेमचंद के श्रेष्ठ निबंध, पृ. ९८
26. नागर, अमृतलाल, अमृत और विष, पृ. ५८५
27. epustakalay. Com, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली
28. https://www.hindai.org
29. https://www.soodhganga.inflibnet.ac.in
30. https://kavitakosh.org
31. पराजुली, राजेन्द्र, नेपाली राजनीतिक कथायें, पृ.१०
32. पराजुली, राजेन्द्र, नेपाली राजनीतिक कथायें, पृ. ५६

अध्याय दो

२. समकालीन हिंदी और नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन की परंपरा : एक सर्वेक्षण

२.१ उपन्यास की परिभाषा और स्वरुप

उपन्यास गद्य की एक नवीन विधा है । यह विधा अन्य गद्य विधाओं की तुलना में इसलिए विशेष और लोकप्रिय है कि इसमें मानवीय जीवन की सच्चाई, विचारों एवं भावनाओं की स्वच्छंदता को अत्यंत आकर्षक और कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता निहित है ।'उपन्यास' शब्द उप-समीप और न्यास-थाती (रखना) के योग से बना है, जिसका अर्थ है समीप रखना । इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'उपन्यास' शब्द की सार्थकता तभी संभव हो सकती है जब वह मानव जीवन की सच्चाई को समाज के समक्ष रखने में सक्षम होता है । साहित्य में कभीं-कभीं कहानी और उपन्यास को लेकर भ्रम पैदा होता होता हुआ दिखाई पड़ता है । दोनों के स्वरुप में समानता होने की वजह से यह भ्रम हो सकता है, अत: यहां पर इस बात को स्पष्ट कर देना जरुरी है कि कहानी का प्रचलन हमें प्राचीन काल से ही दिखाई पड़ता है पंचतंत्र की कहानियाँ जो समाज में नैतिक शिक्षा देने के लिए लिखी जाती थी और सुनाई भी जाती थी । इस आधार पर कहानी का पहला रुप हमें श्रव्य की अवस्था में मिलता है परंतु उपन्यास में ऐसा नहीं होता उपन्यास पढ़ी जाने वाली एक बृहद आकार की साहित्यिक विधा है । यह विधा इस्वी सन् की पहली सहस्रताब्दी तक दुनिया की किसी भी भाषा में प्रतिष्ठित नहीं हुई थी । यूरोप में चौदहवीं शताब्दी के मध्य से सत्रहवीं शताब्दी के आस-पास उपन्यास अस्तित्व में आया और अठारहवीं शताब्दी के अंत तक इसका प्रयाप्त विकास हुआ । इस विकास के पीछे मुख्य भूमिका मुद्रण की रही । सामंतवाद का अंत और पूंजीवाद के उदय के साथ-साथ इस विधा का भी विकास होता गया । उपन्यास ने बहुत सी संख्या में पाठक वर्ग की जमात तैयार कर ली है । यह काम इतना आसान भी नहीं था हजारी प्रसाद द्विवेदी इस विषय में लिखते है **"कथानक**

को मनोरंजक और निर्दोश बनाकर और पात्रों के सजीव **चरित्र निर्माण तथा भाषा की अनाडंबर सहज प्रवाही योजना के द्वारा उपन्यासकार अपने वैयक्तिक मत को ही सहज स्वीकार्य बनाता है जिस उपन्यासकार के पास आधुनिक युग की जटिल समस्याओं के समाधान के योग्य अपना प्रबल वैयक्तिक मत नहीं है वह आधुनिक पाठक को आकृष्ट नहीं कर सकता ।"**[1]

कहने का तात्पर्य यह है कि उपन्यासकार में अभिव्यक्ति कला और समय सांदर्भिक विषय वस्तुओं को चुनने की खूबी होनी चाहिए जिसके कारण वह पाठको का आर्कषण उपन्यास में बनाये रख सकता है । पूर्वीय साहित्य के इतिहास के मुताबिक 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग हमें प्राचीन संस्कृत साहित्य में मिलता है । संस्कृत के लक्ष्यण ग्रन्थों में इस शब्द का प्रयोग नाटक की संधियों के उपभेद के लिए किया गया है । इसमे उपन्यास की दो प्रकार से व्याख्या की गई है **"उपन्यासः प्रसादन, अर्थात् प्रसन्न करने को उपन्यास कहते है ।"**[2] दूसरी व्याख्या **"उपपत्ति कृतो हि, अर्थ उपन्यासः संकीर्तितः अर्थात् किसी अर्थ को युक्तियुक्त रुप से उपस्थित करना उपन्यास कहलाता है ।"**[3] संस्कृत में भले ही हमें 'उपन्यास' शब्द की चर्चा मिलती हो परंतु इस विधा की व्यवस्थित एवं वैंज्ञानिक स्वरुप की अवधारणा पाश्चात्य देशों से ही विकसित हुई है जैसा कि हम चर्चा कर चुके है । परंतु इसे सफलता आधुनिक युग में आकर ही मिल रही है । भारत में उपन्यास लेखन का आरंभ बंगला साहित्य से देखा जाता है । बंकिमचन्द्र, शरदचन्द्र और रविन्द्रनाथ टैगोर का इस विधा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है । हिंदी में इसकी चर्चा करे तो बंगला साहित्य के प्रभाव से ही हिंदी में उपन्यास लेखन का प्रारंभ हुआ है । डॉ. गणपतिचन्द गुप्त हिंदी साहित्य के वैज्ञानिक इतिहास में लिखते हैं **"आधुनिक युगीन भारतीय साहित्य में उपन्यासों का विकास अंग्रेजी साहित्य के संपर्क से हुआ, अतः जिन भाषा-भाषियों का अंग्रेजी से अधिक संपर्क था, उनमें उपन्यासों का प्रचार पहले होना स्वभाविक था । यही कारण था कि बंगला में उपन्यासों की**

रचना हिंदी से पूर्व आरंभ हो गई थी। बंगला के अनेक उपन्यासकारों बंकिमचन्द्र, शरत, रविन्द्र आदि का हिंदी उपन्यास पर गहरा प्रभाव पड़ा।"[4]

हिंदी गद्य में आख्यान लेखन की परंपरा सन् 1803 के आस-पास से ही देखी जाती हैं। बैताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, प्रेमसागर आदि शुरुआत की रचनाएं है परंतु मौलिक उपन्यास की बात करे तो सर्वप्रथम सन् 1877 में श्रद्धाराम फुल्लौरी का 'भाग्यवती' नामक सामाजिक उपन्यास सामने आता है, उसके बाद प. गौरीदत्त की रचना 'देवरानी जेठानी' सन् 1870 में लिखी गई है परंतु उपन्यास के चरित्रगत कमजोरियों के कारण इन्हें हिंदी का पहला उपन्यास नहीं माना गया, इसलिए सन् 1882 में लाला श्रीनिवासदास द्वारा लिखे गये उपन्यास 'परीक्षागुरु' को हिंदी का प्रथम उपन्यास होने की स्वीकृति मिली। नेपाली साहित्य की तरफ देखे तो यहां भी आख्यान लेखन की परंपरा हिंदी के समय के आस पास ही दिखाई पड़ती है परंतु जो रचनाएं आरंभ में मिली है वे उपन्यास के ढांचे से पूरी तरह नहीं मेल खाती है परंतु कहानी से थोड़े बृहद आकार की रचना है। ऐसे ही रचना सन् 1827 में 'महाभारत विराटपर्व' नाम से मिलती है। शक्तिबल्लभ अर्ज्याल इसके रचनाकार हैं। बाद में जब सन् 1903 में गिरीशवल्भ जोशी की 'वीरचरित्र' नामक रचना प्रकाशित हुई तो इसे ही नेपाली साहित्य का पहला उपन्यास माना गया। दोनों भाषाओं में मौलिक उपन्यास लेखन की शुरुआत आधुनिक युग की ही देन हैं। भारत में अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव नेपाली साहित्य की तुलना में पहले पड़ा। यह प्रभाव इसलिए महत्वपूर्ण माना जाता है कि इसके कारण ही हिंदी और नेपाली साहित्य में आधुनिकता आई और उपन्यास विधा का एक नया स्वरुप भी समाने आया जो परंपरागत कहानी लेखन से अलग था। उपन्यास लेखन की एक अलग पद्धति और ढांचे ने ही इसे प्रसिद्धि दिलाई है। आधुनिक उपन्यास लेखन की परंपरा पाश्च्यात देशों में पहले आरंभ होने के कारण अधिकतर हिंदी उपन्यास उसका अनुसण करते हुए दिखाई पड़ते है। गोर्की के 'मदर' उपन्यास का प्रभाव प्रेमचंद

के 'गोदान' में देखा जाता है तो ध्रुवचन्द्र गौतम, भवानी भिक्षु, पारिजात आदि के उपन्यास में प्रेमचंद का प्रभाव देखा जाता है। नेपाल के प्रमुख राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाले उपन्यासों में लैनसिंह वांगदेल का मूल्क से बाहर, लीलाबाहादुर क्षेत्री का बसाइँ, शंकर कोईराला का खैरेनी घाट, ध.च. गोतामे का यहां से वहाँ तक, रमेश विकल का अविरल बहती है इन्द्रावती, इन्द्र बाहादुर राई आज रमिता है, भवानी भिक्षु का आगत, लीलाध्वज थापा पुर्नस्मृति, डी. पी अधिकारी धर्ती अभी भी बोलती है, पारिजात दीवार के अंदर और बाहर, निहारिका योगमाया, शिवानी सिंह थारु, मधेश आंदोलन, शारदा शर्मा, ताप, आन्विका गिरी, आदमी का रंग आदि सयौं नेपाली उपन्यास हैं जो तत्कालीन नेपाली राजनीति को बेहतर तरीके से समझाने में सफल दिखाई पड़ते हैं। नेपाली उपन्यास हिंदी उपन्यास की तरह ही अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिवेश को बखूबी पहंचान कर उन्हें वाणी देने में सफल हुए हैं। इसलिए यह कहना सार्थक होगा कि इस असाधारण चेतना के युग में साहित्य की किसी अन्य विधा में इतना आकर्षण और सरलता नहीं हैं। इस विधा की इसी विशेषता के बारे में बताते हुए हिंदी के उपन्यास सम्राट प्रेमचंद लिखते हैं **"मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मानता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"**[5]

प्रेमचंद का उपन्यास के संदर्भ में यह विचार कुछ हद तक मानवीय जीवन और उससे जुड़ी हुई घटनाओं को समेटने में तो सफल दिखाई पड़ता है परंतु उपन्यास की विषय वस्तुओं को मानव जीवन तक ही सीमित कर देने से इसकी बढ़ती हुई संभावना और क्षेत्र संकुचित हो जाते हैं क्योंकि वर्तमान समय में उपन्यास ने दुनिया की बहुत सी विषय वस्तुओं को खुद में समेट लिया है। केवल मानव जीवन ही उसका आधार नहीं है बल्कि संसार के हर वस्तु की पहंचान और अस्तित्व की बात भी उपन्यास में उठाई गई हैं। वनस्पति के संरक्षण की बात हो या

औद्योगिकीकरण का मानव और प्रकृति पर पड़ने वाले प्रभाव हो या, प्राकृतिक प्रकोप की बात हो या अन्य प्राणियों की पृथ्वी में सुरक्षित रहने की बात हो उपन्यासकारों की नजर जल, जगंल, आकाश नक्षेत्र हर क्षेत्र में पड़ी हैं। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि उपन्यास के संदर्भ में गढ़ी गई परिभाषायें समग्र रुप में उसकी विशेषताओं और स्वरुप को समेट पाने में असमर्थ दिखाई पड़ती हैं। पाश्चात्य चिंतक क्लारा रीव ने भी मानव जीवन के यथार्थ और उससे से जुड़ी हुई चीजों को उपन्यास का मूल तत्व होने की बात स्वीकार की है। **"उपन्यास यथार्थ जीवन तथा तत्कालीन सामाजिक व्यवहार का चित्र है। उपन्यास की कसौटी यह है कि वह हमारी परिचित वस्तुओं और दृश्यों का चित्रण इस ढंग से करे कि वह सामान्य हो जाये और कम से कम उपन्यास पढ़ते समय पाठकों को यथार्थ का भ्रम उत्पन्न हो जाए, पाठक उन्हें अपना समझने लगे।"**[6]

कुछ भी हो उपन्यास लेखन एक गंभीर और महत्वपूर्ण विषय है जिसकी संभावनएं और क्षेत्र में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही हैं। चाहे वह हिंदी उपन्यास लेखन हो या नेपाली उपन्यास लेखन हो, दोनों का एक गौरवपूर्ण इतिहास हैं। नेपाली उपन्यास लेखन की परंपरा भले ही आधुनिक काल से शुरु हुई हो परंतु नेपाली साहित्यकार इसकी पृष्ठभूमि संस्कृत साहित्य को ही मानते हैं। राजेन्द्र सुवेदी ने अपनी पुस्तक नेपाली उपन्यासः परंपरा और प्रवृत्ति में लिखा है कि दशकुमारचरित और कादम्बरी जैसे ग्रन्थों से ही आख्यान परंपरा की शुरुआत हो जाती है बाद में धीरे-धीरे यह परंपरा सुदृढ़ होती गई और आधुनिक युग में आकर इसे गद्य का प्रश्रय मिला और यह एक नये सांचे में ढल गई। इसके इसी स्वरुप ने इसे प्रसिद्धि दिलाई और समृद्ध भी बनाया। नेपाली साहित्यकार एवं चिंतक मोहनराज शर्मा उपन्यास के इस स्वरुप के बारे में लिखते है **"उपन्यास मानवीय जीवन का चित्रण करने वाली एक विशालकाय आख्यानात्मक गद्य संरचना है।"**[7]

उपर्युक्त विचारों के अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि उपन्यास मानवीय जीवन से जुड़े हुए यथार्थ को काल्पनिक पात्रों के माध्यम से कथात्मक रुप में प्रस्तुत की जाने वाली एक वृहद आकार की गद्य विधा है । यह गद्य विधा दुनिया की सभी प्रतिष्ठित भाषाओं में लिखी जा रही हैं । इस विधा के मूल तत्व कथावस्तु, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, संवाद, देशकाल एवं वातावरण, भाषा शैली, उद्देश्य आदि हैं । यही तत्व इस विधा को उत्कृष्ट बनाते हैं और इसे अन्य विधाओं की तुलना में विशेष दर्जा भी दिलाते हैं । जैसा कि हम जानते हैं साहित्य मानव चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम है । उपन्यास ने इस विचार को सार्थक किया है । उन्यासकार समाज एवं दुनिया में घटने वाली घटनाओं के प्रति इतना सजग और सचेत रहता है कि अपनी रचना प्रक्रिया में उसे हु-ब-हु उतारकर घटना का एक सजीव प्रतिबिंब हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है । उपन्यास में मानवीय भावनाओं और विचारों को समान महत्व दिया गया है । हिंदी साहित्य के इतिहास की तरफ देखे तो आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल आदि में विचार और भावनाएं समान रुप में दिखाई पड़ती है इसलिए तत्कालीन साहित्य अपने समय का यथार्थ बोध कराने में पूरी तरह सक्षम रहा है । चंदबरदायी की रचना पृथ्वीराज रासो आज भी तत्कालीन समाजिक राजनीतिक इतिहास का दस्ताबेज मानी जाती है तो कबीर की रचनाओं को सामाजिक चेतना के उदाहण के रुप में लिया जाता है । मीरा की रचनाएं स्त्री चेतना का प्रतीक हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य प्राचीन काल से ही मानवीय समाज से और उसमें घटने वाली घटनाओं से जुड़ता आ रहा है और उसमें मानवीय विचारों और भावनाओं की प्रधानता सहज ही देखी जा सकती है । साहित्य मानवीय विचारों का वाहक है इसी संदर्भ में डॉ. अर्जुन चव्हाण ने अपनी पुस्तक 'समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष' में लिखा है **"दुनिया की हर भाषा के साहित्य का इतिहास इस बात का गवाह है कि उसमें विचारों का अस्तित्व आंद्यत रहा है, क्योंकि साहित्य का अस्तित्व ही विचारों की बुनियाद पर टिका हुआ मिलता है । बिना विचारों के साहित्य के सृजन की कल्पना नहीं की जा**

सकती । संसार का प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थ भी इस बात का प्रमाण देता है कि उसमें कोई न कोई विचार सन्निहित रहा है, फिर चाहे धर्म ग्रन्थ हो, पुराण ग्रन्थ सब के सब किसी न किसी विचारों के वाहक रहे ही है ।"[8]

चव्हाण की यह अभिव्यक्ति वाकई सांदर्भिक है । इस विचार ने यह प्रमाणित कर दिया है कि साहित्य की प्रभावकारिता उसके विचारों पर टिकी होती है । दूसरी तरफ देखे तो कुछ आलोचकों ने साहित्य को कल्पना की दुनिया मानकर उसकी आलोचना भी की है परंतु आधुनिक लेखक, आलोचक और उपन्यासकारों ने समाज के सत्य को साहित्य में उतारकर इस आरोप को झूठला दिया है, यही वजह है कि वर्तमान समय में साहित्य की परिभाषा बदल गई है । संस्कृत युग में साहित्य को मनोरंजन और आनंद के साधन के रुप में स्वीकार किया गया था और साहित्य को आनंद की वस्तु माना गया था । साहित्य के बारे में यह संकुचित एवं सीमित धारणा इसलिए बनी थी कि उस समय साहित्य में समाज और मानवीय विचारों की खोज नहीं की गई थी । लोग केवल मनोरंजन हेतु साहित्य पढ़ा करते थे लेकिन हम इस बात को भी नकारा नहीं सकते कि उस समय के साहित्य में समाज, विचार और मानवीय संवेदनायें नहीं थी । यदि आज हम उस समय के साहित्य का समाजशास्त्रीय दृष्टि से मूल्यांकन करते हैं तो तत्कालीन समाज का संपूर्ण ढांचा हमें दिखाई पड़ेगा । आधुनिक युग साहित्य में बहुत सी संभावनाओं को लेकर आया है । साहित्य में नवीन विचारधाराओं के प्रवेश ने इसके परंपरागत ढांचे को तोड़ कर नवीन साहित्य का स्वरुप निमार्ण किया है । साहित्य का यह स्वरुप मानव जीवन के अत्यंत निकट आ गया है । व्यक्ति, समाज और दुनिया से जुड़ी हुई हर चीजों का मूल्यांकन साहित्य में देखा जा रहा है । उपन्यास साहित्य पर इसका प्रभाव और अधिक तीव्रगति से बढ़ रहा हैं । हिंदी उपन्यास साहित्य का इतिहास देखे तो आरंभ में तिलस्मी, जासूसी, तथा अनुदित उपन्यास ही हमें अधिक दिखाई पड़ते हैं । प्रेमचंद पूर्वकालीन हिंदी उपन्यास की परंपरा प्राय: लोकरंजन का काम करती दिखाई पड़ती है । उपन्यास के क्षेत्र में जैसे ही प्रेमचंद का आगमन होता है

तो उपन्यास लेखन एक नये रुप में सामने आता है और यह लोक जीवन से जुड़ जाता है । लोक जीवन की व्यक्तिगत, समाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं को वाणी मिलती है । प्रगतिवादी लेखक संघ की स्थापना (1936) ने हिंदी साहित्य का रुख मोड़ दिया । साहित्य क्षेत्र में एक नयी चेतना का संचार हुआ । समाज के उत्पीड़ित और शोषित वर्गों की कथा व्यथा को साहित्य में स्थान मिला । वैचारिकता के आगमन से एक तरफ साहित्य में आधुनिकता आई तो दूसरी तरफ साहित्य व्यक्ति के रोजमर्रा के जीवन के संघर्ष से जुड़ गया । स्त्री, आदिवासी, दलित और किन्नर जो समाज के हाशिये का वर्ग कहलाते थे वे भी अपने अधिकारों के लिए अपनी अस्मिता की पहचान के लिए साहित्य के माध्यम से आवाज उठाने लगे । अपने विचार, पीडा और वेदना को साझा करने का उपन्यास नामक उन्हें एक मंच मिला । इस आधार पर हम यह भी कह सकते है कि साहित्य भावना, विचार और कला का एक अदभुत संगम हैं । यदि दुनिया के उत्कृष्ट रचनाकारों की तरफ नजर डाले तो ताँयल्सताँय, तुर्गनेव, चेखव, हेमिंग्वे, शेक्सपियर, गोर्की, प्रेमचंद, रविन्द्रनाथ टैगोर, यशपाल, रेणु आदि इसलिए महान नहीं माने गये है कि उनकी रचना का विषय विशेष था बल्कि इसलिए महान माने गए है कि उनकी रचनाओं में भाव, कला और विचारों की गंभीरता थी, इनकी रचनाएं पढ़कर पाठक चिंतन मनन के लिए प्रेरित होता है । समाज की मूल समस्याओं को खोजने का प्रयास भी करता हैं । इनका साहित्य सोए हुए को जगाने, जागे हुए को सचेत करने और सचेत को सक्रिय करने का काम करता हैं । यहां तक कि साहित्य राज्य को समाज की वास्तविक परिस्थिति से साक्षात्कार करता है । गोदान लिखे जाने से पहले भारत में किसान सुधार संबंधी कोई विशेष सरकारी योजना नहीं थी । लेकिन गोदान के प्रकाशन के बाद सरकार द्वारा कृषि एवं कृषक सुधार योजनाएं बनाई गई थी । इसलिए हम कह सकते है कि वर्तमान समाज में उपन्यास साहित्य का बहुत ज्यादा प्रभाव देखा जा सकता है । भारत पाकिस्तान विभाजन के इतिहास की यदि बात करे तो यशपाल का झूठा सच पढ़ने से तत्कालीन परिवेश का सजीव चित्र हमारे

सामने हु-ब-हु उतर कर आता है । इसी तरह भारतीय राजनीतिक परिवेश के यथार्थ से साक्षात्कार कराने वाले अन्य उपन्यासों में कमलकांत त्रिपाठी का पाहीघर, काशीनाथ सिंह का काशी का अस्सी, कमलेश्वर का कितने पाकिस्तान, दूधनाथ सिंह का आखिरी कलाम, राही मासूम रजा का आधा गांव, फणीश्वरनाथ रेणु का मैला आंचल, रणेन्द्र का गायब होता देश, मनोहर जोशी का क्याप, मन्नू भंडारी का महाभोज, मधु कांकरिया का खुलेगगन के लालसितारे, मैत्रेयी पुष्पा का चाक, प्रभा खेतान का तालाबंदी, कृष्णा सोबती का जिंदगीनामा, निर्मला जैन का अंतिम अरण्य ऐसे अनेकों हिंदी उपन्यासों को हम देख देख सकते हैं । स्वतंत्रता के बाद पूंजीवाद के उदय से भारतीय समाज में आर्थिक सामाजिक परिवर्तन तो देखा गया परंतु इस परिवर्तन का लाभ केवल वही वर्ग उठा रहा था जो हमेशा से केन्द्र में रहता आ रहा था । समाज का दूसरा वर्ग जो हाशियें पर था वह इससे अछूता ही देखा जाता रहा है । समाज में पनप रहे इस विभेद को भी उपन्यास का विषय बनाकर प्रस्तुत करना लेखकों की समाज के प्रति सचेतना और गंभीर चिंतन को प्रस्तुत करता है । यह सत्य है कि समय परिवेश के अनुसार साहित्य का उद्देश्य बदला है । कुछ पकड़ने की आश में कुछ का छूट जान प्रकृति का नियम है परंतु सोचनीय बात यह है कि समाज और व्यक्ति के विकास से जुड़े मुद्दें छूटने नहीं चाहिए अगर छूट जाये तो साहित्य का लक्ष्य बदल जायेगा और उपन्यास ने जो उपलब्धि हासिल की है वह भी नगन्य हो जाएगी अत: वर्तमान उपन्यास लेखन में इन मुद्दों पर विशेष ध्यान देना होगा ।

२.२ हिंदी स्त्री उपन्यास लेखन की परंपरा

पितृसत्तात्मक इस दुनिया में स्त्री समाज उसके अस्तित्व तक को स्वीकार न कर पाने की स्थिति से गुजरा है । यूरोप का स्त्री आंदोलन हो या अमेरिका का या फिर एशिया का हजारों स्त्रियों ने अपने अधिकार प्राप्ति के लिए संघर्ष करते हुए प्राण गवायें हैं, तब जाकर उन्हें देश का नागरिक होने का दर्जा मिला हैं । बात यदि उसके द्वारा लिखे गये साहित्य की है तो जाहिर है वह स्त्रियोचित साहित्य के ठप्पे

से बचा नहीं हैं । पुरुषों ने कभी भी स्त्री साहित्य को वो दर्जा नहीं दिया जो उसे मिलना चाहिये । कुछ न कुछ कमी कमजोरियां निकाल कर उसे कमतर बनाने का प्रयास निरंतर रहा है । पुरुष लेखकों की इसी प्रवृत्ति की चर्चा करते हुए सुमन राजे हिंदी साहित्य का आधा इतिहास में लिखती हैं **"कुछ रचनाकार धर्म के नाम पर काट दिये गए, कुछ सम्प्रदाय के नाम पर, कुछ प्रमाणिकता के नाम पर और कुछ कलात्मक कसौटी पर पूरा न उतरने के कारण । इसका सबसे अधिक खामियाजा महिला लेखन को भुगतना पड़ा ।"**[9]

यह सत्य है कि स्त्रियों ने लेखन के संदर्भ में कई चुनौतियों को भोगा है । सबसे बड़ी चुनौती उसके लिए पितृसत्तात्मक समाज था । अशिक्षा, आर्थिक परनिर्भरता, रुढ़िवादी मान्यताएं, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ जैसे कई अन्य कारण भी रहें है इन सब के बावजूद भी स्त्रियों ने कलम उठायी हैं । वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक का स्त्री लेखन का इतिहास हमने पढ़ा है उसमें स्त्री रचनाएं लोकगीत और फाग से शुरु होती हैं । इन तथ्यों को आधार माने तो स्त्री दुनिया की पहली रचनाकर साबित होती हैं । कविता, कहानी, नाटक उपन्यास तो बाद की विधाएं थी इनमें भी स्त्री लेखन उत्कृष्ट दिखाई पड़ता हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री लेखन अपने आपमें एक वृहद इतिहास समेटे हुआ हैं । स्त्री उपन्यास लेखन की बात करे तो यह बीसवीं शताब्दी से आरम्भ होता है । हिंदी के उपन्यास लेखन की शुरुआत लाला श्रीनिवास दास से मानी जाती है हालांकि इसका आरंभ पुरुषों ने किया है परंतु धीरे-धीरे स्त्रियों ने भी उपन्यास लिखना शुरु किया । हिंदी में स्त्री उपन्यास लेखन की परंपरा को तीन भागों में विभाजित करके देखा जा सकता है । स्त्री उपन्यास लेखन का प्रारंभिक काल, उत्कर्षकाल और वर्तमान काल ।

२.२.१ आरंभिक काल (1890-1950)

स्त्री उपन्यास लेखन का प्रारंभिक काल (1890-1950) तक माना जा सकता है । यह भारत में नवजागरण का समय रहा है एक तरफ स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय

चेतना का अभियान जारी था तो दूसरी तरफ सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक रुपांतरण के लिए विभिन्न संघ-संस्थाओं की स्थापना हो रही थी। बंगाल में राजा राममोहन राय ने (1828) ब्रह्म समाज की स्थापना की। महाराष्ट्र में महादेव गोविंद रनाडे द्वारा प्रार्थना समाज की स्थापना की गई और दयानंद सवरस्वती ने (1875) आर्य समाज की स्थापना की इन संघ संस्थाओं का मकसद धर्म और सामाजिक आचरण का एक नया आदर्श लोगों के समाने प्रस्तुत करना था। सामाजिक रुढ़ियो का अंत कर शिक्षा को जन-जन तक पहुंचाने के अभियान को इन्होंने प्राथमिकता थी। स्त्री शिक्षा को अनिवार्य बताकर स्त्रियों के लिए शिक्षा व्यवस्था पर जोऱ दिया और सदियों से चली आ रही सती प्रथा का विरोध कर उस पर कानूनी रुप से प्रतिबंध लगाने के लिए पहल की। राजा राममोहन राय का यह प्रयास सफल हुआ और भारत में सती प्रथा का अंत हुआ। विद्यासागर मिश्र ने विधवा पुर्नविवाह को कानूनी स्वीकृति दिलाई। इस तरह हम देख सकते है कि यह समय स्त्री मुक्ति का समय रहा। किसी भी परिवर्तन के पीछे तत्कालीन परिवेश और समय का प्रभाव रहता है इसी सामाजिक परिवेश ने स्त्री को लेखन कार्य के लिए प्रेरणा दी और उन्होंने इस अवसर का लाभ उठाना आंरभ किया यद्यपि साहित्य क्षेत्र में पुरुष पहले ही अपना दब- दबा कायम किये हुए था परंतु स्त्री भी आप बीती को साहित्य में ले कर आयी और उन का साहित्य भी सुना पढ़ा जाने लगा। महादेवी बर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान जैसी महिला लेखिकाओं ने उपन्यास तो नहीं लिखा पर कविता और कहानियों के माध्यम से लोगों का ध्यान स्त्री लेखन की ओर आकर्षण करने में सफल रहीं। सुभद्रा कुमारी चौहान हिंदी कहानी लेखन में एक महत्वपूर्ण नाम है। इन्होने कहानी के माध्याम से स्त्री चेतना को सार्वजनिक किया। उनकी रचनाओं मे राष्ट्र प्रेम, स्त्री का यथार्थ, उसका दु:ख दर्द, जीवन की अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियां आदि चित्रित हैं। इसी समय काल में महादेवी बर्मा का भी साहित्य क्षेत्र में आगमन होता है हालांकि ये छायावादी कवयित्री के रुप में हिंदी साहित्य में प्रसिद्ध है परंतु इनकी रचना श्रृंखला की कड़ियां (1942) के प्रकाशन के बाद इनका

गद्य साहित्य भी उतना ही चर्चित रहा जितना इनका पद्य साहित्य । इनकी रचना श्रृंखला की कडियां को हिंदी साहित्य में प्रथम स्त्री विमर्श की रचना के रुप में लिया जाता है । इस रचना में स्त्री जीवन से जुड़े ज्वलंत मुद्दो पर विचार किया गया है और स्त्री अस्मिता को अत्यंत क्रांतिकारी ढंग से रेखांकित किया गया हैं । महादेवी का साहित्य स्त्री विमर्श के संदर्भ में उदारवादी साहित्य कहा जायेगा क्योंकि इन्होंने स्त्री की दयनीय दशा का जिम्मेदार केवल पुरुष को ही नहीं माना है बल्कि स्त्री को भी उतना ही जिम्मेदार माना है । वे स्त्री की महानता उसके उदारवादी चरित्र और त्याग समपर्ण भावना में निहित मानती है । हिंदी में प्रथम उपन्यास लेखिका के संदर्भ में बात करे तो साध्वी सती प्राण अवला का नाम सर्वप्रथम आता है । इनके द्वारा रचित उपन्यास 'सुहासिनी' (1890) को पहला स्त्री उपन्यास माना गया है । इसके विषय में गोपाल राय अपनी पुस्तक उपन्यास का इतिहास में लिखते है **"यों तो हिंदी प्रथम कथा लेखिका 'बंगमहिला' मानी जाती है, पर उन्होंने हिंदी में कोई मौलिक उपन्यास नहीं लिखा था । हिंदी की पहली मौलिक उपन्यास लेखिका कोई साध्वी सती प्राण अवला थी जिन्होंने अपना वास्तविक नाम गुप्त रख कर 1890 इ. में सुहासिनी नामक उपन्यास लिखा और प्रकाशित कराया था । यदि ये अबला ब्रज रत्नदास के अनुसार मल्लिका देवी है तो उन्हीं को हिंदी की पहली मौलिक उपन्यास लेखिका मानना होगा ।"**[10]

राय के इस विचार से दो बातें स्पष्ट होती हैं, एक तो यह कि हिंदी का पहला स्त्री उपन्यास 'सुहासिनी' है और दूसरा यह उपन्यास सन् 1890 में लिखा गया है । इसके अलावा उन्होंने लेखिका द्वारा अपना वास्तविक नाम छुपाये जाने की बात भी साझा की है, यह बात इसलिए संभव हो सकती है कि उस समय स्त्री को खुले रुप में अपने विचार रखने की अनुमति नहीं थी या फिर अन्य कोई व्यक्तिगत कारण भी हो सकता है परंतु हमें यह मानकर चलना होगा कि उनका साहित्यिक नाम साध्वी सती प्राण 'अवला' ही था । यह उपन्यास स्त्री के आदर्श और त्यागपूर्ण

जीवन की गाथा को प्रस्तुत करता है । लेखिका ने तत्कालीन पुरुष प्रधान समाज में स्त्री के संघर्ष और पुरुष की कामलोलुप प्रवृत्ति के कारण स्त्रियों की मानसिकता पर पड़ने वाले प्रभाव का भी चित्रण किया है । उपन्यास की नायिका ब्रह्मण के बेटे के अभद्र व्यवहार से तंग आकर ब्रह्मण का घर छोड़कर भाग जाती है और फिर से उसे नयी जगह पर संघर्ष करना पड़ता है । इसके अलावा लेखिका ने तत्कालीन समाज में जीवीकोपार्जन की समस्या, अकाल के द्वारा पड़ने वाले आर्थिक संकट आदि की भी उपन्यास में चर्चा की है ।

श्रीमती सरस्वती गुप्ता: सरस्वती गुप्ता हिंदी की प्रारंभिक काल की प्रसिद्ध स्त्री उपन्यास लेखिका के रुप में जानी जाती है इन्होंने सन् 1898 में ऐतिहासिक शैली में 'राजकुमार' नामक उपन्यास की रचना की इस उपन्यास में स्त्री को शिक्षित और आत्मविश्वासपूर्ण दिखाया गया है जिसकी वजह से वो राजकुमार जैसे पुरुषों को अपने आगे झुकाने में सफल होती है । यह उपन्यास भावनाओं की अपेक्षा विचार और बुद्धिगत कौशल को प्रकट करता है ।

प्रियंवदा देवी : सन् 1990 में प्रियंवदा देवी ने 'लक्ष्मी' उपन्यास की रचना की । इस उपन्यास की कथावस्तु भारतीय समाज में प्रचलित बहुविवाह को बनाया गया है । बहुविवाह के कारण मानसिक तनाव झेलने पर बाध्य बनाई गई स्त्री की दशा को लेखिका ने बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है । लेखिका ने स्त्री की इस दशा का जिम्मेवार उसकी अशिक्षा और परनिर्भरता को बताया है । वे लिखती हैं **"आज कल प्रायः इस भारत वर्ष में सौतिया डाह इतना प्रचलित हो गया है कि जिसका वर्णन करना मुझ तुच्छ बुद्धि से कहा हो सकता है, स्त्री जाति में विद्या का अभाव ही एक मात्र इसकी जड़ है । यदि हम अबलाएं विद्या रुपी आभूषणों से सुसज्जित होवें तो क्या कभी स्वप्न में भी संभव है कि इस डाह रुपी अग्नि से हमारा तन मन धन स्वाहा होता रहेगा ।"**[11]

हेमंत कुमारी चौधरी: हेमंत कुमारी ने भारतीय समाज की कुरीतियों को बड़ी बारीकी से परखा है । वे समाज की उन्नति का बाधक अशिक्षा और अनैतिकता को मानती हैं । समाज संतुलित रुप से तभी आगे बढ़ सकता है जब स्त्री पुरुष समान रुप से परिवार की जिम्मेदरी निभाते हैं । माता-पिता के व्यवहार का प्रभाव उनके बच्चों पर प्रत्यक्ष रुप में पड़ता है अत: दोनों को बड़ी समझदारी से बच्चों को संस्कार और नैतिक ज्ञान देने की आवश्यकता होती है । षुरुषों की तुलना में एक पढ़ी लिखी स्त्री घर परिवार को बेहतर संभालती हैं, इन्हीं विषय वस्तुओं को समेटकर 'आदर्श माता' नामक उपन्यास हेमवंती द्वारा रचा गया है ।

यशोदा देवी: सन् 1912 में इनका ऐतिहासिक नाटक वीर पत्नी चर्चा में आया । यह उपन्यास पृथ्वीराज चौहान और जयचंद के जीवनी पर आधारित है । इसमें रानी संयोगिता का प्रेम, उनकी वीरता, त्याग और समर्पण की भावना को शब्द-बद्ध किया गया है । उपन्यास की कथावस्तु ऐतिहासिक होने के कारण रोचकता और रुचि बनी रहती हैं ।

ब्रह्मकुमारी भगवान देवी दूबे: भारतीय समाज में स्त्री दशा का मार्मिक चित्रण करने वाला 'सौन्दर्य कुमारी' नामक लघु उपन्यास ब्रह्मकुमारी द्वारा सन् 1914 में लिखा गया है । इस उपन्यास के माध्यम से ब्रह्मकुमारी बताना चाहती हैं कि भारतीय समाज में बेटी की तुलना में बेटे को कितना महत्व दिया जाता है यह अंतर उसके पैदा होते ही दिखने लगता है । उनके द्वारा उल्लेख किये गये विचार को रामदरश मिश्र ने अपनी पुस्तक रामदरश रचनावली में लिखा है **"इस गांव में लड़कियों को कौन खतियाता है ? वे तो पैरों तले की जूती है । हाय ईश्वर ! तूने लड़की जाति पैदा ही क्यूं की ? लड़का पैदा होने पर माँ को एक महिना तक दूध पीने को मिलता है मगर लड़की के पैदा होने पर पन्द्र दिन तक... इतना बड़ा अपमान नारी जाति का ? जैसे कीड़ा-मकौड़ा हो ।"**[12]

लघु उपन्यास होने के बावजूद भी इसमें स्त्री संवेदना को बहुत की मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

रुक्मिणी देवी: सन् 1919 में 'मेम और साहब' नामक व्यंग्यात्मक उपन्यास लिखा गया । इस उपन्यास में रुक्मिणी देवी ने पाश्चात्य सभ्यता पर व्यंग्य करते हुए भारतीय सभ्यता और संस्कृति की गरीमा को समझाने का प्रयास किया है । उपन्यास का उद्देश्य अतिक्रमण होती भारतीय सभ्यता का संरक्षण करने का संदेश देना है । यह उपन्यास समय सांदर्भिक दिखाई पड़ता है ।

हुकुम देवी: ब्रह्मचर्य का महत्व, गर्भाधान संस्कार, आश्रमों में पालन किये जाने वाले नियम, वर्तमान वैवाहिक अत्याचार, अनमेल विवाह का दोष, आदि विषय वस्तुओं को समेट कर हुकुम देवी ने 'गूढ़ भाव प्रकाश' नामक उपन्यास की रचना की है । यह उपन्यास भारतीय वैदिक समाज की सभ्यता और वर्तमान समाज की कुरीतियों को प्रस्तुत करता है ।

लीलावती देवी: श्रीमति लीलावती देवी ने दो पौराणिक उपन्यास लिखे हैं । प्रथम 'सती दमयंती' और दूसरा 'सती सावित्री' यह उपन्यास चरित्र चित्रण समसामयिक परिस्थिति के मुताबिक प्रसंगों की व्याख्या और संवाद आदि की दृष्टि से उत्कृष्ट उपन्यास है ।

उषा देवी मित्रा: बचन का मोल, पिया, जीवन की मुस्कान तथा पथचारी नामक उषा देवी के चार उपन्यास मिलते हैं । इन उपन्यासों में स्त्री समस्याओं और उलझनों का मनोवैज्ञानिक अंकन मिलता है ।

कंचनलता सब्बरवाल: मूक प्रश्न, भोली भूल, और संकल्प इनके प्रमुख उपन्यास हैं । इनके उपन्यास के संदर्भ ब्रह्मनारायण शर्मा 'विकल' लिखते है **"डॉ. सब्बरवाल के उपन्यास पूर्णतः सामाजिक हैं । उनमें जीवन के बहुत से सत्य बहुत सुंदर रुप**

में प्रकट हुए हैं। यद्यपि भाषणों की बहुलता अखरती अवश्य है किंतु इसमें लेखिका के अच्छी वक्ता होने का परिचय मिलता है और यह भी कहना असंगत न होगा कि उन भाषणों में लेखिका के विचारों का बहुत कुछ सार भरा हुआ है।"[13]

हिंदी उपन्यास लेखन के इस काल खंड में अन्य भी बहुत सी प्रबुद्धशाली महिलाओं का नाम लिया जा सकता है कुंती देवी (पार्वती), हर देवी (हुकुम देवी), श्रीमती कुमुदवाला देवी (सदाचारिणी), विमला देवी चौधरानी (कामिनी), रत्नावली (सुमित), शैल कुमार देवी (उमा सुंदरी), गिरीजा देवी (कमला कुसुम), कुमार तेजरानी दीक्षित (हृदय का काँटा), श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर (मधुवन), प्रभावती भट्टनागर (पराजय), सरोजनी देवी श्रीवास्तव (समाज के अंगारे), श्रमति पूर्णशशि देवी (रात के बादल), सुश्री वासंती देवी सेन (दिलारा), श्रीमति शीला (ग्रेजुट), श्रीमति आशा सहाय (एकांकिनी), श्रीमति करुणा कृत (रजनी) आदि महिलाओं ने उपन्यास लेखन में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। जैसा कि हम जानते हैं हिंदी साहित्य में यह स्त्री उपन्यास लेखन का प्रारंभिक काल था। फिर भी यथासंभव अपने समसामयिक परिवेश का चित्रण करने में इस काल की लेखिकायें कुछ हद तक सफल रहीं हैं। इस समय में अधिकतर चरित्र प्रधान, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक और अनुदित उपन्यास ही लिखे गये हैं। महिला लेखिकाओं ने स्त्री समस्याओं और सामाजिक कुरीतियों का विरोध तो किया है परंतु वे आधुनिक काल की लेखिकाओं की तरह विद्रोह नहीं जता सकी और अपनी एक अलग विचार दृष्टि का विकास भी नहीं कर सकी। इन उपन्यासों का उद्देश्य मुख्यत: सामाजिक रुढ़ियों का विरोध करना और नैतिक शिक्षा का ज्ञान देना रहा है। डॉ.उर्मिला गुप्ता उपरोक्त लेखिकाओं के बारे में लिखती हैं **"इन लेखिकाओं ने दहेज प्रथा, कन्या-विक्रय, बृद्ध विवाह, पुरुषों के दुराचार, पर्दा-प्रर्था, बहुविवाह के परिणामस्वरुप सौतिया डा़ह, आदि समकाली सामाजिक कुरीतियों की प्रासंगिक रुप में चर्चा की हैं।"[14]**

आधुनिक दृष्टि से यदि इस समय के उपन्यास का मूल्यांकन करे तो, ये उपन्यास परंपरावादी मान्यताओं को आत्मसात करते हुए और स्त्रियों की आप-बीती बताते हुए दिखाई पड़ते हैं। स्त्री संवेदना से जुड़े हुए विषयों को ही इस समय के उपन्यासों में महत्व दिया गया है। परंतु यह भी सत्य है कि बहुत सी कमी कमजोरियों के बावजूद भी इस बात को नजर अंदाज नहीं किया जाना चाहिए कि वह समय स्त्रियों के लिए एक चुनौती पूर्ण समय था। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चुनौतियां एक तरफ पर्याप्त थी तो दूसरी तरफ शिक्षा और स्वतंत्रा के अभाव के बीच भी स्त्रियों ने अपनी बात समाज तक पहुंचाने के लिए प्रयास किया। घर परिवाार की पहचान के अलावा अपनी एक अलग पहचान बनाने की चेतना उनमें जागी, इसी चेतना की वजह से उन्होंने आगे आने वाली स्त्रियों के लिए भी मार्ग खोल दिये। हालांकि इनके उपन्यासों में स्त्री के आदर्शवादी गुणों सहित पितृसत्ता का विरोध किया गया। अतः हम यह कह सकते है कि हिंदी स्त्री उपन्यास लेखन का आरंभिक काल स्त्री लेखन का मार्गदर्शन करने वाला एक महत्वपूर्ण दस्ताबेज है।

२.२.२ उत्कर्ष काल (1950-1990)

इस समय भारत में राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण काल माना जा सकता है। इस समय भारत उपनिवेशवादी सत्ता से मुक्त हो चुका था। भारतीय जनता के सामने एक स्वतंत्र भारत खड़ा था। जिसमें वे अपने हक अधिकार की बातें खुलकर कर सकते थे। शिक्षा में नवीन पद्धति, साहित्य में विचारधारा, आर्थिक क्रांति, विकास में पूर्वाधार का निर्माण की शुरुआत हो चुकी थी। आदर्शवाद की तुलना में भौतिकवादी विचारधारायें आगे बढ़ने लगी थी। गांधी का आदर्शवाद भी पूंजीवादी और भौतिकवादी सत्ता के सामने धूमिल पड़ने लगा था। ऐसी स्थिति ने यार्थाथवाद को जन्म दिया और समाज की प्रत्येक चीजों को यथार्थवादी दृष्टि से देखा परखा जाने लगा। परंपरागत साहित्य लेखन पीछे छूट गया और साहित्य में नवीन विचारधारओं का प्रवेश आरंभ हुआ। स्वतंत्रता

से पूर्व लोक साहित्य लिखा जा रहा था तो अब साहित्य में जनमुखी और व्यक्तिमुखी परंपरा आरंभ होने लगी । व्यक्ति की पीडा, बेरोजगारी, भूखमरी, निराशा, कुंठा, मोहभंग, भष्ट्राचार, षडयन्त्र, टूटते वैवाहिक संबंध, बदलती सामाजिक संरचना, राजनीति में पनपते कुसंस्कार, भारत-पाकिस्तान बंटवारे के कारण उत्पन्न हिंसा, त्रास, सामाजिक विघटन, स्त्री अधिकार के मुद्दें, स्त्री अस्मिता की पहंचान, जैसे सयौं विषयवस्तु को साहित्य के केन्द्र में रखा जाने लगा । एक तरफ पुरुष लेखन विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुंच रहा था तो दूसरी तरफ स्त्री लेखन अनेकों चुनौतियों का सामना करते हुए धीमी रप्तार से आगे बढ़ रहा था । ऐसी स्थिति में हिंदी साहित्य जगत में पुरुष लेखन का वर्चस्व बना रहा । इस लिए स्त्री लेखन की कमी कमजोरियां खोज कर अनेक तरह से उसकी आलोचना करने के लिए पुरुष साहित्य जगत हमेशा तैयार रहता था । परंतु स्त्री लेखिकायें इससे घबराई नहीं और ना ही उनका आत्मबल घटा बल्कि वे खुद को और अधिक तरासकर सामने आई अपने लेखन को सशक्त बताते हुए उसका खंडन करने के लिए निरतंर तत्पर रहीं । कुछ लेखिकाओं ने इसे नजर अंदाज किया और तत्कालीन समय की मांग के मुताबिक साहित्य रचना करती गई । इस विषय पर सवाल उठाते हुए प्रभा खेतान कहती है **"अधिकतर लेखकों के अनुसार स्त्री लेखन की सीमा उनके स्त्री होने में** निहित **कारणों में है । चुंकि वह स्त्री है, अतः उसकी दृष्टि संकीर्ण होगी, उसके अनुभव का जगत संकुचित होगा, उसकी आलोचनात्मक क्षमता तत्वमीमांसनीय नहीं हो पायेगी । हिंदी जगत में कोई जूडिय, जुलिया, क्रिस्टेवा, या गायर्ती चक्रवर्ती स्पीवाक क्यों नहीं हुई ? किस सामाजिक परिवेश में ऐसा घटा ? किन किन जोखीमों से हिंदी समाज की स्त्री को गुजरना पड़ता है ? क्या महिला लेखिकाओं को दोष देने के बदले कोई लेखक आलोचक इस विचार पर सोचने की चेष्टा करेगा ?"**[15]

प्रभा खेतान के सवाल वास्तव में विचारणीय हैं, जिसकी चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं । पुरुषों को स्त्री लेखन पर सवाल उठाने से पहले उसकी स्थिति और

पृष्ठभूमिका का भी ध्यान रखना चाहिए और दूसरी एक महत्वपूर्ण बात यह है कि स्त्रियों को भी अपनी परिस्थिति पर अपनी कमजोरी नहीं थोपनी चाहिए बल्कि खुद को सक्षम बानने के उपाय खोजने चाहिए और प्रतिस्पर्धा में खुद को साबित करना चाहिए । यह समय उपन्यास लेखन का था । अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास को अधिक महत्व दिया जा रहा था । लेखक अपने अनुभव और जीवन के सत्य को उपन्यासों में उतारा जा रहा था । यथार्थ की यह चेतना हिंदी उपन्यास में कई रुपों में अभिव्यक्त हुई । कभी आधुनिकवाद, कभी यथार्थवाद, कभी समाजवाद तो कभी मार्क्सवाद की विशिष्टताओं का प्रभाव स्वतंत्रोत्तर महिला उपन्यास लेखन पर भी पडा़ । स्वतंत्रोत्तरपूर्व तक महिला साहित्याकारों की रचनाओं में मूल्यपरक आदर्शबोध, सामाजिक-पारीवारिक कुरीतियों का पर्दाफाश, सामाजिक जागरण और नैतिक उन्नयन का ध्येय ही उभरा था परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इन सारे मूल्यों और नैतिकता में बदलाव आने के बाद भी सन् 1950 तक स्त्री उपन्यास लेखन गिरता पड़ता ही दिखाई पड़ता है । सन् 1960 में कृष्णा सोबती की लेखनी के माध्यम से स्त्रियों की दशा और दिशा में चिंतन और उसकी अभिव्यक्ति ने एक नया आकार लिया । महिला लेखन के वैचारिक दृष्टिकोण में समयानुकूल बदलाव आने लगा । डॉ. जया द्विवेदी का कहना है **"स्वतंत्रता पूर्व के आरंभिक दौर की लेखिकाओं में आशापूर्णा देवी, उषा देवी मित्रा, चन्द्रकिरण सौनरिकसा या फिर कौशल्या अश्क की महिला पात्र समाज में पारंपरिक छवी सतीत्व, पत्नीत्व, नारीत्व , मातृत्व को ही अपना अस्तित्व बोध मानकर चलने वाली स्त्रियां है, लेकिन इससे उनका महत्व आज के संदर्भ में कम नहीं हो सकता । इसे तो मैं कलम पकड़ने का साहस मानती हूँ । आजादी से पहले का स्वर दूसरा था, लेखन की मांग कुछ और थी, विषयवस्तु कुछ दूसरे थें । आज देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थितियों में आमूल-चूल बदलाव आया है । यही कारण है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लेकर आज तक महिला लेखन का स्वर दिन प्रतिदिन विद्रोही होता गया है ।"**[16]

कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा जैसी लेखिकायें इस काल की प्रतिनिधि लेखिका के रुप में जानी जाती हैं। इनका उपन्यास साहित्य भविष्य की लेखिकाओं के लिए प्रेरणादायक हैं। कृष्णा सोबती का उपन्यास 'मित्रोमरजानी' स्त्री यौनिकता के अधिकार पर सवाल उठाता है। विवाह के नाम पर होने वाले यौन शोषण की हृदय विरादक कथा को लेखिका ने उपन्यास में बेहिचक चित्रित किया हैं। इसके साथ-साथ विवाह उपरांत लड़की के आचरण एवं व्यवहार पर किये जाने वाले नियंत्रण, उसके लिए निर्धारित की जाने वाली अलग सी मर्यादायें आदि को उसकी स्वतंत्रा का बाधक बताते हुए। कृष्णा सोबती इन झूठे समाजिक नियमों से बाहर निकलने की सलाह देती हैं। मन्नू भंडारी का 'आप का बंटी' उपन्यास पति-पत्नी के बदलते हुए संबंधों को बताता है। वे पति को परमेश्वर मानने की रीत को तोड़ती दिखाई पड़ती हैं। उनकी नजर में पति एक सहयात्री है यदि दोनों के रिश्तों के बीच आत्मसम्मान की रक्षा की बात आती है तो संबंध को जिंदा रखना आवश्यक नहीं है। इस स्थिति में पति-पत्नी अलग होकर स्वतंत्र जीवन जी सकते हैं जैसे विचारों को उन्होंने महत्व दिया हैं। इसके अलावा वे कहती हैं जरुरी नहीं है कि बच्चे की परवरिश की जिम्मेदारी पिता को ही मिलनी चाहिए स्त्री पढ़ी लिखी आत्मनिर्भर है तो वो अपने बच्चे की रेख-देख पुरुष से बेहतर कर सकती हैं। उषा प्रियंबदा 'पचपन खंबे लाल दीवारें' में मध्यम वर्गीय पढ़ी लिखी उम्रदराज अविवाहित स्त्री की मानसिक यंत्रणाओं को अंकित करती हैं। रुढ़िगत नैतिक वर्जनाओं से ग्रस्त समाज में शिक्षित नौकरी पेशा युक्त युवती को अपने से कम उम्र के प्रेमी से विवाह न कर पाने की विवशता और तनाव का लेखिका ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया हैं। लेखिका खुद को शिक्षित कहने वाले उस समाज पर व्यंग्य करते हुए कहती हैं, हॉस्टेल की पचपन खंबे और लाल दीवारों वाली इमारत अपनी विराटता और भव्यता के बावजूद रुढ़ियों, प्रवादों और बंधनों का प्रतीक है। ममता कालिया 'बेघर' उपन्यास में स्त्री की योनि को पवित्र और अपवित्र माने जाने वाली भारतीय परंपरा पर सवाल उठाती हैं। एक स्त्री उसकी

योनि से पवित्र और अपवित्र आंकी जाती है विचार और भावनाएं उसके लिए गौण हो जाते हैं। भारतीय समाज में इस परंपरा के शिकार कैयों पुरुष और स्त्रियां बने हैं, जिसके कारण उनका घर परिवार तो बिखरता ही है परंतु वे खुद भी तनाव ग्रस्त जीवन जीने पर बाध्य होते हैं। समाज की इस रुग्ण मानकिता का ममता कालिया ने सूक्ष्म रुप से विश्लेषण किया है। इन लेखिकाओं ने विशेषकर समाजवादी और स्त्रीवादी विचारधारा को प्रधानता दी और उपन्यास में वैचारिक पक्ष को प्रवेश कराया साथ ही राजनीतिक और अर्थ नीति में हो रहें घोटालों का भी पर्दाफाश किया हैं। राज नेताओं की दोहरी मानसिकता, सत्ता पर बने रहने का लालच, पुलिस प्रशासन की लापरवाही, घूसखोरी, सत्ता का त्रास, समाजिक न्याय का अभाव, दलगत और गुटगत राजनीति, जनता के साथ विश्वासघात जैसे राजनीतिक विषयों को लखिकाओं ने चित्रित किया हैं। इसके अला इस काल की महिलाओं ने बदलते सामाजिक और पारीवारिक संबंधों की भी चर्चा की। स्त्री के स्वावलंवनता को प्राथमिकता देते हुए यह निकर्ष निकाला है कि जब तक स्त्रियां अर्थ से नहीं जुडेंगी तब तक उनमें आत्मविश्वास नहीं बढ़ेगा और वे अपने जीवन के लिए स्वतंत्र होकर कोई निर्णय भी नहीं ले पायेंगी। स्त्री का संपति पर अधिकार, उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता, उसका सामाजिक सम्मान, समान अवसर, शिक्षा, राजनीति सभी सरकारी तथा गैरसरकारी संस्थाओं में उसकी पंहुच आदि मुद्दों को इस समय की स्त्री लेखिकाओं ने विशेष रुप से उठाया हैं। स्त्री के सामाजिक संबंधो के साथ-साथ वैयक्तिक संबंधों की चर्चा भी इनके साहित्य में देखी जाती हैं। इन्होंने आदर्श की जगह यथार्थ का नवीन ढाँचा तैयार किया और भाव प्रधान साहित्य की जगह विचार प्रधान साहित्य की ओर इनका ध्यान केन्द्रित हुआ। इस काल की प्रमुख महिला उपन्यासकारों में श्रीमति बसंत प्रभा, श्रीमति लीला अवस्थी, कुमारी अन्नपूर्णा ताँगड़ी, श्रीमती विमद वेद, कुँवरानी तारा देवी, लावण्य प्रभा राय, सत्यवती, देवी मैया, श्रीमती सरिता रानी, श्रीमती भारती विद्यार्थी, सुश्री सुषमा भाटी, सुश्री दर्शना, सुदेश 'रश्मि', सुश्री संतोष सचदेवा, श्रीमति शिवरानी विश्नोई,

सुश्री शकुंतला मिश्र, सुश्री उर्मि, श्रीमती शीला शर्मा, सुश्री शीला रघुवंशी, सुश्री उमा देवी, कुमारी कमलेश सक्सेना, सुश्री इंदिरा नूपुर, सुश्री शकुंतला शुक्ल, सुश्री आदर्श कुमारी आनंद, सुश्री मधूलिका, सुश्री मधूलिका मिश्र, श्रीमती शकुंतला गड़होक, श्रीमती मीरा महादेवन, श्रीमती पुष्पा भारती, श्रीमती नारायणी कुशवाह, पुष्पा महाजन, शिवनी, मालती, परुलकर, बिंदुअग्रवाल, कमला टंडन, लीरा संतोष बाला 'प्रेमी', कांता सिन्हा, प्रकाशवती, कृष्णा रविकमल, महेन्द्रबाला, प्रियाराजन, इंदुबली, दिनेशनंदिनी डालमिया, शांति जोशी, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, अनीता चट्टोपाध्याय, उर्मिला कुमारी, स्वर्ण कुमारी देवी, मालती रानी सिन्हा, निरुपा देवी, कुमारी विमला साधना प्रतापी, श्रीमति कुंती देवी, शारदा रानी, मालती रानी सिन्हा, शोभा रानी, कृष्णा कुमारी, शांतिलता अग्रवाल, कल्याणी दत्त प्रमुख स्त्री उपन्यासकार हैं। जिनकी रचनाओं में स्त्री का सत्य विद्यमान हैं। इसके अलावा सातवें दशक के उपन्यास में सामाजिक संघर्ष और स्त्री चेतना को प्रस्तुत करने वाले प्रमुख उपन्यासों में कृष्णा सोबती का मित्रोमरजानी, सूरजमुखी अंधेरे, जिंदगीनामा, दिलोदानिश, मन्नू भंडारी का एक इंच मुस्कान, महाभोज, आपका बंटी, उषा प्रियंबदा का रुकोगी नहीं राधिका, पचपन खम्बे लाल दीवारें हैं तो आठवें दशक के उत्कृष्ट उपन्यासों में मृदुला गर्ग का चित्तकोबरा, अनित्य, ममता कालिया नरक दर नरक, मृणाल पाण्डेय पटरंग पुराण महत्वपूर्ण हैं। नब्वें के दशक में राजी सेठ का तत्सम, नासिरा शर्मा का शाल्मली, ठीकरे की मगनी, जिंदा मुहावरे आदि उपन्यासों को उत्कृट माना जा सकता हैं। पितृसत्तात्मक समाज का शोषण और दमन काफी अरसे तक झेलने के बाद स्त्री की पहली स्वभाविक प्रतिक्रिया, शोषण से मुक्ति का प्रयास और इसके खिलाफ मोर्चाबंदी का यह पहला प्रयास है। निःसंदेह हिंदी की महिला उपन्यासकारों के पास वह अनुभूती और विवेकशील मस्तिष्क है जिसने उनकी रचनाओं को संवेदनशील और तार्किक बनाया हैं। उनके विचार और भावनाओं के दायरे तो बढ़े ही हैं साथ ही उनका विषय वैविध्य और शिल्प का दायरा भी बढ़ा हैं। वर्तमान सामाजिक विसंगतियों ने संघर्ष और सामाजिक विभेद

को और अधिक बढ़ाने का काम किया है परंतु स्त्री लेखिकाओं ने इस स्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर सूक्ष्म रुप से परिस्थिति आंकने का प्रयास किया है । हम कर सकते है कि स्त्री उपन्यास लेखन का मध्यकाल विषय वैविध्य भाषा शैली आदि समग्र रुप में उत्कृष्ट काल रहा हैं ।

२.२.३ वर्तमान काल (1990....)

स्त्री उपन्यास लेखन का वर्तमान काल सन् 1990 से अब तक माना जा सकता है । यह काल अपने आपमें कई संभावनाओं को लेकर आगे बढ़ रहा हैं क्योंकि इसकी पृष्ठभूमि इतनी मजबूत बन चुकी है कि इसे पीछे मुडने की आवश्यकता नहीं है । आज का स्त्री लेखन अपने अतीत से ज्यादा वर्तमान और भविष्य की चिंता करता हुआ दिखाई पड़ता है । स्त्रियों ने अपने लिए जीवन के नए प्रतिमान गढ़ लिए हैं । वे प्राचीन मान्यताओं को स्वीकारना नहीं चाहती । धर्म, संस्कृति और रीति-रिवाज के नाम पर अब वे ठगी जाना नहीं चाहती, उसने पुरुष सत्ता की सारी साजिशों को जान लिया हैं । अब वह समाज में अपनी पहचान के लिए संघर्ष करेंगी और समाज का एक महत्वपूर्ण अंग होने का गौरव भी महसूस करेगी । भूमंडलीकरण और बाजारवाद के इस दौर ने एक तरफ स्त्री के लिए बहुत से अवसर उपलब्ध कराए हैं तो दूसरी तरफ चुनौतियों को भी ला खड़ा किया है । उदारवाद ने स्त्री की बेड़ियों को ढीला कर उनमें शिक्षा और आत्मविश्वास का विकास कराया है तो उपभोक्तामुखी और बाजारवाद के परिवेश के कारण स्त्रियां बाहर आई । मीड़िया, सूचना, संचार के माध्यमों ने स्त्रियों को देश दुनिया की जानकारी ही नहीं दी बल्कि उन्हें चेतनशील भी बनाया । देश विदेश के भ्रमण से वहां की संस्कृति, सभ्यता और साहित्य को जानने परखने और उसकी तुलना करने का उन्हें अवसर मिला । इससे स्त्री चेतना का चौतरफी विकास हुआ और अर्थ के महत्व के बारे में उन्हें जानकारी हुई । अब वे अपने समग्र गतिविधियों को अर्थ से जोड़ना चाहती हैं । पिछले समय में स्त्रियों ने पुरुष सत्ता का विरोध किया और अपनी दयनीय स्थिति का जिम्मेदार धर्म परंपरा और पितृसत्ता को ठहराया । आधुनिक युग तक पहुंचते-

पहुंचते स्त्रियों के जीवन शैली उनके व्यक्तित्व, व्यवहार और सोच में काफी बदलाव आया। आज की स्त्री की समस्यायें विगत की स्त्रियों से अलग है क्योंकि शिक्षा पर स्त्री की पहुंचने उन्हें शिक्षित तो बनाया परंतु बेरोजगारी, सामूहिक प्रतिस्पर्धा, के कारण वे कुंठा और तनाव का शिकार भी बनी। इससे भी बड़ी बात यह है कि जो स्त्रियां रोजगार या बाहर काम कर रही है वे घर और आँफिस दो-दो जगह के काम के बोझ से इतनी दब गई है कि खुद के लिए समय नहीं निकाल पा रही हैं, उनकी निजी जिंदगी न के बराबर हो गई है। बच्चों की शिक्षा और भविष्य की चिंता, घर के बड़े बुजुर्गों की रेख-देख आदि जिम्मेदारियों के चलते वे श्रमजीवी यंत्र बन चुकी हैं। जो स्त्रियां काम की खोज में गांव से शहर आती हैं और जो शहर से विदेश जाती हैं उन स्त्रियों की दशा और अधिक दयनीय है। एक तरफ उनका श्रम शोषण हो रहा है दूसरा उनका शारीरिक और मानसिक शोषण हो रहा हैं। यह सामाजिक परिवेश स्त्रियों में कुंठा भर कर उनका आत्मबल छीन रहा हैं। भौतिकवादी समाज अर्थ को सर्वोपरि मानता है जिसके चलते नैतिक और अनैतिक कामों में अंतर कम होता जा रहा हैं। यह स्थिति सामाजिक मूल्यों का पतन करा रही है। मध्यकाल में स्त्री का देह कूटनीति के लिए प्रयोग किया जाता था तो आज उसे नुमाइश के लिए प्रयोग में लाया जा रहा हैं। ग्लैमर का नाम दे कर स्त्री देह को नुमाइश की वस्तु बनाया जा रहा हैं। स्त्रियाँ खुद को टेलीविजन सिनेमा के पर्दों पर देखने की महत्वकांक्षा में अपनी अस्मिता लूटा रही हैं। चंद पैसों के लालच में नग्न किये जा रहें शरीर के प्रति उनका ध्यान नहीं जा रहा हैं। राजनीति, व्यापार, व्यवसाय हर क्षेत्र में स्त्री का प्रयोग हो रहा हैं। एक समस्या से छूटकर वे दूसरी समस्या में फंसती हुई दिखाई पड़ती हैं। स्त्री की इस स्थिति पर ध्यान केन्द्रित करते हुए श्रीकांत बर्मा लिखते हैं **"नारी का शोषण हर युग में हुआ है, कभी धर्म द्वारा, कभी शास्त्रों द्वारा, कभी राजनीति द्वारा, कभी घर परिवार द्वारा आज की नारी जहां शिक्षित होकर आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हुई है वहां उसने इस आत्मनिर्भरता की कीमत भी चुकाई है।"**[17]

21 वीं सदी का साहित्य भूमंडलीकरण का साहित्य है । बाजारवाद का साहित्य है । अर्थ के नाम पर स्त्री के शोषण का साहित्य है । स्त्री स्वतंत्रता के नाम पर नैतिक पतन का साहित्य है । विश्वबाजार में स्त्री का क्रय-विक्रय का साहित्य है । भारतीय समाज में बाजार पहले भी था लेकिन आज के बाजार का स्वरुप पुराने बाजार से काफी भिन्न हो गया है । पहले लोग जरुरत पड़ने पर बाजार जाते थे और आज लोग बाजार में बसना चाहते हैं । बाजार की चकाचौंध लोगों से पैसे ही नहीं छीन रही है बल्कि उसकी नैतिकता और मानवीयता भी छीन रही हैं । बाजार के इस चरित्र का निर्माण करने में विज्ञापन की अहम भूमिका रही हैं । बड़ी मल्टीनेशनल कंपनियां अपने उत्पादन का प्रचार-प्रसार करने के लिए विज्ञापन का प्रयोग करती हैं और विज्ञापन के लिए स्त्री का । इस आर्थिक स्वतंत्रता ने स्त्री को बाजार के बीच लाकर खड़ा कर दिया है, वह इस चक्रव्यूह में इस तरह फस चुकी है कि निकलना भी चाहे तो नहीं निकल सकती । स्त्री का देह बाजार बन चुका है । असल बात यह है कि इस बाजार से स्त्री को नहीं पुरुषों को अधिक फायदा हो रहा हैं । स्त्रियां अपनी महत्वकांक्षाओं को पूरा करने की होड़ में सब कुछ गवा रही हैं यदि उन्हें कुछ मिला है तो वह है मानसिक तनाव, कुंठा और हीनता बोध जैसी यातनायें । आवां उपन्यास में चित्रा मुद्गल नमिता के माध्यम से आज के इस बाजारमुखी समाज में प्रेम संबंध और भावनाओं का क्रय-विक्रय करने का जो व्यापार चल रहा हैं । उसको चित्रित करने का प्रयास करती दिखाई पड़ती हैं । संजय गहनों का व्यापारी है नमिता से भूठा प्रेम जताकर शादी का झूठा प्रलोभन देकर उसे बिनव्याही मां बना देता है, ताकि वह खुद को मर्द साबित कर सके और बच्चे का बाप कहलाने का गौरव भी प्राप्त कर सके । नमिता उसके इस झूठे प्रेम को सच मान लेती है और उसके जाल में फसती जाती है । उसे सच तब पता चलता है जब वह अपने गर्भ पतन की बात संजय को बताती है । संजय आवेश में आकर अंजना वासवानी से किये गये उसके सौदे की बात करता है तब नमिता को खुद को बेचे जाने का सच पता चलता है और उसके मन से प्रेम का भ्रम टूट

जाता है । उपन्यास की यह घटना वर्तमान समय में स्त्री की आर्थिक सामाजिक स्थिति को दर्शाती हैं । आज भी समाज में स्त्री को उपभोग की वस्तु ही समझा जाता है अंतर सिर्फ इतना है कि प्रयोग में लाने के तरीके बदल रहें हैं । स्त्री के जीवन की जद्दोजहद और उसके लेखन की पहल और साहस को चित्रा मुद्गल कुछ इस तरह बयान करती हैं **"तुमने अपनी आँखे दान की, बहुत लड़ी मैं तुमसे । तुमने जब किडनी दान करने का फार्म भरा, फार्म छीन मैने चिथड़े-चिथड़े कर दिया । तुमने कहा, तुम जो कुछ लिखती हो, कहती हो सिर्फ औरों के लिए है ? अपने छद्म से तुम कब मुक्त होगी माँ ? मैं चिढ़ गई थी ! अब तुम्हें यकीन दिला सकती हूँ तुमसे पीछड़ जरुर गई मैं, अपर्णा ! परास्त नहीं हुई....लिखने और कहने के बीच पहल सी उठ खड़ी हुई हूँ ।"**[18]

इस बदलते दौर में स्त्री खुद को नयें सिरे से तलास रही हैं । महिला उपन्यासकारों ने एक ओर जहाँ अपने उपन्यासों में स्त्रियों की सुबकती बनती-विगड़ती दुनिया को उद्घाटित किया है तो वहीं दूसरी ओर अस्मिता की नई पहचान करने और करवाने की मांग को लेकर भी कई महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे हैं । इन महिला उपन्यासकारों ने घटित तथ्यों को ही नहीं आकांक्षित तथ्यों को भी उपन्यासिक विन्यास दिया एवं अब तक गोपनीय रखे गये स्त्री के मन को गूढ़ रहस्यों को बेवाकी से व्यक्त किया है । चमनलाल गुप्ता लिखते हैं **"नारी विमर्श से जुड़े कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान, तथा मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास पुरुष प्रधान समाज को चुनौती देती महिलाओं के चरित्र के लौह दस्ताबेज हैं । साहित्य में उपेक्षित और हाशिए पर रखी नारियां अपना अस्तित्व सिद्ध करने के लिए यहां संघर्ष करती रहती हैं ।"**[19]

यद्यपि विषय वैविध्य और नवीन विचारों की अभिव्यक्ति से स्त्री साहित्य उत्कृष्ट बना है परंतु पुरुष लेखन की नजर में आज भी स्त्री लेखन कमतर ही माना जाता है । स्त्री का साहस ही है कि वह पुरुष के इस आरोप को झुठला रही हैं । मृदुला

गर्ग कहती है कि औरत को हमेशा ही एक जिस्म के रुप में मात्र देखा गया है । आज जरुरत है कि स्त्री अपने सामर्थ्य से इस मानसिकता को बदले । मृदुला गर्ग ने उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग की स्त्री समस्या को बहुत ही करीब से देखा और उनके आर्थिक और सामाजिक समस्या के मुद्दों को साहित्य के जरिये लोगों की बीच रखा है । मृदुला गर्ग का मानना है कि स्त्री समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है किंतु वह अंश मात्र भी नहीं बने रहना चाहती हैं । वह जिस समाज में रहती है उस समाज की सभ्यता और संस्कृति की रुढ़िवादी मान्यताओं के खिलाफ विद्रोह भी करती है और सामाजिक अनादर्शों का बहिष्कार भी कर रही हैं । स्त्री पर जो वर्जनायें आरोपित की गई हैं उन्हें अब नारी किसी भी स्थिति में बर्दाश्त नहीं कर सकती । अब वह अपने अस्तित्व को स्वयं स्थापित करने के लिए तत्पर है । समाज की प्रबल सत्ता के बीच नारी अब केन्द्र में आना चाहती है । मृदुला गर्ग ने स्त्री के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने वाली परंपराओं का खंडन भी किया है और विरोध भी किया है । इनके चर्चित उपन्यासों में उसके हिस्से की धूप, चित्तकोबरा, अनित्य, मैं और मैं, कठगुलाब, मिलजुल मन और वसु का कुटुम आदि हैं । नासिरा शर्मा भी इस काल की महत्वपूर्ण लेखिका हैं । इनके प्रमुख उपन्यास सात नदियां एक समंदर, शाल्मली, ठीकरे की मंगनी, जिंदा मुहावरे, अक्षयवट, कुइयाँजान, जीरो रोड़, बहिश्ते जाहिरा, पारिजात, अजनबी जजीरा कागज की नाव आदि हैं । इन के उपन्यासों में नये पुराने रिश्तों की दास्तान, लुप्त होती संवेदनाओं की पड़ताल, वैश्विक परिदृश्य में समाज की बंदिशों में जकड़ी हुई इंसानियत की चीख और सामाजिक एवं सांस्कृतिक तंतुओं के ताने-बाने को गहराई से समझने का प्रयास है । इसी तरह प्रभा खेता ने अपने उपन्यास 'आओ पेपे घर चले' में अमेरिका प्रवास के दौरान अपने भोगे और अनुभव किये हुए सच को बयान किया है । अमेरिका जैसे संपन्न देशाों की आत्मनिर्भर महिलाओं का जीवन भी अकेलेपन टीस, पीड़ा और आँसुओं के सैलाब में बह रहा है । आइलिन, मिसेज डी, क्लारा ब्राउन, मरील, मिसेज ल्गाबेरी, हेल्गा आदि महिलायें आर्थिक स्वावलंबनता के

बाबजूद भी उनका जीवन सुखमय नहीं है। यानी वर्तमान समय के इस भागमभाग की दुनिया में इंसान जितना पैसों को महत्व देता जा रहा है, उतना ही उससे परिवार और समाज छूटता जा रहा है। जिसके कारण वह अंदर से खोखला और दु:खी हो रहा है। प्रभा खेतान बताना चाहती हैं कि आर्थिक स्वावलंवनता मात्र से भी स्त्री समाज सुखी नहीं हो सकता उसका हृदय प्रेम और अपने पन के लिए भी उतना ही व्याकुल है जितना अपनी पहचान के लिए। अत: वर्तमान समय में जरुरत है कि स्त्री अपने पारीवारिक जीवन और आर्थिक जीवन दोनों में संतुलन बनाकर चले और पुरुष को भी इस परिस्थिति को समझने की जरुरत है। प्रभा खेतान का अगला उपन्यास छिन्नमस्ता नारी के निरंतर शोषण और समाज की जर्जर मान्यताओं तो चित्रित करता है। विपरीत परिस्थिति में आज की नारी टूटती नहीं बल्कि शोषक शक्तियों के लिए चुनौती बनकर एक नयी राह पर चल पड़ती है। यह उपन्यास स्त्री को पितृसत्तात्मक समाज से लड़ने की प्रेरणा देता है। इसी तरह तलाबंदी उपन्यास व्यवसायिक जगत को कथा की धूरी बनाकर मालिक और मजदूर के बीच का संबंध, व्यापारिक धोखाधड़ी, व्यापार में राजनीतिक हस्तक्षेप, मजदूर यूनियन और व्यापारी के बीच का संघर्ष आदि समस्याओं को दर्शाता है। साथ ही व्यापार जगत की इन समस्याओं को उठाकर प्रभा खेतान ने यह साबित कर दिया है कि आज का स्त्री लेखन समाज की सभी समस्याओं पर दृष्टि डालने में सक्षम है। डॉ. रोहिणी अग्रवाल महिला उपन्यासकारों के सामाजिक सरोकार के विषय में महत्वपूर्ण बात कहती हुई दिखाई पड़ती है **"कहना न होगा कि आज स्त्री लेखन ऊंबी, अघाई, सम्पन्न स्त्रियों का मनोविलास नहीं, एक जिम्मेदार नागरिक की तरह अपने परिवेश को गढ़ने का संवेदनाशील सर्जनात्मक प्रयास है। वह स्त्री विमर्श को देह विमर्श में रिड्यूस करने की कुत्सित चाल का शिकार भी नहीं, देह के जरिए अपने भीतर तक चीन्हते-सवारने की चिंता भरी कोशिश है। दरअसल स्त्री को नाम, जाति, धर्म, पहचान, से हीन कर दिए जाने का क्रंदन मात्र**

नहीं बल्कि अपनी मानवीय पहचना बनाकर साझी दुनिया के सकारात्मक इतिहास की रचना का दबाब है ।"[20]

स्त्री लेखन के वास्तविक उद्देश्य को कुछ हद तक स्पष्ट करने का प्रयास डॉ. रोहिणी अग्रवाल ने किया है । आज का स्त्री साहित्य नाम और प्रसिद्धि की लालाच से नहीं बल्कि स्त्रियां अपने अधिकारों की प्रत्याभूति और अपने मन की पीड़ा को व्यक्त करने के लिए लिख रही हैं । वर्तमान युग की प्रतिनिधि लेखिका के रुप में मैत्रेयी पुष्पा का नाम भी प्रसिद्ध है । इन के प्रमुख उपन्यास बेतवा बहती रही, इदन्नमम, चाक, झूला नट, अल्माकबूतरी, विजन, अगनपाखी, कही ईसुरी फाग, त्रिया हठ आदि हैं । वैसे तो इन के सभी उपन्यास स्त्री समस्याओं को बेवाकी से प्रस्तुत करते है परंतु चाक इनका ऐसा उपन्यास है जो स्वतंत्रता के पश्चात बदले हुए ग्रामीण स्त्री जीवन की संघर्ष की कथा बयान करता है । सारंग इस उपन्यास की ऐसी स्त्री पात्र है जो पितृसत्तात्मक संरचना से डरती नहीं है बल्कि एक निडर सैनिक की भाँति उस संरचना से युद्ध करती दिखाई पड़ती है । अपनी बहन रेशम की हत्या का वह विरोध ही नहीं करती बल्कि उसके हत्यारे को सजा दिलाने की पहल भी करती है । सारंग अपने विचारों को अपने व्यक्तित्व विकास का आधार बनाती है । वही विचार उसे समाज में हो रहें अन्याय के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा भी देते है । यही प्रेरणा उसे ग्राम पंचायत चुनाव का प्रत्याशी तक बनाने में सहायक होती है । इसमें कोई दुविधा नहीं है कि स्त्री लेखन निरंतर अपनी प्रौढ़ता की ओर आगे बढ़ रहा है । इसके महत्व और गरिमा को बढ़ाने में वर्तमान लेखिका मधु कांकरिया के योगदान को भी नकारा नहीं जा सकता । मधु कांकरिया ने वर्तमान समाज में विद्यमान अनेकों विषय को उपन्यास का आधार बनाया है । इनकी प्रमुख उपन्यासों में खुले गगन के लाल सितारे, सलाम आखिरी, पत्ताखोर, सेज पर संस्कृति, सूखते चिनार आदि है । मधु कांकरिया ने खुले गगन के लाल सितारे उपन्यास की रचना करके स्त्री की गहरी राजनीतिक समझ को प्रस्तुत किया है । सामाजिक समानता के लिए किसानों द्वारा जमीदारों और पूंजीपतियों

के खिलाफ छेड़ा गया जनयुद्ध जिसे भारत में नक्स्लबाड़ी के नाम से जाना जाता है । इस जनयुद्ध की त्रासदी को मधु कांकरिया ने बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है । पुलिस प्रशासन का अमानवीय व्यवहार, कैदी बनाये गयें आंदोलनकारियों की हृदय विदारक दशा के चित्रण ने इस उपन्यास को उत्कृष्ट बना दिया है । भावनाओं, विचारों, भय, आक्रोश और साहस के अत्यंत महीन धागों से बुनी यह औपन्यासिक संरचना हमें नक्सलबाड़ी आंदोलन के दिल दहला देने वाले विवरण देती है । जो इतिहास में सामान्यत: नहीं लिखें जाते । साथ ही कलकत्ता के एक मध्यम वर्गीय परिवार की उन दम-घोटू परिस्थितियों का विवरण भी इसमें है । जिनका मुकाबला विचार और विद्रोह के हथियार ही करें तो करें वैसे सम्भव नहीं है । राजनीतिक परिवेश के साथ-साथ समाज के उपेक्षित दलित, आदिवासी महिला वर्ग की कथा-व्यथा को लेकर रमणिका गुप्ता सीता उपन्यास को लेकर प्रस्तुत होती है । सर्वहारा वर्ग की स्त्री भूख शोषण अत्याचार अशिक्षा के दलदल से बाहर निकलकर जीवन के तमाम भावों को पीछे धकेल कर नेतृत्व की कमान अपने हाथ में लेकर आगे आकर खड़ी होती है । हमने देखा कि वर्तमान समय के स्त्री लेखन में एक प्रकार की वैचारिकता, भाव और गंभीर चिंतन है जिसको लेखिकाओं ने तर्कों के साथ प्रस्तुत किया है । वे रुढ़ियों का विरोध भी करती हैं तो उसके पीछे की वजह भी बताती है उसका प्रभाव भी दिखाती हैं । आज की लेखिकायें आँख मूदकर किसी भी घटना या परिस्थिति पर विश्वास नहीं करती उसके पीछे का कारण खोजती हैं और समाधान के विकल्प भी ढूंढती है । इनको न खुदको अबला कहना पसंद है और ना ही ये पुरुषों को प्रकृति की उत्कृष्ट रचना मानती हैं । इन्हें पुरुषों के पीछे नहीं बल्कि पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना स्वीकार्य हैं । आज की स्त्री को अपनी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्वतंत्रता इतनी प्रिय है कि इसके साथ वे कोई समझौता करना नही चाहती हैं । वर्तमान समय चेतना का समय है । अपनी साहित्यिक चेतना को साझा करने के लिए कई नयी लेखिकाएं लगातार साहित्य से जुड़ती हुई दिखाई पड़ रही हैं । राजी सेठ (तत्-सम, निष्कवच),

रमणिका गुप्ता (मौसी, सीता), क्षितिज शर्मा (उकाव), गीतांजली श्री (माई हमारा शहर उस बरस, तिरोहित, खाली जगह), अलका सरावगी (कलि कथा, वाया वाई पास, शेष कादंबरी, कोई बात नहीं, एक ब्रेक के बाद), नीरजा माधव (अभी ठहरो अंधी सदी, यम दीप, तेभ्यः स्वधा, गेशे जम्पा), रमा सिंह (गुलाब छडी़, लिखोगी सत्यभामा, लौट आओ हैरी, कुत्तो पंथा), वीणा सिंहा (पथ प्रज्ञा, सपनों के बाहर) जया जादवानी (तत्वमसि, कुछ न कुछ छूट जाता है), अनामिका (अवांतर कथा, दस द्वारे का पिजंरा), महुआ माजी (मैं बोरिसइल्ला, मरंग घोडा नीलकंठ हुआ), क्षमा शर्मा (मोबाइल) , मधु भादुडी (अनादि, अनंत), मनीष कुल श्रेष्ठ (सिगाफ, शाल भंजिका),शर्मिला बोहरा (शादी से पेशतर), डॉ. प्रतिभा राय (महामोह), ऋता शुक्ला (अग्निपर्व), क्षमा कौशल (दर्दपुर) पद्यमा सचदेवा (भटको नहीं धनञ्जय), सुलोचना रांगेय राघव (बारी बारणा खोल दो), रजनी गुप्ता (कुल जमा बीस), कांता भारती (रेत की मछली, कुसुम कुमार, हीरामन हाइस्कूल, परदावादी), चित्रा चतुर्वेदी (महाभारती, तनया), कृष्णा अग्निहोत्री (कुमारिकाएं, अभिषेक) आदि वर्तमान समय की प्रमुख उपन्यास लेखिकायें और उनके प्रमुख उपन्यास हैं । इनका योगदान हिंदी साहित्य के उपन्यास लेखन में अद्वितीय माना जा सकता है । इन लेखिकाओं ने स्त्री के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सरोकार के मुद्दों का तो उठान किया ही है साथ ही आधुनिक उपभोक्तावादी युग में भागदौड़ के बीच पिसती स्त्री की दोहरी जिंदगी, पति-पत्नी के बीच बदलते संबंधों की त्रासदी, बच्चों के जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव, कुंठा, अकेलापन, राजनीतिक षडंयंत्र और विसंगतियां, स्त्री मुक्ति की नयी राह आदि इस युग के उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियां हैं ।

२.३ नेपाल में स्त्री उपन्यास लेखन की परंपरा

नेपाली साहित्य के विकास में स्त्री लेखन की महत्वपूर्ण भूमिका है । आज नेपाली साहित्य समृद्धि के जिस मुकाम तक पहुंचा है वहां तक पहुंचाने में स्त्री की कलम ने भी अथक प्रयास किया है । लेकिन पुरुषवादी मानसिकता स्त्री के इस योगदान को गौण मानती है । इसी संदर्भ में सुधा त्रिपाठी (नारीवादीको कठघरामा नेपाली

साहित्य) में लिखती हैं **"कल तक नेपाली साहित्य के इतिहास लेखक सभी पुरुष ही थें । उन्होंने कांट-छांटकर महिला स्रष्टाओं की संख्या न्यून कर दी और उसी को यथेष्ट समझने लगे । जीवन के किसी भी संदर्भ में पुरुष की केन्द्रीयता से हटकर महिलाओं को उनके व्यक्तित्व और अस्तित्व के आलोक में देखने की परंपरा की शुरुआत ही नहीं हुई है इसलिए महिला लेखन का एक अलग इतिहास महिला की कलम से लिखना आवश्यक है जो पुरुष परंपरा के लिए चुनौती होगा ।"**[21]

सुधा त्रिपाठी के मतानुसार नेपाली स्त्री लेखन भी हिंदी स्त्री लेखन की तरह पुरुषवादी मानसिकता का शिकार दिखाई पड़ता हैं । नेपाली महिला लेखन के इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है पुरुष लेखन के बहुत समय बाद स्त्री लेखन का आरंभ हुआ है । और पुरुष लेखन की तरह स्त्री लेखन की संख्या गुणात्मक रुप में अधिक है । प्रत्येक विधाओं में उनकी पहुंच तो है परंतु न्यून है । इसका कारण अगर खोजे तो लम्बे समय तक स्त्री पराधीनता की स्थिति, शिक्षा और चेतना का अभाव स्त्री की आर्थिक परतंत्रता आदि प्रमुख कारण उभरकर आते हैं । प्रतिकूल परिस्थिति के बावजूद भी कलम पकड़ने का साहस स्त्री का सबल पक्ष है, तो अपनी परिस्थिति से समझौता करके विद्रोह करने का तत्काल साहस न जुटा पाना उसका दुर्बल पक्ष है । जिसके कारण स्त्री पुरुषों की तुलना में पीछे छूटती गई । नेपाली साहित्य में स्त्री लेखन की शुरुआत सन् 1813 से मानी जाती है । प्राणमंजरी देवी नेपाल की पहली लेखिका हैं । इनकी दो पद्य रचनायें सुदर्शन टीका और त्रिपुरासुंदरी उपलब्ध हुई हैं । इसके बाद ललितत्रिपुरासुंदरी की रचनायें प्रकाश में आती हैं । राज दबार की तत्कालीन आवश्यकता अनुसार महाभारत के शांति पर्व को राजधर्म का नाम देकर अनुवाद किया गया और बाद में रानीवचन नामक इनकी मौलिक रचना प्रकाश में आई । इसके बाद अम्बालिका देवी, पवनकुमारी देवी, गोमा, देवकुमारी थापा, प्रेमराजेश्वरी थापा, लोकप्रिया देवी, प्रेमा शाह आदि लेखिकायें नेपाली साहित्य के प्रारंभिक काल में दिखाई पड़ती हैं । इस काल की

लेखिकाओं ने अधिकतर धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और अनुवादित साहित्य लिखा हैं । स्त्री गुण दया, करुणा, प्रेम, सद्भाव, त्याग और समपर्ण को उसका गौरव मानते हुए उसकी रक्षा के लिए इन लेखिकाओं ने अपने विचार व्यक्त किये हैं । इसके अलावा तत्कालीन, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवेश को भी इन्होंने अपनी रचनाओं मे समेटा हैं । स्त्री पराधीनता और पुरुष वर्चस्वशील समाज में स्त्री जीवन की जटिलताओं को भी इनकी रचनाओं में देखा जा सकता है । नेपाली स्त्री लेखन साहित्य में सन् 1963 से आधुनिक विचारधारा का प्रवेश देखा जाता है । इस परिवर्तन का श्रेय विष्णुकुमारी बाईबा (पारिजात) को जाता है । इन्होंने सर्वप्रथम नेपाली साहित्य में यथार्थवाद का प्रवेश कराया हैं । और समाजवादी विचारधारा से साहित्य लिखने की परंपरा को आत्मसात कर आगे आने वाली पीढ़ी का मार्गदर्शन किया हैं । नेपाली स्त्री समालोचक लीला लुइटेल लिखती हैं **"पारिजात की रचनात्मक यात्रा नेपाली साहित्य में एक बहुत बड़ा परिवर्तन है । (उसले रोजे को बाटो) उसका चुना रास्ता, (पर्खालभित्र र बाहिर) दीवार के अंदर और बाहर,(अनिदों पहाडसंगै) सुषुप्त पहाड के साथ उपन्यास ने इनको प्रगतिवादी उपन्यासकार के रुप में प्रतिष्ठित करा दिया । 'उसका चुना रास्ता' ने सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर में देखी गई विभिन्न विसंगतियों और समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए इन समस्याओं के समाधान की खोज भी प्रगतिवादी दृष्टिकोण से की गई है । सामाजिक शोषण, आर्थिक अभाव का दंश झेलने की जनता की नियति, वर्गीय समाज की विषमता आदि विषय की प्रस्तुति इस उपन्यास में की गई है जो इस परिस्थिति से मुक्ति के लिए क्रांतिकारी परिवर्तन की विचारधारा को अनिवार्य समझती है ।"**[22]

पारिजात का आगमन नेपाली साहित्य में तब हुआ है जब नेपाली राजनीतिक में परिवर्तन का दौर शुरु हो चुका था । राणा शासन का अंत होकर बहुदलीय प्रजातंत्र व्यवस्था की स्थापना हो चुकी थी । कांग्रेस के अलावा नेपाल कम्युनिष्ट पार्टी भी अस्तित्व में आ चुकी थी जिसके कारण नेपाली समाज में वामपंथी विचारधारा का

वर्चस्व बढ़ता जा रहा था। समाज में नयी चेतना की लहर दौड़ने लगी और समाज के उपेक्षित वर्ग दलित और स्त्री के हक-हित की बात उठने लगी। स्त्री के अधिकार के मुद्दों पर सार्वजनिक रुप से बहस शुरु हो चुकी थी। इसी वातावरण का प्रभाव साहित्य में भी पड़ने लगा और साहित्य परंपरावादी ढांचे को छोड़कर आधुनिक रुप में प्रस्तुत हुआ। इसी समय भारत में भी हिंदी स्त्री लेखन में परिवर्तन होता जा रहा था। कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंबदा जैसी लेखिकायें स्त्री और समाजवादी दृष्टि को साहित्य में प्रवेश करा रही थी। समाज में स्त्री की व्यक्तिगत पहचान से लेकर उसकी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के हक में सवाल उठाये जाने लगे थें। इधर नेपाली लेखिकाओं ने भी कुछ हद तक स्त्री से जुड़े ऐसे ही मुद्दें उठाना आरंभ कर दिया था। धर्म से संचालित नेपाली समाज उस पर जटिल पितृसत्तात्मक मानसिकता के दंश से आहत नेपाली स्त्रियों की पीड़ा, यातना, कुंठा, अभाव, परतंत्रता, अशिक्षा आदि विषय वस्तु स्त्री लेखन का केन्द्र बिन्दु बनें। परंतु यह भी सत्य है कि उस समय जितनी भी महिलाएं साहित्य से जुड़ी थी वे पूरी तरह से साहित्य के प्रति प्रतिबध्य होकर लिख नहीं पा रही थी घर की जिम्मेदारी और समय के अभाव के कारण उनकी रचनाओं में पुरुष की रचनाओं की तरह प्रौढ़ता कम दिखाई पड़ती है। इसी संदर्भ में सुधा त्रिपाठी लिखती हैं **"महिलाएं शिक्षित और सचेत होकर आत्म प्रकाशन की तरफ अग्रसर तो हुई लेकिन उनके ऊपर से परंपरागत जिम्मेदारी घटी नहीं जिसके कारण स्त्रियों ने साहित्य की सरल और छोटी-मोटी विधाओं को ही प्राथमिकता दी इसलिए कविता और कथाओं की रचना अत्यधिक मात्रा में हुई उपन्यास और खंड काव्य की रचना बहुत कम मात्रा में देखी गई।"**[23]

सुधा त्रिपाठी का यह विचार वास्तव में तर्क संगत दिखाई पड़ता है। स्त्री साहित्य एक तो पुरुषों की तुलना में बहुत समय बाद आरंभ होता है और संख्या में भी कम उपलब्ध है। इस स्थिति में सुधार लाने के लिए स्त्री को शिक्षित होने के साथ-

साथ साहित्य लेखन के प्रति सक्रिय और सचेत होने की आवश्यकता है । पारिजात के अलावा माया ठकुरी, सरिता ढकाल, भुवन ढुंगाना, बेज्जु शर्मा, भागीरथी श्रेष्ठ, मंजु कांचुली, पद्मावती सिंह, कुंता शर्मा, अनिता तुलाधर, बानीरा गिरी, तोया गुरुङ आदि लेखिकाओं ने भी समाजिक यथार्थ और स्त्री समस्याओं और अधिकार से जुड़े मुद्दों को अपनी कहानी, कविता और उपन्यासों के माध्यम से उठाया । यूं तो नेपाली स्त्री लेखन में परिवर्तन का दौर सन् 1933 में शारदा पत्रिका की स्थापना से ही हो चुका था । इसी समय से महिला लेखिकाओं के उत्थान में इस पत्रिका का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । यदि इस पत्रिका को स्त्री लेखन का आधार मानकर मूल्यांकन करे तो, इस पत्रिका के प्रकाशन से ही बडी़ संख्या में महिलायें साहित्य लेखन में आबध्य हुई और नेपाली स्त्री साहित्य लेखन का इतिहास बृहद आकार लेता हुआ आगे बढ़ा । शारदा पत्रिका में कविता, कहानी और उपन्यास को विशेष स्थान मिला । कविता के क्षेत्र में सर्वप्रथम नाम लोकप्रिया देवी का आता है । इन्होंने भक्ति, प्रणय और जीवन की पीडा और जटिलता को अपनी कविता में उतारा । इसके बाद गोमा नाम की कवयित्री की रचना जलन, जीने की इच्छा और मातृव्यवस्था नामक रचनायें प्रकाशित हुई । यही से नेपाली साहित्य में स्त्री लेखन सचेत रुप में आगे बढ़ता है । पुण्य प्रभादेवी ढुंगाना, कुंतदेवी शर्मा, सावित्री सुंदास, रमोला देवी शाह, सानुमति राय, भद्र कुमारी घले, सरला विष्ट, बेटी बज्रचार्य, रेवती राजभंडारी, लक्ष्मीदेवी राजभंडारी, श्यामा ओझा, सरला श्रेष्ठ, सृजना श्रेष्ठ, चारुशिला मिश्र, कोईलीदेवी माथेमा, कुमारी खाती, शांति क्षत्री, रेणु थापा, यमुना राय, संगीता गुरुङ, बाबा बस्नेत, मीना सुबेदी, सरिता लामा, सुषमा आचार्य, चन्द्रकला नेवार, निर्मला शर्मा आदि कवयित्रियां इस पत्रिका के माध्यम से प्रसिद्ध हुई । कहानी लेखन की बात करें तो सन् 1935 में छपी तुषार मल्लिका की 'स्त्रीरत्न' को नेपाली महिला लेखन की प्रथम कहानी माना जाता है । इसके बाद एम. लक्ष्मी, श्रीमति सुशीला कोईराला, कुमारी इंदिरा कोईराला, श्रीमति पी.पी शर्मा, गौरी सिस्टर इंदिरा, बुना बराल आदि महिलाओं ने कहानी लेखन परंपरा को

आगे बढ़ाया । नेपाली साहित्य में कहानी लेखन को समृद्ध और आधुकिता प्रदान करने वाली लेखिकाओं में देवकुमारी थापा का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है । इन्होंने मनोविश्लेषण को कहानी का प्रमुख आधार बनाया । भोक तृप्ति और प्रलयप्रतीक्षा इनके प्रसिद्ध कथा संग्रह हैं । मनोविश्लेषण में यौन कुंठा और यौन शोषण को कहानी का माध्यम बना कर प्रेमा शाह ने पीला गुलाब और विषांतर नामक कथा संग्रह प्रकाशित किया । इसके बाद अस्तित्ववादी और विसंगतिवादी चेतना को उद्घाटन करते हुए पारिजात कथा जगत में प्रवेश करती हैं । आदिम देश, सड़क और प्रतिभा, साल्गी का बलात्कृत आँसू बधशाला जाते-आते, नामक इनके कथा संग्रह ने इन्हें नेपाली साहित्य जगत में प्रगतिवादी लेखक के रुप में प्रतिष्ठित करा दिया । इनकी रचना में एक तरफ मानवीय प्रवृत्ति और संवेदना को रेखांकित किया गया है तो दूसरी तरफ पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री उत्पीड़न के विविध पक्ष को प्रस्तुत कर के उनके अधिकारों की प्रत्याभूति की मांग की है । पारिजात के विचारों से प्रभावित होकर माया ठकुरी, स्त्री अधिकार के नये मुद्दों को समाने लाती है । गमले का फूल, अनमेल जोड़ी, साँघु तैरने के बाद, इनके प्रमुख कथा संग्रह हैं । अनिता तुलाधर, पद्मावती सिंह, सीता पाण्डे, शारदा शर्मा इस दौर की प्रमुख कथाकार है । नाटक के संदर्भ में स्त्री लेखन काफी पीछे दिखाई पड़ता हैं । नेपाली साहित्य में सन् 1960 में सवित्री पोखरेल द्वारा लिखा गया 'कलंकी समाज' पहला नाटक है । इस नाटक में हिंदू समाज में महिलाओं द्वार भोगी जाने वाली पीडा और यातनाओं को संवाद के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । दूसरा नाटक सावित्री सिलवाल का कल्पना नाटक है । इसके अलावा किरण शाक्य का दीपमाला, विद्यादेवी दीक्षित का तीजदर आदि प्रमुख नाट के रुप में जाने जाते हैं । नाटक विधा में अपना महत्वपूर्ण योगदान देने वाली अन्य लेखिकायें माधुरी भट्टराई, पुण्यरश्मि खतिवड़ा, शांता श्रेष्ठ, सुधा त्रिपाठी, भारती खरेल, भद्रकुमारी घले, वेदकुमारी न्यौपाने, विंदीया प्रधान, भूमिका पोखरेल, रोशनी सुवेदी आदि है । महाकाव्य और खंडकाव्य जैसी रचनाओं की बात करें तो इसकी संख्या

पुरुषों की तुलना में अत्यंत न्यून है । सन् 1903 में बुनु लामिछाने द्वारा लिखा गया 'याचना' स्त्री लेखन का प्रथम महाकाव्य है । इसके अलावा इन्दु पंत का चित्र महाकाव्य, कुसुममंजरी देवी का सीता विलास, माधुरी भट्टराई का आनंदलहरी, बानीरा गिरी का मेरा आविष्कार, तोया गुरुङ का सूर्यदह आदि नेपाली साहित्य के प्रमुख महाकाव्य हैं । समग्र रुप में उपन्यास लेखन के अलावा अन्य विधाओं में स्त्री लेखन की उपस्थिति का निष्कर्ष निकाला जाये तो स्त्री लेखन पुरुष लेखन की तुलना में संख्यात्मक हिसाब से भले ही कम है परंतु गुणात्मक हिसाब से पुरुष लेखन से कम नहीं है । नेपाली लेखिकाओं ने तत्कालीन समाज में विद्यमान आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों के साथ-साथ नेपाली समाज में वर्षों से हासिये पर रहती आ रही स्त्री वर्ग की पीडा वेदना और त्रासदी को व्यक्त किया है । स्त्री लेखिकाओं की नजर केवल अपने तक ही सीमित नहीं है उसने अपने समाज के अन्य उपेक्षित वर्गों के प्रति भी सहानुभूति जताई है । नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन की रंपरा पर दृष्टि डाले तो इसको भी हिंदी की तरह तीन काल में विभाजन कर के देखा जा सकता है । आरंभिक काल, उत्कर्षकाल और वर्तमान काल ।

२.३.१ आरंभिक काल (1932-1965)

नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन का आरंभिक काल समय संवंत के आधार पर सन् 1932 से 1965 तक माना जा सकता है । स्त्री लेखन की परंपरा एवं नेपाली महिला उपन्यासकार (लीला लुइटेल) के पुस्तक में उल्लेखित तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नेपाली महिला द्वार लिखा गया सर्वप्रथम उपन्यास 'राजपूतरमणी' है जिसे अम्बालिकादेवी ने सन् 1932 में लिखा है । सुब्बा एककृष्ण नेपाल की पुत्रि अम्बालिकादेबी नेपाल के मध्यम वर्गींय परिवार से ताल्लुख रखती थी । इनके पति भी लेखक एवं इतिहासकार थे । अम्बालिकादेवी ने यह उपन्यास एक सौ पंध्र पृष्ठ में लिखा है । भारतीय भूमि में रहकर लिखे गये इस उपन्यास की कथावस्तु भी भारतीय समाज एवं इतिहास पर आधारित है । बंगाल के एक

प्रसिद्ध व्यापारी की पुत्रवधू राजपूतरमणी के जीवन संघर्ष की कथा इस उपन्यास में चित्रित की गई है । राजपूतरमणी को बंगाल के नबाब सरफरज खाँ अपहरण कर लेता है । वह अपने सतित्व की रक्षा के लिए अथक प्रयास करती है तथा अपने अदम्य साहस से उस प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करती है । भारतीय उच्चवर्गीय समाज के परिवेश को प्रस्तुत करने वाला यह उपन्यास उच्च वर्ग के पुरुषों की अय्याशी और स्त्री को भोग्या समझने की मानसिकता को तो प्रस्तुत करता है । साथ ही तत्कालीन सामाजिक वातावरण स्त्री के लिए असुरक्षित और त्रासपूर्ण होने की ओर भी संकेत करता है । स्त्री को शक्ति स्वरुपा होने का अहसास दिलाने के साथा-साथ लेखिका ने अपने सतित्व की रक्षा खुद करने की बात को प्राथकिता देकर समाज के प्रति विद्रोह का रुख अवलंवन किया है । अत: यह कहा जा सकता है कि बड़े ही सचेतना के साथ लेखिका ने नारीवादी विचार को प्रस्तुत किया है । इसके अलावा उपन्यास में राजपूतों की स्वामी भक्ति, राजा का कर्तव्य, जातीय स्वभिमान, धार्मिक गौरव आदि विषय को भी प्रस्तुत किया है । उपन्यास में पात्रों के मुताविक सामाजिक स्तरानुसार भाषा प्रयोग किया गया है और जगह-जगह पर पद्य का प्रयोग किए जाने से इसमें आधुनिकता भी आ गई ही । उपन्यास में संवाद की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है लेखिका ने इस बात को बड़ी सुझ-बुझ से प्रस्तुत किया है संपूर्ण उपन्यास कथानक को गति देने के लिए संवादात्मक शैली में ही आगे बढ़ता है । समग्र रुप में यह कहा जा सकता है कि यह उपन्यास भाषा, अभिव्यक्ति, विषय चैन के हिसाब से समय सांदर्भिक है । नेपाली साहित्य में इस पहले उपन्यास की रचना के लगभग आधे समय के अंतराल के बाद पवनकुमारी देवी द्वार लिखा गया 'प्रतिज्ञा' उपन्यास सन् 1960 में दिखाई पड़ता है । इस उपन्यास को नेपाली साहित्य में नेपाली परिवेश को आधार बनाकर लिखा गया पहला उपन्यास माना जाता है । यह उपन्यास सत्रह परिच्छेद में 72 पृष्ठ में संरचित है । इस उपन्यास के संदर्भ में कहा गया है कि इसका पहला संस्करण मुद्रण त्रुटि के कारण हास्यास्पद था इसलिए बाद में त्रुटियों को सुधारकर आकर्षक रुप में

दूसरा संस्करण निकाला गया हैं । युवा सुलभ भावुकता, स्वच्छ प्रेम एवं मिलन उपन्यास की कथावस्तु है । लेखिका ने भीतरी मधेश के ग्रामीण परिवेश को चित्रित करते हुए समाज के आभिजात्य वर्ग के लिए स्त्री केवल मनोरंजन का साधन होने के सत्य को बयान किया है । गांव की किशोरियों को छेड़ने का संदर्भ उपन्यास में प्रस्तुत करते हुए वे पुरुषों की स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति के कारण समाज में स्त्रियां हमेशा डरी और सहमी रहने के यथार्थ को भी बताती हैं । इसके अलावा उपन्यास में राणाकालीन मध्यमवर्गीय परिवार का परिवेश, सरल सहज नेपाली भाषा, वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है । नेपाली स्त्री लेखन का तीसरा उपन्यास 'पश्चाताप' सन् 1963 में मायादेवी सुब्बा द्वारा लिखा गया हैं । यह उपन्यास नारी के आदर्शवादी रुप को महत्व देता है लेखिका का मानना है कि स्त्री सदगुणी होने से उसकी संतान भी सदगुणी और सज्जन होती है । साथ ही स्त्री के इसी स्वभाव एवं गुण से घर में लक्ष्मी का वास होता है और श्री संपति बढ़ती है । यदि स्त्री दुर्गुणी होती है तो संतान भी उसके दुष्प्रभाव का शिकार हो जाती है जिसके कारण समाज में विकृति फैलती है । स्त्री के त्याग और समर्पण की भावना को महत्व देकर लेखिका ने उपन्यास में आदर्शवादी विचारधारा और पुरुषवादी विचारधारा का अवलंवन किया है । उपन्यास में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के पात्रों का चुनाव किया गया हैं किसी का दुखद अवसान हुआ है तो किसी को प्रायश्चित के साथ-साथ गतिशीलता प्रदान की गई हैं । यह उपन्यास नेपाली समाज के मध्यम वर्गीय समाज को आधार बनाकर लिखा गया है । तृतीय पुरुष दृष्टि बिंदु में संरचित इस उपन्यास का उद्देश्य नैतिक शिक्षा देना है । सरल नेपाली भाषा में लिखे गए इस उपन्यास की शैली वर्णनात्मक है । मायादेवी सुब्बा ने इसके अलावा दो और उपन्यास लिखे हैं 'पोथी बासे को घर' और वीणा विक्रम । दोनों उपन्यास में तत्कालीन नेपाली समाज की विसंगतियों को प्रस्तुत किया गया है । सन् 1965 में शातिं प्रधान ने 'करुणा'उपन्यास लिखकर नेपाली साहित्य को और अधिक समृद्ध करने का काम किया हैं । यह उपन्यास दार्जिलिंग से प्रकाशित किया

गया था । एक नर्स की निस्वार्थ सेवा भावना को उपन्यास का विषय बनाया गया हैं । निस्वार्थ मानव सेवा को सर्वोपरी मानकर लेखिका ने यहां पर मानववादी दृष्टिकोण को अपनाया है । लोक कल्याणकारी भावना इस उपन्यास के मूल में दिखाई पड़ती है । लेखिका ने जगह-जगह पर प्रकृति का सुंदर चित्रण करते हुए स्वच्छंदवादी विचार को भी अपनाया है । उपन्यास में अधिकतर बाइबल की सूक्तियों के प्रयोग से यह पता चलता है कि लेखिका ईसाई धर्म से प्रभावित थी । नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन के आरंभिक काल की हिंदी स्त्री उपन्यास लेखन के आरंभिक काल से तुलना की जाए तो समय संवत के हिसाब से नेपाली स्त्री लेखन बहुत समय बाद से आरंभ होता है और उपन्यासों की संख्या एवं लेखिकाओं की संख्या भी हिंदी से बहुत कम देखी जाती हैं । इसका कारण यह हो सकता है कि नेपाल में स्त्री शिक्षा बहुत समय बाद शुरु हुई । राणाओं के निरंकुश शासन के तले स्त्री अधिकार पिसे गयें । शिक्षा का अधिकार उन्हीं तक सीमित रहा जो राणा शासकों की चाकरी करते थे या फिर जो समाज के उच्चवर्ग से संबंध रखते थे । इसके अलावा यदि और किसी वर्ग की गिनी-चुनी स्त्रियां शिक्षित रहीं भी होंगी तो उनमें साहित्य लेखन की चेतना या रुझान नहीं रहा होगा । इस काल की सभी उपन्यास लेखिकायें लगभग संपंन परिवार से ही ताल्लुख रखती हैं । आर्थिक अभाव, प्रकाशन की समस्या, घर की जिम्मेदारी और पितृसत्तात्मक संकुचित मानसिकता स्त्री लेखन के विकास में प्रमुख बाधक के रुप में देखा गया । भारत की बात करें तो अंग्रेजी हुकूमत ने शिक्षा क्षेत्र को बेहतर ही नहीं बनाया बल्कि अनिवार्य कर दिया था जिसके कारण भारतीय महिलाओं में शिक्षा संबंधी चेतना नेपाली लेखिकाओं की तुलना में अधिक रही । भारत में स्वतंत्रता संग्राम से ही स्त्रियां सामजिक कार्यों में सक्रिय देखी जाने लगी थी जिसके कारण उनमें बाहर की दुनिया का ज्ञान नेपाली लेखिकाओं की तुलना में अधिक बढ़ा । अंग्रेजी सभ्यता ने भारतीय समाज को आधुनिक तो बनाया ही साथ ही रुढ़िग्रस्त समाज की बुराइयों को भी उखाड़ फेकने में मदद की । शिक्षा एवं साहित्य में नयी विचारधारा का प्रवेश हुआ देश के प्रत्येक

कोने में विकास की नींव रखी जाने लगी जिससे भारतीय जनजीवन सुखी और समृद्धि की ओर अग्रसर होता गया । इन्हीं वजहों से भारतीय समाज नेपाली समाज से विकसित स्थिति में पहुंच पाया हैं । नेपाली समाज आज तक धार्मिक अंधविश्वास और रुढ़िवादी मानसिकताओं में ही उलझा हुआ दिखाई देता हैं । रचनाओं में विषय वस्तु और लेखन शैली की चर्चा करें तो हिंदी लेखन में प्राचीनता के साथ-साथ नवीनता का भी समावेश देखा जाता है । कुछेक लेखिकाओं के अलावा बहुत सी लेखिकाओं ने तत्कालीन समाज की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतक विषय वस्तुओं को उपन्यास का आधार बनाया हैं । पितृसतात्मक समाज में स्त्री जनजीवन की जटिलताओं के साथ सामाजिक विसंगति को भी चित्रित किया गया हैं । भाषा शैली और संवाद कला की दृष्टि से भी हिंदी स्त्री उपन्यास लेखन तुलनात्मक रुप में उत्कृष्ट दिखाई पड़ता है । नेपाली लेखन विषय वस्तु के हिसाब से हिंदी से कम तो नहीं है परंतु सीमित जरुर है ।

२.३.२ उत्कर्ष काल (1965- 2000)

नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन का उत्कर्ष काल सन् 1965 से 2000 तक माना जा सकता है । यह काल विभाजन विशेषकर साहित्यिक प्रवृति के आधार पर किया गया हैं । क्योंकि हमने देखा सन् 1965 तक स्त्री उपन्यास लेखन परंपरागत ढांचे और प्राचीन मान्यताओं को ही आत्मसात करके आगे बढ़ा है । यूं कहे यह काल खासकर उपन्यास लेखन के अभ्यास का काल था । लेखिकाओं ने उपन्यास लेखन के दौरान अपनी कल्पना शक्ति को आजमाया है । इनके उपन्यास में मौलिकता तो है परंतु यह मौलिकता किसी विशेष परिधि तक ही सीमित है । उपन्यास की कथावस्तु का चैयन, घनाक्रम को सिलसिलेबार तरीके से प्रस्तुत करने की कला, संवाद शैली आदि पर आरंभिक काल की लेखिकाओं का विशेष ध्यान गया हैं । जिसके कारण उपन्यास की रुपरेखा का तो ठीक-ठाक विकास हुआ परंतु विचार दृष्टि का अभाव इस काल में खलता है । आरंभिक काल की लेखिकाओं ने स्त्री की तत्कालीन स्थिति का तो बयान किया परंतु उसके खिलाफ विद्रोह करने का साहस

नहीं जुटा सकी । स्त्री उत्थान या मुक्ति के लिए अपने विचारों को प्रस्तुत करने में इस काल की लेखिकायें असक्षम रही हैं । इस असक्षमता को सक्षम बनाते हुए नेपाली साहित्य जगत में पारिजात (बिष्णुकुमारी बाइबा) का आगमन होता है । यहीं से स्त्री उपन्यास लेखन का उत्कर्ष काल भी शुरु होता हैं । वैचारिक एवं सैद्धांतिक पक्ष के प्रयोग से साहित्य में आधुनिकता और नवीनता तो आती है साथ ही प्रगतिवादी विचारधारा साहित्य का मेरुदण्ड बनकर उभरती हैं । पारिजात ने सर्वप्रथम पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के अस्तित्व की खोज की है । वह अपने साहित्य के माध्यम से दुनिया को यह बताना चाहती हैं कि स्त्री समाज पर पाबंदी लगाने से उसके गुण और क्षमता में कमी नहीं लाई जा सकती बल्कि यह पुरुष समाज की कायरता कहलायेगी । यह सत्य है कि स्त्री लेखन का आरंभिक दौर स्त्री के व्यक्तिगत अनुभूति का साहित्य है । इसी संदर्भ में डॉ. प्रीत अरोड़ा लिखती हैं **"युग चेतना के संवहन के बिना साहित्य पूरा नहीं हो सकता । बाहरी दुनिया एवं अपने आस-पास जो घटता है उसके अपने भीतर क्रिया-प्रतिक्रिया स्वरुप होने वाली उठा-पटक को ही स्त्री जीते हुए अपनी रचना को केन्द्रित कर लेखन विषय बनाती हैं । स्वभाविक है कि स्त्री अपनी समग्रता की खोज में जिन चुनौतियों को झेलती है, वे सभी लेखिका की चुनौतियों की कहानी बनते हैं ।"**[24]

इस विचार के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्त्री लेखन पर लगाया गया 'स्त्रियोचित' आरोप बेबुनियादी और अहमतावादी मनोवृत्ति का सूचक है । हिंदी के उत्कर्ष काल में जो भूमिका कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा की रही हैं । वहीं भूमिका नेपाली साहित्य के उत्कर्ष काल में पारिजात, गीता केसरी, डॉ. बानिरा गिरी की रही है । नेपाली साहित्य के उत्कर्ष काल का पहला उपन्यास पारिजात का 'शिरीष का फूल' (1965) है । यह उपन्यास अस्तित्ववादी विचारधारा से प्रभावित है । इसके अलावा इस उपन्यास में विसंगतिवादी और शून्यवादी दर्शन को भी देखा जा सकता है । द्वितीय विश्वयुद्ध की त्रासदी और स्त्री जीवन पर पड़े

उसके प्रभाव को इस उपन्यास की कथावस्तु बनाई गई है । स्त्री मन का अंतरद्वंद्व और जीवन के प्रति बढ़ती निराशा को लेखिका ने बड़ी ही सूझबूझ के साथ प्रस्तुत किया है । राल्फाली संलग्नता और दर्शन को पारिजात ने अपने दूसरे उपन्यास 'मत्ताहीन' में प्रस्तुत किया है । पारिजात पर मार्क्स और लेनिन के विचारधारा का गहरा प्रभाव देखा जाता है । उनका समग्र साहित्य समाज कें हासिये के वर्ग का साहित्य हैं । उनके जीवन की पीड़ा, वेदना, त्रासदी, उपेक्षा, अभाव जैसे विषय इनके साहित्य को यथार्थ की धरातल पर लाकर खड़ा कर देते हैं । इनके अन्य प्रमुख उपन्यास बैंसको मान्छे (जवान आदमी), तोरीबारी बाटा र सपना हरु (तोरी खेत के रास्ते और सपनें), उसले रोजे को बाटो (उसका चुना रास्ता), अंतर्मुखी, पर्खालभित्र र बाहिर (दीवार के अंदर और बाहर) अनिदो पाहाड संगै (सुषुप्त पाहाड के साथ) और बोनी आदि इनकी महत्वपूर्ण कीर्तियां हैं । पारिजात ने अपने इन उपन्यासों में नेपाली राजनीति में बढ़ रही विसंगतियों, सामाजिक अपराध, स्त्री, दलित शोषण, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, बेरोजगारी, सत्ता की निरंकुशता, वर्ग संघर्ष, लैंगिक विभेद, पूंजीपतियों एवं जमींदारों के अत्याचार, उपभोक्तावादी समाज का शिकार बनती स्त्रियां आदि सामाजिक सरोकार के मुद्दों को उठाया है । पारिजात इस बढ़ते बाजारवाद की दुनिया में स्त्री अस्मिता की रक्षा को लेकर चिंतित दिखाई पड़ती हैं उनका मानना है **"सौन्दर्य प्रतियोगिता इस पूंजीवादी समाज में महिलाओं के उपर होने वाले शोषण का एक रुप है । यद्यपि इस प्रतियोगिता को स्त्री ने स्वयं चुना है परंतु इसका लाभ पुरुषों को हो रहा है ।"**[25]

परिजात की उपभोक्ता एवं बाजारवाद संबंधी यह धारणा हिंदी लेखिका चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान और रमणिका गुप्ता से मिलती-जुलती है । समाज रुपांतरण की शुरुआत विचारों और सिद्धांतो से नहीं बल्कि व्यवहार से होती है कि मान्यता रखने वाली पारिजात ने नेपाली समाज में वर्षों से शोषित और अवहेलित स्त्रियों के हक के लिए साहित्यिक और राजनीतिक स्तर से आवाज उठाई हैं । अतः साहित्य

में पारिजात के इस योगदान को भूलाया नहीं जा सकता । नेपाली साहित्य में दूसरा महत्वपूर्ण नाम गीता केसरी का है । इन्होंने नेपाली साहित्य को नयें विचार और नयी दृष्टि तो दी है साथ ही नेपाली साहित्य को देश-विदेश तक पहुंचाने का काम किया है । इनके प्रमुख उपन्यास कसिंगर, सौगात, आवाज, मुक्ति, खोज, आखिरी निमंत्रण, विश्वास, खुला आकाश, नोकरी, निष्कर्ष और बदलता क्षितिज आदि हैं । गीता केसरी ने राणा काल के बाद के राजनीतिक, आर्थिक परिवेश और स्त्री की तत्कालीन स्थिति को उपन्यासों में रेखांकित किया है । गीता केसरी का 'कसिंगर' उपन्यास लैंगिक विभेद पर आधारित है उनका मानना है जवानी के जोश में स्त्री पुरुष दोनों से गलती होती है परंतु उस गलती की भुक्त भोगी स्त्री ही क्यों होती है ? गलती का सारा दोष केवल स्त्री पर ही क्यों मड़ दिया जाता है ? जैसे पुरुष इस गलती के लिए स्वतंत्र है या फिर अधिकार संपंन है । इस तरह के विभेद स्त्री मन में हीन भावना या कुंठा भर देते हैं । जब स्त्री को इस तरह की समस्याओं से उलझा रहना पड़ेगा तो वे कब अपने व्यक्तिगत विकास के बारे में सोच पायेगी ? सौगात उपन्यास में नेपाली समाज में अनमेल विवाह की समस्याओं से जूझती हुई स्त्री की असह्य पीड़ा को दिखाया गया है, तो आवाज उपन्यास में आर्थिक विपन्नता के कारण गरीब नेपाली जनता धरेलू कामदार के रुप अपनी संतान को बाहर काम पर भेजने की बाध्यता कि समस्या रेखांकित की गई है । दूसरी तरफ इस परिस्थिति से उत्पन्न हिंसा, बलात्कार जैसी समस्याओं ने उन्हें अधिक पीड़ित और चिंतित बना दिया है । नेपाली समाज का सर्वहारा वर्ग न्याय शून्यता की स्थिति में जीवन की जटिलताओं को झेलने पर बाध्य है । इन्हीं विषय वस्तुओं को उपन्यास की कथावस्तु के रुप में प्रस्तुत किया गया है । अंतिम निमंत्रण में लेखिका ने जनस्वास्थ मूलक चेतना का संचार करने के लिए विश्वभर में एक भयानक रोग के रुप में फैलते जा रहे एड्स के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है । साथ ही इस बीमारी से बचने की सलाह भी दी है । इसके अलावा विश्वभर में यौन व्यवसाय के लिए की जा रही लड़कियों की तस्करी को अमानवीय

बताते हुए इस तरह की गतिविधियों से सचेत रहने के लिए आग्रह भी किया हैं । खुले आकाश में नीतिवादी, सुधारवादी, और आदर्शवादी विचारधारा को अवलंवन किया गया है । नौकरी उपन्यास में प्रजातंत्र की व्यवस्था पश्चात प्रशासनिक क्षेत्र में बढ़ते जा रहें भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार, शोषण और परंपरा के नाम पर देवदासी जैसी कुप्रथा यथावत होने की समस्याओं को कथावस्तु के रुप में चित्रित किया गया है । गीता केसरी स्त्री शिक्षा को परिवर्तन का मूल आधार बताते हुए लिखती हैं **"स्त्री को शिक्षा चेतनशील बनाती है और वही चेतना स्त्री के जीवन, परिवार, समाज और राष्ट्र को भी समृद्ध बनाने में अहम भूमिका निर्वाह करती हैं । संकीर्ण सामाजिक मानसिकता को स्वीकारने का मतलब नरकीय जीवन को स्वीकार करना है अतः हमें चाहिए कि विवेक पूर्ण ढंग से अपनी शक्ति को पहचाने और आगे बढ़े, इससे स्त्री के व्यक्तित्व में सुधार आने के साथ-साथ स्त्री विरोधी क्रियाकलापों में भी न्यूनता आयेगी ।"**[26]

डॉ. बानिरा गिरी नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन की एक सशस्त हस्ताक्षर हैं । इनके प्रमुख उपन्यास कारागार, निर्बंध, शब्दातीत शांतनु है । कारागार उपन्यास में डॉ. बानिरा ने वर्तमान समय में मानवीय संबंधों में स्वार्थ के कारण बढ़ती जा रही अविश्वसनीयता, छल, प्रपंच को व्यक्त किया है । आमतौर पर आज की स्त्रियां अपने ही सगे-संबंधियों से ही फसाई जाती हैं । इस स्थिति में स्त्री मन के अंर्तद्वंद्व को समझाने का प्रयास किया गया है । निर्बंध उपन्यास एक ऐसी लड़की की कथा है जो अपने पिता के स्वच्छाचारी प्रवृत्ति से तंग आकर विद्रोह करती है और उसके अंदर बदले की भावना पनपने लगती है । अतः इस उपन्यास में परिवर्तन की चाह और सामाजिक रुढ़ियों का बहिष्कार दिखाई पड़ता है । शब्दातीत शान्तनु उपन्यास में मानव में निहित व्यक्तिगत प्रवृत्ति, व्यवहार, आचरण आदि की व्याख्या उत्तर आधुनिकवादी विचारधारा के आधार पर की गई है । प्रवाहमयी, चित्रात्मक भाषा, सशक्त विचार अभिव्यक्ति के कारण इनका उपन्यास उत्कृष्ट बना है । इनके अलावा नेपाली साहित्य के उत्कर्ष काल की अन्य उपन्यासकारों में सरिता प्रधान (

अर्चना), कृष्णकुमारी राई (समर्पिता का अस्तित्व), कमला न्यौपाने (उसका सपना), भागीरथी श्रेष्ठ (मालती), (ऐसा एक आकाश), (कारागार की आग) हिंदी से नेपाली में अनुवाद (अग्निपर्व), ललिता देवान (आँसू), उषा सुन्दास (बिन्दु), सावित्री देवसा (टुक्रडों में उपासना), प्रेमा शाह (अकाश विभाजित है), (मम्मी), शारदा (एक धून बाँसुरी की), (त्रिकोण), (कृष्ण पुष्प), (धूल का फूल), विन्द्या सुब्बा (फूल), (पहाड), (रेखायें), (अथाह), (निर्गम), हिंदी उपन्यास त्यागपत्र का नेपाली में अनुवाद, राधा रसाइली (बदलता समाज), (गंगा सागर), (आँधी), सविता श्रेष्ठ 'बेहोसी' (अनंत की आशा में मिलती दो समानांतर रेखायें), (जीवनज्योति), अनुपमा (शिवा), (एक भेद दो हत्यायें), (रहस्यमय युवा), माया 'निराशी' (ज्योती का सपना), (पश्चाताप के आँसू), भारती खरेल (गंगा जमुना), (एक माँ की कथा), (कुंवारी माँ), (लाहुरे), पुष्पा राई (कल की प्रतिक्षा में), (मध्यांतर), ईशा शाह (कथा का अंत), (उजाडी़ गई मांग), (संकल्प), (किनारे पड़ी लास), श्रेष्ठ, प्रिया (पतंगर), (पूकार), (रंगभूमि), (मर्यादा), (कसिंगर), (पुनरावृत्ति), शांति पराजुली (सुमा), संगीता 'स्वेच्छा' (धोई गई मांग), गीता शर्मा (खुशबू), रोहिणी शाह (प्रेरणा), शवनम श्रेष्ठ (मनीषा), नीलम कार्की 'निहारिका' (मौनजीवन), (नियति का खेल), (दूसरी औरत), (कागज में दस्तखत),(चीरहरण), (योगमाया), (द्रोपदी अवशेष), पुण्यरश्मि खतिवडा (जयन्त जुनू), (अकलांत), (अधूरी अभिलाषा),, शोभा राना (लावारिश), (शिकार), सुस्मिता नेपाल (सन्नटा भी रोता है), (मेरे छाती के कोलाज), (बीती हुई उम्र), (काली-काली रातों में चलते हुए), (आवाज का जन्म), ईश्वरी खड़का (सविता भाग गई), गायत्री विष्ट (जुगनू), सीता पाण्डे (अवतार विघटन), (अंतर्द्वद्व), इंदिरा परसाई (विश्वामित्र), (रनमाया), (शिखा), (उसका पति और बिलार), शारदा शर्मा, (ताप), (कम्प), हरिमाया भेटवाल (मोम के आदमी) (कल्ली), टीकाकुमारी याखा (अंगुली का सिंदूर), वेदकुमारी न्यौपाने (धूवां) आदि इस काल की महत्वपूर्ण रचना एवं रचनाकार है । इनके उपन्यासों में विशेषकर पितृसत्तात्मक समाज की क्रूरता, उत्पीडऩ, उपेक्षा, विभेद, त्रासदी के साथ-साथ भौतिकवादी समाज की अमानवीयता दोहरे काम के

बोझ से पिसता महिला जीवन, अर्थमुखी समाज में घटते मानवीय मूल्य और इसका शिकार होती स्त्री, बदलते पारिवारिक और सामाजिक संबंध, दो पीढ़ियों का अंतराल, स्त्री अस्मिता के लिए घातक बनती ग्लैमर की दुनिया, स्त्री स्वतंत्रता के बदलते स्वरुप, तकनीकी दुनिया के जाल में फसती स्त्री, कागजों पर सीमित स्त्री अधिकार, स्त्री यौनिकता पर आधुनिक विचार, वेश्या जीवन और कानूनी अधिकार, युद्ध का स्त्री समाज पर प्रभाव, प्राकृतिक प्रकोप और महामारी के दौरान स्त्री के द्वारा झेली गई समस्यायें । राजनीतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार, राजनीति में स्त्री का शोषण, प्राचीनता और नवीनता के बीच का संघर्ष, स्त्री के मातृत्व का अधिकार आदि विषय पर इस काल की लेखिकाओं ने कलम चलाई है । भाषा एवं शैली के दृष्टि से भी इस काल की रचनाओं को उत्कृष्ट मानन जा सकता है ।

२.३.३ वर्तमान काल (2000 .....)

इक्कीसवीं शदी तक पहुंचते-पहुंचते मानवीय समाज में कई परिवर्तन दिखाई पड़ने लगते हैं । समाज की संरचना से लेकर मानवीय व्यवहार और विचारों तक में इसका प्रभाव देखा जाता है । जो समाज धर्म के निर्देशन से चलता था । पाप और पुण्य की परिधि में बांधा गया था आज वही समाज धर्म और दर्शन में तर्क खोज रहा है । आज के लोगों में इतनी चेतना आ चुकी है कि धर्म मानव द्वारा निर्मित है और इसे मानव ने अपनी सुविधा के लिए निर्माण किया है न कि मानव धर्म के लिए बनया गया हैं । स्त्री के संदर्भ में तो यह चेतना काफी प्रभावकारी देखी जा रही है जिसकी आड़ में वर्षों तक उसका शोषण किया गया, उसकी स्वतंत्रता छीनी गई, कभी यौन सुचिता के नाम पर उन्हें नियंत्रित किया गया तो कभी स्त्री सुरक्षा के नाम पर उनके क्रियाकलापों पर अंकुश लगाया गया । आज की स्त्रियां धर्म और समाज के ठेकेदारों से तर्क करती दिखाई पड़ती हैं । राष्ट्र के प्रत्येक निकाय में महिलायें बराबरी की साझेदारी चाह रही हैं और खुद को साबित भी कर रही हैं । अपने जीवन के इतिहास के आधार पर नये जीवन की राह खोजना आज के स्त्री समाज का उद्देश्य है । नेपाली उपन्यास लेखन के वर्तमान काल में भी इन्हीं

विचारधाराओं का प्रभाव देखा जाता है । इस काल की शुरुआत सन् 2000 से मानी जा सकती है । शांता श्रेष्ठ, कमला कुंवर और आन्विकार गिरी आदि को इस काल की प्रतिनिधि उपन्यासकार के रुप में लिया जा सकता है । शांता श्रेष्ठ की प्रमुख रचनायें संघर्ष के अंदर के अनौठे कदम (2001) एवं घाव उसका और दर्द मेरा, (2003) संघर्ष के भीतर के अनौठें कदम में लेखिका ने नेपाली समाज में प्रचलित धार्मिक अंधविश्वास और उसकी आड़ में साधु-संत और ढोंगी बाबा द्वारा कियें जाने वाले अमानवीय कुटिल कार्य का पर्दफास किया है । इक्कीसवीं शताब्दी में भी नेपाली समाज के कुछ ऐसे समुदाय है जो जादू-टोना, तंत्र-मंत्र और चमत्कार में विश्वास करते हैं । इस अंधविश्वास का शिकार औरतें होती हैं । विभिन्न प्रलोभन देकर उनका शोषण तो होता ही साथ ही उनसे अनैतिक काम भी करवायें जाते हैं । पुरुष यदि जादू-टोना, तंत्रमंत्र करता है तो समाज में वह ज्ञानी व्यक्ति के रुप में जाना जाता है । यही काम यदि स्त्री करती है तो उसे डायन कह कर यातनायें दी जाती हैं, इतना ही नहीं उसे समाज से अलग कर दिया जाता है । समाज की इसी समस्या को लेखिका ने उपन्यास की कथावस्तु के रुप में प्रस्तुत किया है । उपन्यास में सरल भाषा एवं उत्कृष्ट संवाद शैली के प्रयोग के साथ-साथ नेवारी समुदाय एवं परिवेश को विशेष रुप से रेखांकित किया है । ग्रामीण नेपाली समाज में व्याप्त बेराजगारी, अशिक्षा, हत्या, हिंसा, बलात्कार, छल-कपट, कुटिलता षडयंत्र आदि को प्रस्तुत करना इस उपन्यास का विशेष उद्देश्य है । इनका दूसरा उपन्यास घाव उसका और दर्द मेरा में एक निरंकुश पशुतुल्य पिता के विवेकहीन कुकर्म के कारण नरकीय जीवन जीने पर बाध्य बनाई गई बेटी की दारुण गाथा को मार्मिक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है । साथ ही प्रेमिका के वियोग में क्षत-विक्षत हुए प्रेमी की मनोदशा का भी चित्रण हुआ है । उपन्यास में विशेषत: यह बताने की कोशिश की गई है कि नेपाली समाज में विभिन्न वर्ग, जाति, उम्र, परिवेश की स्त्रियां किसी न किसी रुप में शोषित एवं पीड़ित है । जाति और लिंग भेद जैसी समस्या के कारण आये दिन कई लोग हिंसा का शिकार बनते हैं । विश्वव्यापी रुप में चल रहे महिला

अधिकार की अवधारणा नेपाल में केवल नारों और व्यक्तिगत स्वार्थ तक ही सीमित है नेपाल में देह व्यापार के लिए आये दिन लड़कियों की खरीद-बिक्री एक बहुत बड़ी समस्या है । इस समस्या के समाधान के लिए पुलिस प्रशासन सचेत नहीं बल्कि अपराधियों से मिली हुई दिखाई पड़ती हैं । पैसों में बिके हुए प्रशासन के कारण ही देश में अपराध बढ़ रहें हैं । लोगों में असुरक्षा का भाव उत्पन्न हो रहा है । यही भ्रष्ट गति विधियां ही महिला हिंसा की जिम्मेदार हैं । उनका मानना है ऐसी स्थिति मे स्त्री को स्वयं सचेत, शिक्षित और निडर होकर अपने खिलाफ होने वाले अपराध से लड़ने की क्षमता का विकास करना इसका एक मात्र विकल्प है । उपन्यास में अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के पात्रों का चयन किया गया है । अनुकूल पात्र निर्दोष, निरीह, परोपकारी, शिक्षित तथा मानवीय संवेदना से ओतप्रोत है । तो प्रतिकूल पात्र दुष्ट और दुराचारी, अमानवीय आचरण का अनुकरण करने वाले हैं । इन्हें नेपथ्य सहभागी के रुपमें उपस्थित किया गया है । काठमाण्डौं के मध्यम वर्गीय शहरिया परिवेश में प्रस्तुत किया गया यह उपन्यास सहज सरल नेपाली भाषा में मध्यम वर्गीय समाज में स्त्री शोषण के विविध पक्ष पर प्रकाश डालता है । इसी तरह यदि कमला कुंवर 'सुजात' के उपन्यासों का विवेचन करे तो अतृप्त चाहत (2001), बंधंन (2001), अन्त्यहीन पीड़ा (2004), पराजित अस्तित्व (2007), ये चार इनके प्रमुख उपन्यास है । धार्मिक, पारंपरिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक क्षेत्र में स्त्री प्रति के संकुचित दृष्टिकोण और इससे उत्पन विभेद, त्रासदी एवं पीड़ा को इन्होंने सूक्ष्म रुप में रेखांकित किया है । साथ ही इस परिवेश का बौद्धिक और तार्किक रुप से विरोध भी किया है । पैदा होते ही विभेद का दंश झेलती हुई लड़की अपना बचपन और किशोरावस्था कई मानसिक यातनाओं के साथ संघर्ष करती हुए आगे बढ़ती है । यहां तक कि जन्म देने वाले माता-पिता उसे एक बोझ के रुप में लेते हैं । लड़की के विवाह होने तक ही उसे अपने परिवार का सदस्य समझा जाता है । उसके उपरांत माता-पिता की जिम्मेदारी खत्म हो जाती है । लड़की पढ़ी लिखी है या नहीं यह बात महत्वपूर्ण नहीं होती महत्वपूर्ण

यह होता है कि लड़की सहनशील और सुशील है कि नहीं ताकि दोनों परिवार मिलकर उसके सीधेपन का फायदा उठा सके । शिक्षा, स्वतंत्रता और संपति के अधिकार के मामले में स्त्री के लिए बनाया गया कानून कागजी रुप में तो परिमार्जित दिखता है परंतु व्यवहारिक रुप में बहुत ही जटिल है । लेखिका स्त्री की इन समस्याओं का समाधान शिक्षा और आत्मनिर्भरता को बताती हैं । लेखिकाने अपने उपन्यास में एक महत्वपूर्ण सवाल यह उठाया है कि इस इक्कीसवीं सदी के समाज में जहां स्त्री के अधिकारों को संबोधन करने की बात आये दिन होती है उस समाज में आज तक यह कानून क्यों नहीं बनाया गया कि माँ के नाम पर उसके बच्चों को नागरिकता मिल सके । जबकि यह उसका जन्म सिद्ध अधिकार है । वह एक माँ बेटी, पत्नि होने के साथ-साथ देश की कुशल नागरिक भी है । वह देश के विकास में कई तरीके से अपना योगदान देती है परंतु राज्य आज तक उसके इस योगदान को नजर अंदाज करता आया है । इसके अलावा वह अपने उपन्यासों के माध्यम से यह भी बताती हैं कि वेश्याओं को हमेशा उपेक्षित दृष्टि से देखने वाला यह समाज पुरुषों को दोषी क्यों नहीं मानता ? जबकि दोनों बराबर के दोषी है । यदि पुरुष स्त्री के इस बाजार को प्रोत्साहित नहीं करता तो शायद स्त्रियां अपने लिए रोजगारी का दूसरा विकल्प नहीं खोजती ? एक तरफ राज्य स्त्री के इस व्यवसाय को गैरकानूनी या उपेक्षित मानता है तो दूसरी तरफ वेश्याओं का उपभोग भी करता है । अत: राज्य की इस दोहरी मानसिकता के तले हमेशा स्त्री समाज ही पिसता आया है । लेखिका इस बात का भी खुलासा करती है कि सैद्धांतिक रुप में यह व्याख्या की जाती है कि स्त्री पुरुष एक रथ के दो पहियें है परंतु यथार्थ में इस विचार की खिल्ली उडायी गयी है । धर्म के नाम पर स्त्री का शोषण हिन्दू समाज में एक बहुत बड़ी समस्या है । पति की दीर्घायु के लिए पत्नी को निर्जल उपवास के लिए बाध्य किया जाता है इससे स्त्री शारीरिक रुप से कमजोर तो पड़ती ही है साथ ही उसमें भाग्यवादी विचारधारा का भी विकास होता है । यह दोनों चीजें स्त्री के व्यक्तित्व विकास में बाधक हैं । हिंदू धर्म में पुरुष कभी

स्त्री के लिए उपवास या किसी प्रकार का त्याग नहीं करता बल्कि वह इस तरह के उपवास से अपनी तौहीन समझता है। इसके अलावा इनके उपन्यासों में किन्नर समाज की पीड़ा और वेदना भी आंशिक रुप में देखी जा सकती है। कमला कुंवर ने नेपाली समाज में देखे जाने वाले समग्र स्त्री शोषण और दमन को उपन्यासों में समेटने का प्रयास किया है। स्त्री दृष्टि से लिखें गयें इनके उपन्यासों में पितृसत्ता का विरोध और धार्मिक रुढ़ियों के प्रति व्यंग्य देखा जाता है। कथावस्तु और औपन्यासिक शिल्प के आधार पर भी इनके उपन्यास को समकालीन उपन्यासों में उत्कृष्ट माना जा सकता है। आन्विका गिरी वर्तमान समय की प्रगतिवादी लेखका हैं। इन्होंने कहानी, बाल साहित्य और उपन्यास लिखकर नेपाली स्त्री लेखन को समृद्ध किया है। आन्विका वर्तमान समय में प्रचलित मार्क्सवादी, समाजवादी और माओवादी विचारधारा का समर्थन करती हैं। और उन विचारधाराओं के व्यवहारिक पक्ष में देखी जाने वाली विकृतियों की आलोचना भी करती हैं आन्विका की 'कम्युनिष्ट' कहानी व्यवहारिक और सैद्धांतिक यथार्थ का खंडन करती हुई दिखाई पड़ती है। इसके अलावा लापता, मैं नहीं मरुंगी कमरेड़ जैसी कहानी में आन्विका ने दस साल के सशस्त्र जनयुद्ध की विभिषिका को बड़े ही मार्मिक ढ़ग से प्रस्तुत किया है। आन्विका ने अधिकतर कहानियां लिखी है। उनका एक ही उपन्यास प्रकाशन हुआ है। मान्छे को रंग (2014) (आदमी का रंग), इस उपन्यास को लिखकर आन्विका गिरी ने साबित कर दिया है कि नेपाली लेखिकाओं को राजनीतिक गतिविधि एवं संयंत्र का संपूर्ण ज्ञान है। आन्विका ने इस उपन्यास में माओवादी विचारधारा और उसके सैद्धान्तिक पक्ष को ही उपन्यास की कथावस्तु नहीं बनाया है। बल्कि जनयुद्ध के दौरान भोगे गयें और देखी गई घटना को उपन्यास में हुं-ब-हुं उतार है। **"क्रांति आगे बढ़ रही है, गांव-गांव में संगठन स्थापित हो रहें हैं। दोस्त पकड़े जा रहें हैं और दुश्मनों के किले ध्वस्त करने का और उन्हें मारने का क्रम भी जारी है कभी हमारी जीत होती है तो कभी उनकी लेकिन हम जीतेंगे मैं विश्वस्त हूं।"**[27]

आन्विका ने द्वंद्व काल के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्ष को प्रस्तुत किया है अतः यह उपन्यास परिमार्जित विचारधारा का समर्थक दिखाई पड़ता है । हिंदी लेखिका मधु कांकरियां का खुले गगन के लाल सितारे और आन्विका का यह उपन्यास कुछ हद तक मिलता जुलता है । माओवादी द्वंद्वकाल का यथार्थ चित्रण के साथ-साथ क्रांति में महिला सहभागिता और उस दौरान पुलिस प्रशासन में आबद्ध महिलायें और सशस्त्र क्रांति में संलग्न महिलाओं के साथ किये गयें अमानवीय व्यवहार का भी मार्मिक चित्रण किया गया है । समाज रुपांतरण के इस पहल में कई निर्दोष लोगों की जान जाने पर लेखिका अफसोस भी व्यक्त करती है, तो पुलिस और क्रांतिकारी के बीच के भीषण युद्ध की व्याख्या और आलोचना भी करती हैं । इस उपन्यास की प्रमुख पात्र स्त्री है । एक स्कूल पढ़ने वाली लड़की जो शुरु में माओवादी गतिविधियों का विरोध करती है और उन्हें समाज में अशांति फैलाने वाले कारक तत्व के रुप में परिभाषित करती है परंतु धीरे-धीरे जब वह माओवादी विचारधारा और उनके उद्देश्य को समझती है तो उसका दृष्टिकोण बदल जाता है और वह क्रांतिकारियों के संपर्क में आकर उनके सूचना विभाग की सदस्य बन जाती है । इस तरह एक सीधी-साधी लड़की क्रांतिकारी बनकर समाज बदले के अभियान में पूरी ईमानदारी और निष्ठा के साथ खुद को समर्पित कर देती है । समय के साथ-साथ उसे यह भी पता चलता है कि क्रांतिकारी समूह के भीतर भी एक प्रतिस्पर्धा है । लोग पार्टी में खुद को आगे बढ़ाने के लिए दूसरों को फसा देते है या फिर उसे पुलिस का सुरागी होने का आरोप लगा देते है । लेखिका का मानना है कि इतने भीषण संघर्ष के बाद माओवादी जनआंदोलन सफल तो हुआ परंतु देश के लिए प्रभावकारी नहीं हो सका । इसलिए लेखिका जनआंदोल से अपने भ्रम टूट जाता है । अतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान काल की लेखिकायें राजनीति सहित समग्र विषय वस्तुओं पर कलम चलाने में सक्षम हैं । इसी तरह एक दमदार महिला उपन्यासकार के रुप में उभर रही सरस्वती प्रतीक्षा का जिक्र करना भी आवश्यक है । सरस्वती प्रतीक्षा का उपन्यास 'नथिया' (2017) में प्रकाशित हुआ

परंतु इसमें अश्लील शब्द प्रयोग किए जाने का आरोप लागाकर सरकार ने इस पर प्रतिबंध लगा दिया था । लेकिन बाद में रचना की गंभीरता और प्रासंगिकता को देखते हुए इस पर लगा प्रतिबंध हटाया दिया गया था । इस उपन्यास को 'बादी' समुदाय के गीता के रुप में परिभाषित किया गया है । सरस्वती प्रतीक्षा ने नेपाल की दलित 'बादी' समुदाय की स्त्रियों के जीवन के संघर्ष और त्रासदी को उपन्यास की कथावस्तु बनाया है । बादी समुदाय के स्त्री जीवन पर अंनुसंधान करने बाद ही प्रतीक्षा ने इस उपन्यास की रचना की है । नेपाल में 'बादी' समुदाय शोषितों के भीतर का शोषित वर्ग में आता है । विशेषकर पश्चिम नेपाल में वर्षों से रहते आ रहें, इस समुदाय के इतिहास के अध्ययन से यह पता चलता है कि प्राचीन काल से ही ये लोग गीत-संगीत में रुचि रखते थें । राजा-महाजा के दरबार में शादी-व्याह में मनोरंजन प्रदान करना और वाध्य-वाधन के सामान बनाकर बेचना ही इनका प्रमुख व्यवसाय था । बाद में राजा महाराजाओं ने और सामंती वर्ग ने इस समुदाय की स्त्रियों को अपनी यौन संतुष्टि का साधन बनाना आरंभ कर दिया जिसके कारण धीरे-धीरे इन्होंने यौन व्यवसाय को ही जीवीकोपार्जन का माध्यम बना लिया । कला-संगीत की रक्षा करने वाली यह जाति इसी कारण समाज के उपेक्षित वर्ग के भीतर दर्ज हो गई । सरस्वती प्रतीक्षा ने समाज की इस उपेक्षित जाति, स्त्री और पिता की पहचान बिना के बच्चों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार के मुद्दों को उठाने का प्रयास किया है । लेखिका का मानन है हमारे समाज में यौन व्यवसाय प्राचीन काल से चला आ रहा है । समाज इस व्यवसाय को अपनी सुविधा के मुताबिक उपभोग तो करता है परंतु जब व्यवसाय को सम्मान और कानूनी अधिकार देने की बात आती है तो मुकर जाता है । जो पुरुष यौन संतुष्टि के लिए इन औरतों के पास जाते है उन पर समाज कोई सवाल नहीं करता बल्कि वे पूरे सम्मान के साथ समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा बने रहते हैं । समाज तथा सरकार की इस विभेदकारी नीति के कारण ही इस समुदाय की स्त्रियों की दशा दिन प्रति दिन दयनीय बनती जा रही है । जब तक सरकार इस

समुदाय के उत्थान के लिए कोई ठोस नीति निमार्ण नहीं करेगी तब तक उत्थान की संभावना कम है । इस परिस्थिति में पिसते बच्चे की स्थिति को बयान करते हुए प्रतिक्षा लिखती है **"बिना पिता के लावारिस बच्चें 'पक्रैया' के प्रत्येक घर में जन्म लेते थे । कुछ बच्चों को तो उनकी माँयें उनके पिता से पहचान करा देती थी परंतु कुछ बच्चें जिनके पिता की पहचान नहीं हो पाती थी वे कभी अपनी माँ से पूछते भी नहीं थे कि उनका पिता कौन है ? माँ और बच्चों में एक प्रकार की समझदारी रहती थी । माँ सत्य है पिता विश्वास की मान्यता बादी बस्ती में शतप्रतिशत लागू होती थी ।"[28]**

बादी समुदाय की इन समस्याओं को उपन्यास में उतारन वास्तव में साहित्य को एक नया मोड़ देना है । अत: साहित्य की इस उपलब्धि के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नेपाली साहित्य भी निरंतर प्रगति के मार्ग पर अग्रसर है । इस काल की अन्य लेखिकाओं की चर्चा करें तो सरस्वती नेपाल (महामानवी कैकेयी, सन् 2000), तुलसी शर्मा (भाभी, सन् 2001), शोभा भट्टराई (अंतहीन अंत, सन् 2001), सृजना के.सी. (पुनर्जनम की भेट, सन् 2001), सरला जोशी, (अंतिम स्वीकर, सन् 2001), अप्सरा लावती (माँ की इच्छा, सन् 2001), (लोजिमा, सन् 2006), अंजु राई (फिर क्यों बिछोह, सन् 2002), इदिंरा बुढाथोकी (अमूर्त सपना, 2002), तुष्णा राज्यश्री कुंवर (प्रारंभ, सन् 2002), पुष्पलता आचार्य (मादी की पूर्णिमा, सन् 2002), (लम्बे समय के बाद, सन् 2003), (रोजी, सन् 2004), मिला इंगनाम (पुनर्मिलन, सन् 2002), शुभ श्रेष्ठ (युगसंधि, सन् 2002), कौशल्या सन् 2006), गौरा रिजाल (अघोषित द्वंद्व, सन् 2003), (युद्धोपरांत, सन् 2007), ऋचा ढुंगेल (उल्झे हुयें जीवन, सन् 2003), पीताम्बरा उपाध्याय (रास्ते में बैठा हुआ बाघ, सन् 2003), विनीता राई (दोस्त का मन, सन् 2003), भाषा भंडारी (समझौता, सन् 2003), (परिवर्तन की पृष्टभूमि, सन् 2004), कंकुरा बोहरा (जेल, सन् 2004), कविता पौडेल - बाल चीत्कार, सन् 2004), सरस्वती पोखरेल

(बिछोह के कदम, सन् 2004), सिंधु शर्मा (अधुरे सपनें, सन् 2004), सुंतली कुंवर (विवाह पूर्व की विधवा, सन् 2004), सुमित्रा अधिकारी (श्रापित रिश्ता, सन् 2004), अल्मास आन (बहु की मोटरसाइकल, सन् 2004), पद्मावती सिंह (समानान्तर आकाश, सन् 2005), भीमा कुमारी श्रेष्ठ (संघर्षशील कदम, सन् 2005), सुषमा आचार्य, (निर्णय, सन् 2005), शारदा ढुंगाना (अंतिम द्वंद्व, सन् 2005), (आलोचना में पड़ा जीवन, सन् 2006), (प्रश्न-चिन्ह, सन् 2008), द्वारिका कुईकेल (ब्लफ कलर, सन् 2005), उन्नति बोहरा (सिक्के के दो पहलूँ, सन् 2006), पुष्पा जोशी (पवित्रा, सन् 2006), रुकु कार्की (मधुरिमा, सन् 2006), (जीवनज्योती, सन् 2008), मनिषा गौचन (बल्ली की डायरी, सन् 2006), कल्पना भट्ट (पापी संसार, सन् 2007), राधिका दहाल (बगल के घर की बूढ़ी बुवा, सन् 2007), (एक टुक्रडा़ मास का, सन् 2009), उर्मिला सापकोटा (अस्मिता, सन् 2008), मीना देवी भट्टराई (चीत्कार, सन् 2008), पार्वती श्रेष्ठ (अभाव, सन् 2008), निरुपा प्रसुन (अभिषेक, सन् 2009), बाबा बस्नेत (रात की रानी, सन् 2009), राधिका माया (कला, सन् 2009), ललिता देवी, (उन्माद, सन् 2009), विष्णा विरही (सुनी-सुनी आंखें, सन् 2009), शांति थापा (मोहनी ड्ट कम, सन् 2009), सरला रेग्मी, (प्रवाह, सन् 2009), कमला पराजुली (क्षितिज का बदलता रंग, सन् 2010), गीता पोखरेल लम्मसाल, (आत्मघाती शंका, सन् 2010), प्रभा कैनी (अनावृत, सन् 2010), मंजु बम, (संघर्ष का रास्ता, सन् 2010), लिलि रिमाल (पूर्णिमा का आकाश, सन् 2010) आदि वर्तमान काल की लेखिकायें हैं । इन की रचनाओं में स्त्री जीवन का संघर्ष, चुनौतियां, पितृसत्ता का त्रास, बदलते स्त्री पुरुष संबंध, स्त्री की स्वतंत्रा और आत्मनिर्भरता पर लगाये गयें अंकुश का विरोध, स्त्री सुचिता और यौनिकता का अधिकार, समाज में दलित स्त्रियों की स्थिति, समाज की दोहरी मानसिकता का विरोध, सामाजिक आंडबर का विरोध, स्त्री के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकार की मांग, स्त्री चेतना के विविध पक्ष, जनआंदोलन के दौरान स्त्रियों द्वारा भोगा गया यथार्थ और स्त्री सहभागिता की स्थिति, आधुनिकता के कारण टूटते

मानवीय मूल्य, राजनीति में पनपता भ्रष्टाचार, पुलिस प्रशासन और उनकी ज्यादती, मीडिया के बदलते स्वरुप, इंटरनेट का मानव जीवन पर पड़ता प्रभाव, बेरोजगारी, भूखमरी और रोजगारी के लिए विदेश पलायन होते युवा समाज, अर्थमुखी समाज में बढ़ता स्त्री का क्रय-विक्रय और सामाजिक विघटन के विविध पक्षों को उपन्यास की कथावस्तु का आधार बनाया गया हैं ।

२.४ हिंदी और नेपाली स्त्री लेखनः चुनौती और संभावनायें

२.४.१ हिंदी स्त्री लेखन चुनौतियां और संभावनाएं

स्त्री लेखन आरंभ से ही चुनौति पूर्ण रहा है । स्त्री शिक्षा का अभाव, पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना और स्त्री की परनिर्भरता ने उसे पुरुष लेखन से काफी पीछे धकेल दिया था । लंबे समय तक स्त्री इसी जद्दोजहद में जीवन गुजारती रही कि कहीं तो उसे अपनी बात कहने और सुनाने का मौका मिले परंतु यह मौका उसे दिया नहीं गया बल्कि उसने अपने बलबूते पर इस मौके की तलास की । स्त्री शिक्षा एक ऐसा माध्यम बनी जिसने उसमें चेतना और आत्मविश्वास दोनों एक साथ भर दिया । हालांकि पाश्चात्य देशों में स्त्री शिक्षा संबंधी चेतना भारत से पहले ही आ चुकी थी परंतु भारत में ईष्ट इंण्डिया कम्पनी की स्थापना के बाद स्त्री शिक्षा संबंधी चेतना की अवधारणा का विकास हुआ और स्त्रियों ने अपने विचारों एवं भावनाओं को लोगों तक पहुंचाने का माध्यम साहित्य को बनाया । भारतीय मराठी स्त्री लेखिका तारबाई शिंदे भारत में स्त्री चेतना और शिक्षा की नींव रखने का श्रेय ब्रिटिश सत्ता को देती हैं । उन्होंने अपनी पुस्तक स्त्री पुरुष तुलना में लिखा है **"जब से यह राज शुरु हुआ, स्त्रियों को शिक्षा का वरदान मिला और उनमें इतनी मानसिक दृढ़ता आयी कि वे हर तरह की मानसिक और व्यवहारिक कठिनाइयों का हिम्मत से मुकाबला कर सकें । उनके दिल-दिमाग में घर बना कर बैठा अज्ञान का अंधकार दूर हुआ और उनमें यह समझ आनी शुरु हुई कि उन के लिए क्या भला और क्या बुरा है ? किससे कैसा बर्ताव करना चाहिए**

और जीवन की गाडी़ सही ढंग से कैसे चलानी चाहिए ? उन्हें यह भी समझ आने लगा कि सत्य क्या है ? धर्म और पतिव्रत क्या है ?"[29]

तराबाई शिंदे के इन विचारों का समर्थन करना वाजिब है क्योंकि इससे पहले भारत में स्त्री शिक्षा कल्पना मात्र थी । भारत में ब्रिटिश शासन के आने से ही आधुनिक समाज का निर्माण हुआ, समाजिक विभेद और रुढ़ियों की पहचान हुई और इसका विरोध करने की लोगों में चेतना जागी । इस दृष्टि से ब्रिटिश उपनिवेशवाद का यह दौर उपलब्धि मूलक माना जा सकता है । इसी दौरान भारतीय स्त्रियों के लिए शिक्षा की अवधारण का विकास हुआ । सन् 1848 में भारत में प्रथम बालिका विद्यालय की स्थापना हुई । यही से स्त्री चेतना और साहित्य लेखन की शुरुआत मानी जा सकती है । सर्वप्रथम स्त्रियोंने अपने मन की पीडा़, पितृसत्तात्मक संरचना में छटपटाती उनकी इच्छायें, मर्यादाओं के बोझदले दबा स्त्री जीवन और परनिर्भरता के चक्रव्यूह के भीतर दम तोड़ता उनका स्वभिमान जैसे विषयों को उन्होंने अपने लेखन के लिए चुना । स्त्री लेखन की यह शुरुआत एक साहस पूर्ण शुरुआत मानी जा सकती है । क्योंकि प्रतिकूल परिवेश में भी उन्होंने अपनी वास्तविक पहचान छुपाकर अपने विचार और भावनाओं को लोगों तक पहुंचाने का प्रयास किया हैं । पहंचान छुपाने के पीछे का यदि रहस्य खोजा जाए तो इसके कई कारण समझ में आते है एक तो यह कि परिवार के डर से या उनके हस्तक्षेप से बचने के लिए उन्होंने ऐसा किया, दूसरा पितृसत्तात्मक समाज के भय या त्रास से बचने के लिए उन्होंने पर्दें के पीछे छुपना उचित समझा । तीसरा उनमें कहीं न कहीं संकोच की भावना रही कि वे पुरुष लेखन की तुलना में अपने लेखन को कमतर मानने लगी थी । लेकिन मुद्दे की बात यह है कि इन सबके बावजूद भी कलम पकड़ने का साहस करना ही स्त्री का सबसे बडा़ विद्रोह है । भारतीय संदर्भ में स्त्री लेखन के इतिहास की तरफ नजर डाले तो स्त्री चेतना के संदर्भ में कलम चलाने वाली प्रथम महिला सावित्री बाई फूले को माना जा सकता है । स्वतंत्रता संग्राम और समाज सुधार अभियान के साथ-साथ सावित्री बाई फूले ने कविता के

माध्यम से भी स्त्री चेतना को बढ़ाने का काम किया । अपने पति की प्रेरणा से सावित्री बाई फूले ने भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक रुढ़ियों और विभेद को पहचाना । स्त्री शिक्षा के लिए पहल की । महाराष्ट्र की सावित्री बाई फूले ने अपने जीवन की संघर्ष यात्रा और भारत में स्त्री जीवन के यथार्थ को अपनी कविताओं में पिरोया । इसी तरह दूसरी भारतीय लेखिका बंगाल के उच्च घराने में जन्मी रास सुंदरी देवी हैं । इन्होंने बंगाली भाषा में सन् 1876 में अपने जीवन में भोगे हुए यथार्थ को रेखांकित करते हुए एक जीवनी लिखी जिसका नाम था 'आमार जीबोन' इसमें लेखिकाने पितृसत्ता द्वार स्त्री के जीवन पर लगाई गई पावंदियों को बताने की कोशिश की है, साथ ही स्त्री की इच्छा-आंकाक्षा उसकी स्वतंत्रता और शिक्षा के अधिकार प्रति उसके लगाव को भी बड़े ही मार्मिक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है । भारत की सचेत स्त्री लेखिकाके रुप में कृपाबाई सक्तिनंदन को भी जाना जाता है । इन्होंने दकन क्षेत्र में सती प्रथा, बहुविवाह, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, विधवा जीवन की विभिषिका को 'सगुना' (1887-88) नामक आत्मकथात्मक उपन्यास में उल्लेख किया है । यह उपन्यास तत्कालीन हिन्दू और ईसाई समाज की स्त्री के जीवन के यथार्थ का दस्ताबेज माना जाता है । सन् 1882 में भारतीय साहित्य क्षेत्र में तारबाई शिंदे ने मराठी भाषा में 'स्त्री पुरुष तुलना' नामक पुस्तक लिखी इस पुस्तक में ताराबाई ने तत्कालीन पराधीन स्त्री समाज के संदर्भ में तीन विषय को प्रस्तुत किया विधवाओं की दयनीय स्थिति और पुनर्विवाह के लिए अनुमति, पुरुष प्रधान समाज में विवाहित स्त्री का शोषण, पुरुष के गुण और दोष आदि को विशेष रुप में प्रस्तुत किया । ताराबाई स्त्री संदर्भ में यह विचार रखती है कि सारी दुनिया में स्त्रियों की स्थिति पर विचार हो और उसे समानता मिले । इसी तरह सन् 1888 में एक अज्ञात महिला ने 'सीमांतनी उपदेश' नामक पुस्तक लिखी जिसमें दबी, कुचली भारतीय स्त्रियों के जीवन की चीत्कार है । सन् 1982 डॉ. धर्मवीर भारती ने इसकी लंबी भूमिका लिखकर इसे पुनः प्रकाशित किया । उन्नीसवीं और बीसवीं

सदी के पूर्वाद्ध में भारत में संस्कृत की एक प्रकाण्ड विदुषी महिला पंडिता रमाबाई ने भारतीय समाज में पितृसत्ता के खौप को लोगों के सामने लाने का प्रयास किया । रमाबाई अपने भाषणों एवं प्रवचनों में भी बालविवाह, सतीप्रथा, लिंगभेद, जातिभेद आदि का विरोध करती थी । सन् 1888 में 'The high Cast Hindu Women' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई यह पुस्तक ब्रिटेन और भारत में बहुत चर्चा में भी रही । इंलैंड में कुछ समय रहने के बाद इन्होंने भारतीय और वहां की स्त्रियों की स्थिति में काफी अंतर पाया जाहिर है कि इस अंतर का मूल कारण शिक्षा, स्वतंत्रता और राजनीति में स्त्री सहभागिता जैसे कारण थें । रमाबाई ने इस समस्या को पहचाना और स्त्री की स्थिति में सुधार लाने के लिए वे स्वयं राजनीति में सक्रिय हो गई । स्त्री मुक्ति के अभियान को इन्होंने साहित्य और राजनीति दोनों माध्यमों से चलाया । भारतीय स्त्री लेखन में रुकैया खातुन का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है इनकी कहानी 'Dream of Sultana' एक ऐसी लड़की के जीवन संघर्ष की कहानी बयान करती है जो पितृसत्ता के आतंक से मुक्ति पाना चाहती है । स्त्री शिक्षा और स्वतंत्रता को प्राथमिकता देने वाली रुकैया ने स्त्री की दयनीय स्थिति का जिम्मेवार धर्म को माना है । स्त्री जीवन का अंतिम लक्ष्य विवाह को मानने वाली परंपरा का विरोध करते हुए रुकैया लिखती हैं । यह परंपरा स्त्री के स्वतंत्रता के हक में नहीं है । वे स्त्रियों को आभूषणों के लालच से भी बाहर निकलने के लिए कहती है । इनकी प्रमुख रचनाओं में मोतीचूर प्रथम खंड (1904) और मोतीचूर द्वतीय खंड (1922),पद्म राग (1924), अवरोधवासनी (1931) प्रमुख है । रुकैया धर्म का नाम देकर पर्दा प्रथा के कारण स्त्री की दृष्टि, उसकी बौद्धिकता, उसकी चेतना और उसकी स्वतंत्रता पर किए जा रहें नियंत्रण का विरोध करती हैं **"धर्मों की पुस्तकें आचार संहिताओं तथा पुरुषों द्वारा दिये गये निर्देशों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । पुरुष संतों द्वार दी गई व्यवस्थाएं (आज्ञाएं) यदि महिला संतों द्वारा दी गयी होती तो एकदम उलट दी जाती ।"**[30]

रुकैया की इस अभिव्यक्ति से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि मुस्लिम समाज जैसी जटिल संरचनाओं के भीतर से भी ऐसी क्रांतिकारी स्त्रियां पैदा हुई है जिन्होंने स्त्री परतंत्रता की जड़ों को खोजा ही नहीं बल्कि शक्ति जुटाकर उसका पुरजोर विरोध भी किया है । रुकैया की ही तरह अपने समाज में हो रहें स्त्री शोषण का यथार्थ लेकर मलियाली लेखिका ललितांबिका अंतर्जनम बींसवी सदी के आरंभ में दिखाई पड़ती हैं । इन्होंने विशेषकर मलै समाज में प्रचलित कुलीन नम्बूदिरी प्रथा के नाम पर ब्राह्मण जातियों की स्त्रियों के साथ होने वाले अत्याचार और शोषण को अपने लेखन में चित्रित किया है । केरल के उच्च कुलीन ब्रह्ममण परिवार में केवल बड़े पुत्र को ही वैधानिक रुप से विवाह करने का अधिकार होता था । परिवार के अन्य पुरुष 'संबंधम' प्रथा द्वारा दूसरी जाति की स्त्रियों से संबंध बना सकते थे । सामान्यतया वे मात्रृसत्तात्मक संरचना वाले नायर समाज की स्त्रियों के साथ संबंध बनाते थे परंतु इन स्त्रियों से उत्पन्न संतानों को किसी भी प्रकार का वंशानुगत अधिकार नहीं दिया जाता था । नम्बूदरी कन्यायें इसी कारण अविवाहित रह जाती थी और इसी वजह से असी साल का बूढा आदमी भी अठारह साल की कन्या से विवाह कर लेता था जो उस बलिका का सौभाग्य माना जाता था । इसलिए नम्बूदिरी स्त्रियां दुनिया से कटी रहती थी । उनके लिए और भी ऐसे जटिल नियम बनाएं गये थे । जिनके कारण उनका जीवन नर्क बना हुआ था । ललितांबिका ने उपन्यास 'अग्निसाक्षी' इन्हीं सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया हैं । दूसरी मलयालम लेखिका कमलादास (माधवी कुट्टी) है । इन्होंने स्त्री यौनिकता के सवाल को उठाया हैं । इनकी चर्चित पुस्तक एंते कथा (मेरी कहानी) में स्त्री मन, उसकी इच्छा-आंकाक्षाओं के साथ-साथ प्रेम और देह से जुड़ी समस्याओं को भी प्रस्तुत किया है । सन् (1923) उर्दू लेखन क्षेत्र में एक और स्त्री रचनाकार का उदय हुआ जिसका नाम था डॉ. रसिद जहाँ । पढ़ी लिखी प्रगतिशील विचारों की इस महिला ने समांती मुस्लिम समाज में स्त्रियों के शोषण और उनके जीवन संघर्ष, पुरुषों और समाज की दोहरी मानसिकता को बेवाकी से प्रस्तुत किया है । इनकी प्रमुख रचनाओं

में द टाँम टाँम बीट्स, उर्दू अनुवाद (सलाम, 1923), अंगारें (1932), पर्दे के पीछे कहानी और कुछ नाटक भी हैं। रशीद जहाँ वामपंथी विचारधार को समर्थन लेखिका थी। राजनीति और समाज की संरचना को वे बखूबी समझती थी। इसके अलावा उर्दू लेखन में इस्मात चुगताई का नाम भी स्त्री लेखन के आग्र पंक्ति में आता है। मुस्लिम समाज के स्त्री जीवन की नग्न सच्चाई को प्रस्तुत करने वाली इस्मात चुगताई अपनी बुलंद लेखनी के कारण कट्टरवादी मुस्लिम समाज के विरोध का सामना करती हैं। इनकी प्रमुख रचनायें गेदा, जिद्दी, मासूमा, सौदाई, जंगली कबूतर, दिल की दुनिया और अजीब आदमी आदि है। अब यदि पाश्चात्य स्त्री लेखिकाओं पर संक्षिप्त नजर डाले तो फ्रान्स की क्रांति सन् 1729 से ही यहां की महिलाओं में स्त्री अधिकार संबंधी चेतना का विकास दिखाई पड़ता है। सन् 1792 में मेरी वाल्टसनक्राफ्ट ने स्त्री अधिकार के मुद्दों को लेकर 'A Vindication of the Rights of Woman' नामक पुस्तक लिखी इस पुस्तक ने लैंगिक विभेद के साथ-साथ समाज में स्त्री की स्थिति और उसके बुनियादी अधिकारों के प्रति जागरुकता पैदा की है। यह जागरुकता धीरे-धीरे सभी देशों में फैलने लगी। सन् 1848 में एलिजावेद कैंडी, स्टैण्टन, लुक्रेसिया कफिन मोर लगायत सचेत महिला समूह ने न्यूयोर्क में एक बृहद महिला सम्मेलन कर स्त्री स्वतंत्रता और अधिकारों पर एक घोषणा पत्र जारी किया। जिसमें स्त्री हक के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की कानूनी रुप में मांग की गई। स्त्री मुक्ति का यह आंदोलन तब सार्थक हुआ जब इस आंदोलन ने अंतर्रराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि पाई। दुनियाभर के देशों में फैलने से यह मुद्दा गंभीर और संवेदनशील माना जाने लगा। सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ताओं के साथ-साथ साहित्यकार महिलाओं ने इस अभियान को और अधिक सक्रिय बनाया। पाश्चात्य स्त्री लेखन में सिमोन द बउवार की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। सन् 1946 में प्रकाशित इनकी पुस्तक 'The Seconde Sex' ने दुनियाभर की स्त्री अधिकार कर्मियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इन्होंने पुरुष सत्ता की संरचना और उसके द्वारा स्त्री बनाये जाने की प्रक्रिया को

तार्किक रुप में प्रस्तुत किया । सिमोन का मानना था स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि स्त्री बनाई जाती है । पितृसत्ता स्त्री बनाने की पृष्ठभूमि उसके पैदा होने से पूर्व ही तैयार कर लेता है । सिमोन कहती है कि सेक्स को जेण्डर से अलग समझना चाहिए । पुरुष हो या स्त्री दोनों मानव है इसलिए दोनों को मानव के रुप में ही स्वीकारा जाना चाहिए । इस विचारधारा ने स्त्री अधिकार के मुद्दों पर पुनर्विचार करने पर बाध्य किया । इसके बाद केट मिलेट की 'Sexual Politics' नामक रचना प्रकाशित हुई । इसमें परिवार को स्त्री के लिए कारागार बताया गया और यौन शोषण, प्रजनन आदि पर केट ने अपने विचार व्यक्त कियें । उनका मानना है कि माता-पिता को देख कर ही बच्चें अपने-अपने लिंग के आधार पर अपनी भूमिका, स्वाभाव या व्यवहार का पाठ सिखते हैं । सलोमिथ फयरस्टोन ने अपनी रचना 'The Dialectics of Sex' में बताया कि पितृसत्ता ताकतवर होने का मुख्य कारण स्त्री से उसके प्रजनन अधिकार को छीने जाने से है । उनका मानना है महिलाओं का उत्पीड़न उनके द्वारा बच्चे पैदा करने और उनका लालन पालन करने में निहित है । इसी तरह बेट्टी फ्राइड सन् 1963 में एक पुस्तक लिखती है जिसका नाम 'The Feminine Mystique' है । इस पुस्तक में इन्होंने यह सिद्ध किया कि पुरुष स्त्री को अपनी संपत्ति मानता है इसलिए उसको वह अपनी इच्छा के मुताबिक प्रयोग करता है । माँ, पत्नी और गृहणी की भूमिका देकर उसे उलझाए रखता है । सुलमिथ फायरस्टोन 'The Dailectics of Sex' में प्रसव की तुलना कद्दू के मल प्रवाह (Shitting a Pumpkin) से करती हैं । (FireWith Fire) में शक्ति आधारित स्त्रीवाद (Power Based Feminisim) की चर्चा करते हुए स्त्रियों को वोट और पद की शक्ति पहचान कर सब कुछ हासिल करने की सलाह देती हैं । लेकिन वो यह भी कहती है कि ये सब कुछ पुरुष को नीचा दिखाने के लिए नहीं बल्कि खुद को शक्तिशाली बनाने के लिए करना चाहिए । इसके अलावा पाश्चात्य स्त्री लेखन में मार्गेट सेंगर, जुलिएट मिसेल, एन ओकली, वर्जिनिया वुल्फ, वेल होक्स, केट ब्रेनस्टेन, रोक्सनी गे, जेनीट मोक आदि लेखिकाएं प्रसिद्ध है । दुनिया भर के देशों

में स्त्री लेखन का सशक्त इतिहास पाश्चात्य देशों से ही आरंभ हुआ है । यहां की लेखिकाओं ने स्त्री अधिकार के मुद्दों को विचार, विश्लेषण और तर्क की जमीन से उठाकर उसे सिद्धांत के शक्ल में प्रस्तुत किया है । ऐसा कतई नहीं था कि यहां कि स्त्रियों के लेखन के रास्ते में चुनौतियां नहीं आई बल्कि इन्होंने अपनी जान की परवाह किये बगैर हर चुनौतियों का सामना किया । शिक्षा आर्जन में कठिनाई, आर्थिक अभाव, पारीवारिक असहयोग, स्वतंत्रता का अभाव, जिम्मेदारियों का दोहरा बोझ, समय का अभाव, सामाजिक, राजनैतिक रुढ़ियों द्वारा हस्तक्षेप जैसे कई समस्यायें बाधक बनी परंतु लेखिकाओं ने इन चुनौतियों को सहज स्वीकार किया और निडर हो कर आगे बढ़ती गई और लेखन के क्षेत्र में असीमित संभावनाओं की तलाश करती रही । ऐसा कोई क्षेत्र नहीं था जो स्त्री लेखन के पकड़ में न आया हो । स्त्री, आदिवासी, दलित, किन्नर, बाल, वृद्ध आदि सभी विमर्श उनके साहित्य का आधार बने हैं । इसके अलावा आधुनिकवाद, उत्तरआधुनिकवाद, समाजवाद, साम्यवाद, भौतिकवाद, उपभोक्तावाद, नक्सलवाद, नारीवाद जैसी विचारधाराओं को लेखन के दौरान स्त्रियों ने प्रयोग किया है । कला, संस्कृति, भाषा, विज्ञान, राजनीति, अर्थनीति, कूटनीति, तकनीकी, बाजार, व्यवस्थापन, प्रशासन, ग्लैमर, मीडिया, मानव अधिकार लगभग सभी क्षेत्रों के संबंधी ज्ञान स्त्री लेखन में देखा जा सकता है । उपर्युक्त चुनौतियाँ और संभावनाएं भारत और नेपाल सभी देशों की स्त्री साहित्यकारों के संदर्भ में लगभग एक समान ही दिखाई पड़ती हैं । हिंदी क्षेत्र विशेष में यदि स्त्री लेखन के विगत और वर्तमान की बात करे तो 'बंगमहिला' के नाम से लिखने वाली प्रथम महिला राजेन्द्रवाला घोष थी । इन्होंने हिंदी साहित्य जगत में स्त्री लेखन की एक नई भावभूमि तैयार की इससे पहले हिंदी जगत में विशेष रुप से पुरुषों का ही राज था । राजेन्द्रवाला घोष ने भारतीय स्त्रियों को चारदीवारी से बाहर निकाल कर अपनी सामाजिक पहिचान बनाने की ओर संकेत किया । हिंदी में इनके नाम से सरस्वती पत्रिका में तीन कहानियाँ छपी, कुंभ में छोटी बहू, चन्द्रदेव मेरी बातें तथा दुलाई वाली लेकिन हिंदी साहित्य के

इतिहास में इनकी पहली दो कहानियों को अनुवादित मानकर इनका उल्लेख हिंदी साहित्य के इतिहास में नहीं किया गया । दुलाई वाली को मात्र इनकी मौलिक रचना के रुप में स्वीकार किया गया । बाद में भवदेव पाण्डेय ने शोध के माध्यम से यह पता लगाया कि यह दो भी इनकी मौलिक रचनाएं ही थी । स्त्रीवादी दृष्टि से इस घटना को देखे तो अंदाजा लगाया जा सकता है कि अनुवाद के नाम पर महिला लेखन पर संदेह किया गया है और गंभीर अध्ययन किए बिना ही उनकी रचनाओं को कांट-छांट के अनेकों आरोप लगाकर साहित्य के इतिहास से दरकिनार कर दिया गया हैं । इस स्थिति ने साहित्य में स्त्री लेखन को निरुत्साहित तो किया ही साथ ही पुरुष सत्ता के खौप को भी कायम रखा । दुलाई वाली (1907) में सरस्वती पत्रिका में छपी राजेन्द्रवाला घोष की रोचक हास्य व्यंग्य कहानी हिंदी की प्रथम महिला द्वारा लिखी गई कहानी के रुप में दर्ज की गई । इसके अलावा राजेन्द्रबाला घोष ने अपने साहित्य में अंग्रेजी शासकों के अनुग्रह पर जीने वाले भारतीयों पर व्यंग्य किया और स्वतंत्र भारत निर्माण करने लिए आत्मनिर्भर होने की बात को प्राथमिकता दी । उनका मानना है कि भारतीय स्त्री का जीवन रसोई घर से लेकर शयन कक्ष तक ही सीमित है । इसलिए स्त्रियों को अपनी परिधि का विस्तार करने की आवश्यकता है । हिंदी साहित्य जगत के स्त्री लेखन में उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज कराने वाली दूसरी लेखिका के रुप में महादेवी बर्मा को जाना जाता है । महादेवी छायावाद युग की आधार स्तंभ ही नहीं थी बल्कि स्त्री चेतना और स्त्री अधिकार के मुद्दों को साहित्य में दर्ज कराने वाली एक सशक्त और सचेत महिला थी । महादेवी बर्मा का समय स्वतंत्रता संग्राम के दौर का समय था वे महात्मा गांधी के व्यक्तित्व से काफी प्रभावित थी इसलिए विदेशी वस्तुओं का त्याग और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग विशेष रुप से किया करती थी । महादेवी ने कन्या विद्यापीठ की पहल करके स्त्री शिक्षा को महत्व दिया । कला, साहित्य और संगीत विधा में उत्कृष्ट महादेवी ने भारत का गौरव बढ़ाया है । आरंभ में रहस्यमयी भाव विधा का सृजन करके दीपशिखा, नीरजा, रश्मि, यामा और संध्यागीत जैसी लौकिक-

अलौकि कविताएं लिखी । जिसमें मानवीय प्रेम, अनुराग और विरह की बात को विशेष महत्व दिया गया है । परंतु महादेवी के साहित्य में सामाजिक चिंतन का प्रवेश सन् 1936 में श्रृखंला की कड़िया के प्रकाशन के बाद से देखा जाता है । इसमें महादेवी ने स्त्री पराधीनता के स्वरुप को प्रस्तुत किया है । स्त्री विमर्श के क्षेत्र में हिंदी की यह पहली रचना मानी जा सकती है । यूं तो समय संवत के हिसाब से देखा जाए तो सीमोन द बउवा की पुस्तक द सेकेंड सेक्स के प्रकाशन से पहले ही इस का प्रकाशन हो चुका था । महादेवी ने सीमोन की तरह स्त्री विमर्श के सैद्धांतिक पक्ष को तो प्रस्तुत नहीं किया है परंतु भारतीय संदर्भ में स्त्री की स्थिति और उसके सुधार के पक्षों की विवेचना की है । महादेवी ने शिक्षा, स्वतंत्रता और स्वावलंवनता को स्त्री सशक्तिकरण का मुख्य आधार बताया है । बीसवीं शताब्दी के आरंभ में हिंदी क्षेत्र में एक और क्रांतिकारी स्त्री का आगमन होता है राष्ट्रीय स्वाधीनता, स्वतंत्रता और व्यापक सामाजिक सरोकार के मुद्दों को साहित्य में समेटने वाली सुभद्रा कुमारी चौहान अपनी एक कविता 'झांसी की रानी' के रचना के बाद काफी चर्चा में आई । इनकी अन्य महत्वपूर्ण पद्य रचनाएं त्रिधारा, मुकुल, कदंब का पेड़ आदि है तो गद्य रचनाएं बिखरे मोती, उन्मादिनी और सीधे सादे चित्र प्रमुख चर्चित रचनाएं है । इनकी कहानियों में स्त्री अस्मिता और स्वाभिमान के प्रश्न, सामाजिक एवं जातीय विभेद के सवाल, धार्मिक रुढ़ियों पर व्यंग्य देखा जा सकता है । सुभद्रा कुमारी चौहान एक लेखिका के साथ-साथ स्वतंत्रता सेनानी भी थी इनमें देश भक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी थी । हमने देखा कि स्वतंत्रता पूर्व का स्त्री लेखन देश भक्ति लगायत कई समाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक मुद्दों को लेकर आगे बढ़ा है । स्त्री मन की पीढ़ा, वेदना, प्रेम, उत्साह, अनुराग, विराग, उपेक्षा, उत्पीड़न, विभेद, त्रास, मानवीय संवेदना, स्त्री आदर्श और संस्कार जैसे विषय इस दौर के लेखन का महत्वपूर्ण अंग बने है । हिंदी साहित्य के स्त्री लेखन में उत्साह जनक परिवर्तन तब आता है जब भारत उपनिवेशवादी सत्ता से मुक्त हो कर स्वतंत्र लोकतान्त्रिक भारत के रुप में स्थापित

होता है । राजनीति का नया स्वरुप लोगों में भविष्य की एक नयी तस्वीर खींचने की ओर आकर्षित करता है । साहित्य में आधुनिक विचारधारा के प्रवेश ने स्त्री अधिकार के मुद्दों को नया रुप दिया । आदर्श और त्याग की प्रतिमूर्ति मानी जाने वाली स्त्री अपनी अस्मिता, व्यक्तिगत पहचान, स्वतंत्रता, जातीय, लैंगीय, वर्गीय समानता एवं परिवार तथा सामाजिक कार्यों में बराबरी की साझेदारी के लिए आवाज उठाने लगी । इस चेतना ने भारतीय पितृसत्तात्मक ढांचे को हिला दिया । स्त्री लेखिकओं ने अपने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक हक के सवालों को निडरता के साथ उठाना आरंभ किया । उषादेवी मित्रा, दिनेश नंदिनी डालमिया, शशिप्रभा शास्त्री शिवानी, कृष्णा सोबती, दीप्ति खंडेलवाल, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, राजी सेठ, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, चंद्रकांता कुसुम कुमार, ममता कालिया, मेहरुन्निसा परवेज, चित्रा मुद्गल, सूर्यबाला, मृणाल पांडेय, नासिरा शर्मा, निरुपमा सोबती, चित्रा चतुर्वेदी, प्रभा खेतान, रमा सिंह, मैत्रेयी पुष्पा, नमिता सिंह, वीणा सिंहा, गीतांजली श्री लवलीन, मधु कांकरिया, जया जादवानी, अल्का सरावगी, अनामिका, नीरजा माधव, उर्मिला सिरी, रजनी गुप्ता, नीलाक्षी सिंह, अल्पना मिश्रा आदि लेखिकाओं ने हिंदी के स्त्री लेखन की परंपरा को आगे ही नहीं बढ़ाया बल्कि पितृसत्ता की चुनौतियों का सामना करते हुए स्त्री जीवन के नयें प्रतिमान गढ़े हैं । इन स्त्री लेखिकाओं ने पुरुष सत्ता के सामने स्त्री स्वतंत्रा और अधिकार के ऐसे सवाल उठायें है कि जिनके आगे पुरुष लेखन मौन साधकर बैठने पर बाध्य हुआ है । डॉ. कमल कुमार अपने एक लेख में स्त्री लेखन के संदर्भ में लिखते है कि **"आजकल स्त्रियां प्रतिरोधात्मक साहित्य रच रहीं है, वह उनके जातिगत पहिचान के विरोध में व्यक्ति पहचान का साहित्य है । इस लेखन में उसके जीवन का अंतर्विरोध है, जीवन की टूटी लय है यही उसका यथार्थ है । आज तक पुरुष ही उसके जीवन, उसके जीवन शैली को निर्धारित करता रहा । लेकिन अब वह पुरुष की सत्ता को भी चुनौती दे रही है । वह पितृसत्ता को नकार रही है । एक क्रांति कर रही है उनका लेखन अनंत संभावनाओं से परिपूर्ण है ।"**[31]

वास्तव में वर्तमान समय में स्त्री लेखन दुनिया के अन्य साहित्य के सामने एक बढ़ी संभावन और चुनौति बनकर उभर रहा है । यह तभी संभव हो पाया है जब स्त्रियों ने शिक्षा और स्वतंत्रता का अधिकार ग्रहण किया है ।

२.४.२ नेपाली स्त्री लेखन चुनौती और संभावनायें

यह सत्य है कि स्त्री का आत्मसंघर्ष ही उसे रचना के लिए प्रेरित करता है । स्त्री के अंतर मन का द्वंद्व, पारीवारिक एवं सामाजिक दबाब ने ही एक सामान्य स्त्री को लेखिका के रुप में तैयार किया है । स्त्री लेखन के इतिहास से हमें यह जानकारी मिलती है कि जिस समय स्त्रियां पढ़ी-लिखी नहीं थी उस समय भी वे अपने अंर्तमन की व्यथा और जीवन के संघर्ष को लोकगीतों या फागों के माध्यम से व्यक्त किया करती थी । कश्मीरी लेखिका ललदत्त हो या हिंदी लेखिका मीरा या फिर नेपाली लेखिका योगमाया ने तत्कालीन स्त्री जीवन के कटु यथार्थ का बयान किया है । कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री लेखन प्राचीन काल से ही अस्तित्व में था वह किसी विषय वस्तु या अवसर का मोहताज नहीं रहा परंतु यह अवश्य है कि आर्थिक परनिर्भरता और परतंत्रता ने उसकी गति को धीमा कर दिया था । यह धीमी गति तब तीव्र हुई जब उसमें शिक्षा और स्वतंत्रता का विकास हुआ । शिक्षित होते ही उसने जाना वह नारी से पहले एक मानव है । जो पुरुषों की तरह बुद्धि, विवेक और सामर्थ्य रखती है । उसे भी समाज में पुरुषों की तरह स्वतंत्र और सम्मानित होकर जीने का हक है और राज्य की संपूर्ण सुख-सुविधाओं उपभोग करने की वह अधिकारिणी भी हैं । जब स्त्रियां अपने इन अधिकारों की मांग करने लगी तो उसे अनेकों तर्क देकर कमतर साबित किया जाने लगा । लेकिन हर्ष की बात यह है कि आज स्त्रियों ने खुद को हर तरह से पुरुषों के बराबर साबित कर दिया है । स्त्री एक ऐसी स्थिति से यहां तक पहुंची है कि उसके पास न राजनीतिक अधिकार थे और ना ही सामाजिक अधिकार लेखन के क्षेत्र में तो वह पुरुषों की तुलना में बहुत ही कमजोर और नादान समझी जाती थी । पुरुषों का आरोप था कि स्त्री लेखन में कोई वैचारिकता या गंभीरता नहीं है वह अपने जीवन की पीढ़ा

को ही साहित्य में उतारती है । इसलिए उसका साहित्य गंभीर साहित्य नहीं माना जा सकता । डॉ. जेबा रशीद लिखती हैं **"पुरुष वर्चस्व के चलते साहित्य क्षेत्र में महिला लेखन पर यह व्यंग्य आरोपित हुआ है कि महिला लेखन इस लिए छप रहा है क्योंकि वे महिला है ।"**[32]

पुरुषों की इस मानसिकता को वे साहित्यिक अत्याचार बताती है । इसके अलावा पुरुषों ने स्त्री लेखन को जीवन की जटिलताओं और संघर्ष से दूर चारदीवारी में सिमटा हुआ साहित्य होने का भी आरोप लगाया है । इसका खंडन करते हुए वे लिखती है कि स्त्रियों ने सामाजिक परिवंधों के चलते भी लिखने का साहस किया है अनेकों जिम्मेदारियों में उलझायें रखने के बावजूद भी पढ़ने लिखने का समय निकाला । सब से बड़ी बात यह है कि जब लेखिकाओं ने समाज, धर्म, राजनीति और पुरुषों की स्वच्छेचारिता पर तंज कसना शुरु किया तो उसे उच्छृंखल साहित्य कह कर संबोधन किया जाने लगा । कुछ भी हो यह सत्य और सटिक है कि पुरुषों ने स्त्री लेखन को सहज स्वीकार नहीं किया है । आज के दौर में कितनी ऐसी रचनाएं है जो वैचारिक और तार्किक स्तर पर पुरुष लेखन से भी अव्वल है । नेपाली समाज में यह स्थिति और भी गंभीर दिखाई पड़ती है । यहां स्त्री लेखन को पुरुषों को नीचा देखाने वाला साहित्य समझा जाता है और जो स्त्रियां स्त्री अधिकार की बात करती है उन्हें घर बर्वाद करने वाली औरतों के रुप में जाना जाता है । विडंबना यहां तक है कि जो स्त्रियां पढ़ लिखकर अपनी एक अलग पहचान बनाई हुई है वे भी पति के ही नाम से जानी जाती है । आज भी पुरुषों की शिक्षा या डिग्रियां महत्वपूर्ण और उपयोगी मानी जाती है तो स्त्री की डिग्रियों को सामान्य समझर नजर अंदाज किया जाता है । नेपाली साहित्य में स्त्री लेखन पुरुष लेखन की तुलना में काफी पीछे दिखाई पड़ता है । इसका कारण बताते हुए स्त्री समालोचक डॉ. प्रतीक्षा लिखती हैं **"साहित्य से जुड़ी स्त्रियां आज भी अपने घर-धंधो में ही उल्झी रहती है । वे साहित्यिक कार्यकम में जुड़ने के लिए समय नहीं**

निकाल पाती इसके कारण उन्हें अवसर भी नहीं दिए जाते यह स्थिति स्त्री लेखन के लिए दुर्भाग्य की बात है ।"[33]

इसके अलावा वे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक कारणों की ओर भी संकेत करती हैं । स्त्री की संकुचित भवना को बाधक बताते हुए खुद में आत्मविश्वास भरने की आवश्यकता को भी जाहिर करती हैं । स्त्री लेखन की समृद्धि के लिए सर्वप्रथम तो स्त्री को ही इसके लिए तैयार होना होगा अन्य कार्यों की तुलना में लेखन और अध्ययन को प्राथमिकता देकर समाज देश दुनिया की खबरों से जुड़ना होगा । साहित्यिक गोष्ठियों और सेमिनारों में अपने विचार रखने का और दूसरे के विचार सुनने का वातावरण तैयार करना होगा । पारीवारिक जिम्मेदरियों और लेखन कार्य के बीच ताल-मेल मिलाकर चलना होगा । समय- समय पर देश दुनिया की यात्रा के लिए भी अवसर खोजना होगा । इससे साहित्य और प्रभावकारी बनता है । नेपाली स्त्री लेखन के इतिहास से पता चलता है कि कविता लेखन से अपनी साहित्यिक यात्रा शुरु करने वाली स्त्रियों ने वर्तमान समय में लगभग सभी विधाओं में अपनी उपस्थिति दर्ज करा ली है । कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, जीवनी, संस्मरण, यात्रावृत्र, समालोचना, आलोचना आदि में उनका का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है । प्राणमंजरीदेवी नेपाली साहित्य में प्रथम लेखिका के रुप में जानी जाती है । सन् 1780 में 'सुदर्शन टीका' नामक इनकी रचना की चर्चा की गई है । इसके बाद ललितत्रपुरासुंदरी, बबगुनी गुरुङ और हीरा गाइनेनी जैसी कवयित्री का नाम इतिहास में उल्लेख किया गया है । मध्यकाल में भक्तिकुमारी थापा, चन्द्र सुब्बा गुरुङ, भगवत कुमारी पाण्डे, योगमाया, अम्बालिकादेवी, विद्यादेवी दीक्षित जैसी लेखिकाओं ने स्त्री लेखन को आगे बढ़ाया । इन लेखिकाओं ने तत्कालीन समाज में पितृसत्ता के अमानवीय व्यवहार, कुलीनता एवं मर्यादा के बोझ तले दबा स्त्री जीवन, बाल विवाह, विधवा जीवन, सती प्रथा का दंश, किवाडों के भीदर बंद स्त्री जीवन, घर के आगन तक सिमटा हुआ का आकाश अज्ञान, अंधकार, से

अभिशप्त स्त्री जीवन जैसी स्त्री की दारुण कथा को रचनाओं में उतारा है । योगमाया सामाजिक न्याय के लिए लड़ने वाली पहली नेपाल की समाज सुधारक महिला है । उनकी कविताओं में सामाजिक न्याय की पुकार दिखाई पड़ती है । एक कविता जो उन्होंने सती प्रथा का अंत किए जाने की घोषणा के बाद हर्ष उल्लास मनाते हुए श्री तीन सरकार को कोटि-कोटि धन्यवाद देते हुए लिखा है ।

"सलामी दिन्छु बारंबार
राजाले सतीलाई छोडी दिए
ईश्वरले मति फेरिदिए
राजाले बिंती सुनिदिए
सतीलाई पोल्न छाडिदिए
धन्य हो सरकार ३ सरकार ।"[34]

इस कविता से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि तत्कालीन लेखिकाओं में स्त्री अधिकार संबंधी चेतना का विकास हो चुका था । उन्होंने विभेद और अत्याचार की प्रवृत्ति को समझ लिया था और धीरे-धीरे उसका विरोध करने लगी थी । आधुनिक काल में आकर यह चेतना इतनी विकसित हो चुकी थी कि लेखिकाओं ने स्त्री शोषण के कारण और निवारण दोनों को वैचारिक और तार्किक रुप में प्रस्तुत करना शुरु कर दिया । यहीं से नेपाली महिला लेखन में वैचारिकता का प्रवेश होता है । पारिजात पहली लेखिका है जिन्होंने साहित्य में वैचारिकता को प्रवेश कराया है । इसलिए नेपाली साहित्य में इनका महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है । तत्कालीन पितृसत्तात्मक समाज का विरोध करते हुए स्त्री के समाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार के सवालों को उठाकर नेपाली स्त्री लेखन को इन्होंने यथार्थ के धरातल पर खड़ा किया है । मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित पारिजात का साहित्य हासिये के वर्ग का साहित्य है । नेपाली समाज की वर्गीय संरचना और पितृसत्ता की हैकमवादी प्रवृत्ति को उनके साहित्य में सहज ही देखा जा सकता है

। पारिजात स्पष्ट रुप से कहती है **"महिला मुक्ति के लिए सचेत और प्रगतिशील विचार रखने वाली स्त्रियों को दूसरों को केवल नारा सिखाना ही नहीं है बल्कि अपने व्यक्तिगत जीवन में भी आंदोलन आंरभ करना है ।"**[35]

सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक चेतना के साथ स्त्री स्वावलंवनता की वकालत करते हुए गीता केशरी, बानीरा गिरी, भागीरथी श्रेष्ठ, शारदा शर्मा, नीलम कार्की जैसी लेखिकाएं नेपाली साहित्य में आगे आती है । मूलतः इस दौर की लेखिकाओं की साहित्यिक प्रवृत्तियां सामाजिक विसंगति, अस्तित्ववादी चिंतन, मनोविश्लेषणात्म वर्णन, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी और यथार्थवादी विचारधारा का प्रयोग, धार्मिक आडंबरों का विरोध, नयें जीवन मूल्यों की स्थापना और शिल्प में नवीनता जैसे महत्वपूर्ण प्रवृत्तियां देखी गई है । अनेक सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के कारण इस युग को नवजागरण युग भी कहा जाता है । स्वतंत्रता, समानता और आत्मनिर्भता की नींव इसी युग में रखी गई है । इसलिए साहित्य के इतिहास में यह युग महत्वपूर्ण युग के रुप में जाना जाता है । वर्तमान स्त्री लेखन में कमला कुँवर, सुषमा आचार्य, मनिषा गौचन, शशीकला मानंधर, आन्विका गिरी, सरस्वती प्रतीक्षा आदि लेखिकायें अग्रपंक्ति में देखी जाती है । इस दौर में खासकर स्त्रीवादी और समाजवादी विचारधारा पर केन्द्रित हो कर साहित्य रचा गया है । स्त्री विमर्श में प्रचलित लगभग सभी विचारधाराओं का प्रयोग लेखिकाओं ने किया है । बौद्धिक, तार्किक, वैचारिक स्तर पर इस समय का साहित्य उत्कृष्ट साहित्य माना जा सकता है । राष्ट्रीय-अंतर्रराष्ट्रीय विषय वस्तुओं को कथानक के रुप में प्रयोग किया गया है । शोध मूलक रचनाओं को प्राथमिकता दी गई है । प्राचीन कथा एवं कहानियों का पुर्नमूल्यांकन किया गया है । स्त्री के व्यक्तित्व विकास एवं व्यक्तिगत पहचान को साहित्य के मुख्य उद्देश्य के रुप में प्रस्तुत किया गया है । आख्यान लेखन कला में नवीन शैली का प्रयोग देखा जाता है । उपेक्षित एवं सीमांतकृत वर्गों के अधिकार के लिए बुलंद आवाज इस युग में देखी जा सकती है । बाजारवाद एवं

उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के कारण शोषण का शिकार हो रही स्त्री की मनोदशा और बेरोजगारी एवं बढ़ती महंगाई के कारण देह व्यापार एवं विदेश पलायन हो रहे युवा-युवती की स्थिति को रेखांकित किया गया है । साइबर अपराध और बलात्कार के बढ़ती घटनाओं को भी साहित्य में समेटा गया है । पूंजीवादी एवं भौतिकवादी समाज में घटते सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों के प्रति चिंता व्यक्त की गई है । कला की दृष्टि से देखे तो इस काल के गद्य एवं पद्य लेखन में नवीन एवं आधुनिक भाषा शैली, संवाद, पात्र विन्यास, वाक्य विन्यास आदि में अन्य युग की तुलना में उत्कृष्टता देखी जाती है । नेपाली स्त्री लेखन की दशा और दिशा बदलने में वृंदा पाण्डेय, हिसीला यमी, डॉ. शिवमाया तुम्बाहाङफे, डॉ. सुधा त्रिपाठी, लीला लुइटेल, बविता बस्नेत, प्रभादेवी उपाध्याय, सरिता ढकाल, डॉ. गार्गी शर्मा, डॉ. सुषमा आचार्य, ज्ञानू पाण्डे, शांता शाक्य, गीता त्रिपाठी, शांति ढकाल जैसी लेखिकाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं । इन्होंने सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक माध्यम से समाज रुपांतरण और स्त्री लेखन का गौरव बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिक निर्वाह की है । हमने देखा कि नेपाली और हिंदी स्त्री लेखन विगत से वर्तमान तक पहुंचने के क्रम में कई परिवर्तन से होकर गुजरा है । वर्तमान समय में इसका स्वरुप, विषय क्षेत्र और संभावनाएं एक निश्चित परिधि एवं दायरे से बाहर निकलकर असीमित आकार लेती दिखाई पड़ती है । लेखन शैली, भाषा, कला, अभिव्यक्ति लगायत विषयवस्तु चयन में अकल्पनीय सुधार आता जा रहा है । लेखिकाओं की संख्या और रचना प्रकृया में भी द्रुतगति से बढ़ौत्तरी हो रही है । वर्तमान समय में प्रचलित अनेकों समस्याओं को स्त्री लेखिकाओं ने अपनी रचना में समेटने का पूर्ण प्रयास किया है । सबसे बड़ी बात यह है कि आज की स्त्री लेखिकाओं में संकोच या हिचक जैसी कोई चीज दिखाई नहीं पड़ती । बेवाकी से अपने विचार और भावनाओं को रखने में वे सक्षम हो रही हैं । इसके अलावा वे इतनी सामर्थ्यवान बनती जा रही है कि खुद के लेखन और पुरुषों के लेखन की तुलना और आलोचना करके साहित्य को और अधिक गंभीर एवं उत्कृष्ट बना रही

है । महिला लेखन के अभी भी कई गवहर खुलने बाकी है । जटिल सामाजिक परंपराएं जो अभी भी समाज में किसी न किसी रुप में विद्यमान है, उन पर नयें सिरे से विचार विमर्श करने की आवश्यकता है । सामाजिक व्यवस्था जो आज भी विभेद युक्त है, इसकी जड़ों को खोद कर समानता और समावेशी जैसी पद्धति लागू करने के लिए साहित्यिक दबाव देना अनिवार्य है । इस तरह सामाजिक व्यवस्था जनित सवाल उठाने से लोगों में सचेतना का संचार होगा और साहित्य की गरिमा और बढ़ेगी । लोकतंत्र व्यवस्था आज भ्रष्टतंत्र के रुप में परिभाषित हो रही है । अतः साहित्य के माध्यम से राजनीतिक विसंगति, भ्रष्टाचार, दलगत राजनीति, गुटगत राजनीति, जातिवादी राजनीति, धर्मगत राजनीति, प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति में पिसती जनता और स्वार्थजन्य समस्याओं को साहित्य में रेखांकित किया जाना भी अनिवार्य है । लेकिन समाज तथा राजनीति के संवेदनशील मुद्दों पर कलम चलाना इतना आसान भी नहीं है लेखक को सत्ता या आलोचक वर्ग का सामना करने का सामर्थ्य भी जुटाना होगा । लेखन कार्य में राजनीतिक हस्तक्षेप का इतिहास हम पहले से ही देखते और भोगते आ रहे हैं इसलिए सचेत और निडरता के साथ उपस्थित होने की जरुरत भी है । यह आज की समस्या नहीं है आदि काल से चली आ रही है परंतु सत्ता के डर से राजनीतिक गतिविधियों का यथार्थ साहित्य में यदि नहीं समेटा जायेगा तो वह पंगु साहित्य कहलायेगा अतः इन सभी बातों पर विचार करना वर्तमान स्त्री लेखन की आश्यकता है । समग्र रुप में देखा जाए तो स्त्री लेखन के सामने कई चुनौतियां विद्यमान है । केवल देह का अधिकार और स्त्री बनाम पुरुष के बीच का द्वंद्व अपने लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए संघर्षरत स्त्री की चेतना को संकीर्ण दायरे में रख देगा । इससे सामाजिक न्याय की व्यवस्था आहत होगी और स्त्री पुरुष विभाजन की रेखायें और गहरी होती जायेंगी । विभाजन की प्रक्रिया एक बार आरंभ होती है तो धीरे-धीरे सभी को अपने चपेटे में ले लेती है । सामाजिक अस्मिता भी खंडित होने लगती है । सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था विविध समीकरणों से संचालित होती है । अतः यह देखना जरुरी है कि

हम सभी क्षेत्र में अपना ताल मेल बिठा कर चल रहें हैं कि नहीं । एक तरफ सामाजिक विकास की अवधारणा है तो दूसरी तरफ जातिगत, धर्मगत, संप्रदायगत विभाजन की मानसिकता भी है । स्त्री लेखन को ऐसे विषय वस्तुओं की ओर भी गंभीर रुप से अपनी दृष्टि डा़लने की आवश्यकता है । बदलते आधुनिक समाज का स्वरुप बाजारमुखी और उपभोक्तामुखी है । अत: इस समाज में स्त्री का संघर्ष और उपलब्धि दोनों को तुलनात्मक रुप से प्रस्तुत किया जान भी अनिवार्य होगा इससे हम स्त्री के दो पक्षीय स्थिति का जायजा ले सकेंगे । ग्लोवलाइजेशन और लिब्रलाइजेशन का । इसके सकारात्मक और नकारात्म पहलूंओं को साहित्य में समेटना भी आवश्यक है । समग्र रुप में कहा जा सकता है कि चुनौतियां, संभावनायें, समस्या और समाधान वर्तमान साहित्य लेखन के मूल तत्व है और लक्ष्य भी

निष्कर्ष : समकालीन हिंदी और नेपाली स्त्री लेखन की परंपरा के संदर्भ में किया गया यह सर्वेक्षण दोनों देशों के स्त्री साहित्य में आये उतार-चढ़ाव, विगत और वर्तमान की स्थिति और उसके भविष्य की संभावनाओं को चित्रित करने में सफल हुआ है । हिंदी और नेपाली स्त्री लेखन कई चुनौतियों को झेलते हुये आगे बढ़ा है । पितृसत्तात्मक वर्चस्व ने उसके सामाजिक, आर्थिक हैसियता को कमजोर कर दिया था जिसके कारण वह पुरुष लेखन से पीछे रह जाता है । लेकिन संतोषजक बात यह है कि वर्तमान समय में दोनों देशों का स्त्री लेखन तीव्र गति के विकास और समृद्धि की ओर आगे बढ़ रहा है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास, पृ. 218
2. सुवेदी, राजेन्द्र, नेपाली उपन्यास परंपरा एवं प्रवृत्ति, पृ.4
3. https://www. mpgkpf.com
4. गुप्त, गणपतिचन्द्र, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ. 417
5. सरोदे, डॉ. पीताम्बर, आधुनिक हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना, पृ. 26
6. सरोदे, डॉ. पीताम्बर, आधुनिक हिंदी उपनयासों में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना, पृ. 27
7. https://www.sahityapost.com
8. चव्हाण, डॉ. अर्जुन, समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष, पृ. 23
9. राजे, डॉ. सुमन, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, पृ. 8
10. राय, गोपाल, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ. 163
11. http://sodhganga.infilbnet.ac.in
12. मिश्रा, रामदरश, मिश्रा, स्मिता, रामदरश मिश्रा ग्रन्थावली, पृ. 362
13. शर्मा, ब्रह्मनारायण विकल, हिंदी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक मूल्यांकल, पृ. 210
14. गुप्ता, डॉ. उर्मिला, हिंदी साहित्य में महिलाओं का योगदान, पृ. 360
15. खेतान, प्रभा, उपनिवेशवाद में स्त्री, पृ.14
16. द्विवेदी, डॉ. जया, आज का महिला लेखन और मैत्रेयी पुष्पा की कहानियां, अंक, 11, पृ.198
17. बर्मा, श्रीकांत, हिंदी उपन्यास पहचान और परख, पृ. 97
18. मुद्गल, चित्रा, आवां, पृ. 5
19. http://shodhganga.inflibnet.ac.in
20. अग्रवाल, डॉ. रोहिणी, स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प, पृ. 2070
21. त्रिपाठी, सुधा, नारीवाद के कठघरे में नेपाली साहित्य, पृ.172

22. लुइटेल, लीला, नेपाली महिला उपन्यासकार, पृ.127
23. त्रिपाठी, सुधा, नारीवाद के कठघरे में नेपाली साहित्य, पृ.175
24. (सं) अरोडा, डॉ. प्रीत, महिला लेखन चुनौति और संभवनाएं, पृ.10
25. (सं) चापागाई, निनू, संग्रोला, खगेन्द्र, पारिजात स्मृति ग्रन्थ, पृ.138
26. http://www.samkalinsahitya.com
27. गिरी, आन्विका, आदमी का रंग, पृ. 2017
28. प्रतिक्षा, सरस्वती, नथिया, पृ. 28
29. सिंह, नमिता, स्त्री प्रश्न, पृ. 5
30. सिंह, नमिता, स्त्री प्रश्न, पृ. 62
31. कुमार, डॉ. कमल, द संडे इंडियन, अंक, 22, वोल्युम, 5, पृ. 20
32. (सं)अरोडा, डॉ. प्रीत, महिला लेखन चुनौतियाँ और संभावनाएं,पृ.49
33. http://www.ratopati.com
34. कार्की, नीलम, (निहारिका), योगमाया, पृ. 177
35. (सं) चापागाई, नीनू, संग्रोला, खगेन्द्र, पारिजात स्मृति ग्रन्थ, पृ. 138

अध्याय तीन

३. समकालीन हिंदी और नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन में राजनीतिक चेतना की स्थिति एवं विचार दृष्टि

३.१ हिंदी और नेपाली साहित्य एवं विचार दृष्टि

साहित्य में विचारधाराओं का प्रयोग एक लंबे अरसे से चला आ रहा है । वर्तमान समय में इसकी प्रासंगिकता और अधिक बढ़ रही है । साहित्य में किसी भी घटना एवं यथार्थ की व्याख्या करने के साधन के रुप में विचारधारा को लिया जा सकता है । दुनिया का कोई भी सचेत साहित्यकार अपनी रचना में उल्लेख की गई घटनाओं की व्याख्या अपने निजी एवं प्रचलित विचारधारा के माध्मम से करता है । विचारधारा विचारों और दृष्टिकोणों की एक पद्धति है जिसके तहत लोग वास्तविकता और पारस्परिक संबंधों की पहचान करके समस्याओं और संघर्षों का मूल्यांकन करते हैं । यानी विचारधारा को मनुष्य की ज्ञानन्वेषी प्रवृत्ति का द्योतक भी कहा जा सकता है, जिसके कारण वह किसी भी विषय वस्तु के पीछे छुपे यथार्थ संबंधी अपनी समझ विकसित करता है और तर्क पूर्ण अभिव्यक्ति देता है । विचारधारा और साहित्य का संबंध चीनी और पानी की तरह होता है जिसमें एक अनुपात की आवश्यकता महसूस की जाती है । यदि ऐसा न हो तो साहित्य का मूल स्वरुप समाप्त हो जाता है । शायद इसलिए कुछ गैर मार्क्सवादी, कलावादी और सौंदर्यवादी लेखकों ने साहित्य में विचारधारा को अस्वीकार करते हुए इसे साहित्य को दूषित करने वाला तत्व बताया है । इनका मानना है कि विचारधारा के दबाव में साहित्य की नैंसर्गिकता प्रभावित होती है । रचना विधान से ध्यान हट जाता है और कृति का कलात्मक सौन्दर्य नष्ट हो जाता है । लेकिन इनकी यह धारणा भ्रामक और साहित्य को संकुचित दायरा प्रदान करने वाली प्रतीत होती है । वास्तव में गौर से देखा जाए तो विचारधारा साहित्य की श्रेष्ठता की कसौटी है । यह साहित्य को एक व्यापक फलक प्रदान करती है और उसे तर्कसंगत बनाती है । हिंदी में विचारधारा एवं दृष्टि का प्रयोग उपनिवेशवाद के दौर से शुरु हुआ है । आर्थिक परतंत्रता, दमन

शोषण, वर्गीय, जातीय, क्षेत्रीय एवं लैंगिक विभेद जैसे कारणों ने विचारधारा को प्रस्फुटित किया है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना की दृष्टि से खड़ी बोली हिंदी साहित्य लेखन की शुरुआत करते हैं, तो बंगाली साहित्य में बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ टैगोर इसका प्रयोग करते दिखाई पड़ते हैं । प्रेमचंद युग में आकर इसका प्रयोग निरंतर बढ़ता जाता है । कहानियों की तुलना में उपन्यास विधा विचारधाराओं के प्रयोग के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती रही है । प्रेमचंद ने रंगभूमि और कर्मभूमि में उपनिवेश एवं साम्राज्यवाद का विरोध किया है, तो सेवासदन और निर्मला में स्त्री समस्याओं को प्रस्तुत करके विमर्शवादी विचारधारा का अभ्यास किया है । प्रगतिवादी लेखक संघ की स्थापना के बाद तो विचारधारा साहित्य का अनिवार्य अंग बन जाती है । छायावाद के कवि सुमित्रानंदन पतं और निराला ने भी अपनी रचनाओं में स्त्रीवादी, समाजवादी एवं स्वच्छंवादी विचारधारा का प्रयोग किया है । बाद में अज्ञेय और तारसंप्तक के रचनाकारों ने प्रयोगवादी विचार दृष्टि को साहित्य में महत्व दिया । साठ के दशक के बाद तो साहित्य में विचारधारयें इस तरह अनिवार्य हो जाती है कि इसके इतर का साहित्य नगन्य हो जाता है । हाशिये के समाज का साहित्य साठोत्तरी की देन है जिसमें आदिवासी, दलित, स्त्री लगायत थर्ड जेण्डर की समस्यायें उन्हीं के भोगे हुए अनुभवों के आधार पर लिखे जाने की परंपरा शुरु हुई । ओमप्रकाश वाल्मीकि का मानना है कि दलितों की पीड़ा को दलित ही अच्छे से लिख सकता है । जिसमें उसके भोगे हुए अनुभव उसीकी भाषा में अभिव्यक्त किये जाते हैं । इसलिए यह यथार्थ के अधिक नजदीक होता है । इसी तरह स्त्री लेखिकाओं ने भी स्त्री की पीढ़ा को पुरुषों की तुलना में स्त्री ही अधिक संवेदनशील तरीके से अभिव्यक्त कर सकती है कि मान्यता स्वीकार की है । इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में विचार दृष्टि एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है और इसका प्रचलन दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । नेपाली साहित्य में विचारधारा के प्रयोग की बात करे तो गुरु प्रसाद मैनाली के समय से यानी आधुनिक युग से ही इसका प्रयोग देखा जा सकता

है । राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक शोषण के गर्भ से ही नेपाली साहित्य में विचारधारा का जन्म हुआ है । द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रभाव लगभग दुनिया के सभी देशों में पड़ा इसने एक तरफ मानवीय समाज में त्रास उत्पन्न किया तो दूसरी तरफ मानव जीवन को आर्थिक अभावों से भर दिया और जीवन के नये विकल्प ढूँढने की ओर अग्रसर किया । इस स्थिति से निजात पाने के लिए कई प्रयत्न किये गयें । लेखकों ने भी अपने स्तर से पहल की तत्कालीन सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों से लोगों को अवगत कराना साहित्य का उद्देश्य बना । इसी परिस्थिति में लेखकों ने मानवीय संवेदना एवं विचारों को खोल कर रख दिया । सन् 1952 में प्रगतिवादी लेखक संघ की स्थापना ने इसे और तीव्र एवं मजबूत किया जनवादी एवं राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के साथ-साथ नेपाली समाज में मार्क्स, लेनिन और माओवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ता गया साथ ही वामपंथी गतिविधियाँ भी जोर पकड़ने लगी । सत्ता विरोधी क्रांतिकारी कवितायें सार्वजनिक स्थलों पर वाचन की जाने लगी तो सड़क नाटक भी जगह-जगह प्रस्तुत किये जाने लगे । उपन्यास एवं कहानियां भी तत्कालीन समाज का यथार्थ बयान करने से नहीं चुकी । 'शारदा' पत्रिका नेपाली साहित्य को आगे बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनी । गुरुप्रसाद मैनाली लगायत विशेश्वर प्रसाद कोईराला, पुष्कर शमशेर, भवानी भिक्षु, गोविंद बाहादुर गोठाले, विजय मल्ल, तारिणी प्रसाद कोईराला, केशव राज पिंडाली, ध्रुवचंन्द्र गौतम, मनु ब्राजाकी लगायत सभी प्रगतिवादी लेखकों ने नेपाली साहित्य में विचारधारा को प्रविष्ट कराया । काव्य के माध्यम से लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा, चक्रपाणी चालिसे, सिद्धिचरण श्रेष्ठ जैसे वरिष्ठ कवियों ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विसंगति को समेटने का प्रयास किया । वर्तमान समय में नेपाली साहित्य भी दुनिया के साहित्य में प्रचलित सभी विचार धाराओं को आत्मसात कर के आगे बढ़ रहा है । यहाँ तक कि उत्तर आधुनिकवाद का भी अभ्यास किया जा रहा है । इसके साथ-साथ नेपाली साहित्य में एक विशेष प्रवृत्ति लीला लेखन भी देखी जाती है । कृष्ण धरावासी इस लेखन के प्रवर्तक माने जाते हैं और राधा उनकी प्रसिद्ध रचना

है । परंपरागत प्राचीन विचारधारा के इतिहास पर नजर डाले तो दिखाई पड़ता है कि वेदों, पुराणों में नीति-आचार, जीवन मूल्य, आध्यात्म आदि संबंधी विशेष विचार उद्घटित किये गयें हैं । यही विचार नियम एवं अनुशासन के रुप में आगे चलकर ग्रहण किये जाने लगे । वाल्मीकि, वेदव्यास, शंकराचार्य, चाणक्य और गौतम बुद्ध जैसे पूर्वीय चिंतकों ने विचारधारा की नींव रखी । पश्चिम में सुकरात, प्लेटो, अरस्तू लगायत होमर, ईस्किलस, सोफोक्लीज ने साहित्य, राजनीति, धर्म, समाज, संस्कृति संबंधी अपने महत्वपूर्ण विचारों को साझा कर के दुनिया का मार्गदर्शन किया । मध्ययुग में गोरखनाथ, कबीर, दादू, नानक, सूर, तुलसी ने मानवीय जीवन एवं आध्यात्म से जुड़े कई रहस्यमय तथ्यों को तर्क संगत रुप में प्रस्तुत किया और मानववादी, लोक कल्याणवादी, आदर्शवादी सिद्धांतों को समाज और राजनीति के लिए उत्तम बताते हुए उसके उदाहरण भी प्रस्तुत कियें । आज इनके विचारों की सार्थकता की चर्चा दुनियाभर में हो रही है । शेक्सपियर, दांते, गेटे, शेली, डिकेन्स, टॉल्सटॉय, दोस्तोवेस्की, चेखोव, रोमें रोलाँ, मार्क्स, गोर्की, हेमिंग्वे, स्टाइनवेक आदि विचारकों ने भी व्यक्ति, समाज, धर्म, संस्कृति, साहित्य, प्रकृति, परिवेश, जीवन मूल्य, अर्थ, और पूंजी संबंधी अपनी एक अलग धारणा विकसित की यही धारणायें आज समाज और राजनीति को अनुशासित एवं व्यवस्थित बनाने का औजार बनी हुई है । अतः यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति समाज का अंग होता है और समाज की किसी भी घटना एवं विषय पर उसकी निजी धारणायें होती हैं । इन्हीं धारणाओं की साहित्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है जो साहित्य को गंभीर तर्क युक्त एवं प्रसिद्ध बनाती है । इस संदर्भ में डॉ. जगदीश शर्मा लिखते हैं **"जब रचनाकार किसी विचारधारा को आत्मसात कर लेता है तो वह उसकी कल्पना में रम कर उसे दिशा देती है । विचारधारा प्रेरित कल्पना में विषयवस्तु के प्रत्यक्षीकरण में योग देकर रचना रुपाकारों में भी ढलती है, रचना का अभिव्यक्ति पक्ष भी उसकी विचारधारा से निर्दिष्ट होता है, लेकिन मात्र विचारधारा से वह निर्धारित**

नहीं होता और भी कितने ही तत्वों की भूमिका उसके स्वरुप निर्धारण में रहती है । विचारधारा उनमें एक है ।"[1]

शर्मा साहित्य में विचारधारा के साथ-साथ विषय वस्तु और काव्य कौशल को भी महत्व देते हुए दिखाई पड़ते है । इनके विचार में यदि साहित्य केवल विचारधाराओं का वाहक बनेगा तो वह घोषणा पत्र का रुप धारण कर लेगा । अतः वे साहित्य के मूल रुप के प्रति चिंतित है और साहित्यकारों का इस विषय की ओर ध्यान आकर्षण भी कराना चाहते हैं । साहित्य जीवन का पुनः सृजन और सामाजिक यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति है । इसकी पृष्ठभूमि में विचारधारा की सक्रियता और नैरन्तर्य अनिवार्य रुप से होती है । इसलिए साहित्य विचारधारा की पृष्ठभूमि में अनुभूत सत्य से उपजता है । विचार अनेकों स्थिति में सामने आते है लेखक किस तरह उसे ग्रहण करता है । कैसे अभिव्यक्त करता है यह भी महत्वपूर्ण विषय है । डॉ. नावर सिंह इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं **"कविता (साहित्य) में विचारों को सजीव चित्रों और प्रतिमानों के रुप में व्यक्त होना चाहिए लेकिन यह शक्ति कैसे आती है ? विचार जिस प्रकार प्राप्त होता हैं, उसी प्रकार अभिव्यक्त भी होता हैं । यदि वह पुस्तकों से प्राप्त होता है, पुस्तकीय ढ़ंग प्रकट होता है । यदि वह जनारण्य से दूर एकांत कमरे में आराम कुर्सी के चिंतन से प्राप्त होता है तो रचना में भी एकांत और वैयक्तिक चिंतन का रुप लेता है, और यदि वह जीवन के संघर्षों कुछ निछावर करने से प्राप्त होता है तो उसी गर्मी, उसी ताजगी, उसी सजीवता, उसी सक्रियता तथा उसी मूर्तिमत्ता के साथ रुपायित होता है । साहित्य में इसी रुपायन का महत्व है ।"[2]**

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि विचारधारा, विचारों और दृष्टियों का वह योग है जिसमें लोगों की भौतिक परिस्थितियों और सामाजिक चेतना को तर्क पूर्ण आकार मिलता है । विचारधारा की प्रक्रिया में सामाजिकता के सभी रुपों की व्यवहारिक समझ निहित होती है । एक अंतर्दृष्टि के रुप में विचारधारा रचना की

प्रमाणिकता में जो वृद्धि करती है उसका विवेचन इस दृष्टि से अधिक संगत प्रतीत होता है । इस प्रक्रिया में विचारधारा रचना की साहित्यिक संपंनता के घटकों की अंत: क्रिया के संदर्भ में विवेच्य होती है । विश्व चिंतन में दो दार्शनिक विचारधारायें हमेशा विद्यमान रही हैं । चिंतन की एक धारा अतिशय कल्पना मूलक धारा है जो शासक वर्ग की हितैषी रही है । इसलिए शासक वर्ग ने इसे हमेशा संरक्षण प्रदान कर फलने-फूलने का वातावरण दिया है । जिसके कारण यह विचारधारा अपेक्षाकृत व्यवस्थित विचारधारा भी मानी जाती है । चिंतन की दूसरी धारा साक्ष्यमूलक या वस्तुवादी मूलक है जो अपने अव्यवस्थित किंतु वैज्ञानिक स्वरुप के कारण विशेषकर सत्ता और पुरोहित वर्ग से शोषित रही है और यह अन्य की तुलना में श्रेष्ठ भी है । आज यह वस्तुवादी विचारधारा दुनिया में सर्वाधिक वैज्ञानिक दर्शन के रुप में प्रतिष्ठित है । इसे प्रतिष्ठा के इस शिखर तक पहुँचाने में कार्ल मार्क्स की भूमिका अप्रतिम है । उन्होंने इस विचारधारा के माध्यम से मनुष्यों और सामाजिक चेतना के संबंधों के सामान्य नियमों की खोज की । पूरे मनुष्य समाज के निर्माण, विकास, बौद्धिक क्षमता में वृद्धि तथा मूल्यों के रचाव-बसाव की प्रक्रिया का अनुसंधान किया । इसी आधार पर मार्क्स ने जीवन और जगत संबंधी नयी मान्यताओं को स्थापित किया । मार्क्स की चेतना समष्टिगत मूल्यों की पक्षधर है । वह सर्वहारा और आमजन के प्रति प्रतिबद्ध है । इसी के विरोध में गैर मार्क्सवादियों ने आत्मा की आवाज और स्वयं के लिए प्रतिबद्ध अति वैयक्तिक बातों का सहारा लिया । वस्तुत: यह उस चरम व्यक्तिवादी सोच और स्वार्थ को जन्म देने वाली साबित हुई जिसकी जड़ें अमेरिका के नव कलावाद और नव रुपवाद से पोषित हुई हैं । वर्गबद्ध मानवता के विरुद्ध वर्ग विहिन मानवता, वर्ग विषमता के विरोध में मानव समता, शोषण, अनाचार, अन्याय और युद्ध के विरोध में शांति, बन्धुत्व, अंतर्रराष्ट्रीय भाईचारा, श्रम की गरिमा, विकास की समान सुविधाओं के पक्ष में प्रतिबद्धता मार्क्सवादी चिंतन की मांग है । बढ़ते हुए पूंजीवाद और औद्योगिकरण के कारण दुनियाभर के देशों में देखे जा रहे आर्थिक, सामाजिक विभेद ने मार्क्स की इस

विचारधारा को और प्रसिद्ध बनाया है। मार्क्स की इस विचारधारा के आगे परंपरागत अवैज्ञानिक विचारधारायें कमजोर पड़ने लगी। आज के समय में मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाजवादी विचारधारा ही सबसे ज्यादा प्रयोग में लाई जाने वाली विचारधारा बन चुकी है। इसी तरह नब्बे के दशक में सोवियत संघ विघटन और भूमंडलीकरण के कारण विश्वस्तर पर नयी आर्थिक चेतना जागी। मार्क्सवाद, समाजवाद आदि का पुर्नमूल्यांकन किया जाने लगा। अफ्रीकी मुल्कों के लोगों का अस्तित्व बोध संघर्ष और अंतोनियो ग्राम्शी की सवार्ल्टन विचारधारा ने दुनियाभर के शोषित, उत्पीड़ित समुदायों को अपने अधिकार के प्रति जागरुक कराया। गांधी की अहिंसात्मक राजनीति की अवधारणा भी दुनियाभर में चर्चा का विषय बनी। इस अवधारणा ने सभ्य और संस्कार युक्त राजनीति करने की प्रेरणा दी। इन सब विचारधाराओं से साहित्य अछूता नहीं रह सका सबसे पहले इनका प्रभाव साहित्य पर ही पड़ा। आलोचकों और समीक्षकों ने राजनीतिक और साहित्यिक गतिविधियों का जायजा लेने के लिए उर्पयुक्त विचारधारा का साहारा लेना आरंभ किया जिसके कारण विचारधारायें साहित्य का विशेष अंग बनती चली गई और साहित्य परंपरागत ढ़ाँचे के चंगुल से छूटता गया। उसका एक नया स्वरुप आज हम सबके सामने उपस्थित है। स्त्रीवादी विचारधारा की चर्चा करे तो इसके मूल में अर्थ, समानता, स्वतंत्रता, अस्तित्वबोध है जो मार्क्सवादी विचारा का पहला बुनियादी अंग है। स्त्रीवादी विचारधारा न केवल परंपरागत पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना का विरोध करती है बल्कि वह स्त्री अधिकार के संबंध में तीन सवाल उठाती है। पहला स्त्री की स्थिति पुरुषों की तुलना में दयनीय होने के कारण क्या है ? दूसरा स्त्री की स्थिति को सुधारने के लिए क्या किया जा सकता है ? इसके महत्वपूर्ण एवं जिम्मेदार पक्ष क्या-क्या है ? तीसरा स्त्री समाज का राष्ट्र एवं समाज के विकास में क्या योगदान है और उसकी क्या-क्या संभावनाएं हैं ? इन्हीं सवालों का तर्कपूर्ण जवाब स्त्री दर्शन में खोजा गया है। स्त्री के बुनियादी अधिकारों की मांग इसका प्रथम ऐजेंडा है। जिसमें उसके नागरिक होने का अधिकार पहला है तो सामाजिक,

राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक अधिकार दूसरे नंबर पर आते है । इस विचारधारा का मानना है जब तक समाज में स्त्री की अपनी स्व की पहचान नहीं होगी तब तक उसका अस्तित्व खतरे में पड़ा रहेगा । अत: अपने अस्तित्व को बचाने के लिए उसे सर्वप्रथम अपने नागरिक होने के अधिकार को सुनिश्चित करना होगा और राज्य में अपनी एक अलग पहचान बनानी होगी । यह पहचान तभी संभव है जब स्त्री शिक्षित और आत्मनिर्भर होगी । यूं कह सकते है स्त्रीवादी विचारधारा समाज में स्त्री के सर्वांगीण विकास और सम्मानपूर्ण जीवन पद्धति के लिए वकालत करती हैं । इसके साथ-साथ स्त्री जीवन की अनेकों समस्याओं और समाज में पीछे धकेले जाने के कारणों को भी खोजती हैं । स्त्रीवादी दर्शन का इतिहास इतना पुराना नहीं है, उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही यह अस्तित्व में आया है । स्त्री स्वतंत्रता, लैंगिक समानता और सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सहभागिता स्त्री के व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक समझी गयी । समाज में स्त्री पुरुष के बीच की खाई पाटने के लिए और स्त्रियों में आत्मविश्वास भर कर उसके कार्य को उत्पादनमुखी बनाने के लिए भी यह दर्शन अत्यतं महत्वपूर्ण समझा जाने लगा । स्त्री जीवन से जुड़े सभी पक्ष इस दर्शन का मुख्य आधार हैं । मार्क्स ने भी अपने दर्शन में यह बताया कि समाज का एक बड़ा हिस्सा जो स्त्री का है उसे यदि अर्थ से जोड़ा जाएगा तो समाज दुगनी रप्तार से विकास की गति पकड़ेगा और स्त्री में आत्मविश्वास बढ़ेगा । इसी आधार पर उसके काम का मूल्यांकन भी होगा । समकालीन स्त्री लेखन इन्हीं विचारधाराओं को आत्मसात किये हुए आगे बढ़ रहा है । स्त्री लेखन में राजनीतिक विचारधारा का प्रवेश भी स्त्रीवादी दर्शन की ही देन मानी जा सकती है क्योंकि नागरिक और उससे जुड़ें प्रत्येक सवाल राजनीति से संबंध रखते हैं । राजनीति मानवीय जीवन के प्रत्येक क्रियाकलापों को नियंत्रण करती है । शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय, स्वतंत्रता, सुरक्षा, सूचना एवं रोजगारी जैसे महत्वपूर्ण एवं अति आवश्यक विषय राजनीति से ही संचालित हैं । इनके बिना किसी भी राष्ट्र का नागरिक सुरक्षित एवं सुखी संपन्न जीवन नहीं जी सकता ।

राजनीति को राष्ट्र की संप्रभुत्ता की रक्षा और जनता की आवश्यकता पूर्ति का साधन माना जाता है । इसलिए जनसरोकार के विषय राजनीति का अहम हिस्सा है । वर्तमान समय में राजनीति संबंधी अनेकों विचारधारायें प्रचलित है परंतु स्त्री लेखन में समाजवादी विचारधारा ही अधिक प्रयोग में देखी जाती है ।

३.२ समकालीन हिंदी स्त्री उपन्यासों में राजनीतिक चेतना की स्थिति एवं विचार दृष्टि

हिंदी स्त्री लेखन में राजनीतिक दृष्टि का प्रयोग यद्यपि स्वतंत्रता पश्चात साठ, सत्तर के दशक से स्वीकार किया जाता है परंतु वास्तविक रुप में इस दृष्टि का प्रयोग सन् 1918 छायावाद युग से ही शुरु हो जाता है । महादेवी बर्मा ने श्रृंखला की कड़ियाँ में स्त्री अस्तित्व की पहचान और उसके नागरिक होने के अधिकार संबंधी अपने विचार व्यक्त किये हैं । स्त्री शोषण और समाज में उसके पीछे रहने की वजह को भी उन्होंने बारीकी से समझाया है । साथ ही वर्तमान समय में स्त्री को आत्मसम्मान की रक्षा करने की आवश्यकता बताते हुए यह संकेत दिया है कि स्त्रियों को अपने हक के लिए लड़ने की जरुरत है और यह लड़ाई परिवार या किसी व्यक्ति से नहीं बल्कि राज्य या समाज से होगी जो उसे देश का नागरिक होने का अधिकार दिलाएगा । महादेवी के साहित्य को पढ़कर यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि उनमें व्यक्ति समाज और सत्ता के संबंध का ज्ञान बहुत ही उच्च स्तर का है । छायावादी परंपरा के चलते उनका झुकाव गद्य की तुलना में पद्य में अधिक रहा । जिसके कारण कल्पना प्रधान रचनायें अधिक रची गई और समाज का यथार्थ पीछे छूट गया इसका खामियाजा स्त्रीविमर्श को भुगतना पड़ा । लेकिन संतुष्टि की बात यह है कि उन्होंने स्त्री अधिकार के मुद्दों को उठाकर हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श की शुरुआत की है । आर्थिक एवं लैंगिक विभेद के कारण बढ़ते जा रहे सामाजिक असंतुलन की ओर संकेत करते हुए महादेवी सत्ताधारियों को समाज का यथार्थ बताती दिखाई देती हैं **"जैसे-जैसे हमारा समाज अपने आधा सदस्यों से अधिकार हीन बलिदान और आत्म-समर्पण लेता जा रहा है, वैसे-वैसे वह भी अपने**

अधिकार खोता जा रहा है, यह समाज के असंतोषपूर्ण वातावरण से प्रकट है। आज के समाज की जो स्थिति है, उसकी परिभाषा कठिनाई से दी जा सकेगी। वह कुछ विशेष अधिकार संपन्न और कुछ नितांत अधिकार शून्य व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो उपयोगिता से नहीं वरन परंपरागत धारणा से बँधा है। कहीं संतोष की अतिवृष्टि है और कहीं असन्तोष की अनावृष्टि, जिसमें सामाजिक जीवन का सामंजस्य नष्ट होता जा रहा है।"[3]

इन विचारों से यह तो सिद्ध होता है कि स्त्री राजनीतिक चेतना का स्तर पुरुषों की तुलना में बहुत कमजोर नहीं था। स्त्रियां भी अपने आस-पास के राजनीतिक परिवेश को जानने-समझने का प्रयास कर रही थी और उन्हें शब्द-बद्ध करने का सामर्थ्य भी जुटा रही थी। साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर स्त्री की यह चेतना निरंतर प्रौढ़ होती दिखाई देती है। साठ और सत्तर के दशक तक पहुँचते-पहुँचते स्त्री लेखन विचार-दृष्टि और भाषा कौशल के हिसाब से पुरुष लेखन को चुनौती देकर आगे बढ़ता दिखाई पड़ता है। परंतु फिर भी उसके साहित्य को पुरुष दृष्टि आज भी अपने साहित्य से कम आंकती है। खुद को श्रेष्ठ समझने की पुरुष की संकुचित मानसिकता का खंडन करते हुए इस बर्जीनिया उल्फ लिखती हैं **"औरतें प्रतिभा हीन नहीं होती उसे बनाया जाता है। इसके पीछे घनघोर लैंगिक विभेद की राजनीति और दुर्भावना काम कर रही होती है। स्त्रियों को यदि बराबर अवसर मिलें तो वे भी भरपूर और श्रेष्ठ लिख सकती हैं। स्त्रियाँ हीन दरअसल होती नहीं है बल्कि पुरुष उन्हें हीन घोषित करते हैं। इसके पीछे उनका स्वयं का मनगढ़ंत, कथित उच्चताबोध काम कर रहा होता है।"[4]**

उल्फ की यह धारणा गढ़ी गई नहीं है बल्कि भोगे हुये अनुभव की है। बहरहाल स्त्री लेखन को श्रेष्ठता दिलाने वाली महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या स्त्री की राजनीतिक समझ समाज के उपेक्षित वर्गों का मार्गदर्शन कर पायेगी ? क्या सत्ता को सुशासन का पाठ पढ़ाने में सहयोगी होगी ? यदि देखा जाए तो इन सवालों के

जवाब हमें मन्नू भंडारी का महाभोज, मैत्रेयी पुष्पा का चाक, चित्रा मुदगल का आंवा, प्रभा खेतान का तालाबंदी और मधुकांकरियां का खुले गगन के लालसितारे से मिल जाते है क्योंकि इन रचनाओं के माध्यम से लेखिकाओं ने समस्या और सुझाव दोनों प्रस्तुत किया है। ये रचनायें भारतीय राजनीतिक घटनाओं का तर्क संगत एवं यथार्थपूर्ण चित्रण करती हैं। इन रचनाओं से केवल भारतीय राजनीतिक इतिहास का ज्ञान ही नहीं होता बल्कि भारतीय राजनीतिक संरचना एवं उसके भीतर चलने वाली राजनीतिक गतिविधि और राज्य की सामाजिक, आर्थिक स्थिति एवं संघर्ष का भी पता चलता है। उत्कृष्ट रचनायें रचनाकार का व्यक्तित्व विकास ही नहीं करती बल्कि राष्ट्र, समाज एवं समुदाय के विकास में महत्वपूर्ण योगदान भी देती हैं। उदाहरण स्वरुप हम सिमोन द बओवार की रचना 'द सेकेण्ड सेक्स' को ले सकते है। यह रचना स्त्री दर्शन के एक महत्वपूर्ण दस्ताबेज के रुप में स्वीकार की गई है। इस रचना में स्त्री समस्या, समाधान और संभावनाओं का तर्क पूर्ण विवेचन किया गया है। अतः इसे स्त्री जाति के मार्गदर्शक के रुप में स्वीकार करना सांदर्भिक है। हिंदी में स्त्रीवादी लेखिका की चर्चा करें तो कृष्णा सोबती, उषा प्रियंबदा, मन्नू भंडारी, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, चित्रा मुदगल, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, रमणिका गुप्ता, अनामिका, मधु काँकरिया, जया जादवानी, गीताजंली श्री आदि का नाम प्रमुख रुप में आता है। साहित्य ही एक ऐसा विषय है जो सामाजिक, राजनीतिक क्रांति का सहयोगी बन कर हमेशा से साथ चलता आ रहा है। स्त्री विमर्श साहित्य हो या दलित विमर्श आज के समय में ये क्रांति के साधन के रुप में उभर रहें हैं। इनकी उपयोगिता और प्रासंगिकता दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। स्त्री राजनीतिक उपन्यासों में स्त्री दृष्टि को जानने के लिए उनकी राजनीतिक रचनाओं का विश्लेषण करना आवश्यक है। अतः कुछ विशेष स्त्री राजनीतिक उपन्यास की चर्चा नीचे की जा रही है।

३.२.१ महाभोज

सन् 1979 में मन्नू भंडारी द्वारा लिखा गया यह पहला राजनीतिक उपन्यास है । जिस समय स्त्रियों के लिए घर की देहरी लांघना मुश्किल था । ऐसे समय में मन्नू भंडारी ने महाभोज की रचना कर स्त्री सामर्थ्य और सामाजिक क्रांति का परिचय दिया है । स्त्री को अविवेकी और कमजोर मानने वाले पितृसत्तामक मानसिकता पर यह उपन्यास करारा जवाब है और पितृसत्ता के सामने पेश की गई एक बहुत बड़ी चुनौती भी है । इसी संदर्भ में हिंदी उपन्यास का विकास में मधुरेश लिखते हैं **"मंन्नू भंडारी का महाभोज अंर्तवस्तु के विस्तार का एक विस्मयकारी और अभूतपूर्व उदाहरण है । महिला लेखक और लेखन की परंपरागत छवि को वह एक झटके में ध्वस्त करता है । भारतीय राजनीति के अमानवीय चरित्रों पर इससे तीखी टिप्पणी मुश्किल है । कमलेश्वर के काली आँधी के साथ रखकर इस अंतर को आसानी से समझा जा सकता है । भारतीय समाज में राजनीतिक घुसपैठ करती मूल्य विहीनता और तिकड़म को महाभोज गहरी संलग्नता को उद्घाटित करता है ।"**[5]

मन्नू ने लोकतान्त्रिक पद्धति का समर्थन करते हुए सामाजिक विभेद और राजनीतिक विसंगतियों को अंत कर सामाजिक समन्वय कायम करते हुए देश में न्याय, शांति, सुरक्षा और मानव अधिकार की पुर्नवहाली करने और आम गरीब जनता के हित में राजनीति करने की सलाह सभी राजनीति से जुड़ें लोगों को दी है । महाभोज को स्वतंत्रता पश्चात की राजनीति का प्रतिबिंब कहा जा सकता है । हिंदी साहित्य में इसकी खास जगह इसलिए है कि इसमें समाज के संपूर्ण जिम्मेदार पक्ष को सचेत करने की क्षमता निहित है । समाज एवं परिवार की समस्या से ऊपर उठकर मन्नू भंडारी ने भारतीय भ्रष्ट राजनीति, वंचित जातियों के साथ अत्याचार और प्रतिनिधि चरित्रों द्वारा उसका प्रतिरोध, पतन होते जा रहें, राजनीतिक मूल्य, अंर्तद्वंद्व, अंतर्विरोध, से जुझते सत्ताधारी वर्ग सत्ता प्रतिपक्ष, मीडिया और नौकरशाही वर्ग के अवसरवादी चरित्र पर व्यंग्यात्मक टिप्णी की है । उपन्यास की कथावस्तु एक दलित

युवक बिसू (विसेसर) की मृत्यु की घटना पर केन्द्रित है और उसको न्याय दिलाने की प्रक्रिया उपन्यास में कई घटनाक्रम को जोड़ती है । इसी दौरान राजनेताओं, कर्मचारियों, पुलिस प्रशासन, न्यायपालिका, मीडिया और विपक्षी राजनेताओं का भ्रष्ट चरित्र सामने आता है और यह पता चलता है कि बिसू की मृत्यु सामान्य दुर्घटना नहीं थी बल्कि वह सोची समझी साजिश के तहत राजनीतिक षड़यंत्र का शिकार बना था । भारतीय समाज में विसेसर जैसे दलित वर्ग की स्थिति, जोरावर जैसे सामंती शोषक वर्ग की कूरता, दा साहब जैसे हृदयहीन, स्वार्थी कुटिल, दोहरे चरित्रवाले राजनेताओं का चित्रण कर के भारतीय समाज और उसके भीतर चल रहे संघर्ष को यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत किया है । विसेसर की हत्या सिर्फ एक दलित युवक की हत्या नहीं थी वरन उस लोकतान्त्रिक पद्धति की हत्या थी जिसमें शिक्षा व समानता जैसे अधिकारों को शामिल करने की आदर्श बातें की जाती रही है । परंतु मन्नू यह बताना चाहती है कि यह सिर्फ विचारों में सीमित है व्यवहार में नहीं वरन समाज को शिक्षित बनाने के अभियान में जुटे विसेसर की हत्या क्यों की जाती । विसेसर डॉ. अंबेडकर के सिद्धांत (शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो) को आत्मसात करके दलित उत्थान में जुटा हुआ था परंतु बिसू का पढ़ना लिखना नेताओं के लिए उतना ही अभिशाप बनकर समाने आता है जितना विसू के लिए दलित होना था । मन्नू ने भारत की ऐसी कुत्सित एवं कुंठित राजनीति को उजागर किया है जिसमें सिर्फ सत्ता हथियाने की होड़ चली हुई है । रजनी गुप्ता लिखती हैं

"नेताओं की खोखली नारे बाजी, कुत्सित इरादे और दमघोंटू साजिशों की अंतहीन सच्चाइयों को पूरी बेबाकी से चीरते 'महाभोज' की प्रासंगिकता आज भी बहुत जरुरी हस्तक्षेप है जो चमकते-चिकने चेहरों को समझने के लिए सार्थक बयान करते हुए आमजन की विवशता और उनकी असहाय स्थितियों का जीवंत दस्ताबेज बन जाता है ।"[6]

मन्नू की पैनी नजर भारतीय नेताओं की प्रत्येक राजनीतिक गतिविधि पर गई है । चाहे धर्म या जाति के नाम पर किये जा रहे वोट संकलन पर हो या विकास एवं न्याय के नाम पर दिए जा रहे झूठे आश्वासन पर हो हर तरफ से जनता को लूटने और धोखा देने का षडयंत्र भारतीय राजनीति का हथियार बनता जा रहा था । जिसे रोकने का प्रयास बिसेसर और बिंदा जैसे गिने-चुने लोग कर रहें हैं परंतु सत्ताधारी उन्हें अपने रास्ते का सबसे बड़ा काँटा समझकर हटाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ते । जातीय, वर्गीय, धार्मिक, लैंगिक समानता की बात करके मन्नू भंडारी ने समाजवादी विचारधारा को भी परिभाषित करने का प्रयास किया है । जोरावर जैसे सामंती जमीदार वर्ग के खिलाफ आवाज उठाकर विसेसर द्वारा उसका विरोध करवाना और दलित बस्ती में आग लगाने जैसी घटना नक्सलवाड़ी विचारधारा की ओर भी संकेत करती हैं । महाभोज मूलतः भ्रष्ट राजनीति का नग्न रुप प्रस्तुत करने वाली एक क्रांतिकारी कालजयी रचना है ।

३.२.२ आवां

आवां उपन्यास मूलतः भारतीय ट्रेंड यूनियन के नाम पर की जा रही भ्रष्ट राजनीति, आपसी प्रतिद्वंद्विता, अंतर्विरोध, अपराधी गिरोह की ठेकेदारी, स्त्री शोषण, पूंजीवादी समाज में गिरते मानवीय मूल्य, आर्थिक संकट से जूझता भारतीय निम्न वर्गीय समाज, बेरोजगारी और उसका दंश, बाजारवाद का स्त्री जीवन पर बढ़ता प्रभाव, जातिवादी राजनीति, क्षेत्रवादी राजनीति, गुटवादी राजनीति और संप्रदायिकता की स्थिति का याथार्थ चित्रण है । चित्रा मुद्गल ने सन् 1964 के बाद के भारतीय समाज की झाँकी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । उनका यह प्रयास प्रेमचंद के बाद के समाज को लोगों के समक्ष लाता है । चित्रा मुद्गल आवां लेखन के संदर्भ में कहती है कि जब वे ट्रेड़ यूनियन से जुड़ी थी तब उन्हें इस यथार्थ को करीब से जानने का मौका मिला और उन्होंने इस यथार्थ को आवां के माध्यम से समाज के समक्ष प्रस्तुत किया । वे संगठन को अजय शक्ति मानती है । अन्याय के खिलाफ लड़ने वाल एक मजबूत हथियार मानती है अगर यही शक्ति सामूहिक हित को

छोड़कर व्यक्तिगत स्वार्थ एवं महत्वकांक्षा का शिकार बनकर गुटों में बट जाती है तो विध्वंस, प्रतिस्पर्धा, और अशांति के अलावा शेष कुछ बाकी नहीं रहता है। अपने इन्हीं विचारों को उन्होंने आवां में कुछ इस तरह प्रस्तुत किया है .....

"संगठन सर्वहारा को अपराजेय बनाती है। खूंखार से खूंखार प्रतिपक्षी को धूल चटा देने का सामर्थ्य रखती है। मगर भाइयों, क्या आप नहीं जानते-बंद मुठ्ठी लाख की होती है, खुली तो खाक की भी नहीं रहती ?"[7]

वरिष्ठ उपन्यासकार चित्रा मुद्गल ने अपने समय के ज्वलंत राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याओं को अपने व्यक्तिगत अनुभव और विचार विशिष्ट के साथ तर्क संगत रुप में प्रस्तुत किया है। मुंबई जैसे महानगर में जहां एक तरफ पूंजिपति वर्ग जीवन की सारी सुख सविधाओं के साथ जीवनयापन कर रहें है तो वही दूसरी तरफ समाज का मजदूर वर्ग बिजली, पानी, राशन और स्वाथ्य जैसी समस्याओं से जुझ रहें हैं। इस स्थिति में भी राजनीतिक दल या पूंजीपति उनकी जरुरतों को पूरा करने की ओर नहीं बल्कि अपना स्वार्थ सिद्ध करने की ओर प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। मजदूर संगठनों पर राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप सिर्फ मजदूरों का वोट पाने के लिए है उसमें निहित अभावों एवं कुरीतियों को रोकने के लिए नहीं है। उपन्यास की कथावस्तु दो रुप में दिखाई पड़ती एक तरफ आधुनिक पूंजीवादी समाज में एक स्त्री का जीवनयापन के लिए संघर्ष है तो दूसरी तरफ ट्रेड यूनियन के नाम पर चलने वाली राजनीति है। इसी के भीतर लेखिका ने आधुनिक भारत को समग्र रुप में समेटा है। राजनतिक दलों द्वारा मजदूर संघ-संस्थाओं पर हस्तक्षेप, यूनियन के नेताओं की महत्वकांक्षा, उपेक्षित गरीब मजदूर वर्ग की लाचारी और पूंजीपतियों में स्खलित होती मानवता जैसी समस्याओं को लेखिका ने शब्द-वद्ध किया है। औद्योगिक क्षेत्र मुम्बई में संघर्ष करते आ रहे मजदूर और उनकी आर्थिक स्थिति का चित्रण करते हुए आवां उपन्यास की शुरुआात की गई है। इन उपेक्षित और शोषित मजदूरों की आवाज बनता है 'कामगार अघाड़ी' उपन्यास

की संपूर्ण कथावस्तु इसी 'कामगार अगाड़ी' मजदूर संगठन के इर्द-गिर्द घूमती है । एक तरफ लेखिका मजदूरों की दयनीय स्थिति, जीवन की जद्दोंजहद, उनकी आधारभूत आवश्यकताएं, असुरक्षा और जीवन के अभाव की चर्चा करती है तो दूसरी तरफ आम जनता की मेहनत पर पूंजी का खेल खेलने वाले हृदयहीन, षडयंत्रकारी, अवसरवादी, मुनाफाखोर वर्ग का सुनियोजित षडयंत्र और सौदेबाजी का पर्दाफास भी करती हैं । 'कामगार अघाड़ी' का नेतृत्व संभालने वाले देवी शंकर पाण्डे निष्ठावान व्यक्ति है इनका उद्देश्य गरीब श्रमजीवी मजदूरों को बुनियादी अधिकार दिलाना है । इसके लिए वे पूरी कोशिश करते है परंतु कुछ लोगों को उनकी यह ईमानदारी और मेहनत रास नहीं आती और वे 'कामगार अघाड़ी' को आगे बढ़ते नहीं देखना चाहते । इसलिए उन पर जानलेवा हमला करवाया जाता है परंतु देवी शंकर अपने उद्देश्य से नहीं डगमगाते । देवी शंकर का चरित्र मूल्यों और सिद्धांतो पर चलने वाले नेता का है जिसमें त्याग और समर्पण की भावना है । चित्रा मुद्गल का मानना है राजनीति सेवा है जिसमें त्याग, समर्पण और परोपकार की भावना होनी चाहिए यह सेवा किसी संस्था का नेतृत्व करके भी की जा सकती है या सामाजिक कार्यकर्ता के रुप में भी की जा सकती है । परंतु वास्तविकता यह है कि राजनीति सेवा नहीं स्वार्थ सिद्धि का साधन है । जनता का विश्वास, खून, पसीना नेताओं के लिए सफलता की सीढ़ी है । स्वतंत्रता के बाद बदलते इस राजनीतिक परिवेश ने जनता के मन में वितृष्णा पैदा कर दी है तो भविष्य की पीढ़ी के लिए चिंताजनक माहोल तैयार किया है । इसलिए उपन्यास का उद्देश्य तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवेश को साझा करने के साथ-साथ राजनीति में सिद्धांत, मूल्य और सुव्यवस्था की प्रत्याभूति करने की और ध्यान आकर्षण कराना भी है । उपन्यास में लेखिका ने जातीय, धार्मिक और लैंगिक विभेद के पीछे छुपे राजनीति के रहस्य को भी खोला है । 'फूट डालो और शासन करो' का सिद्धांत अपना कर नेता देश में अमन-चयन बरकरार रहने नहीं देते । देश में जितनी अशांति होगी, अभाव होगा, द्वंद्व होगा उतना ही नेताओं को राजनीति में

सफलता मिलेगी। भारतीय राजनीति के इसी सत्य को लेखिका ने अभिव्यक्त किया है। पवार जैसा दलित पात्र का चरित्र गढ़कर दलित उत्थान की स्थिति को लेखिका जाहिर करती है तो बिमला वेन, अंजना वासवानी, गौतमी और नमिता जैसे स्त्री पात्रों को उपस्थित कर के अर्थमुखी समाज के चपेटे में आकर पुरुषों की हाथों की कठपुतली बनती जा रही स्त्री की स्थिति को दर्शाती है। अन्ना साहब जैसे स्वार्थी, महत्वकांक्षी पात्र का निर्माण करके उद्देश्य एवं दिशा विहिन होते जा रहे संघ-संस्थाओं एवं राजनीति का यथार्थ प्रस्तुत करती है। अत: कहा जा सकता है कि उपन्यास में लेखिका ने परस्पर विरोधी वर्गों को एक साथ रखकर देखने का प्रयास किया है। उपन्यास में भ्रष्ट राजनीति का स्वरुप तब सामने आता है जब 'कामगार अघाड़ी', 'लोकशाही', 'रिचर्डसन बेबरी' और 'सेना-प्रमुख' जैसी संस्थाओं को वोटों के लिए आपस में लड़ाया जाता है। उन्हें अनेक तरह के प्रलोभन दिये जाते हैं। और दूसरी तरफ पद के लालच मे संगठन के अध्यक्ष नेताओं के हाथों बिक जाते है। अन्ना साहब का उदाहरण देकर इस यथार्थ को प्रस्तुत किया जा सकता है **"सांप-सीढ़ी के खेल में अन्ना साहब मानकर चल रहे है कि उनकी रणनीति बड़े कौशल से मेरा उपयोग कर रही है। समय बताएगा कि कौन किसका उपयोग कर रहा है। हाथ बहुत लंबे हैं उनके, मानता हूँ, मिनटों में सूंघ लेते है बेदाग छवि को, धूमिल करने वाली लिखावट मगर मुझे चिट पकड़ा वे उन पैतरों से भी प्रशिक्षित कर रहे है जो उनके ही लबें हाथों को कतर देगा।"**[8]

अन्ना साहब बाहर से जितना साफ और दुरुस्त दिखते है अंदर से उतने ही कुटिल और लालची है। उनको केन्द्रीय श्रममंत्री का पद चाहिए इसके लिए वे कोई भी समझौता करने के लिए तैयार है। मजदूरों की भावना उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखती जो सिर्फ अभी तक दूसरों के लिए इस्तेमाल होते आ रहे हैं। राजनीति का विभत्स रुप तब सामने आता है जब ट्रेड यूनियन से जुड़े देवी शंकर पाण्डे और अन्ना साहब की हत्या का परिदृश्य उपस्थित किया जाता है। राजनीति में कोई

किसी का नहीं है हर कोई गोटियों की तरह इस्तेमाल किया जाता है । जब कि भारतीय लोकतंत्र व्यवस्था मानव अधिकार की रक्षा और जनता के मतों और विचारों का सम्मान करने की प्रणाली है । बढ़ते अपराधीकरण और पतन हो रहें लोकतान्त्रिक मूल्य मान्यताओं ने राष्ट्र में त्रास का माहौल बना दिया है । सत्ता का महत्व उसके योगदान को चित्रा मुद्गल ने भली-भाँति समझा है और इस बात की चिंता भी जताई है कि सत्ता अगर किसी गलत हाथों में चली गई तो देश की स्थिति और अधिक बिगड़ सकती है । इसके अलावा चित्रा मुद्गल ने उपन्यास में स्त्री समस्या और उसके बुनियादी अधिकार के लिए भी आवाज उठाई है । उनका मानना है सर्वप्रथम स्त्री को देह से ऊपर उठकर नागरिक होने के अधिकार को सुनिश्चित करना होगा पुरुषवादी यह रुग्ण समाज स्त्री को उसकी क्षमता से नहीं उसकी देह से उसे स्वीकारता है । जब तक इस मानसिकता का अंत नहीं होगा तब तक स्त्री समाज में प्रतिष्ठित नहीं होगी । उपन्यास के आरंभ में ही मीरा ताई के साथ घटी अमानवीय घटना, वेश्याओं के साथ मजदूरों द्वार किया गया व्यवहार और नमिता जैसी आर्थिक विपन्नता झेल रही स्त्री की भावनाओं एवं देह के साथ किया गया खेलवाड़ के माध्यम से इस सवाल को उन्होंने निर्भीक होकर उठाया है । स्त्री स्वतंत्रता तभी पूर्ण है जब वह अपने व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकार को बिना भेदभाव पूर्ण स्वतंत्रता के साथ उपभोग कर पायेगी । समग्र रुप यह कहा जा सकता है कि चित्रा मुद्गल ने समाजवादी और स्त्री दृष्टि से भारतीय राजनीति का विश्लेषण किया है । लोकतांत्रिक मूल्य मान्यताओं पर हो रहे प्रहार और समाज के उपेक्षित वर्ग दलित, मजदूर और स्त्री के अस्तित्व के लिए संघर्ष । मजदूर संगठन के भीतर पनप रही भ्रष्ट राजनीति । धर्म, जाति, क्षेत्र और लैंगिकता के नाम पर हो रही भ्रष्ट दलगत गुटगत राजनीति का कुरुप चित्रण करना इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है ।

३.२.३ चाक

समकालीन स्त्री लेखन की परंपरा को एक नया मोड़ देने वाली, सशक्त एवं बेबाक लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने अपने साहित्य में स्त्री के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकार को लेकर कई सवाल उठाएं है। इदन्नमम, अल्लमा कबूतरी, अगन पाखी, कस्तूरी कुण्डल बसै और चाक जैसे महत्वपूर्ण उपन्यास स्त्री की राजनीतिक समझ की जानकारी तो देते ही है साथ ही भारत में स्त्री की दशा और दिशा को भी चित्रित करते हैं। उनके बुनियादी हक की लड़ाई कहां तक पहुंची ? कौन-कौन सी समस्यायें मुख्य रुप में जटिल बनी हुई है ? और इसका क्या विकल्प हो सकता है ? जैसे सवालों के जवाब उनके साहित्य में देखे जा सकते हैं। भारतीय पितृसत्तात्मक समाज की संरचना को बहुत बारीकी से समझाने में सक्षम लेखिका ने उसकी खामियों को परत दर परत उकेरा है। मैत्रेयी पुष्पा अपने समकालीन लेखिकाओं की तुलना में इसलिए भिन्न है कि ये दूर सुदूर गांव में घूंघट के भीतर रहने वाली स्त्री के न्याय की बात करती हैं। सदियों से सामाजिक न्याय से वंचित रहती आ रही स्त्रियां जिनकी हत्या को आत्महत्या बताकर अपराधी होने के बावजूद भी पुरुष सम्मान पूर्वक जीवन जीता आ रहा है और स्त्रियां पुरुषसत्ता के मर्यादा नामक फंदे के भीतर अन्याय सहने पर बाध्य की जा रही है। जिनकी न कोई सुनवाई है न कोई गणना। मैत्रेयी इस व्यवस्था का विरोध करती हैं। घूंघट के भीतर छुपाई गई स्त्री चेतना को जगाकर पुरुषसत्ता के सामने चुनौती खड़ा करती का हैं। ग्रामीण समाज में स्त्री के साथ होते आ रहे अन्याय के इतिहास को वो कुछ इस तरह समझाती है ...

"इस गांव के इतिहास में दर्ज दास्ताने बोलती है, रस्सी के फंदे पर झूलती रुक्मणी, कुएं में कुदने वाली रामदेई, करबन नदी में समाधिस्थ नारायणी.....ये बेबस औरतें सीता 'मइया की तरह भूमि प्रवेश' कर अपने शील-सतीत्व की खातिर कुर्बान हो गई। ये ही नहीं और न जाने कितनी ..."[9]

भारतीय ग्रामीण समाज में स्त्री की न्याय की स्थिति किस अवस्था में है 'चाक' उपन्यास की इन पंक्तियों से दुरुस्त पता चलता है। न्याय की चाभी पुरुष की मुट्ठी में है वह जब चाहे जैसे चाहे अपनी तरफ घूमा सकता है। निर्दोष स्त्रियां सदियों से पितृसत्तारुपी दलनी में घुन की तरह पीसती आई है। रेशम इस व्यवस्था की बलि चढ़ती है तो सारंग इस व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाती है। उसकी चेतना इतनी जाग्रत है कि वह समाज में हो रहें प्रत्येक गतिविधियों पर नजर रखती है और उसके खिलाफ प्रतिक्रिया भी देती है। मैत्रेयी का यह मानना है कि आज के समय में ग्रामीण स्त्रियां चेतना शून्य या अवस्था में नहीं है समय के साथ-साथ उनमें भी बदलाव आया है। इसका उदाहरण है निडर-निर्भिक 'चाक' उपन्यास की नायिका सारंग जो इक्कीसवीं सदी की ग्रामीण महिला है। स्त्री अधिकार एवं न्याय के महत्व को बहुत अच्छे से समझती हैं। इसलिए रेशम के हत्यारे को पकड़ना और सजा दिलवाना उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है। अपने भीतर जल रही अन्याय की आग को शांत करने लिए वह तरह-तरह कोशिश करती है। इसलिए चाक उपन्यास को न्याय के लिए एक स्त्री की संघर्ष गाथा के रुप में भी लिया जा सकता है। सारंग स्त्रियोचित विचारधारा से ग्रसित नहीं है। वह जीवन को अपने नजरिये से देखती है और अपने जीवने के मूल्य खुद गढ़ना चाहती है। इसलिए पति रंजीत के होते हुए भी श्रीधर मास्टर से प्रेम संबंध रखने में उसको कोई बुराई नजर नहीं आती बल्कि वह उसे अपना अधिकार समझती है। प्रेम और यौनिकता के अधिकार का वह उपभोग करना चाहती है। एक तरफ वह अपने जर्जर होते पति-पत्नी के संबंध को ढो रही है तो दूसरी तरफ श्रीधर के प्रेम के लिए तड़पती है। सामाजिक परिबंध उसको दोनों तरह से प्रताड़ित करते है फिर भी वह निडरता से उसका सामना करने के लिए तैयार रहती है। प्रगतिशील एवं आधुनिक विचारधारा को आत्मसात करने वाली सारंग जरुरत पड़ने पर पारीवारिक एवं सामाजिक नियमों का बहिष्कार कर पुरुष समाज को चुनौती देते हुए राजनीति में अपनी उम्मीदवारी दर्ज कराती है। सारंग को लगता है कि रेशम

को न्याय दिलाने के लिए, राजनीति में स्त्री का सहभागी होना जरुरी है । ग्रामीण स्कूलों की स्थिति सुधारने और समाज में हो रहे जाति, धर्म एवं लिंग विभेद को अंत करने के लिए यह जरुरी है । ग्रामीण स्त्री की इसी चेतना को उजागर करते हुए मैत्रेयी लिखती हैं **"आज के समय में गँवई औरतों द्वारा सांस्कृतिक, सामाजिक, और राजनीतिक दायरों में जो मुखर हिस्सेदारी सामने आती है, वह महत्वपूर्ण है । स्त्रियां अपने तेवरों, निजी फैसलों और हस्तक्षेप के मामलों में अब जबरजस्त रुप में दिखाई देने लगी हैं । लगता है कि वह मान्यता थोथी खोखली है, जिसके तहत ग्रामीण स्त्री को अनपढ़, असभ्य और चेतना शून्य मानकर गौरतलब नहीं समझा गया बेशक मुझे कल्पनाशक्ति ने वह रचनात्मकता प्रदान की, जिससे यह उपन्यास कथा बनी ।"**[10]

मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री दृष्टि से भारतीय ग्रामीण राजनीति को देखा है । गावों की स्त्रियों की सामाजिक गतिविधियों एवं राजनीतिक समझ को वे छोटी-मोटी घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं । रेशम गर्भवती अवस्था में जलाकर मार दी जाती है और गांव में यह खबर फैलाई जाती है कि रेशम घर में आग लगने से जलकर मर गई । डोरिया जो रेशम का जेठ दोषी है वह निर्दोष बनकर पूरे गांव में खौफ फैलाता घूमता है । सारंग इस परिस्थिति को भाप लेती है और सच्चाई जानते हुए भी मूक दर्शक बनकर मृत्यु पर क्षोभ जताने आये समाज के ढोंगी जिम्मेदार पक्ष से सवाल पूछती है **"मेरे ससुर गजाधर सिंह, चचिया ससुर खूबाराम, ग्राम प्रधान फत्ते सिंह, पुराने जमींदार नबंरदार, ग्राम सेठ भवानी दास, पंडित चरन सिंह से लेकर ऊँची-नीची कौमों के तमाम बूढ़े-बड़े गुमसुम क्यों रह गए ? इनकी जिह्वा क्यों लड़खड़ा गई ? ये पुरुष-महापुरुष शाबासी के पात्र है या धिक्कार के ? इनकी लाज लिहाज हम क्यों करते हैं ? हम सारी अवस्था शीश झुकाकर काट देते है इनके सम्मान में क्यों ? आज मुझे भी कोई उत्तर नहीं बन पा रहा, तो ये लोग**

भी क्या बतायेंगे कि ये लोग हमाारी हत्याओं के गवाह नहीं, तमाशाबीन बनकर क्यों रह जाते है ? अन्याय के नाम पर ये गूँगे हो जाने वाले हमारे संरक्षक....."[11]

सामाजिक न्याय व्यवस्था और संरचना की समझ रखने वाली सारंग केवल उपन्यास की सचेत पात्र नहीं है बल्कि वह संपूर्ण भारतीय सचेत स्त्री समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली पात्र है जिसके माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा ने पुरुष सत्ता की न्याय प्रणाली पर सवाल उठाया है । विभेदपूर्ण मानसिकता और स्वार्थी प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य भी किया है । स्त्री अधिकार के अलावा स्कूलों में की जा रही राजनीति जिसका प्रभाव स्कूल के बच्चों पर ही नहीं बल्कि पूरे गांव के भविष्य पर पड़ने वाले गंभीर समस्या को भी इस उपन्यास के माध्यम से बताया गया है । भारतीय गांव अत्तरपुर का चित्रण मैत्रेयी पुष्पा ने इतनी ईमानदारी और सजकता से किया है कि उस गांव की भेषभूषा, भाषा, कला, संस्कृति, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थिति जीवंत रुप में उभरी है काल्पनिकता अंशभर भी दिखाई नहीं पड़ती पात्रों के नामाकरण, संवाद शैली और हाव-भाव तक को मैत्रेयी ने गांव के रंग में रंगा है । इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि भारतीय गांवों का चित्रण करने में उन्होंने फणीश्वरनाथ रेणु को भी पीछे छोड़ दिया है । ग्रामीण राजनीति के संदर्भ में उनका मानना है कि ग्रामीण राजनीति की बागडोर विशेषकर गांव के जमींनदारों या उच्च वर्ग के हाथों में होती है । गांव के अन्य लोग अपने हित के मुताबिक अपना नेता चुनते है । दल और गुटों में विभाजित नेता जाति और धर्म की आड़ में गांव के सीधे-साधे जनताओं को आपस में लड़ाकर राजनीति करते है । गांव में घटने वाली छोटी-बड़ी घटना को भी राजनीतिक फायदे से देखा जाता है और उसी के आधार पर छानबीन की जाती है । रेशम, गुलकंदी, विसुनदेवा और हरिप्यारी के हत्यारों को गांवों के नेताओं ने प्रश्रय दिया है इसलिए सीधे-साधे अपराध के मुद्दे को भी घुमा फिराकर प्रस्तुत किया जाता है और अपराधी को बचाया जाता है । होली के दिन जलाए गये घर की छानबीन करने जब पुलिस आती है तो प्रधान बताते है कि यह घटना नहीं दुर्घटना थी होलिका जलाने के बाद हरिप्यारी आग के

लपटों के साथ भागी होगी घर में मिट्टी का तेल खुला था आग पकड़ ली होगी। दूसरी तरफ वे रंजीत और नम्बरदार को यह बताते है कि यह सब कुँवरपाल, थानसिंह और भवानीदास की मिली भगत है। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखिका ने गांव की राजनीतिक विसंगति को बहुत ही बारीकी से समझा है। पंचायती चुनाव के जोड़-तोड हत्या, हिंसा, अन्याय, अत्याचार, मार-पीट, गाली-गलौच जैसे हत्कंडे चुनाव जीतने के लिए अपनाए जाते है। यह जनता के हित के लिए नहीं नेता के हित के लिए होते हैं। उनका सवाल यह है कि क्या ऐसी राजनीति को लोकतंत्र पद्धति के भीतर की राजनीति माना जा सकता है ? सामान्य जनता के मानव अधिकार तक को सुरक्षित रखने में असमर्थ राजनीति क्या देश को किसी लक्ष्य तक नहीं पहुंचा पायेगी ? यह चिंता उनके साहित्य का मूल बिंदु है। अत: मैत्रेयी पुष्पा इस परिवेश को सुधारने का प्रयास स्त्री द्वारा किया जाना चाहिए के विचार को आगे बढ़ाते हुए सारंग को पंचायती चुनाव के प्रत्याशी के रुप में खड़ा कर देती है। सामाजिक न्याय, समानता और समावेशी की राजनीतिक विचारधारा मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में देखी जा सकती है।

३.२.४ तालाबंदी

भूमंडलीकरण का प्रभाव राजनीति, व्यापार-व्यवसाय लगायत भाषा, संस्कृति, कला, साहित्य पर भी पड़ने लगा है। राष्ट्रीय और अतंर्रराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित ट्रेड कंपनियों का उद्देश्य और स्वरुप भी इसी आधार पर बदल रहें हैं। मुनाफामुखी बाजार में उत्पादन का स्तर और संख्या दोनों में वृद्धि हो रही है। भारतीय उत्पादन जितनी सरलता से अमेरिका के बाजार में उपलब्ध है उतनी ही सरलता से अमेरिका या अन्य देश का उत्पादन भारत में भी उपलब्ध है। इससे एक तरफ दुनियाभर के देशों में बेरोजगारी की स्थिति में सुधार आता जा रहा है, तो दूसरी तरफ सभी प्रकार के उपभोक्ताओं की आवश्यकतायें आसानी से पूरी हो रही है और विश्व बाजार में कारोबार बढ़ने से सभी देशों की अर्थ व्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। यह अच्छी बात है परंतु यदि इसके दूसरे पहलू पर नजर डाले तो

उत्पादन की क्वालिटी और उत्पादन में प्रतिस्पर्धा के कारण दुनियाभर की कंपनियों के बीच रस्सा-कस्सी चल रही है। जिसका सीधा प्रभाव मजदूरों और उपभोक्ताओं पर तो पड़ ही रहा है साथ ही उद्योगपतियों का व्यावसायिक जीवन भी तनावपूर्ण बन गया है। व्यापार की दुनिया जितनी ऊपर से सरल दिखती है दरअसल उतनी ही जटिल है। मजदूरों की समस्या, यूनियन लीडरों का हस्तक्षेप, जुलूस, हड़ताल, पत्थरबाजी, कोर्ट-कचहरी, आयात-निर्यात, बाजार व्यवस्थापन, मूल्य निर्धारण, सरकार का हस्तक्षेप, राजनीतिक पार्टियों का हस्तक्षेप जैसी समस्याओं से व्यापारी एवं उद्दोगपतियों को गुजरना पड़ता है। एक तरफ लेखिका श्याम बाबू जैसे महत्वकांक्षी एवं मुनाफामुखी किरदार को गढ़कर व्यवसायिक समाज का यथार्थ बयान करती है तो दूसरी तरफ 'सीटू' नामक यूनियन की स्थापना कर के भारतीय समाज के मजदूर वर्ग के जीवन की जद्दोजहद को भी चित्रित करती है। सीटू की स्थापना सामान्य रुप में मजदूरों की सुविधा के लिए हुई है परंतु इसके पीछे पूंजीपति मानसिकता का षडयंत्र भी साफ-साफ नजर आता है। श्यामबाबू यूनियन में विश्वास नहीं करते उनका मानना है कि बंगाल में लाल झंडों के कारण ही लंबा संघर्ष चला था इसलिए वे लाल झंडे वालों से दूर रहना चाहते थे परंतु जब उन्हें यह पता चलता है यूनियन मजदूर और उद्योगपति दोनों के मध्यस्त कर्ता के रुप में काम करती है। तब वे सीटू की स्थापना के लिए स्वीकृति देते है। सीटू का नेतृत्व बाहर के व्यक्ति के हाथों में सौंपते है ताकि वह निष्पक्ष रहे। लेखिका ने उपन्यास में पूंजीवादी समाज में मार्क्स के महत्व और उसकी उपयोगिता को बताने का प्रयास किया है शेखर दा जैसे आदर्शवादी किरदार को गढ़ कर मार्क्सवादी चिंतन के मूल मर्म और भारतीय सामंतवादी समाज में इसकी आवश्यकता को बताया है। श्याम बाबू को मार्क्स की शरण में भेजने का तात्पर्य समाज में मजदूरों का योगदान कंपनी में उसकी भूमिका तथा वर्गीय समानता के महत्व को समझना था। मार्क्स पूंजी का विरोध नहीं करते बल्कि पूंजी में समान अधिकार की मांग करते है। लेकिन शोषक वर्ग पूंजी पर सिर्फ अपना अधिकार समझते है और

मजदूरों को इससे वंचित रखते हैं। इसलिए मार्क्स कहते है कि पूंजीपति मानसिकता कभी दूसरे वर्ग का हित नहीं चाहती इसलिए वर्गांतर बढ़ता जाता है और शोषण की प्रक्रिया भीषण रुप लेने लगती है। इस बात का प्रमाण तभी मिलता है जब मास्टर श्याम बाबू से पूछते है कि आप राजनीति के लिए मार्क्स को समझना चाहते है या फिर यूनियन तोड़ने के लिए। श्याम बाबू अवाक रह जाते है, वे मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की अवधारण को भी समझाते है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रभा खेतान ने मार्क्सवादी विचारधारा को उपन्यास के माध्यम से समझाने की कोशिश की है। भारत में वर्ग संघर्ष की स्थिति, पूंजिपतियों का शोषण, यूनियन की भूमिका, सरकार की निरंकुशता, मजदूरों का विद्रोह, राजनीतिक दलों की दोहरी भूमिका जैसे घटनाएं मार्क्सवादी दर्शन का चित्र रेखांकित करती हैं। उपन्यास की कथावस्तु लेखिका ने भारत में मजदूर आंदोलन में कम्युनिष्ट की भूमिका के आधार पर निर्माण की है क्योंकि श्यामबाबू बंगाल के किसान आंदोलन से भयभीत है। इसलिए उन्हें लाल झंडा पूजिंपतियों का विरोधी और क्रांति का प्रतीक लगता है। भारत में श्रमिक आंदोलन का अपना ही एक अलग इतिहास है। सन् 1857 में एम. एस.एस.बंगाली ने श्रमिकों के कार्य स्थल को सुधारने, उनके उचित वेतन एवं अन्य सुविधाओं को उपलब्ध कराने हेतु एक संगठन तैयार किया था। यद्यपि उन्हें उतनी सफलता नहीं मिली परंतु वे इसके जन्मदाता कहलाये। इसके पश्चात 1881 श्री मेघजी लोखण्डे ने श्रमिकों के बुनियादी अधिकारों के लिए आवाज उठाई इसी दौरान (Bombay Mill Hand Assosication) की स्थापना हुई। यह मजदूरों के हक के लिए एक प्रयास था। परंतु सन् 1905 में जब ब्रिटिश सरकार ने बंगाल को दो टुकडों में विभाजन करने का निर्णय लिया तो समाज सुधारकें के साथ ही मजदूरों ने भी इसका विरोध किया। बंग-भंग के बाद सन् 1909 तक विभिन्न आंदोलनों का दौर रहा जिसमें स्वतंत्रता संग्राम और मजदूर आंदोलन साथ-साथ चलते रहें। 1905 में प्रेस में काम करने वाले मजदूरों ने कलकत्ता में अपने लिए अलग संघ की स्थापना की मांग की तो सन् 1907 में

आकर डाक सेवा कर्मचारियों ने भी मुंबई में अपने लिए अलग संघ की स्थापना की। इस सब के बाबजूद जब बम्बई में मजदूर कल्याण संघ की स्थपना हुई इसने मजदूरों के हक में कई महत्वपूर्ण काम किये। मजदूरों में जनचेतना जगाने के अलावा अपनी सुरक्षा, सुविधा और उचित पारिश्रमिक के लिए आवाज उठाया। इसी दौरान नेताओं ने मजदूरों के संगठन की शक्ति को पहचाना और उसका उपयोग राजनीति के लिए किया। गांधी का असहयोग आंदोलन श्रम शक्ति के सहयोग से ही संभव हुआ। शायद यही वजह थी सन् 1920 में (इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस) की स्थापना हुई तीन साल बाद सरकार ने ट्रेड यूनियन एक्ट पास किया और संविधान में भी इसको मान्यता दी गई। सन् 1926 के बाद ट्रेड यूनियन साम्यवादी नेताओं के हाथों संचालित किया जाने लगा। धीरे-धीरे ट्रेड यूनियनों में राजनीति घूसने लगी और यूनियन विभाजित होने की परंपरा शुरु हुई। यूनियन के अध्यक्ष्य नेताओं के हाथों बिकने लगे परिणाम यह हुआ कि यूनियन नेता, नेता एवं उद्योगपति आपस में मिलकर अपना फायदा लेने लगे और मजदूरों की स्थिति में सुधार आने की बजाय और अधिक नाजुक बनती गई। भारतीय यूनियन की वर्तमान स्थिति का सत्य यही है। लेखिका ने इस सत्य को समाज के समक्ष रखने का प्रयास किया है। इस सत्य को लेखिका ने अपने भाषा में कुछ इस तरह बयान किया है **"हाँ तो विक्रम उपयोग और श्रम की बात कर रहा था। मुझे लगता है कि लेबर को मैनेज करने के लिए अपने को लेबर पॉलिसी खुद समझनी होगी। सरकार की क्या नीति है ? यूनियन का क्या सिद्धांत है और अपने को इनसे कितनी दूर तक फायदा हो सकता है ? भई मैं तो बनिया हूँ यदि यूनियन से अपने को फायदा है, तो अपने यहाँ यूनियन रखेंगे और यदि यूनियन अपने स्वार्थ से टकराती है, तो यूनियन को उठाकर फेकेंगे।"**[12]

प्रभा खेतान ने इस रचना से यह प्रमाणित किया है कि स्त्रियां परिवार, समाज, धर्म, राजनीति के अलावा अर्थ, उद्योग, व्यापार, व्यवसाय संबंधी भी गहन जानकारी

रखती हैं । जिस तरह लेखिका ने उपन्यास में एक व्यापारी की मानसिकता एवं व्यवसाय की प्रक्रिया को प्रस्तुत किया है नाफा, नोक्सान, उत्पादन, वितरण, बाजार व्यवस्थापन लगायत मजदूरों की समस्या और शोषण को इसने स्त्री लेखन को एक और ऊँचाई प्रदान की है । स्त्री की व्यापारिक समझ को उदाहरण के रुप में पेश किया है । ऐसा लगता है कि लेखिका का खुद का अनुभव है जिसे शब्द-बद्ध किया गया है । उपन्यास में मजदूरों का शोषण भी है तो उद्योगपतियों का तनावपूर्ण जीवन भी है, सरकार का हस्तक्षेप भी है तो मजदूरों का विरोध भी अत: व्यापार की एक पूरी प्रक्रिया जिसमें उद्योगपति, मजदूर और सरकार के बीज चलने वाले संघर्ष का यथार्थपरक बयान किया गया है । सामान्य रुप में कहा जाए प्रभा खेतान ने मार्क्सवादी चिंतन वर्ग संघर्ष की स्थिति को भारतीय समाज में देखने का प्रयास किया है और इसके समाधान के लिए साम्यवादी विचारधारा को आत्मसात करने का सुझाव भी दिया है । वर्ग विहीन समाज की स्थापना लेखिका का उद्देश्य है । इसके अलावा उपन्यास में मारवाड़ी समाज की झाँकी भी प्रस्तुत की गई है परंतु इस समाज में स्त्री की स्थिति पर लेखिका ने खुलकर कलम नहीं चलाई है । श्याम बाबू की पत्नी सुमित्रा घर के भीतर के अलावा बाहर व्यापार व्यवसाय संबंधी कोई जानकारी नहीं रखती रेवा शिक्षिका है परंतु वह भी शांत और सौम्य है । इस आधार कहा जा सकता है कि तालाबंदी में प्रभा खेतान ने औद्योगिक क्षेत्र में स्त्री की भूमिका पर विशेष प्रकाश नहीं डाला है । वह मार्क्स की वर्ग संघर्ष की अवधारणा को ही समझाने में रह जाती है । वर्ग विहीन समाज की स्थापना ही उनके इस उपन्यास का लक्ष्य बन जाता है । कहा जा सकता है कि प्रभा खेतान परंपरागत रुढ़िवादी दृष्टि का विरोध कर साम्यवादी दृष्टि को स्वीकारती हुए दिखाई पड़ती है।

३.२.५ खुले गगन के लाला सितारे

खुले गगन के लाल सितारे महज एक उपन्यास नहीं है । यह सन् 1967 में भारत के पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी जिले के नक्सलबाड़ी ग्राम में हुए आंदोलन का ऐसा ऐतिहासिक दस्ताबेज है जिसमें भारतीय ग्रामीण किसानों द्वारा अपने हक के

लिए उठाई गई आवाजों को निर्ममता पूवर्क सत्तापक्ष द्वारा कुचले जाने की व्यथा को बयान किया गया है। सत्ता और जमीदारों का षडयंत्र और किसानों का विद्रोह इस उपन्यास की कथावस्तु है तो आंदोलनरत इन्द्र की वापसी की प्रतीक्षा मणि का अटूट विश्वास है। इन्द्र आंदोलन का जीता जागता सबूत है तो मणि का अटूट विश्वास आंदोलन की सफलता का प्रतीक है। यह अलग बात है कि दुर्भाग्यवश आंदोलन अधूरा रहा लेकिन आंदोलन के पश्चात भारतीय समाज में जो परिवर्तन देखा गया यह इस आंदोलन की पचास प्रतिशत सफलता है और पचास प्रतिशत असफलता के लिए लेखिका क्षोभ व्यक्त करती है। लेखिका उन गलतियों को भी खोजने का प्रयास करती है जिसके कारण किसानों के सपने अधूरे रहें। मधु का माना है कि आजादी के बीस साल बाद भी जनता की आर्थिक, सामाजिक स्थिति में सुधार न आने के कारण समाज के बुद्धिजीवी और युवा वर्ग चिंतित थे इसी चिंता ने उन्हें आंदोलन का रास्ता सुझाया। नेताओं की पूंजीवादी एवं शोषक मानसिकता के कारण देश का एक पक्षीय विकास हो रहा था। समाज का एक वर्ग राज्य की सभी सेवा सुविधाएं उपभोग कर रहा था तो दूसरा वर्ग सभी सेवा सुविधाओं से बंचित रहकर दिन प्रतिदिन गरीब और निरीह बनता जा रहा था। इसी परिस्थिति ने नक्सलबाद को जन्म दिया। यूं तो भारतीय समाज परापूर्व काल से ही सामंती विचारधारा से संचालित होता आया है। वेद, पुराण एवं अन्य महत्वपूर्ण माने जाने वाले हिन्दू ग्रन्थों में ब्राह्मण हमेशा उच्च स्थान या उच्च पद पर रहा है, जिसे वेदकाल का सांमत वर्ग कहा जा सकता है मध्यकाल में आकर उच्च पदाधिकारी और अधिक संपति रखने वाला व्यक्ति सांमत कहा जाने लगा जो निम्न आर्थिक स्थिति वाले लोगों पर शासन करता गया। यह परंपरा मुगल होते हुए अंग्रेजी हुकूमत तक निरंतर चली आई। अंग्रेजी शासकों ने भारतीय ग्रामीण किसानों का इतना शोषण किया कि गरीब अनपढ़ किसान अपने ऊपर हो रहे अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने पर बाध्य हो गये। सन् 1859 में बंगाल के किसानों ने अंग्रेजों के शर्तों के मुताबिक नील खेती न करने का निर्णय लिया दिगंबर

विश्वास और विष्णु विश्वास ने इसकी पहल की यह घटना भारतीय किसान आंदोलन की पहली घटना के रुप में दर्ज हुई । धीरे-धीरे किसानों की यह चेतना बढ़ती गई और भारत के प्रत्येक क्षेत्र में किसानों ने शोषक वर्ग का विरोध करना आरंभ कर दिया । भूमि पर अपने स्वामित्व की मांग करते हुए वे आगे बढ़ते गये । एक तरफ स्वतंत्रता के लिए संघर्ष जारी था तो दूसरी तरफ किसान संघर्ष भी जारी रहा । नील विद्रोह के बाद सन् 1873 में पबाना विद्रोह शुरु हुआ । यह विद्रोह जमीदारों द्वारा किसानों से अधिक लगान वसूलने और किसानों को जमीन के अधिकार से वंचित करने के विरुद्ध में किया गया था । ईशानचंद्र राय और केशवचंद्र राय के नेतृत्व में यह आंदोलन आरंभ हुआ बाद में बंकिमचन्द्र चटर्जी और द्वारिकानाथ गांगुली भी इस आंदोलन से जुड़े । भारत के किसान आंदोलन में दक्कन का आंदोलन भी एक महत्वपूर्ण आंदोलन माना जाता है महाराष्ट्र के पूना एवं अहमदनगर जिलों में गुजराती एवं मारवाड़ी जमीदारों द्वारा किये जा रहे शोषण के खिलाफ यह आंदोलन सन् 1874 में किया गया था । इसी तरह उत्तर प्रदेश के हरदोई, बहराइच एवं सीतापुर जिलों में भी लगान बृद्धि के खिलाफ सन् 1919 में संगठित होकर किसानों ने आवाज उठायी इसका समर्थन करने के लिए जवाहरलाल नेहरु भी आगे आये । केरल के मालबार क्षेत्र में मोपलाओं द्वारा किया गया यह आंदोलन भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है । महात्मा गांधी, शौकत अली, मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे नेताओं का सहयोग और समर्थन इस आंदोलन को मिला । सन् 1920 में चलाया गये इस आंदोलन ने धीरे-धीरे संप्रदायिकता का रुप लिया इसी वजह से इसको दबाना पड़ा । इन सब के बाबजूद भी किसानों ने हार नहीं मानी वे निरंतर अपने अधिकारों के लिए लड़ते रहे सन् 1946 जहां एक तरफ स्वतंत्रता की लड़ाई अंजाम तक पहुंच रही थी वही किसानों की लड़ाई भी बृहद रुप लेकर भारत भर में फैलती जा रही थी । इसी समय बटाईदार किसानों को उत्पादन का दो तिहाई हिस्सा दिलाई जाने की मांग करते हुए बंगाल में तिभागा आंदोलन चला । इस आंदोलन में पचास लाख से भी अधिक

किसानों ने भाग लिया । इसलिए यह आंदोलन भारतीय किसान आंदोलन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना । भारतीय किसान आंदोलन में एक महत्वपूर्ण अध्याय तब जुड़ता है जब कम्युनिष्ट पार्टी के नेतृत्व में किसानों की हक की लड़ाई आरंभ होती है । यह लड़ाई तेलांगना विद्रोह (1946) के रुप में जानी जाती है यहीं से भारत में साम्यवादी व्यवस्था के लिए कम्युनिष्ट विद्रोह भी शुरु होता है । यह विद्रोह धीरे-धीरे भारत के सभी क्षेत्र में फैल जाता है । सन् 1967 में पश्चिम बंगाल के एक छोटे से गांव नक्सलबाड़ी से 'भूमि उसकी हल जिसका' के नारा लगाते हुए चारु मजूमदार और कानू सन्याल के नेतृत्व में जमीदारों के खिलाफ एक वृहद सशस्त्र आंदोलन चलाया गया यह आंदोलन चीन के माओवादी विचारधारा से प्रभावित था । साम्यवाद की स्थापना का लक्ष्य लेकर भीषण जनयुद्ध आरंभ किया गया जिसमें सत्ता पक्ष और आंदोलनकारी दोनों तरफ भारी मात्रा में धन-जन की क्षति हुई । देश में भय और त्रास का माहौल छा गया । जमीदारों को खोज-खोज कर निशाना बनाया जाने लगा गुरिल्ला युद्ध की नीति अपनाई गई । छापामार आंदोलनकारियों ने हिम्मत और धैर्य को टूटने नहीं दिया तो सत्ता पक्ष अपनी पूरी शक्ति के साथ आंदोलनकारियों को धरदबोचने के अभियान में जुट गया । यह माहौल वास्तव में असमान्य था परंतु गरीब उपेक्षित जनता के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए था । समाज से शोषक नाम के जीवाणु को खत्म करने के लिए था । इस आंदोलन में भारतीय वामपंथी समर्थकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा और आज भी सामाजिक विभेद और शोषण के खिलाफ इनका अभियान किसी न किसी रुप में जारी है । नक्सलवाड़ी आंदोलन सिर्फ किसान आंदोलन नहीं था यह सामजिक भेदभाव एवं शोषण के खिलाफ किया गया विद्रोह था । लेखिका ने विद्रोह के इसी उद्देश्य को समेटने का प्रयास किया है और सत्ता के द्वारा किया गया निर्मम एवं अमानवीय दमन का घोर विरोध भी किया है । उनका मानना है शोषण की चरम अवस्था से ही कम्युनिष्ट पैदा होते है । वे लिखती हैं **"भंगी और कम्युनिष्ट पैदा नहीं होते, बना दिए जाते है, इन्द्र ने बताया था मणि को, जब**

नक्सलबाड़ी गांव से उठे एक सशस्त्र आंदोलन ने कॉलेजों के भीतर घुसकर 70 की युवा पीढ़ी को छूना शुरु किया था। और जब तक मणि ने इस वास्तविकता को समझकर आत्मसात किया, इन्द्र गायब हो चुका था।"[13]

तत्कालीन कम्युनिष्ट आंदोलन शोषक और सत्ता पक्ष के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती थी तो गरीब किसानों के लिए सुरक्षित भविष्य के प्रति एक आशा थी। इसी आशा के चलते इन्द्र जैसे होनहार युवा अपने जीवन की परवाह किये बिना ही आने वाली पीढ़ी के भविष्य को सुधारने के लिए आंदोलन रुपी यज्ञ में कूद पड़ते हैं। लेखिका ने न सिर्फ आंदोलनकारियों के हौसले, उनके उत्साह, त्याग और समर्पण को मार्मिक रुप में प्रस्तुत किया है बल्कि गरीब मजदूर किसानों पर होते आ रहे शोषण को भी उन्होंने बेपर्दा किया है **"भूख ही क्रांति है...पेट की भूख, निरोगी काया की भूख.. सम्मान की भूख .. मानवीय गरिमा की भूख जब तक भूख जिंदा है, क्रांतिया होंगी-होती रहेंगी।"[14]**

भारतीय समाज की सतही समस्याओं समझने का प्रयास करने वाली मधु काँकरिया ने राष्ट्रीयता की परिभाषा भी अपने तरीके से गढ़ी है। विश्वकप क्रिकेट भारत को जिताने के लिए माँ काली के मंदिर में प्रार्थना करने जा रहें युवा का प्रसंग देकर वे कहती हैं कि राष्ट्रीयता अपने देश के भूखे, नंगे, पीड़ित जनता के हक की बात करने में है, सैनिकों की सहादत पर दुःख व्यक्त करने में है न कि अपना मनोरंजन करने के लिए खेल को प्राथमिकता देने से है। राज्य सत्ता की गैर जिम्मेदारी भूमिका और जनता के रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़े सवाल इनके उपन्यास का केन्द्र बिंदु है। यह गौरव की बात है कि लेखिका की दृष्टि स्वतंत्र भारत के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, विसंगति और विभेद पर गई है। भारत की राजनीतिक संरचना को ही नहीं युद्ध की विभिषिका को भी लेखिका ने बारीकी से परखा है। चाहे वह स्वतंत्रता आंदोलन की घटनायें हो या फिर नक्सबाड़ी आंदोलन की छोटी-मोटी घटनायें हो उनकी पैनी नजर से कुछ भी नहीं छूटा है। आंदोलन

के दौरान महिला आंदोलनकारी के साथ सैनिकों द्वारा किया गया अमानवीय दुर्व्यवहार, आंदोलनकारी छात्रों को दी गई अकल्पनीय यातना जो निरंतर मानव अधिकार का उल्लंघन करती है । जेल की स्थिति, मीड़िया की भूमिका, डर, त्रास और भ्रष्ट प्रशासन का यथार्थ व्यंग्यात्मक शैली में है किया गया हैं । उपन्यास में लेखिका ने आंदोलन के अलावा एक स्त्री का अपने प्रेम के प्रति अटूट विश्वास, त्याग, समर्पण की भावना और आधुनिक समाज में बदल रही विवाह की परिभाषा को भी प्रस्तुत किया है । पैतालीस वर्ष की मणि को आखिरकार अपने प्रेमी इन्द्र की मृत्यु का आभास होने लगता है और आलोक के प्रेम प्रस्ताव को स्वीकारने के बारे में सोचती है । निष्कर्ष में कहा जाए तो यह उपन्यास सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चेतना का महत्वपूर्ण दस्ताबेज है ।

३.३ समकालीन नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन में राजनीतिक चेतना की स्थिति एवं विचार दृष्टि

नेपाल में महिला राजनीतिक लेखन की शुरुआत सामान्यतया आधुनिक काल से मानी जाती है लेकिन महिला अधिकार के मुद्दों को सर्वप्रथम समाजिक स्तर से उठाकर राजनीति स्तर तक पहुँचाने और फिर उसे साहित्य में उतारने की पहल योगमाया न्यौपाने ने की है । 'योगवाणी संग्रह' में उनकी पद्य रचनाओं को संकलित किया गया है यद्यपि यह रचना तत्कालीन राणा प्रशासन द्वारा जलाई गई थी फिर भी इसकी कुछ प्रतियों को उनकी बेटी नैनकला ने सुरक्षित रखा था । इसे राणाओं ने सत्ता विरोधी लेखन मानकर जलाने का आदेश दिया था । जिसमें स्त्री पुरुष समानता, सतीप्रथा का अंत, स्त्री स्वतं त्रता, स्त्री शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, वर चुनने की स्वतंत्रता, जातीय एवं धार्मिक विभेद, सामाजिक कार्यों में स्त्री सहभागिता जैसे स्त्री अधिकार के मुद्दें उठाए गये हैं । योगमाया न्यौपाने वैसे तो एक साधवीं थी परंतु वे समाज सेविका और साहित्यकार के रुप में भी जानी जाती हैं । तत्कालीन राणाओं की राज्य व्यवस्था और सामाजिक कुरीतियों का विरोध करके सर्वप्रथम नेपाली समाज में जनचेतना फैलाने का श्रेय योगमाया को जाता है ।

समाज के उपेक्षित एवं उत्पीड़ित वर्ग के हक के लिए लड़ने वाली योगमाया ने समाज की समस्याओं को भली भाँति पहचाना था और उनके समाधान के लिए राजनीतिक पहल भी की । वे जातीय और लैंगिक विभेद का घोर विरोध करती थी । जात-पात का विरोध करते हुए लिखती है .....

"कुल त हाम्रो ब्रह्मण हो छैनों कुलैमा ।

जातमा सत्य छैन हाम्रो, राख चुलैमा ।"[15]

अर्थात कूल तो हमारा ब्राह्मण है परंतु ब्राह्मण जैसा कोई आचरण नहीं है । जात-पात की बात करते हो, जिसमें कोई सत्यता नहीं है, इसे चूले में झोंककर आगे बढ़ना चाहिए । नेपाली समाज में वर्ग और जातीय भेदभाव का अंत करने का प्रयास करने वाली योगमाया तत्कालीन निरंकुश राणा शासन के सामने निडरता के साथ चुनौति बनकर खड़ी रहीं । राणाओं के गलत व्यवहार और सामाजिक कुरीतियों का विरोध करते हुए उन्होंने सामूहिक रुप में अपने मांगों को राणा शासकों के समक्ष रखा । लेकिन राणाओं ने इसे सत्ता का विरोध समझ कर उनको बंदी बनाने की कोशिश भी की लेकिन उन्होंने देश और जनता की स्थिति में सुधार लाने के संकल्प को कमजोर पड़ने नहीं दिया । जल समाधि लेकर उन्होंने जनविद्रोह की शुरुआत की । योगमाया पहली महिला थी जिन्होंने सतीप्रथा के अंत के लिए पहल की और सफल भी रही । सन् 1917 का यह समय नेपाली समाज में जनचेतना का समय था । चेतना का यह बीज आगे चलकर एक बृहद् अभियान के रुप में परिणत हुआ इसकी बागडोर साहित्य जगत में पारिजात ने सम्भाली तो, राजनीतिक क्षेत्र में द्वारिका देवी ठकुरानी और सहाना प्रधान जैसी महिलाएं आगे आई । पारिजात नेपाली साहित्य में समाजवादी विचारधारा से लिखने वाली आधुनिक युग की पहली लेखिका बनी । भ्रष्ट एवं निरंकुश राजनीतिक परिवेश, समाज में वर्ग संघर्ष की स्थिति, सामंती एवं पूजीपतियों का अत्याचार, भूमिहीन मजदूर किसानों का संघर्ष, आर्थिक विपन्नता, लैंगिक विभेद, सांस्कृतिक विचलन,

बेरोजगारी, अशिक्षा, असुरक्षा और अशांति जैसे विषय वस्तुओं को उन्होंने साहित्य का आधार बनाया । इनके साथ-साथ प्रेमा शाह, पद्मावती सिंह, भागीरथी श्रेष्ठ, मंजु काँचुली, अनिता तुलाधार, माया ठकुरी जैसी लेखिकाएं स्त्री अधिकार के मुद्दों को लेकर आगे बढ़ी । क्रांति के दौरान स्त्रियों द्वारा किये गये त्याग और संघर्ष की कथा इनके साहित्य में देखी जा सकती । बेन्जु शर्मा अपनी कहानी 'यहां किन आएको' (यहां क्यों आई हो) में प्रजातंत्र प्राप्ति के पश्चात के राजनीतिक परिवेश का चित्रण करती है । सत्ता प्राप्त कर लेने के बाद नेता किस तरह आंदोलन का उद्देश्य और शहीदों के त्याग को भूल जाते है । यहां तक कि शहीदों के परिवार को दी जाने वाली रकम तक खा जाते हैं । अपने बेटे के शहीद होने पर मिलने वाली रकम लेने के लिए एक मां सौ सवालों का सामना करती है । इसी संदर्भ में वे लिखती है.....

"मेरे बूढ़ापे का एक ही सहारा था, मेरा बेटा मगर प्रजातंत्र प्राप्ति से महत्वपूर्ण नहीं था । मैंने ही उसे आंदोलन में सहभागी होने के लिए उत्साहित किया था । मुझे गौरव है बेटे के शहीद होने पर । बहुत कम उमर में ही उसे सहादत मिली ।"[16]

क्रांति के दौरान स्त्रियां मानसिक, आर्थिक संकटों से गुजरी है उनकी इस पीड़ा का इतिहास में कहीं उल्लेख नहीं है । किसी ने अपना पति खोया, किसी ने बेटा तो किसी ने अपनी संपत्ति । इसकी भरपाई तो दूर की बात है स्त्री के इस महत्वपूर्ण योगदान का कोई मूल्यांकन तक नहीं किया गया । पुरुषों ने हर तरह से इसका लाभ उठाया, पद, प्रतिष्ठा, मान-सम्मान सब पुरुषों के खाते में गये इसको स्त्री ने बाद में महसूस किया और अपने हक की मांग करने लगी । इसलिए स्त्री लेखन मूलत: स्त्री अधिकार की मांग और उसे कमजोर समझकर दरकिनार करने वाले समाज और सत्ता पक्ष का विरोध है । समाज और राजनीति के इसी सत्य को समकालीन लेखिकाओं ने रेखांकित किया है । स्त्री स्वतंत्रता और सवाल के मामले

में हिंदी और नेपाली स्त्री लेखन तुलनात्मक रुप में समान स्थिति में दिखाई पड़ता है परंतु समय काल, विचारधारा और संख्यात्मक हिसाब से नेपाली स्त्री लेखन हिंदी की अपेक्षा थोड़ा पीछे नजर आता है । इसकी वजह नेपाली स्त्री समाज भारतीय समाज की तुलना में शिक्षा, स्वाथ्य और साहित्य में पीछे था क्योंकि यहां की महिलाओं मे शिक्षा का प्रभाव बहुत देर से पड़ा भारत में अंग्रेजी हुकूमत के कारण शिक्षा प्रणाली में निरंतर विकास होता गया और लोगों में शिक्षा संबंधी चेतना दुगनी रप्तार से बढ़ी । इधर नेपाली समाज में जनता राजतंत्र की संकुचित मानसिकता और निरंकुश प्रवृत्ति का शिकार बनती जा रही थी, जिसके कारण जनताओं में निराशा और कुंठा फैल गई । यही वजह थी कि जनता बार-बार आंदोलन पर उतर आती थी । एक तरफ राजा जनताओं के साथ विश्वासघात कर रहें थे तो दूसरी तरफ नेता । बहुदलीय प्रजातंत्र की स्थापना के बाद स्त्री शिक्षा के महत्व को समझा गया और पुरुष की तरह स्त्रियों के लिए भी पढ़ने की व्यवस्था की गई । धीरे-धीरे स्त्रियों में शिक्षा संबंधी चेतना जागी और उन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को कहानी, कविता के माध्यम से साझा करना आरंभ किया । वर्तमान समय में नेपाली साहित्य में स्त्री लेखन एक गौरव का विषय बन गया है । शांता श्रेष्ठ, संगीता स्वच्छा, सुमित्रा अधिकारी, आन्बिका गिरी, नीलम कार्की, शिवानी सिंह थारु, सरस्वती प्रतिक्षा जैसी लेखिकाएं समाज एवं राजनीति से जुड़े हर पहलू की खोज तलाश करके वास्तविकता को समाज के सामने रखने में सफल हो रहीं हैं । नेपाल संघीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था में परिणत होने के बाद कई चीजें बदली है । शिक्षा नीति से लेकर अर्थ एवं रोजगार संबंधी नयी योजनायें निर्माण हुई । स्त्री समानता और लैंगिक विभेद जैसे मुद्दों पर खुलकर बहस होने लगी । स्त्री प्रजनन अधिकार से लेकर नागरिकता के अधिकार तक को संविधान में स्वीकृति मिली । यह राजनीतिक परिवर्तन स्त्री लेखन के लिए कई संभावनायें लेकर आया है । वर्तमान युग बुद्धिवाद का युग है साहित्य में भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है । साहित्य का वैज्ञानिक होना और जटिल होना दोनों इसी की देन है । यही कारण है

कि साहित्य अब प्रत्येक क्षेत्र में एक विशेष दृष्टि और नजरिये को लेकर चल रहा है । पश्चिमी मुल्कों की तरह नेपाली साहित्य में भी अति यथार्थवाद और उत्तर आधुनिकवाद का प्रभाव देखा जा सकता है । गौर करने की बात यह है कि विचार और दृष्टि के बीच में साहित्य का मूल मर्म नष्ट नहीं होना चाहिए । साहित्य में समाज और राजनीति का अन्योन्याश्रित संबंध है । समाज मानव सभ्यता का प्रतीक है तो राजनीति मानव सुरक्षा और सुविधा का प्रतीक है अतः दोनों की उपस्थिति अपरिहार्य है । नेपाली लेखिकाओं ने इस संबंध को बखूबी समझा है और अपने उपन्यासों के माध्यम से इसके महत्व को दर्शाने का प्रयास भी किया है । नेपाली लेखिकाओं के राजनीतिक चेतना के स्तर को जानने के लिए उनके कुछ उपन्यासों को राजनीतिक दृष्टि से मूल्यांकन करना आवश्यक है ।

३.३.१ पर्खालभित्र र बाहिर (दीवार के अंदर और बाहर)

नेपाली साहित्य में चार दशक तक निरंतर कलम चलाकर साधना करने वाली पारिजात ने करीब इक्कीस कृतियां लिखकर नेपाली साहित्य को समृद्ध किया है । उनकी रचनाओं में अस्तित्वादी, स्वच्छंदवादी, अराजकतावादी, समाजवादी, यथार्थवाद जैसी विचारधाराओं का प्रभाव देखा जा सकता है । पारिजात स्वयं ने इस बात को स्वीकार किया है कि उनका साहित्य व्यवहारवाद, उग्रवाद होते हुए प्रगतिवाद की तरफ उन्मुख हुआ है । इनके साहित्य का वैचारिक दार्शनिक मूल्यांकन करते हुए हीरामणि शर्मा लिखते हैं **"बैसको मान्छे (जवान आदमी) से प्रारम्भ होकर प्रगतिवादी कला चेतना परिभाषित आँखाहरु (परिभाषित आँखें) तक पहुंचते-पहुंते मझकर निखरते हुए कमशः गुणात्मक विकास हुआ है ।"**[17] साहित्य को मानव जीवन की प्रगति का आधार समझने वाली पारिजात ने समाज के यथार्थ को वाणी दी है । संस्थाओं से जुड़ने के कारण इन्होंने सामाजिक जीवन को और बेहतर तरीके से समझा हैं । मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण ये नेपाली कम्युनिष्ट पार्टी से भी जुड़ी और कई सालों तक उसकी सदस्य रही । अतः प्रगतिवादी विचारधारा

उनके व्यक्तित्व और लेखन दोनों में देखा जा सकता है । अपने अनुभवों और विचारों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का सामर्थ्य रखने वाली पारिजात ने । नेपाल के राणा शासन के बाद के राजनीतिक परिवेश को अपने उपन्यास दीवार के अंदर और बाहर में रेखांकित किया है । सन् 1978 में लिखे गयें इस उपन्यास में बहुदलीय प्रजातंत्र व्यवस्था की पुर्नबहाली के लिए आंदोलनरत नेताओं और उनकी दोहरी मानसिकता का चित्रण किया गया है । निरंकुश राजतंत्र, समाजिक, धार्मिक, लैंगिक और जातीय विभेद की मुक्ति का नारा लगाकर तत्कालीन राजनीतिक पार्टियां अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगी है । नाम मात्र बहुदलीय प्रजातंत्र की पुर्नबहाली है लेकिन यहां हर कोई अपना व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध करने में लगा हुआ है । लेखिका ने व्यवहारिक और सैद्धांतिक राजनीति को दिखाने के लिए दो प्रकार के राजनीतिक चरित्रों का निर्माण किया है । सैद्धांतिक राजनीति का रमेश नामक पात्र प्रतिनिधित्व करता है जो कम्युनिष्ट पार्टी का कार्यकर्ता है और आंदोलन के दौरान पकड़ा जाता है । ग्यारह साल तक उसने जेल के भीतर का अत्याचार भी देखा है और बाहर का भी । आदर्श, धैर्य और सकारात्मक सोच जो एक नेता में होना चाहिए उसमें है वह किसी भी परिस्थिति में डगमगाता नहीं है । पार्टी के उद्देश्य को अपने जीवन का उद्देश्य मानकर हर परिस्थिति से लड़ता रहता है । पंचायती निरंकुश शासन का अंत करना उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है । दूसरी तरफ जब रमेश ग्यारह साल की सजा काटकर जेल से बाहर निकलता है तो देखता है कि जनता की स्थिति ज्यूँ-की-त्यूँ है वही गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी और अभाव भरी जिंदगी । परिवर्तन का नाम मात्र भी उसको कहीं नजर नहीं आता । नौकरी के तलाश में जब वह इधर-उधर भटकता है तो उसकी मुलाकात पुराने आंदोलनकारी मित्र से होती है, जिसने पद के लालच में सत्ता की गुलामी शुरु कर दी है और वह उसे भी यही रास्ता अपनाने की सलाह देता है । तब रमेश के मन में कई सवाल कौंधते है क्या इसी परिवर्तन के लिए उसने ग्यारह साल की सजा काटी थी ?, क्या आंदोलन में शहीद हुए लोगों के लिए यही उपहार

है ?, क्या इसी को राजनीति कहते है ? वह निराश होकर चुपचाप वहां से चला जाता है और अपनी पत्नी से कहता है मेरे लिए कोई मजदूरी खोज दो अब मैं नेता नहीं मजदूर बनना चाहता हूं ताकि मैं अपने स्वाभिमान को जिंदा रख सकूँ और देश के विकास में कुछ योगदान दे सकूं। इस राजनीतिक यथार्थ का बयान करके लेखिका ने नेपाली जनता के मन से परिवर्तन के भ्रम को तोड़ दिया है। वह यह भी बताने की कोशिश करती हैं कि जो आदर्शवादी नेता है, वह किस तरह धूर्त नेताओं के षडयंत्र का शिकार बनते हैं। उपन्यास की यह पंक्तियां इसी यथार्थ को बयान करती हैं **"शासकों के इतिहास से नौकर बने हुए इस देश का चेहरा हमें देखने का मौका नहीं मिला, समझे नहीं ? कितने ऐसे लोग है जो जनता का शब्द रटकर नेता बने हुए है।"**[18]

राजनीतिक का यह यथार्थ आज भी वैसा ही है जैसा पारिजात के समय में था। पात्र बदले है परंतु व्यवस्था नहीं। कांग्रेस और कम्युनिष्ट पार्टी के नेताओं ने सत्ताधारियों से ऐसे कई समझौतें किए हैं जो उनके हक में तो थे परंतु जनता के हक में नहीं। इसलिए नेताओं की स्थिति में सुधार आया परंतु जनता की स्थिति वैसी ही रही। उपन्यास में आंदोलन के दौरान जनताओं के साथ किया गया सत्ता का निर्मम व्यवहार, जेल में कैदियों की स्थिति, पुलिस प्रशासन का आतंक, सत्ता की दलाली, नेताओं की अदूरदृष्टि, भ्रष्ट प्रशासन लगायत लैंगिक विभेद, जातीय विभेद और वर्ग संघर्ष की स्थिति पर भी दृष्टि डाली गई है। ठेकेदारों और मजदूरों के बीच के संघर्ष के माध्यम से वे नेपाली समाज में चल रहे वर्ग संघर्ष की स्थिति को चित्रित करती हैं। वे कहती है कि अधिकतर ठेकेदार ऐसे मजदूरों को खोजते है जो अनपढ़ है जिनमें अपने अधिकारों के प्रति चेतना नहीं है। जो चुपचाप मौन साधे काम करते है और विचार विवाद से दूर रहते हो। ताकि उन्हें घालमेल करने में आसानी हो। यह पंक्तियां शोषक वर्ग की मनोदशा को स्पष्ट कर देती है **"उन लोगों को क्या पता सड़क विभाग क्या होता है ? क्या नहीं होता ? उन लोगों के**

पसीने का हिस्सा कितने ऊपर से लगना शुरु होता है और कितने नीचे तक जाता है। वे लोग सिर्फ अपने जैसे लोगों को जानते है, जो उनके सामने कारोबार करते है। शोषण की प्रक्रिया क्या पता उन लोगों को लेकिन क्यूरी को कैसे पता चला, नहीं तो उसे भी कुचल कर चलते ये लोग।"[19]

यह अभिव्यक्ति समकालीन नेपाली समाज की न्याय विहीन स्थिति और शोषणमुखी समाज की झांकी प्रस्तुत करती है। पारिजात ने नेपाली समाज की संरचना को बहुत ही बारीकी से परखा है। चाहे वह उच्च वर्ग हो, मध्यम वर्ग हो या निम्न वर्ग, समाज का कोई भी वर्ग उनकी नजरों से छुप नहीं पाया है। स्त्री पात्रों की अगर बात करे तो बाटुली सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली नारी पात्र है जो अपने आर्थिक अभाव को दूर करने के लिए रात-दिन मेहनत मजदूरी करती है। उसने इसको अपनी नियति मान ली है और वह काम को ही आत्मसम्मान का प्रतीक मानती है। उसमें मानवीय सभी गुण है फिर भी हर जगह उसका शोषण होता है। राजनीति का उसको इतना ज्ञान नहीं है धीरे-धीरे रमेश के संपर्क में आकर राजनीति सीखती है। स्त्री शोषण भारतीय समाज की तरह नेपाली समाज में भी आम बात है। उस पर भी अगर स्त्री दलित या गरीब है तो जीवन नर्क से भी बत्तर बना दिया जाता है। इसका कारण बताते हुए लेखिका कहती हैं **"स्त्री के पास मान, अपमान, मर्यादा जैसे ढोंग नहीं होते तो वे जीवन के यथार्थ के करीब होती।"[20]**

स्त्री अधिकार लगायत ऐसे कई सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दें है जिन पर लेखिका ने खुल कर बात की है और स्त्री राजनीतिक चेतना का उत्कृष्ट उदाहरण भी प्रस्तुत किया है।

३.३.२ ताप

शारदा शर्मा द्वारा सन् 2012 में लिखा गया यह उपन्यास मानवीय जीवन एवं समाज की कई पहलुओं को खोलता है। एक तरफ भौतिकवादी चमचमाती दुनिया में समाज के उच्च वर्ग की नैतिक-अनैतिक गतिविधियां है तो दूसरी तरफ समाज के निम्न वर्ग की जीवन के लिए जद्दोजद है। प्रतिस्पर्धा, महत्वकांक्षा संबंध विच्छेद के कारण बच्चों के जीवन पर पड़ने वाला मानसिक प्रभाव एवं युद्ध के कारण उत्पन्न जीवन के प्रति निराशा, कुंठा और वितृष्णा को भी उपन्यास में लेखिका ने बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इनका मानना है इंसान जब जीवन से निराश हो जाता है। अकेलापन और अंर्तद्वंद्व चरम सीमा पर पहुंच जाता है तब वह शांति का मार्ग खोजते हुए गुम्बा, मंदिर, मस्जिदों में भटकता है। वहां भी उसे पद, प्रतिष्ठा, नियम, अनुशासन के बीच निरंतर संघर्ष और अनेक तरह के शोषण एवं ढोंग का सामना करना पड़ता है। लेखिका दुनिया को यह सुझाव देती है कि सही मायने में मानसिक शांति एवं मुक्ति दुःखी गरीबों की सेवा से ही मिलती है इसमें मानव कल्याण की भावना तो निहित होती ही है साथ ही समाज और राष्ट्र हित भी इससे जुड़ा होता है। उपन्यास की कथावस्तु माओवादी जनआंदोलन, बौद्ध धर्म का उद्देश्य, बौद्ध बिहारों में स्त्री की स्थिति, धार्मिक विचलन और नेपाली समाज के उच्च वर्ग के जन-जीवन को केन्द्र में रखकर तैयार की गयी है। उपन्यास की मुख्य पात्र चंद्रिका है जो नेपाली उच्च वर्ग राणा परिवार से ताल्लुख रखती है। पढ़ी लिखी आत्मनिर्भर होने के बावजूद भी वह पितृसत्तात्मक संरचना के त्रास से बच नहीं पाती। पूंजीवादी समाज को चंद्रिका ने पूरी तरह उपभोग किया है साथ ही परासर से विवाह के बाद मध्यम वर्ग का जीवन भी वह भोग चुकी है। चन्द्रिका एक स्वतंत्र विचार की स्त्री है जो अपने जीवन का निर्णय खुद लेने का दमखम रखती है। उसे अपनी स्वतंत्रता और आत्मसम्मान अत्यधिक प्रिय है। जब उसे लगता है कि परासर के परिवार में उसका शोषण हो रहा है तो वह गर्भवती अवस्था में ही वकील की सलाह से अलग रहने लगती है। बेटी सुजाता के जन्म

के बाद मां होने की जिम्मेदारी और काम के बीच का तालमेल मिलाने में भी वह सफल रहती है। संस्था के काम के सिलसिले में अधिकतर उसे बाहर रहना पड़ता है। जिससे उसे धन आर्जन और बाहर की दुनिया का ज्ञान तो होता है परंतु बेटी का प्यार नहीं मिल पाता बेटी कहीं न कहीं पिता को खोने के पीछे मां को जिम्मेदार मानती है। उसके मन में एक टीस रह जाती है। इस कड़वाहट को हटाने का वह अंत तक प्रयास करती है परंतु सफल नहीं हो पाती। इसी मुख्य कहानी के बीच कई घटनाएं जोड़ी गई है। सुजाता अमेरिका की जीवन शैली से ऊँबकर अध्ययन पूरा हो जाने के बाद नेपाल लौट आती है और मानव अधिकारवादी संस्था से जुड़ती है। इसी दौरान उसकी मुलाकात मुक्ति से होती है जो माओवादी आंदोलन से जुड़ा है। एक सामान्य परिवार का व्यक्ति पुलिस के दमन के कारण अपने पूरे परिवार को खो देता है और बदले की भावना से ही वह माओवादी से जुड़ता है। चन्द्रिका की बेटी सुजाता बेकसूर होते हुए भी पुलिस की अमानवीय यातना को सहती है। बलात्कार की पीड़ा इतनी भीषण होती है कि उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। लम्बे समय तक उपचार के बाद जब वह सामान्य होती है तो बुद्ध घर्म से जुड़ती है और भिक्षुणी बन जाती है। तब उसे पता चलता है कि बौद्ध विहार जैसे पवित्र स्थानों पर भी स्त्री का शोषण होता है। पद की लड़ाई होती है। राजनीतिक हस्तक्षेप होता है। दाताओं का प्रभाव विहार के भीतर बाहर रहता है। स्त्री के ज्ञान और देह को पुरुषों से कम आंका जाता है। स्त्री भिक्षुणुओं को पुरुष भिक्षु के निर्देशानुसार चलना पड़ता है। धर्म जो मानव मात्र के कल्याण के लिए बनाया गया है जिसमें भेद भाव का अंश तक नहीं होना चाहिए उसमें स्त्री पुरुष के बीच भेद क्यों है ? स्त्री को प्रव्रज्या देने के संदर्भ में भगवान बुद्ध ने क्यों आठ शर्तों को माता गौतमी के समक्ष रखा ? क्यों स्त्रियां योग्य होने के बाद भी धार्मिक संगठनों में उच्च पद हासिल नहीं कर सकती ? येसे ही कई सवालों को लेकर उन्होंने उपन्यास की रचना की है। वे लिखती हैं **"संघघाटी धारण करने से कोई भिक्षु नहीं बन जाता, वृक्ष के तले आसन मुद्रा में बैठ जाने से भी कोई भिक्षु नहीं**

बन जाता। व्यक्ति किसी भी कूल में पैदा हो परंतु चित्त विमुक्ति और प्रज्ञा विमुक्ति को इसी जन्म में पहचान कर साक्षात्कार करने से मात्र वह श्रमण बनता है।"[21]

शारदा शर्मा समाज एवं धार्मिक संगठनों में फैले विकृतियों पर तंज ही नहीं कसती बल्कि उसके पीछे छुपे कारण भी खोजती है। उनका मानना है धार्मिक संगठन आजकल राजनीति के अखाड़े बनते जा रहे है और धार्मिक गुरु राजनीतिक शक्ति से संचालित कठपुतलों की तरह है। मठ मंदिरों में आज-कल हथियार छुपाने और आंतकियों को शरण देने का काम होता है। इस स्थिति में इंसान यहां कैसे शांति पा सकता है ? धर्म के नाम पर की जाने वाली यह राजनीति समाज को पथ भ्रष्ट करने का काम कर रही हैं। शारदा बौद्ध विहारों में रहने वाले उन लाखों हजारों भिक्षुओं की बेरोजगार स्थिति की बात को भी उठाती हैं। बिना उत्पादन के कैसे हजारों लाखों लोग बौद्ध विहारों में रहते हैं ? इतना डोनेसन कौन देता है और क्यों ?। शारदा शर्मा का मानना है कि नेपाल बर्षों से राजाओं, पूंजीपतियों और जमीदारों की बपौती बना हुआ था। शोषण और अत्याचार की कोई सीमा नहीं थी नेपाल में कमलरी प्रथा एक ऐसी प्रथा थी जिसमें ऋण के नाम पर गरीब किसानों को पुस्तों तक गुलाम बनाकर रखा जाता था। भूमी पर कोई हद बंदी नहीं थी कोई भी कितनी भी जमीन रख सकता था। बहुविवाह का प्रचलन कायम ही था। स्त्री समानता की बात कहीं भी नहीं थी। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगारी पर केवल उच्च वर्ग की पहुंच थी। जातीय एवं लैंगिक विभेद चरम स्थिति में था। जनआंदोलन ने इन समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान आकषर्ण कराया। यथास्थितिवादी सोच को पूरी तरह झकझोर दिया और वंचितों, पिछड़ों एवं हाशिये पर खड़े लोगों को उनके अधिकार से परिचित कराया। नेपाली समाज के लिए यह एक बहुत बड़ा परिवर्तन था। गरीब किसानों एवं महिलाओं ने इसे सराहा और इस अभियान में बढ़चढकर हिस्सा लिया। द्वंद्वकालीन जनता की मनोदशा का वर्णन करते हुए शारदा शर्मा लिखती है **"एक बार के इस मनुष्य जन्म में कब तक डरकर उपेक्षित,**

अवहेलित होकर जिये। हमेशा लकडी़, घांस, पानी ढोने जैसा काम, समाज में छीः छीः, दूर-दूर इसलिए लगा माओवादी में जाने से इससे बेहतर जिंदगी होगी। कोई अवहेलना नहीं करेगा सब मुझसे डरेंगे यही सोचकर मैं एक दिन उन लोगों के साथ चली गई।"[22]

इस विचार से यह प्रमाणित होता है कि जितनी पेट की आग इंसान को विद्रोह करने पर मजबूर करती है उतना ही अपमानित होने की पीडा़ भी इंसान को विद्रोह पर उतार देती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि लेखिका ने पूरी तरह से नेपाल की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थिति को उपन्यास में रेखांकित किया है। इसके अलावा उपन्यास में सत्ता के दमन का घोर विरोध भी दिखाई पड़ता है। विशेषकर सिपाहियों द्वारा आंदोलनरत महिलाओं पर किया गया अत्याचार। जेल में बंदी बनाई गई महिलाएं महीनों तक एक ही कपडों में रहने पर बाध्य की जाती थी, रजस्वला के समय में निकले वाले रक्त कपडो़ में ही सूख जाता था। न शौच की कोई सुविधा और न खाना और पानी की कोई व्यवस्था। कई महिलायें संक्रमण होकर मर जाती थी। एक ही कमरे में जानवरों की तरह सयों कैदीयों को ठूसा जाता था। पुलिस की भाषा ऐसी होती थी कि जिसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। पुलिस की यह यातना मानवता के सारी मर्यादाओं को तोड़ देती है। इसी अमानवीय तांडव से मुक्ति पाने के लिए अधितकर लोग उस समय शांति खोजते हुए बुद्ध विहारों में जाने लगे थे लेखिका ने बुद्ध का संदर्भ शायद इसीलिए उपन्यास में जोडा़ है। जिस तरह से लेखिका ने उपन्यास में बुद्ध धर्म की व्याख्या की है उस आधार पर यह कहा जा सकता है कि लेखिका ने बुद्ध धर्म का गहन अध्ययन किया है और बौद्ध विहारों का प्रत्यक्ष निरीक्षण भी जिससे बौद्ध विहारों के भीतर का सत्य बाहर निकाल ने में वह सफल हुई हैं।

३.३.३ कल्ली

कल्ली हरिमाया भेटवाल द्वारा लिखा गया एक ऐसा उपन्यास है जिसमें द्वंद्वकालीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थिति को हू-ब-हू उतारा गया है । रोग, शोक, भूख, गरीबी, अभाव, शोषण, आंतक, विभेद, बेरोजगारी, कुरीति, अमानवीयता, राज्य सत्ता की अकर्मण्यता, भ्रष्टाचार, जैसी समस्याओं को व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास की कथावस्तु नेपाली समाज में स्त्रियों के जीवन संघर्ष के विविध पक्षों को आधार बनाकर तैयार की गई हैं । इसके अलावा रोजगार की तलाश में विदेश पलायन होते युवा और सरकार के गैर जिम्मेदारी रवैये को भी उपन्यास के केन्द्र में रखा गया है । कल्ली और लक्षिमा नेपाली ग्रामीण समाज में स्त्री शोषण की स्थिति को प्रदर्शन करने वाली मुख्य पात्र है तो विदुषी शहरी समाज के उच्च वर्ग की स्त्रियों की स्थिति की प्रतिनिधि पात्र है । लक्षिमा अपने पति से इसलिए प्रताड़ित है कि उसने दो बेटियों को जन्म दिया है । हालांकि उसका पति सोमनाथ पूरी कोशिश करता है कि उसका दूसरा बेटा हो और वह बेटे का बाप बनकर अपने इस लोक और परलोक दोनों को सफल कर सके । इसलिए वह लाहुरे बॉ से पांच हजार कर्ज लेकर तंत्र-मंत्र करने वाले गुरु के चरणों में रख देता है लेकिन अफसोस उस तान्त्रिक का भी कोई मंत्र कारगर सिद्ध नहीं होता और जन्म लेती है बेटी कल्ली । इसी शोक में वह सुंतली की दारु की दुकान पर रोज दारु पीने जाने लगता है । जिसके चलते वह अपनी सारी जमीन बेच देता है । लक्षिमा इस स्थिति से परेशान होकर गंगा के पास जाती है । गंगा एक अनुभवी और सचेत महिला है, उसने भी अपने पति को दारु के कारण ही गवाया था । गांव में केवल सोमनाथ ही नहीं सभी पुरुष नशे की लत के कारण घरबार बेचने में लगे हुए थें । पत्नी के साथ रोज मारपीट कलह से पूरे गांव में अशांति फैल चुकी थी । इसका फायदा हो रहा था गांव का सामंत लाहुरे बॉ को । गंगा ने इसका उपाय निकाला और सभी महिलायें एक जुट होकर नशा मुक्त गांव का अभियान चलाने लगी । कुछ हद तक तो वे सफल भी हुई परंतु एक दिन अचानक सोमनाथ

की मृत्य हो जाती है, जिसके कारण इनका मुहिम खंडित हो जाता है । गंगा सोमनाथ की मृत्यु के रहस्य का पता लगा ही रहीं थी कि एक दिन पुलिस आकर गंगा और कृष्ण को माओवादी आतंकारी होने का आरोप लगाकर पकड़कर ले जाती है । एक महिने बाद गांव वालों को उन की लाश खेत में सड़ी हुई मिलती हैं । यह घटना गांव असुरक्षित और न्याय विहिन होने की स्थिति को उजागर करती है । पुलिस प्रशासन जमीदरों की मुट्ठी में था । लक्षिमा की बेटी कल्ली बड़ी होती जा रही थी स्कूल आते-जाते लाहुरे बाँ उसको बूरी नजर से देखने और परेशान करने लगा था । लक्षिमा को इसका पता चलता है और वह इसका उपाय खोजती है । कल्ली स्कूल नहीं जाती क्योंकि उसकी शादी कर दी जाती हैं । तेरह साल की कल्ली अपनी भीषण गरीबी और सामाजिक असुरक्षा के कारण बाल विवाह का बोझ ढोने पर विवश कर दी जाती हैं । उधर लाहुरे बाँ कल्ली की मां को डायन का आरोप लगाकर आत्महत्या करने पर बाध्य कर देता है । विवाह उपरांत भी कल्ली का जीवन कठिन परीक्षा से गुजरता है । सास की मृत्यु के बाद पूरे घर की जिम्मेदारी और पढ़ाई के बीच कल्ली तालमेल मिलाकर चलती है । बारहवीं कक्षा पास करते-करते उसने समाज, देश दुनिया के बारे में बहुत कुछ सीख लिया है । उसका पति डिल्लीराम निहायत गैर जिम्मेदार और स्वार्थी आदमी है । शहर में पढ़ाई भी ठीक से नहीं कर पाता और किसी दूसरी औरत से उसका संबंध रहता है । एक रोज घर लौटता है और पासपोर्ट बनाकर विदेश चला जाता है । दुबई में उसे किसी की हत्या का आरोप लगा कर फसा दिया जाता है, और उसे फाँसी की सजा सुना दी जाती है । कल्ली उसे इस सजा से बचाने के लिए पूरी कोशिश करती है । इसी दौरान उसकी मुलाकात विदुषी से होती है विदुषी उच्च वर्ग की एक पढ़ी लिखी आत्मनिर्भर महिला है । कल्ली के जीवन संघर्ष से वह काफी प्रभावित है । स्वतंत्र विचारधारा की विदुषी भी कहीं न कहीं अपने पति के हरकतों से परेशान रहती है लेकिन वह अपना लक्ष्य नहीं छोड़ती । पूरी तरह कल्ली का साथ देती है । कल्ली राजधानी आकर सभी संघ- संस्था लगायत पत्रकार और

मंत्रियों से सहयोग की याचना करती है । आखिरकार पति के जान के बदले मांगी गयी ब्लड मनी रकम । पचास लाख रुपये भेजकर पति को बचा में कल्ली सफल होती है । एक पत्नी और बहू होने के बावजूद कल्ली एक स्त्री भी थी । अपने साथ हुए विश्वासघात और तिरस्कार की पीड़ा को वह सहन नहीं कर पाती और पति को छोड़ कर चली जाती है । उपन्यास सामान्य रुप में देखने से लगता है कि एक स्त्री के जीवन संघर्ष की कहानी है । परंतु यदि राजनीतिक एवं स्त्री दृष्टि से इसका मूल्यांकन किया जाए तो ऐसी कई घटनायें और संदर्भ खुलकर सामने आते है जिससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि राज्य व्यवस्था और कानून तक पहुंच स्त्री और सर्वहाराओं की नहीं है । समाज में उनकी उपस्थिति केवल प्रयोग के साधन के रुप में दिखाई पड़ती हैं । अपने देश के निर्दोष नागरिक को विदेश में फाँसी दी जाने की सजा सुनाये जाने के बाद भी देश के प्रशासन का मौन साधे खड़ा रहना गैर राज्य की गैर जिम्मेदारीपन को उजागर करता है । कल्ली कहती है **"नेपाल का एक बेटा निर्दोष होते हुए भी मारा जा रहा है तो मैं कल्ली किसी की बहू, किसी की पत्नी को जीने का क्या अर्थ ? राज्य गूंगा बनकर हम नागरिकों का तमाशा देख रहा है तो मैं उस शासन सत्ता के आगे शरीर में पेट्रोल छिड़क कर आत्मदाह करती हूँ । इसे सिर्फ चेतावनी न समझा जाए । परिस्थिति ने मुझे यह संकल्प लेने पर बाध्य किया है ।"**[24]

सरकार के गैर जिम्मेदारीपन और अकर्मण्यता पर कल्ली का यह सवाल जनचेतना का उदाहरण है । नागरिकों के लिए स्वदेश में ही रोजगारी की व्यवस्था किये जाने और उनके जीवन रक्षा की जिम्मेदारी लेने के लिए सरकार को पहल करने का संदेश भी है । बेरोजगारी से केवल युवाओं का भविष्य बर्बाद नहीं हो रहा है देश का भविष्य भी अंधकारमय एवं गति हीन बनता जा रहा है । देश के उत्पादन में युवाओं की संलग्नता अनिवार्य है जिससे समृद्धि लायी जा सकता हैं । विदेश में युवाओं के जोश और हौसले को खर्च करने का मतलब अपने देश को अपांग बनाना

है । देश की सरकार को यह नीति बदलनी होगी । कामदार के रुप में किसी भी युवा को विदेश की भूमि पर न भेजा नहीं जाना चाहिये । जो गए हैं उनकी सुरक्षा और पारिश्रमिक का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये । नेपाल में प्रमुख रुप से दो तरह से युवा विदेश पलायन हो रहे हैं । एक तो कामदार के रुप में जो पढ़े लिखे नहीं है सामान्य मजदूरी के लिए जाते है दूसरा अध्ययन के नाम पर जाते है । अध्ययन के नाम पर जाने वाले युवा वापस लौटना नहीं चाहते क्योंकि उनके लिए उचित वेतन और सेवा सुविधा नेपाल में उपलब्ध नहीं हैं । सरकार को इस ओर ध्यान देना जरुरी नहीं समझती हैं । उपन्यास में लेखिका का विशेष ध्यान इसी ओर गया है । वे अपनी बात में लिखती है

"लिखने के लिए विषय को खोजते हुए विषय को ही डूब कर पानी पीकर छटपटाते हुए देखा । उसी वक्त मेरी नजर कांतिपुर पत्रिका में पड़ी उसमें ब्लड मनी नामक शीर्षक में विदेशों में पैसे कमाने के लिए गए एक युवक को दी गई मृत्यु दंड के बारे में खबर छपी थी । पत्रिका में तैर रहे इसी समाचार को उठाकार मैंने कल्ली लिखा है ।"[25]

हरिमाया भेटवाल की नजर उन छोटे मोटे सामान बेचने वाले व्यापारियों पर भी गई है जो सड़कों के किनारे बैठकर रोजी रोटी कमाते हैं । नगर प्रहरी उनसे यह जरिया भी छीन लेती है । ऐसे कई समस्याएं है जो उपन्यास में व्यंग्यात्मक रुप में उठाई गई हैं । स्त्री के संदर्भ में बात करें तो गांव की अनपढ़ औरतों से लेकर शहर की पढ़ी लिखी औरतों का सामाजिक शोषण भी दिखाया गया है तो उसका विरोध भी दिखाया गया हैं । खुद को पढ़े लिखे सभ्य कहने वाले पुरुषों की क्षुद्रता से लेकर पुरुष नाम पर दंभ करने वाले ढोंगी और कायर पुरुषों का भी चित्रण किया गया हैं । गांव में दारु मुक्त अभियान से लेकर डिल्लू बचाओ अभियान तक में स्त्री का नेतृत्व दिखाकर स्त्री चेतना और जागरुकता की स्थिति को भी दर्शाया गया हैं । कथावस्तु के हिसाब से उपन्यास समय सादगंर्भिक तो है ही साथ ही

स्त्रियों को ऊर्जावान बनाने का भी काम करता है । लेखिका की स्त्रीवादी दृष्टि से उपन्यास रोचक बना है ।

३.३.४ योगमाया में राजनीतिक दृष्टि एवं विचार

योगमाया वर्तमान समय (2017) में ऐतिहासिक पृष्टभूमि पर लिखा गया उपन्यास है । यह योगमाया न्यौपाने के जीवन संघर्ष और उनकी सामाजिक, राजनीतिक चेतना को उजागर करने वाला शोध मूलक उपन्यास है । इसमें उल्लेख की गई सभी घटनायें एवं तथ्य ऐतिहासिक है परंतु पात्रों के संदर्भ में कहा जाये तो उन सभी पात्रों का नाम हु-ब-हू रखा गया है जिनका नाम शोध के दौरान उपलब्ध हो सका है और जिनका नहीं हो सका कथा की आवश्यकता के आधार पर उन्हें गढ़ा गया हैं । एक तरफ यह उपन्यास राणाकालीन निरंकुश शासन तंत्र का विरोध करता है तो दूसरी तरफ नेपाली सामाजिक परिवेश का यथार्थ चित्रण भी करता हैं । योगमाया न्यौपाने नेपाल की पहली समाज सेविका मानी जाती है जिन्होनें महिला अधिकार लगायत समाज के सभी उपेक्षित वर्गों के अधिकार के लिए आवाज उठाई है । सामाजिक रुढ़ियों के प्रति उनका विरोध उनकी आधुनिक सोच को प्रस्तुत करता है तो धार्मिक आस्था से जुड़े होने के बावजूद धार्मिक आडंबर का विरोध करना उनकी निष्पक्ष एवं प्रगतिवादी विचारधारा को प्रस्तुत करता है । उनका मानना है कि कोई भी धर्म मानव जाति के बीच भेदभाव की बात नहीं करता । सभी धर्म में मानव कल्याण की भावना निहित है और इसी अद्देश्य से धर्म का जन्म भी हुआ है परंतु हमने अपने स्वार्थ के लिए धर्म को गलत तरीके के व्याख्यायित करने का दुस्साहस किया है । जाति, धर्म, लिंग, भेद मानवीय स्वार्थी प्रवृत्ति की उपज है जिसके पीछे केवल स्वार्थ की भावना छुपी है । इसलिए धर्म की पुर्नव्याख्या आवश्यक है, इसमें मानव को जोड़ने के भाव को केन्द्र में रखा जाना चाहिए । लेखिका नीलम कार्की 'निहारिका' ने लगभग सौ साल पहले के नेपाली समाज को उपन्यास में चित्रित किया है । प्रत्येक चीजों को बारीकी से देख परखकर

उससे जुड़े सत्य को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने में वे सफल हुई हैं । लेखिका ने योगमाया के संघर्ष के साथ-साथ तत्कालीन सत्ताधीश श्री तीन भीमसमशेर, श्री तीन चन्द्रमशेर और श्री तीन जुद्धशमशेर के शासन काल की राजनीतिक गतिविधियों को भी उपन्यास में रेखांकित किया है । राणाओं के षडयंत्रों की पोल खोलते हुए निहारिका लिखती हैं **"दरबार में रानियों के बीच हमेशा प्रतिस्पर्धा और षडयंत्र चलता रहता था अपने बेटे को राजा बनाने के लिए, निर्दोष लोगों को फंसाया जाता था । विरोध करने वालों की हत्या की जाती थी या उनके सर का मोल निर्धारित किया जाता था । झूटे आरोपों को भी सत्य प्रमाणित कर के लोगों का सर मूलियों की तरह काट दिया जाता था । राणा पहले कुंवर जात के क्षेत्री थे । षडयंत्र से सत्ता हथियाने के बाद जंगबहादुर ने खुद को श्री तीन महाराज जंगबाहादुर राणा (जबरा) घोषित कर दिया ।"**[26]

इस अभिव्यक्ति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लेखिकाने बड़ी ही सूझबूझ के साथ राणाओं के समग्र इतिहास को उपन्यास में चित्रित किया है । कथावस्तु पूर्वीय नेपाल के अरुण घाटी के गांवों को केन्द्र में रखकर तैयार की गई है । अरुण नदी का सौन्दर्य वर्णन से लेकर उसके आस-पास के गांव मझुवाबेसी और गौडसेनी से लेकर जंगल, मठ-मंदिर, रास्ते, खेती-बाड़ी, लोगों का रहन-सहन, खान-पान, बोली-भाषा लगायत घरों का भी चित्रण बहुत ही सजीव तरीके से किया गया है । राजनीतिक घटना के अलावा प्राकृतिक प्रकोप और महामारी का उल्लेख भी उपन्यास में देखा जाता है । जिससे यह उपन्यास और अधिक तथ्य परख बन पड़ा है, जैसे सन् 1928 में शीतलामाई के प्रकोप से गांव में मची त्राहिमाम की स्थिति । राज्य की ओर से कुछ राहत न मिलना और जनता का दुःख बढ़ना । सन् 1933 का महाभूकम्प, अरुण नदी की बाढ़ का त्रास और सन् 1938 में योगमाया सहित 65 लोगों द्वारा अरुण नदी में ली गई जलसमाधि आदि ऐतिहासिक घटनायें हैं । उपन्यास की पूरी कहानी योगमाया के ईद-गिर्द घूमती है

नेपाल के सुदूर पूर्व के गांव से लेकर भारत के सिक्किम तक की चर्चा उपन्यास में की गई है । बचपन में ही योगमाया का विवाह उसके इच्छा विपरीत किया जाता है । जी तोड़ मेहनत के बाद भी ससुराल में प्रेम और इज्जत न मिल पाने के कारण वह दु:खी होती है । शोषण और अन्याय की चरम सीमा पार होते ही वह एक दिन घर छोड़कर माइके चली आती है । माइके में भी उसका तिरस्कार होता है पिता को लगता है कि बेटी के कारण उसकी इज्जत गांव में कम हुई है । इसलिए वह अपने पिता का दु:ख का कारण नहीं बनना चाहती । एक दिन अपने ही गांव के एक लड़के के साथ काम की तलाश में वह गांव छोड़कर भारत के सिक्किम चली जाती हैं । वहां भी उसका जीवन सुखमय नहीं बीत पाता दो पुरुष के जीवन में आने के बावजूद भी वह अकेली रह जाती हैं । उसका मन ध्यान और तप की ओर आकर्षित होता है ज्ञानी तपस्वीयों के संगत से उसकी चेतना समृद्ध होने लगती है । जीवन और समाज को देखने का नजरिया बदलने लगता है । उसे ज्ञात होता है कि जीवन का उद्देश्य केवल अपने लिए जीना नहीं बल्कि दूसरों के लिए जीना है । यहीं से उसकी यात्रा साध्वी के रुप में शुरु होती है माया नाम की लड़की जीवन में कई ठोकर खाने के बाद योगमाया बन जाती है । पूजा-पाठ ज्ञान, ध्यान, तपस्या और लोगों के दु:ख का निवारण करना उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है । यही लक्ष्य लेकर वह भारत के सिक्किम से अपने देश नेपाल लौट आती है और दु:खी गरीबों के लिए लड़ना, समाज में शांति और सद्भाव कायम रखने का अभियान जारी कर देती है । वे अपने प्रवचनों में सामाजिक विभेद, शोषण, हत्या, हिंसा अंत करने का संदेश देती है । जनचेतना के लिए वह कहती है **"परतंत्रता, अंधविश्वास, कुरीति, समाज के रोग है । इन्हें फेंक देना चाहिए । अत्याचार सहना पाप है बल्कि इसे लड़ना पुण्य है । साहस और हिम्मत से जीवन जीना चाहिए । अपने जन्मभूमि का बलात्कार होते हुए देखना कायरता है ।"**[27]

योगमाया ने नेपाली जनताओं को ही नहीं बल्कि राणाओं को भी नैतिकता और सदाचार की शिक्षा दी है । देश में सुशासन कायम रखने के लिए वे राणाओं से विनम्र अनुरोध करती थी । मानव होकर मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता देना नागरिक और शासक दोनों का पहला कर्तव्य होना चाहिए । राजनीति का मूल उद्देश्य राष्ट्र की सुरक्षा और जनता को सेवा, सुविधा देना होना चाहिए । जिससे देश का चौमुखी विकास की सम्भावना बनती है । राजनीति के संदर्भ में योगमाया के इन विचारों को लेखिका ने बहुत ही संवेदनशील तरीके से प्रस्तुत किया है । उपन्यास में स्त्री अधिकार संबंधी सवालों को भी सशक्त रुप में उठाया गया है । योगमाया जब अपना ससुराल छोड़कर माइके चली आती है तो गांव वाले उसे ताने ही नहीं देते तरह-तरह की बाते सुनाते हैं । तब वह अपनी मां से पूछती है मैंने क्या गलत किया ? यदि यही काम पुरुष करता तो क्या उसको भी मेरी तरह सौं बाते सुनाई जाती ? क्या उसके चरित्र को लेकर संदेह किया जाता ? वे मर्द है हम औरतें उसके लिए कुछ और नियम हमारे लिए कुछ और नियम ये कैसा समाज है ? समाज की यही संरचना उसे अपना ससुराल और माइका ही नहीं देश छोड़ने पर मजबूर कर देती **है ।** समाज की इसी जटिलता के बीच से ही योगमाया का जन्म हुआ **है** । इसके अलावा सतीप्रथा का अंत, स्त्री स्वतंत्रता, स्त्री शिक्षा, विवाह एवं विधवा पुनर्विवाह, समान न्याय, स्त्री सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण स्त्री अधिकार के मुद्दें को भी उपन्यास के केन्द्र में रखा गया हैं । सामाजिक मूल्यों की स्थापना, रुढ़ियों का विरोध, निरंकुश सत्ता को चुनौति देने का साहस योगमाया ने किया है यही वजह थी कि वो नेपाली समाज में एक मुखर चरित्र के रुप में उभर पायी है । इस उपन्यास में लेखिका ने समाजवादी स्त्री दृष्टि का प्रयोग किया है ।

३.३.५ मान्छेको रंग (आदमी का रंग)

आन्विका गिरी का उपन्यास आदमी का रंग नेपाल के माओवादी जनआंदोलन (1995-2006) का राजनीतिक दस्ताबेज है । नेपाली राजनीति के इतिहास में यूं तो कई राजनीतिक परिवर्तन देखे जा सकते है परंतु परिवर्तन का सबसे अहम और

महत्वपूर्ण चरण सशस्त्र जनयुद्ध को लिया जा सकता है । क्योंकि इसने परंपरागत एवं यथास्थितिवादी राजनीतिक व्यवस्था का अंत कर संघीय लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना की । इस व्यवस्था के तहत हाशिये के वर्ग, उत्पीड़ित एवं उपेक्षितों को प्राथमिकता में रखा गया । इनको मूलधार में लाने के लिए आरक्षण, समानता एवं समावेशी जैसी अवधारणा का विकास कर संविधान निर्माण की प्रक्रिया जारी की गई । सन् 2015 में प्रस्तावित नये नेपाल का नया संविधान 37 भागों में विभाजित है, इसमें 296 अनुच्छेद और 7 अनुसूचियां हैं । यह संविधान लगभग नेपाल की सभी जात, जाति, वर्ग, क्षेत्र, लिंग, धर्म को समेटकर बनाया गया है । धर्मनिरपेक्षता इस संविधान की प्रमुख विशेषता है इसलिए यह विश्व समुदाय में चर्चित भी रहा । अतः नेपाल में आधुनिक राजनीति की शुरुआत यहीं से मानी जाती है । इस संपूर्ण प्रक्रिया में माओवादी जनआंदोलन और पार्टी की अहम भूमिका रही वरन बरसों से चले आर रहे इस रुढ़िग्रस्त समाज को परिवर्तन करना इतना आसान नहीं था । माओवादी जनआंदोलन ने ही जनता को अपने अधिकार के लिए सचेत कराया और समाज में जड़ जमाकर बैठी हुई कमलरी, देउकी, छाउपडी़ प्रथा का अंत किया । जमीदारी प्रथा को रोकने के लिए भूमी पर हदबंदी व्यवस्था लागू की गई । छुआ-छूत को प्रश्रय देने वालों के लिए सजा की विशेष व्यवस्था लागू हुई । महिला हिंसा और बालश्रम को गैर कानूनी बताया गया । समान काम के लिए समान पारिश्रमिक को मान्यता दी गई । स्त्री यौनिकता के सवाल को गंभीर रुप में लिया गया । राज्य में स्त्री की पहचान के लिए नागरिकता विधेयक कानून संशोधन हुआ । पिता के साथ-साथ माँ के नाम से भी उनके बच्चों को नागरिकता देने की व्यवस्था पर विचार किया जाने लगा । देश सात प्रदेश में विभाजित हुआ । प्रदेश सरकार को प्रदेश के सर्वांगिण विकास की जिम्मेदारी दी गई । इस परिवर्तन ने नेपाल की आर्थिक, सामाजिक स्थिति को बदल कर रख दिया । आन्विका गिरी इस परिवर्तन का श्रेय माओवादी लगायत सभी सचेत नागरिकों को देती है जिन्होंने अपने प्राणों की परवाह किये बिना विभेद रहित समाज के निर्माण में अपना

महत्वपूर्ण योगदान दिया । उपन्यास की कथावस्तु द्वंद्वकालीन परिवेश पर आधारित है । माया इस उपन्यास की प्रमुख पात्र है । समाज के उपेक्षित वर्गों के प्रति उसका विशेष लगाव है । राष्ट्र प्रेम की भावना और देश के प्रति अपनी जिम्मेदारी को उसने अपने किशोरावस्था में ही समझ लिया है । दस कक्षा में पढ़ने वाली माया के मन में द्वंद्व का बहुत गहरा प्रभाव पडा़ है । वह इस भीषण द्वंद्व का कारण जानना चाहती है । पुलिस के दमन और माओवादियों के प्रतिकार की वजह जानना चाहती है । उसकी यह जिज्ञासा उसे शिखर लगायत कई अन्य माओवादी कार्यकर्ताओं के संपर्क में लाती है । तब उसे माओवादियों के उद्देश्य और सिद्धांत के बारे में पता चलता है । वह छुप छुपकर मार्क्स और माओ के सिद्धांत पढ़ती है । गोर्की के मदर उपन्यास का पात्र पावेल उसका हीरो बन जाता है । एक दिन अचानक रहस्यमय तरीके से उसे पता चलता है कि उसके पिता मास्टर बद्री माओवादी जनआंदोलन से जुड़े हैं । वह खुश होती है उसे लगता है कि पिता सर्वहाराओं के अधिकार के लिए लड़ रहे है परंतु कुछ ही समय बाद उसे यह भी पता चलता है कि उसके पिता ने पुलिस के सामने आत्मसमर्पण कर लिया है । यह घटना उसकी अंर्तआत्मा को हिला देती है । उसी समय वह निर्णय लेती है कि वह खुद आंदोलन से जुड़ेगी और माओवादियों के इस अभियान को सफल करने में सहयोग देगी । दश कक्षा की परीक्षा देने के बाद वह औपचारिक रुप से पार्टी की सक्रिय कार्यकर्ता बन जाती है । माया ने राज्य सत्ता के क्रूर दमन को अपनी आंखों से देखा था । उसकी पड़ोसी दीदी भीमा की हत्या पुलिस के सामूहिक बलात्कार से हुई थी और जनता डर से घर के भीतर छुप गयी थी । उसे लगा था लोग इसका विरोध करने घर से बाहर क्यों नहीं निकल रहें हैं । इस तरह तो कई निर्दोष लोग इस आंदोलन का शिकार हो जायेंगे । हमें निर्दोषों की रक्षा करनी चाहिए । हमारे शत्रु तो केवल शोषक वर्ग और निरंकुश सत्ता है । गरीब सर्वहाराओं की रक्षा हमारी पहली जिम्मेंदारी है । यदि हम ऐसा नहीं कर सकेंगे तो यह हमारी हार है । ऐसे कई विचार उसके मन में कौंधते है । वह एक जिम्मेदार नागरिक के

साथ-साथ संवेदनशील इंसान भी है माओवादियों द्वारा थापा के हत्या की खबर सुनकर उसे अत्यंत दुःख होता है और वह शिखर को गुस्से की नजर से देखती है तब शिखर उसे समझाने के लिए पत्र लिखता है 'कमरेड माया' **''शेखरबहादुर थापा की हत्या से मैं भी दुःखी हूँ। तुम्हारी तरह मुझे भी लगता है निर्दोषों को मारना नहीं चाहिए लेकिन हमें इस सत्य को भी नहीं भूलना चाहिए कि हम एक महान लक्ष्य लेकर चल रहे हैं। सर्वहारा वर्ग की सत्ता स्थापना के बीच आने वाली बाधाओं को हमें हटाना ही होगा।''**[23]

पार्टी से जुड़ने के बाद उसे वास्तविक क्रांति का पता चलता है। क्रांतिकारियों की व्यक्तिगत समस्यायें, पार्टी के भीतर महिला सुरक्षा एवं समानता, नियम, अनुशासन, पार्टी के भीतर की जटिलताएं, आर्थिक अभाव, हथियार व्यवस्थापन, सूचना का महत्व, ईमानदारिता, पारदर्शिता, आदि के बारे में उसे यथार्थपरक जानकारी होती है। वह पूरी ईमानदारी से पार्टी का सदस्य होने की जिम्मेदारी निभाती है परंतु पार्टी के भीतर के कुछ लोग उस पर विश्वास नहीं करते उसे गद्दार की बेटी होने के आरोप लगाया जाता है और वह चुपचाप उस आरोप को सह लेती है। यहां तक कि एक दिन उसे पुलिस का सुरागी बताकर अपने ही पार्टी के लोग उसे मरणासन्न स्थिति तक पीटते है। तब भी वह अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटती। उसका दृढ़ संकल्प और साहस सराहनीय है। लेखिका ने उपन्यास में माया के माध्यम से सशस्त्र जनयुद्ध में महिला के योगदान को तो चित्रित किया ही है साथ ही उसके साहस और उत्पीड़न की स्थिति को भी बयान किया है। वे मानती है कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियाँ दोनों तरफ से शोषण का शिकार हुई है एक तरफ उन्होंने पुलिसों की ज्यादत्ती सही है तो दूसरी तरफ माओवादी क्रांतिकारियों की। इस दोहरे शोषण से कुछ स्त्रियों ने बहुत कुछ गवाया है, तो कुछ का आत्मविश्वास और मनोबल बढ़ा है। घर की चार दीवारी से बाहर निकलकर उसने बाहर की दुनिया में अपना साम्रज्य कायम करने का हुनर सिखा

। बेटियों को कमजोर और लाचार समझने वाले समाज के सामने उनका एक सशक्त रुप दिखाई पड़ा । उन्हें अपनी शक्ति और सामर्थ्य दिखाने का यह एक बहुत बड़ा अवसर मिला । नेपाल में माओवादी का जन्म तत्कालीन राजनीतिक पार्टियों और सत्ता की असक्षमता और गैर जिम्मेदारीपन के कारण हुआ है । इसलिए उनकी कथनी और करनी में अंतर नहीं दिखना चाहिए । उपन्यास में द्वंद्वकाल के सभी घटनाक्रम को समेटने का प्रयास किया गया है । जनमानस में पड़े इसके प्रभाव को सूक्ष्म दृष्टि से देखा गया है । सरल भाषा शैली और अभिव्यक्ति के कारण यह उपन्यास उत्कृष्ट बन पड़ा है । पात्रों का चुनाव भी समय परिस्थिति और आवश्यकता अनुरुप दिखाई पड़ता है । प्रमुख सहायक पात्र के रुप में बद्री, शिखर, मानवी, सवीन, दीपक, सूर्य, रक्तिम, आक्रमण, तारा आदि है । राजनीति के सैद्धांतिक पक्ष की तुलना में व्यवहारिक पक्ष अधिक उभर कर सामने आता है । उपन्यास के नाम की सार्थकता क्रांति के साथ बदले हुए लाल रंग से होती है ।

निष्कर्ष : साहित्य में विचारधाराओं का प्रवेश आधुनिक युग की देन है । उन्नीसवीं शताब्दी में जब मार्क्स ने समाजवाद की अवधारणा का विकास किया उसी समय से दुनियाभर के साहित्य में विचारधाओं का प्रयोग किया जाने लगा । साहित्यिक रुप में कहें तो प्रगतिवादी लेखक संघ की स्थापना से ही साहित्य ने एक नयां रुप लिया है । कल्पना की जगह यथार्थ ने ली है । साहित्य में अनेक तरह के प्रयोग किये जा रहे हैं । स्त्रीवादी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि इसी की देन हैं । साहित्य में राजनीतिक विचारधारा का प्रयोग राजनीतिक गतिवधियों को ही नहीं सिखाता है बल्कि मानवीय अधिकार और उससे जुड़े समस्याओं का निवारण कैसे किया जाना चाहिये इन सबकी जानकारी भी देता है । हिंदी और नेपाली स्त्री लेखन में राजनीतिक चेतना की स्थिति अत्यंत संतोषजनक स्थिति में देखी जाती है । लेखिकाओं ने समाज के विविध पक्ष पर पड़ने वाले राजनीतिक प्रभावों के साथ-साथ मानव जीवन के विकास के लिए राजनीति की अपरिहार्यता को भी प्रस्तुत किया है । और वे यह बताने से भी पीछे नहीं हटी है कि राजनीति में फल-

फूल रहे भ्रष्टाचार और विसंगति के कारण राजनीति पर से जतना का भरोसा उठता जा रहा है इसलिए राजनीतिक गतिविधियों में सुधार लाने की आवश्यकता है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. http://www.Nandnee.blogspot.com
2. http://www.Nandnee.blogspot.com
3. बर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कड़ियां, पृ. 120
4. उल्फ, वर्जीनिया, अपना कमरा, पृ. 43
5. मधुरेश, हिंदी उपन्यास का विकास, पृ. 201
6. सं. भारद्वाज, प्रेम, पाखी, जनवरी 2016, अंक, 4, वर्ष, 8, पृ.99
7. मुद्गल, चित्रा, आवां, पृ. 177
8. मुद्गल, चित्रा, आवां, पृ. 348
9. पुष्पा, मैत्रेयी, चाक, पृ. 7
10. पुष्पा, मैत्रेयी, चाक, पृ. 5
11. पुष्पा, मैत्रेयी, चाक, पृ. 14
12. खेतान, प्रभा, तालाबंदी, पृ. 32
13. कांकरिया, मधु, खुले गगन के लाल सितारे पृ. 94
14. कांकरिया, मधु, खुले गगन के लाल सितारे पृ. 92
15. निहारिका, कार्की, नीलम, योगमाया, पृ. 494
16. सं. पराजुली, राजेन्द्र, नेपाली राजनीतिक कहानियां, पृ. 149
17. पाण्डे, डॉ प्रसाद, भवानी, पारिजात के उपन्यासों में समाजवादी यथार्थवाद, पृ. 200
18. पारिजात, दीवार के अंदर और बाहर, पृ. 57
19. पारिजात, दीवार के अंदर और बाहर पृ. 119
20. पारिजात, दीवार के अंदर और बाहर पृ. 35
21. शर्मा, शारदा, ताप, पृ. 4
22. शर्मा, शारदा, ताप, पृ. 107
23. गिरी, आन्विका, आदमी का रंग पृ. 97

24. भेटवाल, हरिमाया, कल्ली, पृ. 257
25. भेटवाल, हरिमाया, कल्ली, पृ. 286
26. निहारिका, कार्की, नीलम, योगमाया, पृ. 246
27. निहारिका, कार्की, नीलम, योगमाया, पृ.104

अध्याय चार

४. स्त्री आंदोलन का परिप्रेक्ष्य : स्त्री विमर्श के सवाल और संदर्भ

स्त्री मुक्ति से जुड़े हुए आंदोलन को स्त्री आंदोलन के नाम से जाना जाता है । 'मुक्ति' शब्द अपने आपमें उत्पीड़ित, शोषित और वंचितों की स्थिति को जाहिर करने वाला शब्द है। समाज या परिवार में रहने वाले किसी भी जाति, वर्ग, समुदाय या लिंग के लोगों के साथ होने वाले भेदभावपूर्ण असमान्य व्यवहार से समाज असंतुलित होता है । इसी असंतुलन के गर्भ से असंतुष्टि का भाव उत्पन्न होता है । यही असंतुष्टि विरोध, विद्रोह और आंदोलन को जन्म देती है । स्त्री आंदोलन भी समाज की असमान्य स्थिति से उत्पन्न विद्रोह है जिसमें स्त्री मुक्ति स्वतंत्रता और समानता का भाव निहित है । दूसरे शब्दों में कहें तो स्त्री मुक्ति या आंदोलन स्त्री चेतना का उदाहरण है । सदियों से दुनिया के सभी समाजों में स्त्रियाँ शोषित, उपेक्षित एवं प्रताड़ित होती रही है । समाज का एक हिस्सा सक्षम होते हुए भी कमजोर और अपाहिज बनाया गया था । ऐसा करने के पीछे क्या कारण था ? यह स्थिति समाज के लिए उचित है या नहीं ? इस स्थिति को कैसे सुधारा जा सकता है ? जैसे सवाल इस समय के समाजशास्त्रियों द्वारा उठाये गये थें । किसी ने स्त्री को पुरुषों से पीछे रहने का कारण उसकी जैविक भिन्नता को बताया तो किसी ने उसकी अशिक्षा या आर्थिक परनिर्भरता बताया तो किसी ने इसे पुरुषों की सोची समझी साजिश के रुप में लिया । अरस्तू ने स्त्री को पदार्थ होने की संज्ञा दी तो बाइबल में स्त्रियों को रोगी मरीजों की तरह दया भाव दिखाने की हिदायत दी गयी । मनुस्मृति में स्त्री को कमजोर बताते हुए उसकी रक्षा की जिम्मेदारी पुरुषों को लेने का सुझाव दिया । ऐसे कई चर्चा परिचर्चाओं के बीच जाँन स्टुअर्ट मिल ने यह निष्कर्ष निकाला की स्त्री पुरुषों की तरह सभी पक्ष के सक्षम है फिर भी उसकी शारीरिक बनावट पुरुषों की तुलना में कमजोर है । अत: पुरुष ने बल के प्रयोग से स्त्री को नियंत्रण में रखा और अपने हित के हिसाब से उसका प्रयोग करना आरंभ

किया । मार्क्स और एंगेल्स का मानना है कि स्त्री के शोषण का कारण उत्पादनमुखी कामों से या अर्थ से न जुड़ पाना है । उनके इसी विचार का समर्थन करते हुये नेपाली लेखिका पारिजात लिखती है **"आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर होना मानव जाति का सर्वोपरि सुख है । परन्तु स्त्रियां इस सुख से परिचित नहीं हैं । उन्हें घरेलू कामों को छोड़कर घर से बाहर के कामों में संलग्न होना होगा जहां उन्हें वेतन मिलने की संभावना हो ।"**[1]

इन सबके विचारों से हटकर सिमोन द बउबा कहती है कि स्त्री शोषण का मुख्य कारण पितृसत्ता है । यह सत्ता स्त्री के पैदा होते ही उसे अपने सांचे में ढालने लगती है । सामान्यतया कोई भी शिशु मानव के रुप में जन्म लेता है उसे स्त्री या पुरुष बनाने का काम पितृसत्ता करती है । उसको कमजोर या असुरक्षित बताया जाता है और उसके कार्यों की सूची पहले से ही निर्धारित की जाती है ताकि उसे यह विश्वास दिलाया जा सके कि परिवार तथा समाज के नियम का पालन करना उसका परम कर्तव्य एवं धर्म है । यही नियम संस्कार के रुप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तारित होती रहती है । उनकें शब्दों में कहा जाए तो "स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि उसे बना दिया जाता है ।" स्त्री भाषा में जिसे पितृसत्तात्मक मानसिकता कहा जाता है । प्रत्येक देशों में स्त्री आंदोलन का अपना ही अलग-अलग इतिहास है परंतु सभी का द्येय एक ही है स्त्री मुक्ति । स्त्री मुक्ति और उसके इतिहास को समझने से पहले स्त्री मुक्ति के सैद्धांतिक पक्ष को समझना आवश्यक है । सामान्यतया स्त्री मुक्ति के संदर्भ में तीन सिद्धांत प्रचलित है । उदारवादी नारीवाद, समाजवादी नारीवाद और अतिवादी या रेडिकल नारीवाद ।

४.१ पाश्चात्य नारीवादी आंदोलन का इतिहास और स्त्री मुक्ति के सवाल

मानव समाज की आधी आबादी स्त्री जाति की आबादी है । अपने विवेक, कौशल और सामर्थ्य के होते हुए भी यह जाति वर्षों से पुरुष सत्ता के अधीन में छटपटाती हुई पुरुष उत्पीड़न को सहने पर बाध्य बना दी गई थी । स्त्री आंदोलन इसी बाध्यता

से निकला हुआ भीषण संघर्ष है । स्त्री को पराधीन बनाये जाने के कारण और अपनी स्वतंत्रता एवं पहचान को हासिल करने की जद्दोजदह में स्त्री समाज लगा हुआ है । स्त्री आंदोलन के इतिहास पर नजर डाले तो इसकी शुरुआत अठारहवीं शताब्दी से मानी जा सकती है । इस समय फ्रांस और यूरोप जैसे देशों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रांतियां चरम रुप में उभर चुकी थी । इसी क्रांति ने स्त्री को उसके अधिकार और सामाजिक जीवन के संबंध में चेतना जगाई । इसी दौरान पश्चिमी महिलाओं ने स्त्री को विवेकहीन बताकर उसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सत्ता एवं प्रतिष्ठा के क्षेत्र से बाहर रखे जाने और प्रचलित विभेद युक्त धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक मान्यताओं पर सवाल उठाये । ओलिंप ड गूज. (Olympe den Goges) नामक महिला ने 1789 में फ्रंसीसी क्रांति के दौरान नई क्रांतिकारी व्यवस्था में समानता की सीमित अवधारणा को सार्वजनिक रुप में चुनौति दी । **"उनका कहना था कि क्रांतिकारी व्यवस्था दावा तो सार्वजनिक समानता (Uniersal Eqality) का करती है किंतु वास्तव में यह समानता केवल बुर्जुवा पुरुष नागरिकों को उपलब्ध है । इसमें स्त्रियों के लिए कोई जगह नहीं है ।"[2]**

इस सटीक नारीवादी समीक्षा के प्रत्युतर में ओलिंप ड गूज को मृत्युदंड सुना दिया गया । इस घटना से अंदाजा लगाया जा सकता है कि तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति और प्रतिक्रिया को किस रुप में लिया जाता था । जिस समाज में स्त्रियों को सार्वजनिक रुप में बोलने तक कि आजादी नहीं थी उस समाज में स्त्री अधिकार के मुद्दों को उठाना अपने जीवन को जोखिम में डालना था । फिर भी किसी भय या त्रास की परवाह किये बगैर स्त्रियों द्वारा स्त्री मुक्ति के लिए जो कदम उठायें गये है, वह वास्तव में सराहनीय हैं । चार दीवारियों के भीतर धार्मिक बंधनों में जकड़कर अंधकारमय जीवन जी रही स्त्रियों को पुरुषों द्वारा खुद पर नियंत्रण किये जाने और घर से लेकर बाहर तक उसके साथ असमान एवं विभेद युक्त व्यवहार

होने का यथार्थ का ज्ञान यूरोपीय क्रांति ने कराया था । सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक रुपांतरण के इस दौर में समाज के सभी दलित, शोषित उपेक्षित वर्ग अपने हक की आवाज बुंलद कर रहे थे । स्त्रियों ने भी अपने हक अधिकारों के लिए स्त्री सरोकार और विचार दर्शन को विकसित किया । सामाजिक रुप में सक्रिय स्त्रियों ने अपने व्यापक अनुभवों को चिंतन का आधार बनाया जिसमें विश्वस्तर पर लैंगिक असमानता के प्रश्नों को उठाया गया और एक समृद्ध स्त्रीवादी सिद्धांत तैयार हुआ । जिसे वर्तमान समय में फेमिनिज्म, स्त्रीवाद या फिर स्त्री विमर्श के नाम से जाना जाता है । संगठित रुप में स्त्री आंदेलन की पहली शुरुआत उन्नीसवीं सदी से हुई । सन् 1905 में इंग्लैंड की महिलाओं ने अपने नागरिक अधिकार को सुनिश्ति करने के लिए वोट देने के अधिकार संबंधी पहली महत्वपूर्ण मांग रखते हुए आंदोलन शुरु किया । आंदोलन चरम रुप में पहुंचा कई आंदोलकारी स्त्रियों को गिरप्तार किया गया । अंततः सन् 1918 में निजी घर का स्वामित्व रखने वाली तीस वर्ष से ऊंपर की महिलाओं को वोट देने के अधिकार की घोषणा की गई बाद में इसे संशोधन करके 1927 में 21 साल से ऊपर की सभी महिलाओं को वोट देने का अधिकार प्रदान किया गया । इस भीषण संघर्ष को अंजाम देने के लिए इंग्लैंड के स्त्री आंदोलन का नेतृत्व संभालने वाली एमेलिन पैक्हर्स्ट के संदर्भ में 'टाइम' प्रत्रिका ने लिखा कि **''उसने पुरातन स्वरुप बदलते हुए एक ऐसी स्त्री का निर्माण किया है जहाँ से अब पीछे लौटना संभव नहीं ।''**[3]

धीरे-धीरे इस आंदोलन का प्रभाव विश्व के अन्य देशों में भी पड़ा विश्वव्यापी रुप यह आंदोलन फैला यूरोप और अमेरिका से लेकर दक्षिण अमेरिकी और एशियाई मुल्कों तक कि महिलाओं ने नागरिक अधिकार के हक के लिए नारेबाजी शुरु की । कुछ हद तक अन्य देशों में भी यह आंदोलन प्रभावकारी देखा जाने लगा । संयुक्त राज्य अमेरिका में लुकेशिया मांट, एलिजाबेद कैंडी स्टेनटन और सूसन एंथनी ने आंदोलन का नेतृत्व किया । इन्होनें स्त्री मताधिकार के साथ-साथ दास प्रथा के

अंत के लिए भी आवाज उठाई । मार्गरेट सेंगर और वोल्टाटीन डी क्लेर पहले से ही स्त्रियों के लैंगिक, प्रजनन और आर्थिक अधिकार के मुद्दों को लेकर आंदोलन कर रही थी । अमेरिका में स्त्री मताधिकार की घोषणा 1919 में हुई । इन आरंभिक आंदोलनों की सफलता ने स्त्रियों में आत्मविश्वास तो भरा ही साथ ही अन्य देशों की महिलाओं के लिए प्रेरणा का स्वरुप भी बनें । फ्रांस में (1944) और स्वीटजरलैंड में (1971) में स्त्री को वोट के अधिकार मिले । इसी तरह इस्लामिक देशों में भी इसका प्रभाव पड़ा । 1923 में हुदा शारवी ने मिश्र में स्त्रीवादी संगठन का गठन किया । जो अरब की स्त्रियों के अधिकार के लिए पहल करने वाली संस्था के रुप में चर्चित रही । 1956 में मिश्र गणतान्त्रिक राज्य के रुप में स्थापित हुआ ततपश्चात् गमाल अब्देल नासिर ने राज्य द्वारा आयोजित स्त्रीवादी कार्यक्रम की शुरुआत की और वोट के अधिकार के साथ-साथ लैंगिक विभेद पर भी कानून रोक लगा दिया । लेकिन कुछ ही समय बाद सत्ता परिवर्तन हुई और कट्टर इस्लामवाद के चलते स्त्री के अधिकरों पर रोक लगा दी गई । ईरान में भी इसी तरह की स्थिति देखी गई । 1905 में संवैधानिक क्रांति के बाद स्त्री अधिकार को संबोधन किया गया परंतु 1979 में इस्लामिक क्रांति ने स्त्री के समान अधिकार को समाप्त कर दिया । धार्मिक कट्टरता के ही कारण आज भी इस्लामिक देशों की महिलायें समान अधिकारों से वंचित हैं । सऊदी अरब, तालिबान इसके उदाहरण है । लैटिन अमेरिकन देश क्यूबा, निकारागुआ, ब्राजील, बेनेजुएला, बोलीविया आदि में तानाशाही के विरुद्ध संघर्ष के बाद समाजवादी व्यवस्था ने स्त्री के समान अधिकारों को समान करते हुए स्त्री अधिकार को विशेष महत्व दिया है । इस तरह हम देखते है कि स्त्री आंदोलन का प्रभाव लगभग दुनिया के सभी देशों में पड़ा । स्त्री आंदोलन की इस पहल ने केवल स्त्री समाज ही नहीं सभी उपेक्षित वर्ग भी लाभांवित हुए । असमानता की पोषक पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के बदलाव और स्त्री अधिकार के लिए नारीवादी आंदोलन निरंतर आगे बढ़ता गया । 1910 में द्वितीय सोशलिस्ट इंटरनेशनल महिला सम्मेलन कोपेनहेगन में आयोजित किया गया ।

जिसमें कम से कम सत्र देशों की प्रतिनिधि महिलाएं उपस्थित हुई । इसी सम्मेलन के दौरान स्त्री के संघर्ष गाथा और विजय के महत्व को ध्यान में रखते हुए अंतर्रराष्ट्रीय महिला दिवस मनाये जाने का प्रस्ताव भी पारित किया गया । इसके अतिरिक्त स्त्री अधिकारों के लिए आंदोलन और विश्व स्तर में होने वाले राजनीतिक घटनां कम और प्रथम विश्व युद्ध के विरुद्ध जनमत संग्रह के लिए हस्ताक्षर कार्यकम भी किया गया । इन समग्र आंदोलन की सफलता में वोल्स्टोनक्रप्ट की पुस्तक विंडिकेशन आँफ द राइट्स आँफ वूमेन' (1797), जाँन स्टुअर्ट मिल की किताब 'सब्जेक्सन आँफ वूमेन' (1873), फ्रेडरिकल एंगेल्स की 'द ओरिजिन आँफ द फेमली प्राइवेट प्राँपटी एंड द टेस्ट' (1884) आदि पुस्तकों की भी अहम भूमिका रही । यह सत्य है कि द्वितीय विश्व युद्ध से पहले से ही स्त्री की स्थिति में सुधार आने लगा था यूरोप और उत्तरी अमेरिका में नया उत्साह एवं विश्वास उभर कर आया । तकनीकी, उद्योग एवं शैक्षिक क्षेत्र में दिन दुगनी और रात चौगुनी की रप्तार से विकास आगे बढ़ रहा था । उद्योगों के विकास के कारण श्रम की मांग भी बढ़ रही जिससे महिलाओं को रोजगार के अवसर मिल रहे थे । अधिक महिलाएं रोजगार से जुड़ने लगी उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार आने लगा और उनमें आत्मविश्वास भी बढ़ा । लेकिन जैसे ही युद्ध खत्म हुआ अधिकतर स्त्रियों को नौकरी से निकाला जाने लगा फिर भी कुछ स्त्रियों ने डटकर इस स्थिति का सामना किया और अपने परिवार के लिए आर्थिक स्रोत साधन जुटाने में निरंतर लगी रही । 1950 और 1960 के दशकों में यद्यपि महिलाओं के व्यावसायिक और शैक्षिक विकल्पों का दायरा तो बढ़ा किंतु कार्य स्थलों में भेदभाव की स्थिति घटी नहीं । इस स्थिति को महिलाओं ने महसूस किया और जेंडर पर आधारित विभेद एवं अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए संगठन तैयार किये । स्त्री के निजी जीवन से जुड़ी समस्यायें जैसे अनचाहा गर्भ ठहरना परिवार की संकुचित मानसिकता के कारण शिक्षा से वंचित रहना या स्वतंत्र रुप में इच्छा अनुसार के कामों से न जुड़ पाना जैसी समस्यायें उनके मन में बेचैनी पैदा कर रही थी । इन समस्याओं का समाधान केवल

सामाजिक पहल से संभव नहीं था अत: महिलाओं ने राजनीति में सहभागी होने की आवश्यकता महसूस की और राजनीतिक सक्रियता को बढ़ाया जाने लगा। स्त्रियों को वोट का अधिकार तो मिल ही रहा था परंतु इतना ही पर्याप्त नहीं था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्थिति सामान्य होने लगी। विकास की रप्तार तेजी से बढ़ी राजनीति एवं राज्य व्यवस्था का स्वरुप बदलने लगा। युद्धों के कारण क्षत-विक्षत हुई अर्थव्यवस्थायें तेजी से ऊपर उठने लगी। स्त्रियों में भी अधिकार के प्रति चेतना और अधिक बढ़ चुकी थी। उसने युद्ध के दौरान व्यवस्था संबंधी काफी कुछ सीख लिया था। अब उसे अवसर की आवश्यकता थी। इसी पृष्ठभमि के आधार पर स्त्री आंदोलन का दूसरा चरण आरंभ किया गया। बीसवीं शताब्दी से इस चरण की शुरुआत हुई। इस आंदोलन के मुख्य मुद्दें पुरुषों की तरह स्त्रियों के लिए भी समान राजनीतिक एवं कानूनी अधिकार की व्यवस्था, समाजिक, कानूनी, परंपरागत एवं सांस्कृतिक स्तर पर व्याप्त विभेद का अंत, आर्थिक, राजनीति क्षेत्र में बराबरी एवं समान अवसर और स्त्री अस्मिता की एक स्वतंत्र पहचान की स्थापना आदि थे। चीन में भी बीसवीं शताब्दी के मध्य में सामंती सामाजिक व्यवस्था एवं उपनिवेश व्यवस्था से मुक्ति के बाद कम्युनिष्ट व्यवस्था ने स्त्रियों के वोट के अधिकार को सुनिश्चित कर उन्हें समाज के मुख्यधारा से जोड़ा और उनके श्रम को राज्य के विकास के लिए महत्वपूर्ण माना गया। लेकिन हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए की उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष के दौरान जो स्त्रियों ने भूमिका निभाई थी यह परिवर्तन उसी का परिणाम था। यूं तो मार्क्स ने स्त्री समाज तथा राज्य के विकास में स्त्री श्रम के महत्व पर तो प्रकाश डाल ही दिया था। दूसरे चरण के इस आंदोलन की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि इस दौरान सिमो द बउवा की पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' का प्रकाशन हो चुका था। सिमोन ने अस्तित्ववादी फ्रांसीसी चिंतक ज्यां पाल सार्त्र के विचारों से सहमति जताते हुए स्त्रीवादी अस्तित्ववाद के संदर्भ में पूर्व प्रचलित स्त्री नैतिकता संबंधी विचारधाराओं का खंडन किया। लैंगिक आधार पर होने वाले स्त्री विभेद का खुलकर विरोध कर

के तर्कसंगत रुप में पुरुष सत्ता की विवेचना की । उनका विचार था कि पुरुष स्त्रियों को अपने जैसा नहीं बल्कि अपने से कमतर निम्न श्रेणी का मानता है और जन्म से ही लिंग भेद करना सिखाता है । सिमोन के साथ-साथ अमेरिका की स्त्रीवादी आंदोलनकारी बैट्टी फ्रीडमैन ने भी अपनी पुस्तक 'द फेमिनिन मिस्टिक' में माँ और पत्नी के रुप में घर के भीतर सीमित स्त्री की पहचान का विरोध किया । स्त्री की क्षमता और योग्यता के आधार पर समाज को उसे एक नई पहचान और स्वतंत्रता देनी होगी की मान्यता रखी । सत्तर के दशक में अमेरिका में 'वूमेन लिब्रेसन' जैसा आंदोलन बहुत चर्चा में आया । इस आंदोलन के तहत 'ब्रा बर्निंग' कार्यक्रम चलाया गया जिसमें स्त्री के संदर्भ में प्रचलित नैतिक मान्यताओं और उसकी मनलुभावनी छवि को अस्वीकार किया गया । इसके पीछे का स्त्रीवादियों का मकसद यह था कि समाज में उसे अलग रुप-रंग में देखने की परंपरा खत्म हो और उसे पुरुषों के समान देखा जाए । वूमेन लिब्रेशन में मध्यवर्गीय महिला अधिक उत्साह के साथ जुड़ी हुई थी । इसी समय श्वेत-अश्वेत जैसे रंग भेदी मुद्दें भी सामने आयें । वाँटकिंस ने अपनी पुस्तक 'फेमिनिस्ट थ्योरी फ्रांम मार्जिन टु सेंटर' (1984) में लिखा कि **''अमेरिकी अश्वेत अल्पसंख्य स्त्रियां श्वेत स्त्रियों के मुकाबले रंगभेदी मानसिकता के कारण अलग प्रकार की सामाजिक, राजनीतिक असमानता का शिकार हो रही है ।''**[4]

हम देख रहें है कि स्त्री आंदोलन में समय परिस्थिति के बदलाव के साथ-साथ इसके मुद्दें भी बदलते जा रहे है । बीसवीं शताब्दी के अंत और इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ में दूरसंचार, मीडिया, तकनीकी और बाजार व्यवस्थापन के क्षेत्र में पर्याप्त तरक्की हुई । इसका प्रभाव स्त्री जीवन पर भी पड़ा । स्त्रियां सभी क्षेत्रों में साझेदारी करती हुई दिखाई पड़ने लगी । इस स्थिति में वह खुद को पूर्ण रुप से स्वतंत्र रखना चाहती थी । इसी दौरान स्त्री यौनिकता के सवाल भी उठायें गयें । 'मेरा शरीर

मेरा अधिकार' नामक नारा चर्चा में आया । बहुत से महिलाओं ने इसकी प्रशंसा की । कैथरिन मैक्किनाँन ने इस के संदर्भ

में कहा कि **''यौनिकता उसकी स्वायत्तता है जिस पर केवल उसका नियंत्रण हो सकता है । पितृसत्तात्मकता में स्त्री यौनिकता और स्वयं स्त्री के शरीर पर अधिकार के प्रश्न सदैव पुरुष समाज द्वारा निर्धारित कियें जाते रहें है और पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर की जाने वाली यौन हिंसा का भी यही कारण रहा है । पत्नी के रुप में स्त्री यौन संबंधों के लिए एक तरह से पति की कानून गुलाम है ।''**[5]

वास्तव में स्त्री यौनिकता का सवाल जायज था क्योंकि विवाह पश्चात्य पुरुष एक तरह से स्त्री को अपनी यौन संतुष्टि एवं भोग विलास के लिए कानूनी रुप में लाई गई वस्तु के रुप में देखता था । उसकी नजर में स्त्री की इच्छायें और परिस्थिति कोई मायने नहीं रखती थी और स्त्रियों के पास भी विरोध करने का कोई आधार नहीं था । वह उसे अपना धर्म मानने पर मजबूर थी जैसे ही यौनिकता के अधिकार को कानूनी संरक्षण मिला तो हर रोज ऐसे घटनायें दर्ज की जाने लगी कि पति द्वारा पत्नी का बलात्कार किये जाने की । यह एक अहम और महत्वपूर्ण उपलब्धि थी पुरुषसत्ता के दंश से बचने की । दूसरी बात यह कि इस यौनिकता के अधिकार के कारण पुरुष यह सोचने पर बाध्य हुआ कि स्त्री का अपना स्वतंत्र जगत है, वह किसी के लिए बनाई नहीं गई हैं । उस पर जोर जबरजस्ती से अब नियंत्रण में नहीं रखा जा सकता । इसके अलावा स्त्रियों ने अपने पहनावें को लेकर भी आवाज उठाई वे किसी दबाब में आकर या परंपरा संस्कृति के नाम पर अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई पोशाक नहीं पहनेंगी । पोशाक पहनने की उसकी अपनी स्वतंत्रता होगी । उसके सामाजिक एवं व्यक्तिगत क्रियाकलाप पुरुषों के तरह ही होंगे उसमे भेदभाव करना भी असमानता को प्रोत्साहन देना होगा । वर्तमान समय बाजारवादी अर्थव्यवस्था का है । अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग विज्ञापन है । इस व्यवस्था में स्त्री को विज्ञापान का साधन बनाया गया है । स्त्री की देह का वस्तुकरण हो रहा

है । यह स्त्री विमर्श का एक महत्वपूर्ण सावाल है कि स्त्री के देह के इस बाजारीकरण को कैसे रोका जाये ? इस विषय पर भी विचार विमर्श हो रहें हैं । स्त्री संघर्ष ऐसे ही कई मुद्दों को लेकर चला है और चल रहा है । यह संघर्ष कितना सफल रहा और कितना विफल रहा इसके विषय में तथ्यगत विवरण देते हुए नमिता सिंह अपनी पुस्तक 'स्त्री प्रश्न' में लिखती है **"संयुक्त राष्ट्र विकास रिपोर्ट 2004 के अनुसार घरेलू स्तर पर हो या बाहरी कार्य क्षेत्र हो, स्त्रियां पुरुषों से अधिक काम करती है । 2001 में संयुक्त राष्ट्र की पैन पैसिफिक साउथ ईस्ट एशिया वीमेन्स असोसियेशन के इक्कीसवें अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में कहा गया कि पूरे विश्व के स्तर पर स्त्रियां आबादी का 51 प्रतिशत है लेकिन पुरुषों की तुलना में 66 प्रतिशत काम करती है लेकिन उनकी आमदनी मात्र 10 प्रतिशत है और उनमें से अपनी निजी संपत्ति की हकदार एक प्रतिशत से भी कम है । जाहिर है स्त्रीवादी आंदोलन ने पिछले समय में काफी कुछ हासिल किया है लेकिन स्त्री पुरुष असमानता का आंकड़ा अभी काफी दूर है ।"[6]**

इस तथ्य से यह यह प्रमाणित होता है कि भले ही स्त्री की सामाजिक स्थिति में सुधार आया हो परंतु काम की व्यस्तता के बावजूद भी स्त्रियां आर्थिक रुप में पुरुषों से अभी भी कमजोर है । स्त्री पुरुष बीच का यह संघर्ष तब तक चलता रहेगा जब तक समाज पूरी तरह शिक्षित नहीं होगा और समाज में एक दूसरे को अपने हित के लिए प्रयोग करने की मानसिकता समाप्त नहीं होगी । समाज में एक दूसरे के अस्तित्व को समान रुप में स्वीकार नहीं किया जायेगा और स्त्री पुरुष के बीच सम्मान, सद्भाव और प्रेम की भावना नहीं पैदा होगी । सहअस्तित्व को स्वीकार कर विकास की ओर आगे बढ़ना आज के समय की मांग है ।

४.२ भारतीय नारीवादी आंदोलन का इतिहास एवं स्त्री मुक्ति के सवाल

४.२.१ उपनिवेशकालीन भारत और नारीवादी आंदोलन

पितृसत्ता के चंगुल में फँसा भारतीय स्त्री समाज । सती प्रथा, दहेज प्रथा, बाल विवाह, महिला हिंसा, बालात्कार, बालिका भ्रूण हत्या, एसिड प्रकरण, वेश्यावृत्ति, देवदासी प्रथा, अनमेल विवाह, असमान वेतन, अशिक्षा जैसे सयौं समस्याओं से गुजरा है । स्त्री इस स्थिति में अचानक नहीं पहुंची है यह एक लंबी प्रक्रिया के तहत तय हुआ है । वेदों में उपलब्ध तथ्य यह बताते है कि तत्कालीन समय में स्त्री की स्थिति संमानजनक थी और स्त्री अपने जीवन के संपूर्ण निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र भी थी । शिक्षा और रोजगारी के मामले में भी उसके साथ कोई विभेद नहीं था अब सवाल यह उठता है कि आज की स्थिति में स्त्री कैसे पहुंची ? क्या उसने अपने अधिकारों को छीने जाने पर विरोध नहीं किया ? अगर किया है तो उसके प्रमाण कहां है क्यों उल्लेख नहीं किये गयें ? इस संबंध में धार्मिक ग्रंथ या पितृसत्ता मौन क्यों है ? इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि उल्लेखित तथ्य इतने प्रमाणिक नहीं हैं । यह भी पितृसत्ता की एक साजिश है । एक तरफ देवी या शक्ति के रुप में स्त्री को पूजने का दावा करने वाला पितृसत्तात्मक समाज दूसरी तरफ उसके देह को ही पवित्र और अपवित्र की दृष्टि से देखता है । रजस्वला और उसकी यौनिकता के संदर्भ में आज भी समाज में ऐसे कई प्रमाण मिलते है जहां स्त्रियों के शरीर को छूना तक मना है । वेश्यायें और विधवा स्त्रियां समाज के लिए अभिशाप या कलंक मानी जाती है । स्त्री को देवी मानने वाले पितृसत्ता से यह सवाल है कि क्या वे स्त्री देवियां नहीं है ? स्त्री के वेश्या होने या विधवा होने में कौन जिम्मेदार है ? खैर ऐसे कई सावल है जो पितृसत्ता के षडयंत्रों की पोल खोलते है और उपलब्ध तथ्यों को गलत साबित भी करते है । हमारे सरोकार का विषय यह है कि स्त्रियों को अपने साथ हो रहे इस अन्याय के बारे में चेतना कब जागी और कब उसने इसका विरोध करना शुरु किया और कब उसने अपने अधिकार को प्राप्त किया । भारत के संदर्भ में स्त्री चेतना की शुरुआत उन्नीसवीं

शताब्दी से मानी जा सकती है क्योंकि यह समय भारत में नवजागरण का समय था। उपनिवेशवादी सत्ता के खिलाफ राजनीतिक गतिविधियां जोर पकड़ रही थी। नेतृत्व कर्ताओं को यह आभास हो रहा था कि इस अभियान में अधिक से अधिक लोगों की जरुरत है और यह तभी संभव हो सकता है जब समाज के सभी वर्ग, लिंग और तपके के लोगों को शामिल किया जाएगा। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए गांधी लगायत सभी नेताओं ने समाज के अपेक्षित वर्गो को इस अभियान में शामिल करना शुरु कर दिया। यह स्त्री के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर था जिसके दौरान भारतीय महिलाओं ने सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था को समझा और समाज में अपनी दोयम दर्जें की स्थिति को किस तरह सुधारा जा सकता है पर चिंतन करना शुरु किया। सरोजनी नायडू भारतीय स्त्री चेतना का एक ऐसा उदाहरण है जिसने अपने सशक्त अंदाज से समग्र भातीय स्त्रियों में ऊर्जा भर दी थी उनके इस कथन ने **"याद रखो जो हाथ पालना झुलाते है वही दुनिया पर राज करते है।"**[7]

मंत्र का काम किया। सारी जड़ता को खत्म कर महिलायें बेहिचक आंदोलन में कूद पड़ी। यूं तो पाश्चात्य स्त्री आंदोलन का प्रभाव भारतीय स्त्री समाज पर भी पड़ चुका था परंतु उन्हें मौके की तलाश थी। इसकी शुरुआत 1848 में प्रथम महिला विद्यालय खोले जाने से हुई। स्त्री शिक्षा के महत्व को समझने वाली पहली महिला के रुप में सावित्री बाई फूले सामने आई। यद्यपि स्त्री शिक्षा और अधिकार के लिए भारतीय समाज सुधारक संस्थायें पहले से ही काम कर रही थी। आर्य समाज और ब्रह्म समाज ऐसी संस्थाये थी जिसने स्त्री के सुरक्षा और सम्मानित जीवन जीने के संदर्भ में आवाज उठायी थी। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा को रोकने के लिए अंग्रेजों पर दबाब बनाया और सन् 1829 में इसे कानूनन अपराध घोषित करवाया। भारत में स्त्री मुक्ति का आंदोलन इतना आसान नहीं था एक तरफ पितृसत्ता जैसी जटिल मानसिकता और दूसरी तरफ उपनिवेशवादी सत्ता का

शोषण महिलायें दोहरे शोषण का शिकार बनी हुई थी । पितृसत्ता ने उनके लिए जीवन के मूल्य निर्धारित कर दिये थे तो अंग्रेज उनका उपयोग घरेलू काम करवाने के लिए कर रहें थे । इस दौरान उनका श्रम शोषण और यौन शोषण दोहरे रुप में किया जा रहा था । स्थिति असह्य बनी हुई थी, इसी स्थिति ने ही स्त्री को अपने अधिकार के लिए आवाज उठाने पर बाध्य कर दिया । सन् 1910 में सरला देवी के नेतृत्व में 'भारत स्त्री मंडल' की स्थापना हुई जिसके माध्मय से स्त्री शिक्षा, बाल विवाह और पर्दा प्रथा जैसी समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया । संघ सस्थाओं की तरह स्त्री चेतना पर आधारित पत्र-पत्रिकाओं का भी पंजीकरण जारी रहा । स्वर्णकुमारी देवी वनिता और भारती पत्रिका की संपादक बनी । इसी तरह कमला पत्रिका (1907), सुभप्रभात पत्रिका (1924), नारी गौरव पत्रिका (1931), महिला पत्रिका (1938), श्रृंखला की कडियां (1938), स्त्री दपर्ण (1909) आदि अनेकों पत्रिकाओं ने लगातार स्त्री अधिकार और स्वतंत्रता पर केन्द्रित सामग्रियां प्रकाशित की । पुरुषत्ता का विरोध कर वेद, पुराणों पर उल्लेखित स्त्री संदर्भों का खंडन किया । इस आधार पर कहा जा सकता है कि स्त्री आंदोलन में पत्र-पत्रिकाओं और साहित्य की अहम भूमिका रही । सन् 1916 में होमरुल लीग की स्थापना हुई । इसी दौरान एनी बेसेंट, मार्गेट कूजिंस, सरोजनी नायडू आदि महिलाओं ने स्त्रियों के वोट देने के अधिकार को सुनिश्चित करने की मांग रखी । बेसेंट का मानना था होमरुल आंदेलन में स्त्रियों की सहभागीता से आंदोलन की शक्ति दुगुना बढ़ेगी । स्त्री एक्टिविज्म के बारे में कार्यक्रम में भाषण देते हुए सरोजनी नायडू ने कहा "**मैं मात्र एक महिला हूं और मुझे आप सबसे कहना चाहिए कि जब आपका दिन शुरु हो, या कि अंधेरे में पथ प्रदर्शन के लिए प्रकाश पूंजों की आवश्यकता पड़े, और निष्ठा की राह में आपकी मृत्यु होने पर आपके मानक ध्वजवाहकों की आवश्यकता पड़े, उस समय भारत का स्त्रीत्व आपके ध्वजवाहकों एवं शक्ति संबल के रुप में आपके साथ होगा । और यदि आप मर भी जाती है तो याद रखिये चित्तौड़ की पद्मिनी**

की भावना से सदृश्य भारत के पुरुषों के दिलों में आपका सम्मानीय स्थान होगा ।"[8]

सरोजनी के इस ओजस्वी भाषण का प्रभाव सभी भारतीय महिलाओं पर पड़ा और स्वतंत्रता संग्राम एवं सचेतना कार्यक्रम तेजी से भारत भर में फैलने लगा । भारतीय स्त्री के इस अद्‌भुत मनोबल को देख कर अंग्रेज भी चकित होने लगे थे । सन् 1917 में एनी बेसेंट, डोरोथी जिन राज दास, मालती पटबर्धन, अम्मुस्वमिनाथन, श्रीमति दादा भाई, श्रीमती अंबुजम्माल आदि महिलाओं ने मिलकर 'विमेन्स इंडियन एसोसियेशन' की स्थापना की । इसने सर्वप्रथम कामदार स्त्रियों के लिए प्रसूती छुट्टी और श्रम का लाभ देये जाने के संदर्भ में आवाज उठायी । 1910-20 के दौरान सभी महिलाओं को अभियान में समेटने हेतु भारत के बंगाल, महाराष्ट्र, बेगंलूरु, इलाहाबाद आदि जगहों पर छोटे-छोटे महिला संगठनों की स्थापना भी की गईं । महात्मा गांधी एक ऐसे व्यक्ति थे जिनको महिलायें अपना शुभचिंतक मानती थी । उनकी सलाह के मुताबिक सन् 1926 में 'अखिल भारतीय महिला परिषद्' की स्थापना हुई यह एक ऐसी संस्था बनी जो राजनीति के साथ-साथ महिला के सामाजिक, और आर्थिक अधिकारों की वकालत भी करती थी । कांग्रेस के भीतर महिला विंग के गठन ने स्त्री राजनीतिक गतिविधि और उनकी सामाजिक सक्रियता को और अधिक बढ़ा दिया । राजनीतिक संघर्ष 1920, 1930, 1942 के समय से भारत में स्त्री आंदोलन गांधीवादी नारीवाद के रुप में विकसित हो चुका था । गांधीवादी नारीवाद स्त्री स्वावलंवनता, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र में स्त्री की पहुंच के रुप में परिभाषित किया जाने लगा । गांधीवादी नारीवाद धर्म का विरोध नहीं करता और ना ही स्त्री संस्कृति से उसे दूर रहने को कहता है । राजनीतिक संघर्ष के साथ चला भारतीय स्त्री आंदोलन निरंतर संघर्षरत रहा और इसने स्वंतत्रता के दौरान ही सती प्रथा पर प्रतिबंध, बालविवाह पर रोक, स्त्री का शैक्षिक अधिकार, रोजगारी की स्वतंत्रता, समान वेतन अधिकार, वोट देने का

अधिकार जैसे कई स्त्री अधिकारों को कानूनी रुप में हासिल कर लिया था । परंतु एक सत्य यह भी है की धार्मिक मान्यताओं में जकड़े भारतीय समाज को स्त्री को व्यवहारिक रुप में अधिकार देने में काफी समय लगा समाज जितना विकसित होता गया । समस्यायें नये रुप में सामने आने लगी । अत: स्वतंत्रता के 75 वें साल तक भी यह संघर्ष जारी है । आंदोलन के मुद्दें बदल रहे है परंतु स्त्रियों के साथ होने वाली हिंसायें विभेद खत्म नहीं हो रहे हैं ।

४.२.२ लोकतान्त्रिक भारत और नारीवादी आंदोलन

गांधी उपनिवेश काल में उपेक्षितों के मसीहा बनकर उभरे थे । तो स्वतंत्रता के बाद डॉ. भीवराव अम्बेडकर उपेक्षितों के मसीहा बने । लोकतंत्र गणराज्य भारत में नये संविधान निर्माण की प्रक्रिया शुरु हुई इस दौरान अंबेडकर ने पहली प्राथमिकता समाज के उपेक्षित वर्गों को दी और समानता एवं समावेशी अवधारणा के तहत समाज के हाशिये के वर्ग को राज्य के मूलधार में लाने का अभ्यास शुरु किया । इसलिए संविधान में आरक्षण की व्यवस्था भी रखी गई । 33 प्रतिशत महिलाओं की सहभागिता को अनिवार्य माना गया । किसी भी जाति, वर्ग, क्षेत्र या धर्म की महिलाओं के साथ विभेद न हो इसलिए अलग-अलग जाति, धर्म, क्षेत्र की महिलाओं को संविधान लेखन प्रक्रिया में शामिल कराया गया । शामिल होने वाली महिलाओं में दक्षयानी वेलायुद्धन, डॉ. हंसा जीवराज मेहता, राजकुमारी अमृता कौर, अम्मु स्वामीनाथन्, बेगम एजाज रसूल, कमला चौधरी, लीला रॉय, मालती चौधरी, पूर्णिमा बनर्जी, रेणुका राँया, दुर्गाबाई देशमुख, सरोजनी नायडू, सुचिता कृपलानी, विजयालक्ष्मी पंडित, ए.सी मस्करान‍ा आदि महिलाएं प्रमुख थी । 1946 से 1949 तक ये संविधान निर्माण प्रक्रिया में निरंतर जुटी रही । संविधान पारित होने के बाद भारत समता की दिशा में धीरे-धीरे आगे बढ़ा । संविधान की ताकत और समतावादी आंदोलनों ने राज्य तथा समाज के विविध घटकों पर प्रभाव डाला और तीव्रगति से समाज का स्वरुप बदलने लगा । डॉ. अम्बेडकर ने हरसंभव प्रयास किया कि स्त्री को उनके आवश्यक एवं आधारभूत अधिकार दिये जायें परंतु 1951 में जब

स्त्री के तलाक संबंधी अधिकार और संपत्ति संबंधी अधिकार को हिंदू कोड बिल ने स्वीकार नहीं किया तो मजबूर होकर अंबेडकर को मंत्रीमंडल से इस्तीफा देना पड़ा। परंतु 1952 के चुनाव के बाद बनी नेहरु की सरकार ने इसे तीन टुकड़ों में लागू करवाया। इसके अलावा अंबेडकर ने स्वतंत्रता के पूर्व भी स्त्री के हक में कई प्रावधान तैयार किये थे। संविधान निर्माण तो हुआ परंतु इसके कई समय बाद भी स्त्री की स्थिति में इतना प्रभावकारी परिवर्तन देखने को नहीं मिला। कांग्रेस के अलावा वामपंथी विचारधारा की महिलाएं भी इस आंदोलन को प्रभावकारी बनाने में जुटी हुई थी। 1954 में भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी से जुड़ी हुई महिलाओं ने 'भारतीय महिला फेडरेशन की स्थापना की। ये महिलायें निरंतर श्रमिक स्त्रियों और पितृसत्ता के वर्चस्व के खिलाफ आवाज उठाती रहीं। 1948 से 50 तक चले तेलंगाना आंदोलन में वामपंथी स्त्रियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हड़तालों और रैलियों में स्त्री की सहभागिता उल्लेखनीय देखी गई। परंतु जब आंदोलन से स्त्रियां घर लौटी तो उनके परिवार वालों का रवैया उनके लिए अलग था। उन्हें अपनी पवित्रता खो देने का आरोप लगाया जा रहा था। पितृसत्ता की इस दोहरी मानसिकता के चलते भारतीय स्त्रियां आज भी अग्नि परीक्षा देने पर मजबूर की जाती हैं। सन् 1955 में जयप्रकाश नारायण और विनोबा भावे के शराब बंदी आंदोलन में भी महिलाएं सहभागी हुई। इसी दौरान दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में 'केन्द्रीय कल्याण बोर्ड' की स्थापना की गई जिसमें महिलाओं, बच्चों और विकलांगों के लिए विशेष कार्यक्रम चलाये गयें । समाज उत्थान हेतु दशों हजार संस्थायें खोली गई जिनसे जुड़ने के लिए महिलाएं काफी उत्सुक हो कर आयी। 1958 में एक राष्ट्रीय समीति का गठन किया गया जिसका उद्देश्य स्त्री शिक्षा में आये सुधार का अवलोकल करना था। भारत में स्त्री आंदोलन का नया दौर 1975 के आपातकाल समाप्ति के बाद से आता है। आपातकाल के बाद पूरा देश नये सिरे से संगठित हुआ। इसी दौर में संयुक्तराष्ट्र संघ ने आठ मार्च 1975 को अंतर्रराष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित कर दिया। इसीलिए 1975-85 के दशक को महिला

दशक स्वीकार किया गया। 1776 में समान वेतन संबंधी और बधुआ मजदूर संबंधी कानून लागू किया गया। दहेज, बलात्कार, वेश्या, भ्रूण हत्या, स्त्री यौनिकता की स्वतंत्रता जैसी समस्या को लेकर बृहद आंदोलन भी चला। लिंग असमानता के साथ -साथ बराबरी की मांग जोर-शोर से उठायी जाने लगी। 'मेरा शरीर मेरा अधिकार' जैसी मांग ने स्त्री की यौनिक स्वतंत्रता की मांग को समाज के समक्ष रखा। अर्थ और रोजगारी से जुड़ी समस्यायें भी सार्वजनिक की गई। सन् 1992 में 'राष्ट्रीय महिला आयोग' की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य महिलाओं के संवैधानिक और कानूनी अधिकार की समीक्षा करना, महिला उत्पीड़न संबंधी समस्याओं का समाधान खोजना और सरकार को महिलाओं संबंधी नीतिगत सुझाव देना था। मेधा पाटकर, कमला भासीन, जयंती पटनायक, मोहिनी गिरी, विभा पार्थसारथी, पूर्णिमा अद्ववानी, गिरिजा व्यास जैसी समाज सेविका भारतीय स्त्री समाज के लिए अधिकारों की मांग करने आगे आई। इन महिलाओं ने स्त्री सुरक्षा से लेकर स्त्री सम्मान के लिए लड़ाई लड़ी। 2004 में असम पुलिस द्वारा मनोरमा देवी की हत्या का विरोध करते हुए महिलाओं ने निर्वस्त्र होकर विरोध जताया उन्होंने अपने बैनर में लिखा था **"भारतीय सेना आओ, हम सबसे बलात्कार करो...भारतीय सैनिक आओ हम सबका मांस नोचो।"**[15]

इस विभत्स घटना ने भारतीय स्त्री की सुरक्षा पर बहुत बड़ा सवाल खड़ा कर दिया था। इसके बाद भी स्त्री बलात्कार की घटनायें रुकी नहीं है बल्कि सामूहिक बलात्कार एसिड अटैक जैसी घटनायें आये दिन सुनने में आ रही हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता जितनी संभावनायें लेकर आयी है उतनी ही चुनौतियां भी लेकर आयी है। एक तरफ महिलायें अधिकार के लिए लड़ रही हैं तो दूसरी तरफ वे लगातार हिंसा या शोषण का शिकार बन रही है पितृसत्ता का दंश आज भी स्त्री अस्मिता पर मँडरा रहा है। महिला हिंसा की घटनायें नयें-नयें रुपों में सामने आने लगी थी। बलात्कार, एसिड प्रहार, दहेज के कारण लड़कियों

को जलाया जाना, वेश्यावृत्ति के लिए बेटियों को देश या विदेशों में खरीदा या बेचा जाना, कार्य स्थलों पर लैंगिक विभेद, लड़कियों का अश्लील विडियो बनाकर बेचना सार्वजनिक स्थलों पर छेड़खानी करना । सौन्दर्य प्रदर्शन के नाम पर स्त्रियों को सामूहिक रुप में नग्न होने पर मजबूर किया जाना, पैतृक संपत्ति से बेटियों को वंचित रखा जाना जैसी समस्यायें आज की स्त्री के लिए चुनौति बनी हुई है । संविधान में लैंगिक समानता की बात उल्लेख किये जाने के बावजूद भी व्यवहार में दिखाई न पड़ना पितृसत्ता की जटिलता और उल्लेखित कानून को प्रयोग में न लाया जाना है । बालात्कारी या फिर दहेज के नाम पर बेटियों को जलाने वाले लोग समाज में स्वतंत्र घूमने का वातावरण निर्माण किया गया है । पैसे से कानून को खरीदने की व्यवस्था ने समाज में दंडहीनता की स्थिति पैदा हो गई है । इसी संदर्भ में मनोरमा स्त्री काल में लिखती हैं **"दरअसल स्त्रियों पर घरेलू हिंसा से लेकर, वर्कप्लेस पर सेक्सुअल हैरासमैंट और बलात्कार के विरोध में प्रभावी काननू को लेकर स्त्रियों ने पिछले दो दशकों में ही कई महत्वपूर्ण आंदोलन किये हैं और बदलाव को प्रेरित किया है। बलात्कार और यौन हिंसा के संदर्भ में 'निर्भया कानून' ऐसे ही आंदोलन से हासिल है ।"**[9]

ऐसा नहीं है कि स्वतंत्रता के बाद स्त्री की स्थिति में सुधार नहीं आया है । स्त्रियों को शिक्षा, रोजगार लगायत आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी अधिकार मिले हैं । राजनीति में महिला प्रधानमंत्री से लेकर राष्ट्रपति तक का पद संभालने का अवसर मिला है । प्रशासन अधिकृत से लेकर शिक्षाविद् तक महिलायें रही है पुलिस प्रशासन, अर्थ और इतिहासविद् तक में महिलाओं का स्थान अग्रणी है परंतु स्त्री की यह सफलता दुगनी रफ्तार से बढ़ती यदि उसे अपना अधिकतर समय पितृसत्ता के हस्तक्षेप का सामना न करना पड़ता तो । आज की स्त्री की लड़ाई उसके भीतर की कमजोरियों से नहीं है बल्कि दोहरी मानसिकता से ग्रस्त स्वार्थ में लिपटे पितृसत्ता से है ।

४.३ नेपाल में नारीवादी आंदोलन का इतिहास एवं स्त्री मुक्ति के सवाल

४.३.१ राजतंत्र व्यवस्था और नारीवादी आंदोलन

नेपाल में स्त्री की कमजोर स्थिति के पीछे चार तत्वों की अहम भूमिका देखी जाती है । कमजोर अर्थतंत्र, राजनीतिक अस्थिरता, जटिल पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना एवं धार्मिक रुढ़िवादिता । यह सत्य है कि पाश्चात्य देशों की तुलना में नेपाल में स्त्री आंदोलन की शुरुआत बहुत देर से हुई इसके पीछे भी उपर्युक्त कारण ही जिम्मेदार है । शिक्षा चेतना का विकास करने मे अहम भूमिका निर्वाह करती है । नेपाल में शिक्षा का विकास ही अन्य एशियाई मुल्कों की तुलना में बहुत देर से हुआ । भारत में ब्रिटिश हुकूमत के कारण शिक्षा के विकास में तेजी आई । परंपरागत भारतीय शिक्षा प्रणाली आधुनिक शिक्षा प्रणाली में बदलने लगी और समाज एक नये रुप में ढलने लगा । इसमें कोई दो मत नहीं है कि शिक्षा के क्षेत्र में पहली पहुंच पुरुषों की रही । पुरुष शिक्षित हुआ और उसके देखने और सोचने का नजरिया भी बदला । उसने समाज, परिवार और संबंधों की नयी परिभाषा गढ़ी । स्त्री के संदर्भ में जो कट्टरवादी सोच थी वह थोड़ी लचीली पड़ने लगी । उदाहण के रुप मे हम गांधी, अंबेडकर, कृष्णप्रसाद कोईराला या विशेश्वरप्रसाद कोईराला को ले सकते है जिन्होनें स्त्री समाज को आगे बढ़ाने में स्त्री की सहायता की । यह सहायता भले ही पुरुष सत्ता के निजी स्वार्थ के लिए की गई हो या राजनीति में अपनी पकड़ मजबूत बनाने के लिए की गई हो । समाज का एक बड़ा हिस्सा स्त्री का है जिसे छोड़कर पुरुष कभी आगे नहीं बढ़ सकता है । लैंगिक असमानता शरीर के उस हिस्से की तरह है जो एक हिस्सा स्वथ्य दुरुस्त है और दूसरा हिस्सा रोगी और कमजोर ऐसी स्थिति में शरीर कभी स्वस्थ और सुखी नहीं रह सकता । कहने का तात्पर्य समाज में संतुलित विकास के लिए लैंगिक समानता का होना अनिवार्य है । नेपाली स्त्री समाज में भारत की तुलना में शिक्षा और चेतना का विकास बहुत समय बाद हुआ । स्त्रियां राणा काल से लेकर आज तक शासन सत्ता और पितृसत्ता से अपने अधिकार के लिए लड़ती आ रही हैं । राणाकाल जिस समय पुरुषों के लिए

भी शिक्षा वर्जित थी । कुछ उच्च वर्ग के पुरुष चोरी छिपे भारत के काशी या बनारस जाकर पढ़ते थे, इन्हीं कुछ पढ़े लिखे पुरुषों की वजह से ही नेपाली की राजनीति में परिर्वतन आ पाया है । राणा सरकार की रणनीति जनता को अशिक्षित रखकर सत्ता बचाए रखने की थी । इसलिए वे जनता पर निरंतर अपनी निरंकुशता लाद रहें थें । जनता के सब्र का बांध तब टूटा जब गंगालाल, धर्मभक्त, दशरथ चंद, शुक्रराज आदि नेताओं को फांसी की सजा सुना दी गई । आंदोलन तीव्र हुआ, महिला बच्चें, वृद्ध लगायत सभी लोग विरोध के लिए सड़कों पर उतर आयें । यह एक बहुत बड़ा राजनीतिक परिवर्तन था । एक सौ चार साल का राणा शासन का अंत सन् 1950 में किया गया । इस परिवर्तन के लिए भारत एक बहुत बड़ा प्रेरणा का स्रोत बना क्योंकि उसने अंग्रेजों की शक्तिशाली सत्ता को परास्त कर एक नया इतिहास रचा था । इसी घटना ने नेपाली जनता में भी उत्साह भरा । राणा काल में एक तरफ सत्ता के खिलाफ विद्रोह चला तो दूसरी तरफ स्त्री अधिकारों के लिए संघर्ष भी । नेपाली महिलायें अपनी दोनों भूमिकाएं निभा रही थी । नेपाल में सर्वप्रथम स्त्री अधिकार के लिए पहल योगमाया न्यौपाने (1867-1941) ने की । योगमाया न्यौपाने एक ऐसी स्त्री थी जिसने पुरुष सत्ता की प्रताड़ना को सबसे ज्यादा सहा था । जीवन में अनेकों घटनाओं का सामना करने के बाद भी उनका मनोबल कमजोर नहीं हुआ । वे पितृसत्ता की हर चुनौति का सामना करते हुए जीवन में आगे बढ़ती गई । नेपाल छोड़कर जब वे आसाम पहुंची तो वहां उनकी संगत साधु-संतों से हुई । उस समय भारत का अंग्रेजी हुकूमत से संघर्ष चल रहा था । न्यौपाने ने इन सब परिस्थिति को बहुत ही करीब से देखा और उन्हें समाज के यथार्थ के बारे में जानकारी हुई । साधु-संतों से उन्होंने आध्यात्म का ज्ञान लिया और जीवन के अनुभवों से उन्होंने लड़ना सीखा । नेपाली समाज धार्मिक और सामाजिक रुढ़ियों में ऐसे जकड़ा हुआ था कि कि पुरुष मालिक और स्त्रियां केवल दासी थी । नेपाली समाज में एक कहावत है **'खुट्टा भए जुत्ता कती कती'** अर्थात पैर है तो जूते अनेक । पुरुष पैर है और स्त्री उसके पैर की जूती । इस सामाजिक

मानसिकता के साथ नेपाली स्त्रियां कई वर्षों तक जीती रहीं । समाज में त्याग, समर्पण, धैर्य का पर्यायवाची नाम ही स्त्री है । जिस दिन स्त्री अपना धैर्य खो देती है वह कुल्टा बन जाती है । उसे अनेक तरह की यातनायें देकर समाज से निकाल दिया जाता है । कई सालों तक तो स्त्रियां इसी भय से चुपचाप मरे हुये पति के साथ जिंदा जलती रहीं । बहुविवाह, बालविवाह, दहेज प्रथा, छाउपड़ी प्रथा, देउकी प्रथा, डायन प्रथा जैसे सामाजिक कुसंस्कारों की बली चढ़ती गई । अपना अस्तित्व तक पुरुषों में विलीन करती आई । पुरुषसत्ता द्वारा गढ़ी गई इस मान्यता को नेपाली समाज में इस तरह परिभाषित किया जाता है **"निषेध तत्व ही नारी है..जहाँ कहीं अपने आपको उत्सर्ग करने की, अपने आपको खपा देने की भावना प्रधान है वही नारी है ।..जहाँ कहीं दुःख-सुख की लाख धाराओं में अपने को दलित द्रष्टा समान निचोड़ कर दूसरे को तृप्त करने की भावना है, वह नारी तत्व है...नारी निषेध रुप है । वह आनंद भोग के लिए नहीं आती, आनंद लुटाने के लिए आती है ।"**[10]

पुरुष ने कभी उसकी महानता का मूल्यांकन नहीं किया बल्कि इसे उसकी कमजोरी समझकर उस पर अत्याचार करता गया । इसी अत्याचार की पराकाष्ठा ने ही स्त्री आंदोलन की शक्ल अक्तियार की है । नेपाली समाज में अनेकों जात-जाति, वर्ग, समुदाय, धर्म, क्षेत्र की महिलायें रहती है जिनकी अलग-अलग तरह की जातिगत या समुदायगत समस्यायें हैं । उसमें भी दलित स्त्रियां सबसे ज्यादा प्रताड़ित है । जटिल भौगोलिक संरचना, कमजोर आर्थिक स्थिति, धार्मिक अंधविश्वास, अशिक्षा आदि के कारण नेपाली स्त्री समाज अन्य स्त्री समाज की तुलना में बहुत पीछे है । नेपाल में स्त्री आंदोलन की शुरुआत के बारे में अनेकों तथ्य उपलब्ध है समाजसेवी एवं नेत्री सहाना प्रधान लिखती है **"पश्चिमी मुल्कों की तुलना में नेपाली महिला आंदोलन की शुरुआत एवं विषय वस्तु भिन्न है । पाश्चात्य देश अमेरिका, बेलायत में समान वेतन, समान व्यवहार आदि मुद्दों को लेकर आंदोलन आगे बढ़ा था लेकिन**

नेपाल में महिला आंदोलन की शुरुआत बालविवाह, बहुविवाह, शिक्षा आदि विषयों को लेकर किया गया था इसके साथ-साथ निरंकुश राणा शासन के अंत की गतिविधियां चली थी। अलग-अलग राजनीतिक दलों की भगिनी संगठन का निर्माण भी हुआ। ये अनेकों गतिविधियां करने लगे यहीं से स्त्री आंदोलन की शुरुआत हुई।"[11]

नेपाल में स्त्री आंदोलन के संदर्भ में सहाना प्रधान का यह विचार इसलिए सांदर्भिक है कि पाश्चात्य देशों की तरह नेपाल में उद्योगों का विकास नहीं हुआ था। स्त्रियां रोजगार तो दूर घर की चारदीवारी से भी बाहर निकलने से डरती थी। शिक्षा और स्वास्थ्य तक में उनकी पहुंच नहीं थी। नेपाली महिलाओं के लिए सामाजिक रुढ़ियों और धार्मिक अंधविश्वास को तोड़ना पहली प्राथमिकता थी। वे सामाजिक स्वतंत्रता तभी प्राप्त कर सकती थी जब स्त्रियों के लिए बनाये गयें सामाजिक नियमों को तोड़कर अपने लिए एक स्वतंत्र वातावरण निर्माण कर सके। इसलिए नेपाली महिलाओं का पहला प्रयास यही रहा। स्त्री आंदोलन के आरंभ के बारे में बताते हुए शिवमाया तुम्बाहांफे अपनी पुस्तक नेपाल में महिला आंदोलन में लिखती है कि नेपाल में स्त्री आंदोलन की शुरुआत **"देश में चल रहें निरंकुश राणा विरोधी गतिविधियों के दौरान भोजपुर मझ्वाबेसीं की योगमाया न्यौपाने ने आध्यात्मिक तरीके से ही सही राणा शासन का विरोध करते हुए महिला हित के लिए कल्याणकारी सामाज सुधार, पुरोहितवादी प्रवृत्ति और राणाओं के अत्याचार के अंत सहित 268 मांगों को सरकार के समक्ष पेश किया था। उनकी अन्य प्रमुख मांगे थी समाज सुधार, सामाजिक न्याय, विधवा विवाह, सामाजिक विसंगति एवं विकृति का अंत, अंधविश्वास एवं घुसखोरी का अंत, जात-पात एवं छुआ-छूत का अंत, अधिक ब्याज पर नियंत्रण, जंगलों में गायों के लिए चरने की व्यवस्था आदि।"[12]**

सहाना प्रधान राणा काल के अंत के पश्चात जब राजनीतिक दलों की स्थापना हो चुकी थी और विविध दलों के भीतर स्त्री संगठन निर्माण हो रहें थे का उल्लेख

करती है । उनके मुताबिक स्त्री आंदोलन की शुरुआत नेपाल कम्युनिष्ट पार्टी की स्थापना सन् 1941 के बाद से हुई है । परंतु शिवमाया के हिसाब से स्त्री आंदोलन की शुरुआत योगमाया का समय सन् 1917 से पहले से ही हुई है । यदि 1917 के प्रमाण हमारे पास है तो शुरुआत यही से मानना उपयुक्त रहेगा । योगमाया नेपाल में स्त्री आंदोलन की शुरुआत करने वाली पहली महिला बनी । कृष्णप्रसाद कोईराला और योगमाया के नेतृत्व में सिराह जिला में सन् 1917 में प्रथम महिला संगठन 'महिला समिति' के नाम से स्थापित किया गया । इस संस्था का उद्देश्य नेपाल भर की महिलाओं को राणा विरोधी कार्यक्रम के लिए संगठित करना, महिलाओं में शैक्षिक चेतना और शिल्प का विकास कराना था । सन् 1940 की राजनीतिक घटना ने नेपाली महिलाओं को पहली बार घर से बाहर निकाला । इसी दौरान महिलाएयें सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियों से जुड़ी और समाज में अपनी भूमिका को पहचानने लगी और उन्हें यह भी अहसास हुआ कि पुरुष केवल सत्ता से शोषित है और स्त्रियां सत्ता और पुरुष सत्ता दोनों से शोषित है । यह कहना असांदर्भिक न होगा कि भारत में स्वतंत्रता संग्राम ने भारतीय महिलाओं को चेतनशील बनाया और नेपाल में राणा सत्ता विरोधी आंदोलन ने महिलाओं को अधिकार के प्रति सचेत कराया । महिला चेतना का विकास इन्हीं राजनीतिक घटनाक्रम के साथ आगे बढ़ता दिखाई पड़ता है । सन् 1946 में रेवंतकुमारी आचार्य के नेतृत्व में 'आदर्श महिला समाज' की स्थापना हुई इसका उद्देश्य महिलाओं में राजनीतिक चेतना का विकास करना था । इस संस्था से जुड़ी हुई महिलाओं ने तत्कालीन समाज में व्याप्त सत्ता के अन्याय और अत्याचार को भी समाज के समक्ष रखने का प्रयास किया । जब रेवंतकुमारी और सीतादेवी ने गोप्य रुप में आंदोलन के दौरान जेल डाले गये कैदियों की तस्वीर खींच कर सार्वजनिक की तो यह घटना बहुत चर्चा में आई । स्त्री के साहस और विवेक की प्रशंसा होने लगी । 4 मार्च 1946 में विराटनगर के जूट मिल में श्रमिकों का आंदोलन चला उस दौरान महिलाओं ने भी श्रमिकों के समर्थन में उनके लिए आवश्यक सेवा-सुविधा और उचित पारिश्रमिक की मांग

करते हुए आवाज उठायी । मजदूर महिलाओं को आंदोलन के क्रम में पकड़कर जेल डाल दिया गया । इस घटना से स्त्रियां हारी नहीं बल्कि उनमें और आक्रोश बढ़ा । तत्काल उन्होंने 1947 में नागरिक अधिकार की मांग करते हुए काठमाण्डौं की सड़कों पर दूसरा आंदोलन शुरु कर दिया । इस आंदोलन के बाद ही नेपाली महिलाओं को मताधिकार और शिक्षा का अधिकार देने की घोषण की गई । महिला सशक्तिकरण एवं चेतना अभिवृद्धि हेतु एक और संस्था सन् 1947 में मंगलादेवी सिंह के नेतृत्व में स्थापित की गई जिसका नाम 'नेपाल महिला संघ' था । इस संगठन में श्रीमाया, स्नेहलता, रेवंतकुमारी, हीरादेवी तुलाधर, सीता नेपाल, गुलबदत ताम्रकार, प्रतिभा आचार्य, चम्पा बज्राचार्य, तीर्थदेवी श्रेष्ठ आदि महिलायें जुड़ी । इन्होंने सामाजिक, धार्मिक विभेद और रुढ़ियों को स्त्री विकास का बाधक बताते हुए इनका विरोध किया और स्त्री समानता के लिए आवाज उठायी । इसी तरह सन् 1950 में तारादेवी शर्मा के पहल से 'अखिल नेपाली महिला संघ' की स्थापना की गई । विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि उपर्युक्त संस्थाओं का नेतृत्व उन महिलाओं ने किया था जो समाज के उच्च वर्ग से संबंध रखती थी । जो थोड़ा बहुत पढ़ी लिखी भी थी और वे तत्कालीन नेताओं की पत्नियां भी थीं । इसलिए इन्होनें अधिकतर राजनीतिक मुद्दों को ही महत्व दिया । निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि राणाकालीन व्यवस्था स्त्री आंदोलनों के मुद्दें शिक्षा में स्त्री की पहुंच, समान श्रम और श्रमदर, बहुविवाह, बालविवाह का अंत, बलात्कार एवं घरेलू हिंसा पर कानूनी रोक, सामाजिक कुप्रथायें, सती प्रथा, छाउपड़ी प्रथा, कमलरी प्रथा, देउकी प्रथा आदि पर प्रतिबंध लगाने की मांग, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र में स्त्री की पहुंच आदि विशेष मुद्दें रहें । स्त्री आंदोलन के प्रभावकारिता की बात करें तो कुछ हद तक आंदोलन के कारण स्त्री की स्थिति में सुधार देखा जा सकता है । परंतु सामाजिक कुप्रथायें आज भी यथावत है संतोष योग्य बात यह है कि शिक्षा में स्त्री की पहुंच बढ़ती जा रही है ।

४.३.२ पंचायत एवं बहुदलीय व्यवस्था और नारीवादी आंदोलन

नेपाली जनता के भीषण संघर्ष से बाद प्राप्त बहुदलीय व्यवस्था अधिक समय तक नहीं टिक सकी । इसके पीछे कई राजनीतिक कारण है एक तो यह कि राजा सत्ता प्राप्त करने के बाद उसे खोना नहीं चाहते थे और उनकी महत्वकांक्षायें निरंतर बढ़ती जा रही थी । दूसरी तरफ वे अपनी सत्ता बनायें रखने के लिए मंत्रियों की कमी कमजोरियों को बारीकी से परख रहें थे । नव-निर्वाचित नेताओं के पास जनता का विश्वास तो था परंतु राज्य संचालन करने का अनुभव या ज्ञान नहीं था । जिसके कारण वे हमेशा विवादों से घिरे रहते थें । अपनी असक्षमता और अदूरदृष्टिता के कारण नेताओं को बहुदलीय व्यवस्था को गुमान पड़ा । सन् 1960 में निर्वाचित संसदीय व्यवस्था विशेश्वर प्रसाद कोईराला की सरकार को अपदस्त कर राजा महेन्द्र ने शासन सत्ता अपने हाथ में ली और राजनीतिक दलों पर पाबंधी लागाकर निर्दलीय पंचायती व्यवस्था की घोषणा कर दी । इस घटना ने नेपाली जनताओं को फिर से निराशा के गड्डे पर धकेल दिया । इस पूरे राजनीतिक घटना का प्रभाव स्त्री आंदोलन और जीवन पर भी पड़ा । इसके संदर्भ में सुशीला कार्की अपनी पुस्तक लैंगिक समानता में लिखती है **"राजा महेन्द्र के प्रजातान्त्रिक विरुद्ध (1960) के कदम ने प्रजातान्त्रिक आंदोलन और उसके हिमायती को ही नहीं बल्कि कदम उठाने का अभ्यास कर रहें स्त्री आंदोलन को समेत इसके दमन का शिकार होना पड़ा । इसने सामाजिक न्याय और स्वतंत्रता सहित लैंगिक समता के आंदोलन के खुले मोर्चे को बंद कर दिया ।"**[13]

देश की इस बंद परिस्थिति में भी स्त्रियों ने हिम्मत नहीं हारी उन्होंने भूमिगत रुप से राजनीतिक सुधार और स्त्री अधिकारों की प्रत्यभूति के लिए आवाज उठाना शुरु किया । और वे पुरुषों द्वारा किये जा रहें आंदोलनों में भी सरिक होने लगी । तत्काल चले मजदूर किसान आंदोलन और विद्यार्थी आंदोलनों में स्त्रियों की उल्लेखनीय भूमिका दिखाई पड़ी । सन् 1971 के झापा विद्रोह में भी महिलाओं ने

खुलकर हिस्सा लिया । लीला कट्टेल, गौरा प्रसाई, सीता खड्का ने इस आंदोलन के दौरान पकड़े जाने पर कठिन जेल जीवन भी व्यतीत किया । भूमिगत कार्यकर्ताओं के लिए सेल्टर की व्यवस्था करना और सूचना आदान प्रदान करने में इनका बहुत बड़ा योगदान रहा । इसी तरह चिसापानी किसान आंदोलन (1964-65), मजदूर आंदोलन (1974-75) दाङ किसान आंदोलन (1978-79), विद्यार्थी आंदोलन (1779), में सभी महिलाओं की उत्साहजनक भागीदारी रहीं । इसके अलावा महिला आंदोलन को पुनः उत्कर्ष पर लाने के लिए नेपाली वामपंथी महिलाओं ने पूरी कोशिश की । यूं तो राणा काल के अंत से पहले ही सामंतवाद और साम्रज्यवाद के अंत के लिए नेपाली कम्युनिष्ट पार्टी की स्थापना (1949) हो चुकी थी । पुष्प लाल श्रेष्ठ, निरंजन गोविंद वैद्य, नर बाहादुर कर्माचार्य, नारायण विलास जोशी और मोती देवी श्रेष्ठ संस्थापक के रुप रहें । इस पार्टी के माध्यम से एक नवीन विचारधारा का प्रवेश नेपाली भूमि पर हुआ । सर्वहारा के अधिकार को महत्व दिया जाने लगा । सन् 1971 में शान्ता मानवी की अधक्ष्यता में 'क्रांतिकारी महिला संघ' की स्थापना हुई । इसका उद्देश्य नेपाली विद्यार्थीयों की समस्याओं को खोजना और समाधान निकालना था । सन् 1976 में पारिजात जो एक जानी-मानी नेपाली साहित्यकार थी और मार्क्सवादी विचारधारा की समर्थक भी थी । उनके नेतृत्व में 'अखिल नेपाल महिला संघ' की स्थापना हुई । संगठन के उपाध्याय पद पर गोमा देवकोटा नियुक्त हुई । इसके माध्यम से नेपाल की गरीब निम्न वर्ग की महिलाओं की समस्याओं को समझने का प्रयास किया और उनके लिए आवश्यक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकारों के लिए पहल की गई । नेपाली वामपंथी महिलाएं समाज के उस जमीन से जुड़ी हुई थी जहां केवल अभाव और शोषण का यथार्थ विद्यमान था । इन्होंने स्त्री की पहचान के अलावा सामाजिक उत्पीड़न के कारणों को भी खोजने का प्रयास किया । गुटों में बंटकर स्त्री अधिकार के अभियान को चलाना संभव नहीं था अतः सर्वप्रथम इन्होनें सभी वामपंथी महिलाओं को एकजुट करने का अभियान चलाया । हेटौडा में सन् 1979 में महाभेला का आयोजन किया गया

। इसका उद्देश्य सभी महिलाओं को एक सूत्र में बांधना और समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मिलकर आगे बढ़ना था । बृंदा पाण्डे लिखती हैं **"अखिल नेपाल महिला संघ ने नेपाली महिलाओं के ऊपर होने वाले आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीति शोषण विरुद्ध अभियान, भूमिगत रहते हुए भी देशभर में चलाया और अपने संगठन का विस्तार किया । कम समय में ही इसका प्रभाव देश भर में फैल गया । इसी संगठन ने पहली बार सन् 1980, 8 मार्च के दिन अंर्तराष्ट्रीय महिला दिवस मनाए जाने की शुरुआत भी की ।"**[14]

वैचारिक भिन्नता के बावजूद नेपाली महिलाओं में अपने अधिकार के मामले में एकरुपता दिखाई पड़ती है । 1978 में पाकिस्तान के प्रधानमंत्री जुल्फीकर अलीभुट्टो की फांसी के विरोध में हो या पोखरा में की गई नमिता सुनिता की हत्या के विरोध में हो या कप्तान यज्ञ बाहादुर थापा और भीमनारायण श्रेष्ठ को दी गई फांसी के विरोध में हो महिलाओं ने सड़क पर उतरकर मानव अधिकार की रक्षा की मांग की है । इन घटनाओं से हम यह अंदाजा लगा सकते है कि नेपाली महिलाओं में इतनी चेतना जाग चुकी थी कि वे अपने अधिकारों के साथ-साथ समाज के अन्य उपेक्षित एवं उत्पीड़ित वर्ग के लिए भी आवाज उठाने में सक्षम हो चुकी थी । संपूर्ण मानव जाति की हित की भावना उनमें देखी जा सकती है । ऐसी कोई राजनीतिक घटना नहीं है जिसमें महिला सहभागित न हो किसी न किसी रुप में महिलायें सहभागी होती आई है । 1885 का नेपाली कांग्रेस का देशव्यापी सत्याग्रह हो या 1989 का जनआंदोलन हो महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय रही हैं । महिलाओं ने घर, परिवार, समाज, देश सभी क्षेत्र को पूरी ईमानदारी और जिम्मेदारी के साथ संभाला है वो भी बिना किसी मूल्य की अपेक्षा के । इसके बावजूद भी नेपाली महिलाओं का दुर्भाग्य यह है कि जब देश के परिवर्तन के इतिहास लिखने की बारी आती है तो स्त्री समाज को दरकिनार कर दिया जाता है । उदाहरण के तौर पर ऐसी कोई ऐतिहासिक पुस्तक नहीं है जिसमें स्त्री के योगदान

की चर्चा करते हुये उसे केन्द्र में रखा गया हो । स्त्री का इतिहास हाशिये का इतिहास है चाहे वह राजनीतिक का इतिहास हो समाजनीति का हो या साहित्य का हो । स्त्री पुरुष पर निर्भर वस्तु के रुप में देखी जाती रही है और आज भी इस दृष्टि में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है । बहुदलीय व्यवस्था की पुर्नबहाली सन् 1989 के बाद महिलाओं ने सोचा था कि अब उनकी स्थिति में सुधार आयेगा नये संविधान में उनके अधिकारों को सुनिश्चित किया जायेगा परंतु 1990 में संविधान तो निर्माण हुआ परंतु वह स्त्री के हक में नहीं था । अपने अधिकारों को संविधान में समेटने के लिए सरकार को दबाव देने के लिए महिलाओं ने आंदोलन शुरु किया । इस आंदोलन का परिणाम यह हुआ कि संविधान की धारा 114 में प्रतिनिधि सभा में होने वाले चुनाव में पांच प्रतिशत महिलाओं की सहभागिता को अनिवार्य कर दिया और महाराष्ट्रीय सभा में भी तीन महिलाओं की उपस्थिति को आवश्यक बताया गया । इसके अलावा संविधान में स्त्री शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगारी की विशेष व्यवस्था किये जाने और राष्ट्र निर्माण के कार्य में अधिक से अधिक महिलाओं को सहभागी किये जाने की बात भी उल्लेख की गई । इस निर्णय ने महिलाओं को कुछ हद तक राज्य से सीधे जोड़ने का काम किया । अधिकारों की प्राप्ति ने महिलाओं के मन में उम्मित जगाई कि वे बहुत कुछ कर सकती है और उन्हें अपने हक के लिए और अधिक संघर्ष करने की जरुरत है । इसलिए महिलाएं अंर्तराष्ट्रीय संस्थाओं से भी जुड़ने लगी । 1991 में महिलाओं के साथ होने वाले सभी विभेदों का अंत करने हेतु (The UN Convention on the Elimation of all Forms of Discrimination Against Women 1979 –CEDAW) की स्थापना हुई । इसके माध्यम से अंतर्रराष्ट्रीय स्तर से महिला अधिकार की पैरवी होने लगी । अनेकों राजनीतिक एवं सामाजिक अभियान, बहस, आदि ने महिला अधिकार के सवाल को सहज कर दिया । प्रजनन, विवाह , लैंगिक समानता जैसे मुद्दों को कानूनी रुप देने में महिलाओं को आसानी हुई है । फिर भी कई ऐसी समस्यायें है जिनके समाधान के लिए महिलाओं को दुगनी मेहनत करनी पड़ेगी । पितृसत्ता के पंजे में फंसे

नेपाली समाज को जब तक मुक्त नहीं किया जायेगा तब तक महिला समानता या समृद्धि की कल्पना संभव नहीं है। आज भी नेपाली समाज में पुरुष पति ही है वह समकक्षी या सहपाठी नहीं बन पाया है। हालांकि स्त्रियां घर और बाहर दोनों के बीच संतुलन बानाये रखते हुए काम कर रही हैं परंतु पितृसत्ता की जड़ो को काट नहीं पा रही है। इस जटिल विषय की तरफ ध्यान देना अनिवार्य है। बेटियों की परवरिश एक विशेष प्रक्रिया है जो यह तय करती है कि पितृसत्ता की बीज उसमें पड़ रहा है कि नहीं अत: इसे जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए बेटियों के सामाजीकरण प्रक्रिया में विशेष ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है।

४.३.३ लोकतंत्र व्यवस्था और नारीवादी आंदोलन

लोकतंत्र एक ऐसी व्यवस्था है जिसमे समाज के सभी वर्ग, जाति, लिंग धर्म, क्षेत्र के लोगों को समान अवसर और अधिकार दिए जाने की संकल्पना निहित है। वर्षों से राजतंत्रात्मक व्यवस्था के अंतर्गत शोषित हो रहें नेपाली जनता को कड़ी मेहनत और संघर्ष के बाद लोकतंत्र व्यवस्था को अनुभूत करने का अवसर मिला। इस अवसर को प्राप्त करने में नेपाली जनता और तत्कालीन राजनीतिक दलों की अहम भूमिका तो रही ही परंतु नेकपा माओवादी के विशेष योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता। वर्षों से सामंती प्रवृत्ति को पालती पोषती आ रही राजतंत्र व्यवस्था में केवल स्त्री ही नहीं समाज के सभी निम्न वर्ग के लोग शोषित, आतंकित और त्रसित थे। समाज को कई भागों में बांटा गया था। जाति, वर्ग, धर्म, लिंग जिसने सत्ता को तो मजबूत बना रखा था परंतु देश और जनता को कमजोर स्थिति में धकेल दिया था। पूंजीपति और उच्च वर्ग के लिए अवसर की कोई कमी नहीं थी तो सर्वहाराओं के लिए अवसर की कोई गुंजाइश नहीं थी। इस स्थिति ने नेपाल में माओवाद को जन्म दिया। सर्वहाराओं के अधिकार के लिए दस साल तक नेपाल में सशस्त्र जनयुद्ध चला। इस युद्ध का प्रभाव सत्ता और जनता दोनों पर पड़ा। एक तरफ महिलाओं ने राणाकाल से लेकर बहुदलीय व्यवस्था तक पहुंचते-पहुंचते जो अधिकार प्राप्त किये थे जनयुद्ध के दौरान उनमें पूर्णविराम लग गया। दूसरी

तरफ महिलाओं को यह फायदा यह हुआ कि जिस अभियान में वे पचासों साल से लगी हुई थी । उस जनचेतना के अभियान को जनयुद्ध ने पांच-दस साल में ही राष्ट्र के कोने-कोने तक पहुंचा दिया । वर्षों से हाथ में झाडू और बर्तन थमाकर चलने वाली महिलाओं के हाथ में माओवादियों ने बंदूक थमा थी । इस क्रांतिकारी परिवर्तन ने स्त्री के आत्मविश्वास को तो बढ़ाया ही साथ ही 'स्त्रियोचित मानसिकता' जैसी मान्यताओं को भी तोड़ दिया । बी.आर उप्रेती लिखते है **"माओवादी सशस्त्र विद्रोह के कारण स्त्री आंदोलन में एक नया मोड़ आया । सशस्त्र विद्रोह ने नारी मुक्ति को भी अपने अभियान का एक हिस्सा बनाया विशेषतः ग्रामीण क्षेत्र की हजारों महिलाएं आंदोलन का हिस्सा बनी । इसमें भी समाज की उन औरतों ने आंदोलन में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया जो समाज के चरम विभेद, हिंसा और सामाजिक दलन एवं अत्याचार का शिकार बनी हुई थी ।"**[15]

वास्तव में जनयुद्ध स्त्री समाज के लिए वरदान साबित हुआ । सन् 2001 में 'राष्ट्रीय महिला आयोग' की स्थापना हुई इसने नेपाली महिलाओं में और अधिक उत्साह भर दिया । देश भर की महिलाओं के हक अधिकार के लिए आवाज उठाने के साथ-साथ सरकार से मिलकर महिलाओं के विकास के लिए योजना बनाने काम राष्ट्रीय महिला आयोग को सौंपा । महिला आयोग महिलाओं को संरक्षण और न्याय ही नहीं दिलाता बल्कि पितृसत्तात्मक खाके को तोड़ने का प्रयास भी करता है । हजारों साल से चली आ रही पितृसत्तात्मक संरचना की जड़ो को जनयुद्ध ने हिला कर रख दिया । महिला मुक्ति, जातीय विभेद, छुआ-छूत, सामाजिक कुप्रथायें, आदिवासी, जनजातियों के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक अधिकार, समानता और समावेशी की अवधारणा के साथ लोकतंत्र की स्थापना और राजतंत्र के अंत का उद्देश्य लेकर सशस्त्र आंदोलन शुरु हुआ और सफल भी रहा । सन् 2008 में नेपाल संघीय लोकतान्त्रिक गणराज्य के रुप में स्थापित हुआ । जाहिर है कि जनताओं में बेशुमार उत्साह और अनंत अभिलाषायें थी । नये नेपाल के लिए नया संविधान निर्माण

किया गया जिसमें समाज के सभी उपेक्षितों और हाशिये के वर्ग के लिए विशेष आरक्षण की व्यवस्था की गई । राज्य संचालन प्रक्रिया में 33 प्रतिशत महिला सहभागिता को अनिवार्य किया गया । इसके अलावा स्त्री के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को भी संविधान में विशेष महत्व दिया गया है । यह परिवर्तन स्त्रियों के लिए संतोषजनक तो था परंतु उत्साहजनक नहीं । स्त्रियों का सवाल यह था कि जिस देश में 51 प्रतिशत महिलाओं की जनसंख्या है उस देश में स्त्री सहभागिता 33 प्रतिशत मात्र क्यों है ? क्या महिला सहभागिता के बिना देश की समृद्धि संभव है ? क्या महिलाओं का राजनीतिक परिवर्तन प्रक्रिया में कोई योगदान नहीं है अगर है तो फिर विभेद क्यो ? नागरिकता या राष्ट्रीय परिचय पत्र के लिए माँ पर्याप्त क्यों नहीं है ? पिता या पति या दादा की खोज क्यों ? पैतृक संपत्ति प्राप्त करने के लिए आलटाल का नियम क्यों ? जैसे सवालों के साथ आज स्त्रियां धरने पर खड़ी मिलती हैं । इस आधार पर हम कह सकते है कि वर्तमान संविधान में भी स्त्री अधिकार के सभी मुद्दें को समेटे नहीं गये है । संपत्ति पर स्त्री का नियंत्रण, पैत्रिक संपत्ति पर स्त्री का अधिकार, स्त्री की यौनिक स्वतंत्रता, समलैंगिकता, सिंगल मदर का अधिकार, प्रजनन का अधिकार आज भी कार्यान्वयन में नहीं है । कागजी तौर पर स्त्री के अधिकारों को अधिक से अधिक समेटने का प्रयास अवश्य किया गय है परंतु जब व्यवहार में लागू करने की बात आती है तो सौ में से पचास प्रतिशत अधिकार भी स्त्रियों को आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाते है । आज भी हम देखते है कि समाज में बलात्कार करने वाले पुरुष को नहीं बल्कि बलात्कृत होने वाली स्त्री को दोषी माना जाता है । समाज उसी को कठघरे पर लाकर खड़ा कर देता है । बलात्कारी स्वतंत्र रुप में जीवन जीता है और स्त्री जीवनपर्यंत इस अभिषाप को ढोती है । दहेज की आग में जलायी गई महिलायें हो या तेजाब फेंककर जलायी गई महिलाएं हो । दोषी को कटघरे पर देखने के लिए उन की उमर बीत जाती है । नेपाल में निर्मला हत्याकांड आज भी निष्कर्ष तक नहीं पहुंच पाया है उसके माता-पिता आज भी न्याय के लिए उम्मीद लगाये बैठे

है । ऐसे हजारों केश है जो बिना न्याय दिलाये फाइलों पर ही बंद पड़े है । घरेलू हिंसा, वेश्यावृत्ति, बाल श्रमशोषण, वैदेशिक रोजगार के नाम पर लड़कियों को विदेशों में बेचे जाने का क्रम आज भी जारी है । इनके न्याय के लिए नेपाली जनता कब तक इंतजार करेगी । आधुनिक टेक्नोलोजी, मीडिया, साइबर एक तरफ तो लोगों को सुविधा दे रहें हैं दूसरी तरफ इनके माध्यम से लड़कियों का अश्लील विडियो बनाकर बेचा जा रहा है जो उनके चरित्र पर ही नहीं पूरे भविष्य को बर्बाद कर देता है । इसी तरह सौन्दर्य प्रतियोगिता के नाम पर भी लड़कियों का शोषण हो रहा है । घर और बाहर दोनों स्थलों में महिलाएं आज के दौर में और अधिक असुरक्षित दिखाई पड़ रही है । काम के दोहरे बोझ से दबकर भी वे अपनी सामाजिक और राजनीतिक जिम्मेदारी पूरी ईमानदारी से निभा रही है । इसके बावजूद भी पुरुषसत्ता के दशं झेलने पर स्त्रियां बाध्य है । इसको हम परिवर्तन कहे या फिर स्त्री आंदोलन की असफलता । कुछ भी हो स्त्री आंदोलन की सफलता यह है कि उसने स्त्री अधिकारों को कागजी रुप देने में सफलता हासिल की है । स्त्री आंदोलन को तब तक सफल नहीं माना जा सकता जब तक स्त्री सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकारों से संपन्न नहीं होती और कागजी अधिकार व्यवहार में लागू नहीं होते । पितृसत्तात्मक मानसिकता का अंत और लैंगिक समानता की पहल जो हो चुकी है । इसको जीवन में उतारने की आवश्यकता है ।

४.४ समकालीन हिंदी स्त्री उपन्यासों में स्त्री विमर्श और मुक्ति के सवाल

स्त्री विमर्श स्त्री आंदोलन की देन है । स्त्री समस्याओं को केन्द्र में रखकर चलाया गया सामाजिक अभियान स्त्री आंदोलन के रुप में चर्चा में आया । जिसके तहत स्त्री के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकारों की मांग समाज और सरकार के समक्ष रखी गई । यह अभियान किसी एक जगह या एक देश में नहीं बल्कि दुनियाभर के देशों में दुनियाभर की स्त्रियों द्वारा चलाया गया । स्त्री के इसी अभियान को साहित्य के माध्यम से समाज देश दुनिया तक पहुंचाने का लक्ष्य लेकर स्त्री विमर्श की शुरुआत हुई । मृणाल पाण्डे स्त्री विमर्श के संबंध में लिखती

हैं **"अगर विचार करना है तो स्त्री के संदर्भ में नहीं, शक्ति के संदर्भ में विचार करना होगा क्योंकि मूलतः जो पीड़ा है वह शक्ति के असंतुलित विवरण से उपजे विभिन्न प्रकार की विसंगतियों एवं कष्टों को लेकर है । नारी विमर्श इन सभी विचारधाराओं को लेकर चलता है इसमें स्त्री की आजादी, स्वायत्तता, आत्मनिर्भरता, अस्तित्व, स्वचेतना, संघर्ष, विरोध तथा विद्रोह की बात की जाती है ।"[16]**

हिंदी में संगठित रुप में इसकी शुरुआत 1970 से आरंभ होती है । कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंबदा, मंजुल भगत, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, मधु कांकरिया, गीतांजली श्री आदि स्त्री विमर्श की दिग्गज लेखिकाओं के रुप में सामने आयी । इन्होंने साहित्य के माध्यम से स्त्री के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, और राजनीतिक जीवन की संपूर्ण समस्याओं का यथार्थ चित्रण कहानी एवं उपन्यास के माध्यम से किया । इनकी दृष्टि से भारतीय समाज में रहने वाली किसी भी वर्ग, जाति एवं व्यवसाय में संलग्न स्त्रियां नहीं छूट पायी हैं । स्त्री की अलग-अलग समस्याओं और अलग-अलग परिवेश को उन्हीं की भाषा में प्रस्तुत करके महिला लेखिकाओं ने स्त्री साहित्य और विमर्श को और अधिक प्रौढ़ बना दिया है । पुरुषों की तुलना में बहुत देर से साहित्य लेखन में प्रवेश करने के बाद भी निरंतर सफलता की ओर अग्रसर होना उनकी कुशाग्र बुद्धि और मेहनतकश व्यक्तित्व को दर्शाता है । स्त्री को उपभोग की वस्तु मानने वाले इस समाज में खुद को मानव के रुप में परिचित करना या कराना स्त्री के लिए सबसे अहम और चुनौती पूर्ण कार्य था । समाज में उसकी स्थिति इस कदर लाचार बना दी गई थी कि उसे अपने जीवन साथी को मालिक के रुप में स्वीकार करना पड़ा । पुरुष स्वतंत्र प्राणी होने का सारा लाभ उठाता गया । उसके लिए समाज में न कोई बंधन है न कोई मर्यादा । विवाह, परिवार, पत्नी, बच्चें सब उसने अपनी सुविधा के लिए गढ़े है । वह इन सब संबंधों के बावजूद भी स्वतंत्र है । स्त्री की इस सामाजिक स्थिति और पुरुषसत्ता की मानसिकता के बारे में चर्चा करते हुए

अरविंद जैन लिखते हैं **"पुरुष सत्ता ने उसे मर्यादाओं के संकट जाल में बांधे रखा, मर्यादाओं के संकट जाल में स्त्री के लिए 'प्राइवेट लाइफ' का मतलब है व्यभिचारी और सिंदूरी संबंधों से बाहर, हर संबंध अनैतिक, पाप और अक्षम्य अपराध। एकल विवाह या संबंध के सारे प्रतिबंध सिर्फ स्त्री के लिए। पुरुष के लिए व्यभिचार की खुली वैधानिक छूट। रखैल, रक्षिता, वैश्या, कॉलगर्ल सब इसी की आनंद की संस्थायें है।"**[17]

इस यथार्थ से बाहर निकले की स्थिति स्त्रियों ने खुद निर्माण की है। जब उसे इस बात का अहसास हुआ की परिवार और विवाह जैसी संस्थायें स्त्री के नहीं पुरुष के हित के लिए निर्माण की गई है। स्त्री का इन सब के माध्यम से मात्र उपभोग हो रहा है। इसी यथार्थ को नासिरा शर्मा अपने उपन्यास सात नदियां इक समंदर में तबयबा के माध्यम से बताना चाहती है शादी स्त्री जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। तबयबा शादी के बंधन में बंधना नहीं चाहती। उनका मानना है कि शादी स्त्री शोषण और पतन का रास्ता है। यह संदर्भ स्त्री के विवाह की स्वतंत्रता और अपने लिए खुद निर्णय लेने की आजादी और साहस को प्रस्तुत करता है। मधु कांकरियां खुले गगन के लाल सितारे में इस बात को बताना चाहती है कि विवाह अनिवार्य नहीं है। संविधान ने हमें इस बात की स्वतंत्रता दे रखी है। यह नितांत व्यक्तिगत बात है। इस मामले में स्त्री स्वतंत्र रुप से अपना निर्णय ले सकती है परिवार या समाज स्त्री पर जबरजस्ती अपने नियम नहीं लाद सकता। इस बात का ज्ञान सभी स्त्रियों को होना चाहिए। वे लिखती है **"मैं यहां न आप के रहमोकरम पर हूं न अम्मा के। संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार है..किसी भी अविवाहित पुत्री का अपने पिता के घर आजीवन रहने का। हिंदू कोड बिल ने हिन्दुस्तानी नारी को संसार भर में सर्वाधिक अधिकार दियें है, यह अलग बात है कि यहां कि महिलायें खुद अपने अधिकारों के प्रति जागरुक नहीं, रही बात शादी की..तो इस दायित्व से मैं आप दोनों को मुक्त करती हूं।"**[18]

मधु कांकरिया के इस विचार ने यह सवाल उठा दिया है कि भारत में कितनी ऐसी स्त्रियां है जिन्हें संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के बारे में जानकारी है ? यानी दूसरे शब्दों में कहे तो प्राप्त अधिकारों पर किस-किस की पहुंच है । पढ़ी लिखी महिलायें अवश्य इसका फायदा उठा सकती है परंतु जो निम्न वर्ग की दलित या सर्वहारा महिलायें हैं उन तक यह अधिकार कैसे पहुंचाया जाये । बहरहाल यह एक गंभीर और संवेदनशील समस्या है । इसकी ओर सभी का ध्यान जाना आवश्यक है । स्त्री समस्यायें किसी एक परिधि में बंधी हुई या निश्चित नहीं है । उनकी समस्यायें समय के साथ परिवर्तन हो रही हैं । यद्यपि अर्थमुखी समाज ने स्वतंत्रता, रोजगारी, शिक्षा जैसी चीजों पर स्त्री की पहुंच बढ़ाई किंतु इसके साथ-साथ उनसे बहुत कुछ छीन भी रही है । चित्रा मुद्गल आंवा उपन्यास में अर्थमुखी समाज में स्त्री के बढ़ते संघर्ष की गाथा का बयान करती है । मध्यम वर्ग की एक पढ़ी लिखी लड़की नमिता जो पिता की अस्वस्थ्यता के बाद घर की संपूर्ण जिम्मेदारी निभाने का प्रयास करती है । पढ़ाई के साथ-साथ नौकरी करना उसका शौक नहीं बाध्यता है फिर भी वह जी तोड़ मेहनत करने से पीछे नहीं हटती । कभी 'कामगार अगाडी' के अन्ना साहब से शोषित होती है तो कभी संजय कनोई जैसे व्यापारी से नौकरी जैसे उसके लिए जिंदगी का एक बहुत बड़ा अभिशाप बन जाती है । चित्रा मुद्गल ने आधुनिक समाज में स्त्री शोषण की नये तरीके को लोगों के समक्ष रखा है । पढ़े लिखे पूंतिपति लोग अपनी सभ्यता या लोकप्रियता की आड़ में भोली भाली मेहनतकश लड़कियों को फंसाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते है । चित्रा के मुताबिक आज भी स्त्रियों का शोषण जारी है । जब कि स्त्रियों ने कानूनी रुप में कई अधिकार प्राप्त कर लिये है । नमिता जैसी लड़कियां अपराधी को बिना सजा दिये ही छोड़ देती है । इससे समाज में अपराधियों का मनोबल बढ़ता है और स्त्री अधिकार की उपेक्षा भी होती है । इसी तरह मन्नू भंडारी संबंध विच्छेद की समस्या और स्त्री जीवन के सवाल पर आपका बंटी उपन्यास लिखती हैं । इसमें लेखिका ने पितृसत्तात्मक समाज में संबंध विच्छेद की त्रासदी झेलते स्त्री और बच्चे का जीवन

दिखाया है । पति द्वारा छोड़ी गई स्त्री को देखने का समाज का नजरिया और पुर्नविवाह के बाद स्त्री जीवन की समस्याओं पर बारीकी से दृष्टि डाली गई है । लेखिका इस बात पर जोर देती है कि विवाह जैसी संस्था का लक्ष्य पति-पत्नी के लिए समान अधिकार और समान स्वतंत्रता की अनुभूति कराना होना चाहिए न कि स्त्री को दास और पुरुष को मालिक बनाने का लक्ष्य होना चाहिए । कुछ लेखिकाओं ने स्त्री समस्या का मूल कारण सामाजीकरण की प्रक्रिया को बताया है । बे सिमोन द बउवा के विचारों का समर्थन करते हुए लिखती है कि लैंगिक विभेद परिवार से शुरु होता जिस परिवार को स्त्री अपना रक्षक समझती है वही परिवार बेटे और बेटी में भेद करना सिखाता है । पैदा होते ही बेटियों को खिलौने के आधार पर ही विभेद करन शुरु किया जाता है यहां तक की बेटियों साथ बोले जाने बाले शब्दों में ही विभेद दिखाई पड़ता है । गीताजंली श्री का उपन्यास माई में सुनैना के पहनावे पर टिप्पणी करते हुए सलाह दी जाती है कि उसे केवल फ्रॉक ही पहनना होगा वो भी पूरी लंबाई वाली । लड़की का बदन जरा भी नहीं दिखना चाहिये । ऐसे ही नासिरा शर्मा के उपन्यास ठिकरे की मंगनी में रखी जाती है । उसका चाचा दादी से पूछता है कि महरुख क्यों पैर फेंक-फेंक कर चलती है ये लड़कियों योग्य चाल नहीं है । कहने का तात्पर्य यह है कि पितृसत्ता की जड़े परिवार की नींव से जुडी़ है जहां लड़कियों को पैदा होते ही अपने सांचे में ढालने की पूरी तैयारी की जाती है बाद में वह संस्कार बनकर हस्तांतरित होती जाती है । इसी भेदभाव के कारण स्त्रियां जबरन घर की चार दीवारी को अपना संसार समझने लगती है । लड़कियों को दी जाने वाली शिक्षा में भी भेदभाव देखा जा सकता है । लड़कों को अंग्रेजी स्कूल और लड़कियों को सरकारी स्कूल में भेजा जाता है । लेखिकायें सामाजीकरण के भेदभाव के साथ-साथ बालिकाओं को उसकी इच्छा के विरुद्ध काम कराये जाने यानी बाल हिंसा या शोषण की स्थिति की ओर भी संकेत करती हैं । समकालीन स्त्री उपन्यासकारों ने स्त्री आत्मनिर्भरता के मुद्दों और उसके लिए किये जा रहें संघर्षों एवं दोहरी जिम्मेदारी के बोझ तले दबे स्त्री जीवन पर विशेष ध्यान

केन्द्रित किया है । प्रभा खेतान अपने उपन्यास छिन्नमस्ता में प्रिया के माध्यम से अपनी पहचान एवं आत्मनिर्भता के लिए किये जा रहें संघर्ष को दिखाती है । प्रिया का पति कहता है **"मैं सीरियस हूं । फिर कहता हूं, यदि आज तुम लंन्दन गई तो मेरे घर में तुम्हारी जगह नहीं । यह भी साली कोई जिंदगी है, जब देखो तब बिजनेस ।..फिर सुनलो यहां मत आना । आओगी तो मैं धक्के देकर बाहर निकलवा दूंगा ।"**[19]

जाहिर है कि स्त्री के इस काम में पुरुष उसके साथ नहीं है यानी आज भी पितृसत्ता ने अपने पैरों पर खड़ी औरत को स्वीकार कराना नहीं सीखा है । क्षमा शर्मा का उपन्यास 'परछाई अन्नपूर्णा ' में भी स्त्री की आत्मनिर्भता को पुरजोर रुप में उठाया गया है । क्षमा अपनी भूमिका में ही लिखती है **"स्त्री पैसे कमाने के लिए नोकरी करती है या आत्मविकास के लिए ।"**[20]

पैसे कमाने और आत्मविश्वास का सवाल स्त्री जीवन से जुड़ा बहुत महत्वपूर्ण सवाल है । पैसा स्त्री परनिर्भरता को हटाता है तो आत्मविश्वास के बिना स्त्री पैसे कमाने के मंच तक नहीं पहुँच पाती और इसके अलवा एक बढ़ी बात यह है कि आत्मविश्वास स्त्री को उसके कार्य में आगे बढ़ाने और काम के दौरान किये जाने वाले शोषण का विरोध करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है । इसी संदर्भ में क्षमा शर्मा विभा के माध्यम से कामकाजी महिलाओं के साथ होने वाले यौन यंत्रणाओं और यौन शोषण की समस्या को उपन्यास में चित्रित करती हैं । मैत्रेयी पुष्पा इन सबसे हटकर ग्रामीण समाज में पहुंची है और वहां उनके साथ होने वाले शोषण का जायजा लेती हैं । मैत्रेयी पुष्पा की नायिका सारंग समाज के अनेकों रुढ़ियों और अन्याय के साथ लड़ते हुए विद्रोह पर उतर आती है और पुरुषों की बराबरी करने ग्राम पंचायत के चुनाव में प्रत्याशी बनकर पितृसत्ता को ललकारती है । इसी तरह चाक की दूसरी पात्र रेशम अपने प्रजनन के अधिकार और यौनिकता के अधिकार के लिए अपने परिवार और समाज से लड़ती है । वह किसी की जोर

जबरजस्ती से डरती नही है । मृदुला गर्ग पितृसत्ता के सामने एक ऐसा सवाल खड़ा करती है जिससे वे सोचने पर मजबूर हो जाते है । वर्षों से स्त्रियां बलात्कार के बाद आत्महत्या करने पर मजबूर की जाती रही हैं । उनका सवाल यह है कि जब अपराध पुरुष कर रहा है तो सजा का हकदार उसे होना चाहिए स्त्रियों को नहीं । भारत जैसे देशों में बलात्कारी को नहीं बलात्कृत स्त्रियों को कसूरबार ठहराया जाता है, पितृसत्ता की यह क्रूर एवं अमानवीय साजिश है । इसलिए वे भारतीय स्त्रियों को अपराध बोध से मुक्त होने और प्रतिकूल परिस्थिति में न घबराकर संघर्ष करते रहने की प्रेरणा देती हैं । उनका उपन्यास कठगुलाब इसी तरह की घटना पर आधारित है । उनका एक और उपन्यास सूरजमूखी अंधेरा समाज की इस मान्यता को तोड़ता हुआ दिखाई पड़ता है । इस उपन्यास की नायिका कहती है कि **''खुदखुशी करने को मेरा जमीर मुझे नहीं उकसाता ? मेरा मन धिक्कारता था तो सिर्फ इसलिए कि मैंने प्रतिशोध नहीं लिया ।''**[21]

स्त्री जीवन से सबंधित ऐसे कैयों सवाल समकालीन स्त्री लेखिकाओं द्वारा उठायें गयें है । आज जरुरत है तो स्त्रियों को अपने दिये गये अधिकारों का प्रयोग करने की उन्हें व्यवहार में उतारने की । पुरुषों से डरकर नहीं लड़कर अपने जीवन को सफल करने की । यह अवश्य है कि पुरुषों ने आज तक जो भी उपलब्धि हासिल की है वह निर्विविरोध की है उसके रास्ते में कोई अड़चन नहीं थी परंतु स्त्रियों के रास्ते में हजारों अड़चने हैं । जब स्त्रियां इन अड़चनों को हटाती हुई, टकराती हुई अपने लक्ष्य तक पहुंचेगी तब सही मायने में उसके भीतर का डर, भय, आंतक, त्रास उसके जीवन से कोशों दूर भाग जायेंगे और वह पुरुषों से सक्षम और सबल कहलायेगी । साथ ही आने वाली पीढ़ियों को एक उज्ज्वल भविष्य दे पायेंगी । स्त्री का संघर्ष उसकी सफलता केवल उसके लिए न होकर समग्र समाज एवं राष्ट्र के लिए है ।

४.५ समकालीन नेपाली स्त्री उपन्यास लेखन में स्त्री विमर्श और मुक्ति के सवाल

नेपाली महिला साहित्यकारों ने स्त्री आंदोलन के सभी मुद्दों को साहित्य में समेटने का प्रयास किया है । विभिन्न जात-जाति, वर्ग, समुदाय में बंटी, स्त्रियां व्यक्तिगत तौर पर भले ही अनेकों परिस्थितियों का सामना कर रहीं हो परंतु उनकी समस्या की जड़ पितृसत्ता ही है । सुधा त्रिपाठी अपनी पुस्तक नारीवाद के कठघरे पर नेपाली साहित्य में लिखती हैं कि **"पितृसत्ता पूंजीवाद की तरह है, जो स्त्री-पुरुष, संपन्न और कमजोर के बीच विभेद उत्पन्न करा कर श्रमिकों में नियंत्रण की तरह स्त्री में पुरुष नियंत्रण कायम करता है ।"**[22]

नेपाली महिला साहित्यकार अपनी कहानी, कविताओं और उपन्यासों में इस बात का उल्लेख करती है कि स्त्रियों ने पुरुषों को सामाजिक प्राणी बनाया है । उसीने पुरुषों को समाज का महत्व सिखाया है । व्यवस्थित जीवन जीने का तरीका और जीवन का उद्देश्य निर्धारित किये जाने की बात उसी से ही पुरुषों ने सिखी है । स्त्रियों ने खुद में निहित प्रेम, सद्भाव और सहयोग की भावना से समाज का निर्माण किया है । पुरुष स्वभावतः स्वार्थी और अवसरवादी है । स्त्री ने उसे जीवन में आगे बढ़ाने के लिए उसकी सुविधा के मुताबिक वातावरण निर्माण किया । वह उसकी सफलता को खुद की सफलता समझती गई । उसने पुरुषों को हमेशा अपना सहयोगी और समकक्षी समझा । परंतु पुरुष स्त्री के इस त्याग और सूझबूझ को उसकी कमजोरी समझ कर उसे अविवेकी और अयोग्य ठहराने में लग गया । उसे जीवनपर्यंत अपना दास बनाये रहने और खुद मालिक बनकर शासन करने की योजना बनाने की तरफ अग्रसर होता गया । उसका यही षडयंत्र पितृसत्ता के रुप में आज हमारे समकक्ष एक जटिल समस्या बनकर खड़ा है । धीरे-धीरे इस सत्ता ने इतनी शक्ति अर्जित कर ली की वह स्त्रियों के लिए जीवन मूल्य निर्धारित करने लगा और उसने स्त्री की देह को उपभोग की वस्तु बताकर उसे मानव से वस्तु के रुप में परिणत कर दिया । यहां तक कि पुरुष की मृत्यु के बाद स्त्री के

जीवन को बेअर्थ बताकर उसे पुरुष की लाश के साथ जिंदा जलाये जाने के नियम बना दिया । जो बाद में 'सतीप्रथा' के नाम से जाना जाने लगा । इतना ही नहीं स्त्री की प्रजनन क्षमता और उसके गर्भाशय को अपने वीर्य की तुलना में कमजोर और अर्थ हीन बताते हुए । संतान का पहला दावेदार भी वह बन गया । बाहर की दुनिया पर अपन प्रभुत्व जमाने के लिए उसने स्त्री को घर की चार दीवारी के भीतर का काम जिम्म लगा दिया । इस तरह स्त्री बाहर की दुनिया से कट गई और उसकी सामाजिक उपस्थिति नगण्य हो गई । अर्थ और राजनीति जैसी चीजों से उसका जुड़ाव कम होने के कारण वह पूरी तरह से पुरुषों के नियंत्रण में आ गई । परनिर्भता बढ़ने के कारण विरोध करने का आधार भी नहीं बचा । स्त्री को इस स्थिति में सयौं वर्ष तक रहना पड़ा । अठारहवीं शतब्दी में आकर जब समाज के शोषित वर्ग अपने अधिकार के लिए लड़ रहें थे तब महिलाओं में भी यह चेतना जागी कि उन्हें भी अपनी स्थिति में सुधार लाने के बारे में सोचना चाहिए । यहीं से उसने पितृसत्ता के खिलाफ अपना संघर्ष आरंभ किया है । सारे अधिकारों से वंचित स्त्री ने समाज में अपने अस्तित्व की पहचान और समाज में अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकारों की प्रत्याभूति के लिए संगठित रुप में आंदोलन आरंभ किया । नेपाली स्त्री साहित्यकारों ने उपर्युक्त स्थिति को ही स्त्री समाज का इतिहास माना है । नेपाली समाज में स्त्री पुरुष के संबंध और पितृसत्ता के स्थिति के बारे में बताते हुये । पारिजात लिखती है **"समाज में पितृसत्ता स्थापित है । नारी प्रतिपक्ष की भूमिका में है । सत्तापक्ष प्रतिपक्ष का दमन करती है । पुरुष सत्ताधारी होने के कारण स्त्रियों पर यावत अत्याचार करता है । एक दूसरे के पूरक के रुप में निर्मित किये गये नर-नारी के बीच में पक्षता एवं प्रतिपक्षता का न होना ही उचित है ।"**[23]

स्त्री पुरुष के सह अस्तित्व और स्वतंत्र पहचान को महत्व देते हुए पारिजात ने नेपाली समाज में पुरुष वर्चस्व का विरोध किया है । उनके विचार में स्त्री पुरुष

एक दूसरे के पूरक है अत: एक दूसरे के अस्तित्व को स्वीकार कर के आगे बढ़ने से ही समाज का संतुलित विकास हो सकता है कि मान्यता उनके साहित्य में देखी जा सकती है । पारिजात के उपन्यास शिरीष का फूल, मत्ताहीन, अंतर्मुखी, आदि में स्त्री शोषण के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक पक्ष पर प्रकाश डा़ला गया है । पारिजात नेपाली साहित्य की एक ऐसी लेखिका है जिन्होंने नेपाली स्त्री लेखन का मार्गदर्शन किया है । मार्क्सवादी विचारधारा को साहित्य में प्रयोग करने वाली यह पहली नेपाली लेखिका है । स्त्री के जीवीकोपार्जन का सवाल इनके साहित्य का मुख्य मुद्दा है । इसके अलावा स्त्री के प्रजनन अधिकार, यौनिकता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, राजनीतिक सहभागिता का अधिकार आदि के सवाल भी इनकी रचनाओं में देखे जा सकते है । पुरुष के यौन पिपासु प्रवृति के त्रास का चित्रण करते हुए प्रेमा शाह पीला गुलाब नामक कहानी में यह सवाल उठाती है कि जब एक स्त्री अपना संपूर्ण जीवन अपने पति और परिवार की सेवा में गुजार देती है तो क्या उसकी अस्वस्थ्य अवस्था में उसके पति की यह जिम्मेवारी नहीं बनती है कि वह उसका खयाल रखे । उसकी हिम्मत और मनोबल को बढ़ाये । परंतु पुरुष को इस स्थिति में भी स्त्री की देह के अलावा और कुछ नहीं सुझता । अपस्ताल के बेड पर पड़ी पत्नी के साथ भी वह यौन शोषण करता है । पुरुष ने अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर कभी स्त्री को अपना समकक्षी नहीं समझा है । वह स्त्री को केवल अपनी भूख मिटाने का साधन मानता है । विवाह के नाम पर किये जा रहे यौन शोषण की समस्या इस कहानी का मुख्य उद्देश्य है । स्त्रियां घर के भीतर तो शोषित है ही बाहर मठ-मंदिरो में भी शोषण का शिकार बनती है । शारदा शर्मा ताप उपन्यास में बौद्ध विहारों में स्त्री के साथ होने वाले शोषण को चित्रित करती हैं । वे बताती है कि स्त्रियां कितनी भी योग्य क्यों न हो घर, परिवार, समाज धार्मिक क्षेत्र हर जगह उन्हें पुरुषों के नियंत्रण में रहना पड़ता है और उनकी आज्ञा का पालन करना पड़ता है । हमारे समाज में स्त्री को उच्च पद देने का अर्थ पुरुषों की तौहीन करना है । इस यथार्थ का बयान करते

हुए ताप उपन्यास की पात्र सुजाता कहती है **"ईश्वर (बुद्ध) ने येसा क्यों कहा होगा कि नारी को प्रव्रज्या देने के नियम बसाने से बुद्ध धर्म की शुद्धता एवं उम्र घटकर हजार से पांच सौ वर्ष पहुंचेगी ।"**[24]

पितृसत्ता की स्थापना के लिए रचे गये हर षडयंत्र को सूक्ष्म रुप से देखने और विश्लेषण करने का काम नेपाली महिला साहित्यकारों ने किया है । भगवती ढुंगेल ने सहयात्री उपन्यास में पैतृक संपत्ति से बेटियों को बेदखल किये जाने की समस्या को पितृसत्ता की एक सोची समझी साजिश बताया है । स्त्रियां दोनों तरफ से ठगी गई है, इधर पिता के घर से संस्कार के नाम पर और उधर पति के घर मालकिन के नाम पर । संपत्ति पर नियंत्रण आज तक केवल पुरुष रखता आया है । विवाह से स्त्रियां केवल उत्पीड़ित एवं दुखी हुई है । इसके नाम पर उसके हाथ से संपत्ति का अधिकार छीना गया है । विवाह पश्चात पुरुष इस अंहकार से भर जाता है कि वह स्त्री को अपने घर में रहने, खाने दे रहा है इसलिए वह चाहता है कि स्त्री हमेशा उसका कृतार्थ बोध करे । जब कि वास्तविकता यह होती है कि पुरुष जितना काम करता है स्त्री उसके घर पर उससे भी दुगुना काम करती है । इसी प्रसंग में अपने काम का मूंल्यांकन की मांग करते हुए सहयात्री उपन्यास की स्त्री पात्र कहती है **"बताइए तो आदमी से कम काम करती है क्या हम औरतें ? हल चलाने और छत बनाने के अलावा सारे काम हम करते है । दो दिन यदि उनको रसोई में काम करना पड़ेगा तो दांत से पसीना आ जायेगा ।"**[25]

नेपाली महिला साहित्यकारों ने समाज में देखे जाने वाले तीन तरह के स्त्री के स्वरुप को समाज के सामने प्रस्तुत किया है । यथास्थिति को स्वीकार कर आगे बढ़ने वाली स्त्रियां, परिस्थति को सुधारने की मनसा रखने वाली स्त्रियां और यथास्थिति का विरोध कर समाज रुपांतरण के लिए विद्रोह करने वाली स्त्रियां । कल्ली उपन्यास में हरिमाया भेटवाल ने स्त्री के विद्रोह करने वाले स्वरुप को चित्रित किया है । कल्ली पितृसत्ता के नाम पर शासन कर रहें नालायक अयोग्य पुरुषों का

पर्दाफास करती है । कल्ली नेपाली स्त्री समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली एक ऐसी स्त्री पात्र है जो अपने जीवन में आने वाले संघर्ष, दुःख, भय, त्रास से लड़ते हुए जीवन से हारती नहीं है बल्कि खुद को स्त्री का रक्षक या मालिक समझने वाले अपने पति के प्राण बचाकर उसे अपने परिवार के प्रति जिम्मेदार रहने का पाठ सिखाती है । कल्ली में इतना साहस है कि वह खुद के साथ धोखा करने वाले और तुक्ष्य समझने वाले पुरुष को छोड़ कर अपने लिए जीवन और रास्ते खोज सके । कल्ली समाज की उन सारी रुढ़िवादी परंपराओं को ध्वस्त कर देती है जो स्त्री के जीवन और प्रगति को रोकने के लिए निर्माण किये गये थें । इस उपन्यास के माध्यम से परिवर्तशील नेपाली समाज को दिखाने को प्रयास किया गया है । इसी तरह सरस्वती प्रतीक्षा का उपन्यास नथिया नेपाली समाज में दलित स्त्री जीवन की विडंबनाओं, शोषण अन्याय और अत्याचार का यथार्थ चित्रण करता है । सरस्वती प्रतीक्षा दलित स्त्री के संदर्भ में यह सवाल उठाती है कि ब्रह्मणवादी समाज जिन स्त्रयों का हाथ का छूआ पानी तक नहीं पीता है, जिनके घर के आँगन तक को छू लेने से घर अपवित्र हो जाता है । वह पुरुष एक दलित स्त्री के साथ संबंध रखने पर भी पवित्र कैसे रह जाता है ? संतान का मोह पुरुषों को है जिसके लिए वह चार-चार शादियां करता है । क्या दलित स्त्री के साथ संभोग से जन्मी संतान उसकी संतान नहीं है ? क्या दुनिया की स्त्रियां एक जैसी नहीं है ? जात उच्च होने से क्या स्त्री के गुण बदल जाते है ? क्या पुरुष कभी पतित नहीं होता ? उसके लिए कोई मार्यादा नहीं है ? स्त्री के जीवन के ये महत्वपूर्ण सवाल हमें नथिया में मिलते है । जहां एक जीती जागती दतिल स्त्री को लाश की तरह नोचा खसोटा जाता है । नोचने खसोटने वाला कोई और नहीं समाज का नीति निर्माता और पति नाम का जीव है । सुदूर नेपाल में रहने वाले एक बादी समूदाय की स्त्रियों की शोषण गाथा है नथिया उपन्यास । यह बादी समुदाय समाज में दलित समुदाय के भीतर का भी दलित समुदाय है । यह समुदाय वर्षों से लोगों के शादी व्याह में नाचने गाने वाली जाति के रुप में जाना जाता है । इसके अलावा इस

समुदाय की स्त्रियां तत्कालीन राजा, पूंजीपति एवं जमीदारों का मनोरंजन करने के लिए प्रयोग में लाई जाती थी धीरे-धीरे बेरोजगारी बढ़ती गई और बादी समुदाय की जनसंख्या भी बढ़ती गई । इस स्थिति ने बादी समुदाय की स्थिति को और अधिक संकट ग्रस्त एवं विकराल बना दिया । एक तो समाज का उपेक्षित वर्ग उसमें भी गरीब, असहाय राज्य की सभी सुविधाओं से वंचित । इस जाति की उद्दार की कल्पना तक असंभव । इन्हीं अभावों और शोषण के बीच झूलती इस जाति की स्त्रियों की पीढ़ा का बयान उपन्यास में किया गया है । नीलम कार्की 'निहारिका' का चीरहरण उपन्यास भी स्त्री विद्रोह का प्रतीक है । महाभारत की कथावस्तु को आधुनिक स्त्रीवादी विचारधारा के साथ प्रस्तुत किया गया है । पांच पांडव और कौरवों ने किस तरह एक स्त्री की अस्मिता को दांव पर लगाना अपना अधिकार समझा । उनके लिए द्रोपदी मात्र एक वस्तु थी उनकी संपत्ति थी जिसे वो जैसे चाहे वैसे प्रयोग में ला सकते थे । निहारिका लिखती है यही प्रवृत्ति हस्तांतरित होते हुए आज के समाज में भी जिंदा है परंतु द्रोपदी द्वारा किये गये विद्रोह को स्त्री समाज ने क्यों नहीं अनुसरण किया । यह चिंतन करने वाली बात है । स्त्री का देह, समाज में उसकी उपस्थिति सामाजिक मान्यतायें आदि विषय वस्तुओं को तर्क-वितर्क के साथ चीरहरण में प्रस्तुत किया गया है । उन्नीसवीं शताब्दी में आकर कैट मिलेट 'शरीर नारी का भाग्य है' जैसी मान्यता का विरोध करते हुए इस बात को भी अस्वीकार करती है कि पहले कभी मातृसत्तात्मक समाज रहा होगा । नेपाली नेत्री एवं लेखिका हिसीला यमी का भी मानना है कि **"स्त्री शारीरिक रुप से कमजोर नहीं है । जैविक दृष्टि से स्त्री शरीर मजबूत है मगर भौतिक रुप से पुरुष मजबूत है । स्त्री उसकी यौनिकता या प्रजनन के कारण घर पर सीमित नहीं रही है बल्कि पितृसत्ता ने उसे घर पर रहने को बाध्य किया है ।"**[26]

यह सोचनीय बात है कि जब स्त्रियों ने पुरुष के साथ युद्ध या किसी भी अन्य क्षेत्र में खुद को पुरुष के बराबर होने का प्रमाण दिया है तो फिर भी पितृसत्ता उसे अपने बराबर क्यों नहीं समझती । पुरुष की इसी मानसिकता पर तंज कसते हुये आन्विका गिरी ने आदमी का रंग उपन्यास की रचना की । जिसमें स्त्री के निडर, निर्भिक और कर्तव्यनिष्ठ रुप को चित्रित किया । माओवादी और नेपाली सेना की ज्यादती सहते हुए भी वह अपने रास्ते या उद्देश्य से जरा भी विचलित नहीं हुई । पार्टी का लक्ष्य और समाज परिवर्तन की कामना ही उसके लिए सर्वोपरि रहें । अपने पिता की कायरता पर उसे क्रोध आता है कि वे अपने लक्ष्य में आगे बढ़ने से पहले ही पीछे हट गये । फिर भी वह अपने पिता पर लगे कायरता के आरोप को मिटाने का प्रयास करती है । अतः यह कहा जा सकता है कि स्त्रियों ने खुद को तो साबित किया ही है परंतु पुरुष समाज की गलतियों को भी सुधारने का प्रयास किया है । जरुरत है तो स्त्री के सबल पक्षों को देखने की मूल्यांकन करने की और यह स्वीकार करने की कि वह किसी भी दृष्टि से पुरुषों से कम नहीं है । नेपाली और हिंदी स्त्री विमर्श का अध्ययन से यह पता चलता है कि दोनों ने स्त्री समस्या और स्त्री जीवन से जुड़े सामाजिक, राजनीति, आर्थिक सभी मुद्दों को साहित्य में समेटने का प्रयास किया है ।

निष्कर्ष : स्त्री वादी आंदोलन स्त्री मुक्ति के कई सवालों को एक साथ उठाता है । इस आंदोलन की शुरुआत भले ही पश्चिमी देशों से हुई है । परंतु स्त्री अधिकार के लिए संघर्ष प्रत्येक देशों में समय परिस्थिति के मुताबिक होते रहें हैं । कुछ नेपाली लेखिकाओं का यह मानना है कि हमारे देश में अभी अतिवादी नारीवाद की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यहां सामाजिक संरचना ही ऐसी है कि इसको स्वीकार करने में और अधिक समय लगेगा । अभी समाजवादी और उदारवादी नारीवाद का ही दौर चल रहा है । भारत में कुछ लेखिकाओं ने अतिवाद का समर्थन करते हुये उसकी आवश्यकता को महसूस किया है तो कुछ लेखिकाओं ने समाजवादी नारीवाद को ही प्राथमिकता दी है । नेपाल और भारत के संदर्भ में नारीवाद पितृसत्ता की

जड़ो को हिलाने की कोशिश कर रहा है तो पाश्चात्य देशों में स्त्रीवाद स्थापित हो चुका हैं। वहां कि स्त्रियां नेपाल और भारत की स्त्रियों की तुलना में अपने अधिकारों का अधिक उपभोग कर रहीं हैं। लेकिन यह कहा जा सकता है कि नारीवाद स्त्री अधिकारों की वकालत करने वाला का एक सशक्त माध्यम है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पारिजात, पारिजात संकलिच रचनायें, पृ. 155
2. सिंह, नमिता, स्त्री प्रश्न, पृ. 22
3. वही, पृ. 27
4. वही, पृ. 32
5. वही, पृ. 34
6. डॉ. मालती, के. एम, स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ. 67
7. वही, पृ. 67
8. वही, पृ. 73
9. (सं.) चंदन, संजीव, स्त्रीकाल, अंक, 3-4, वर्ष 2022, पृ. 14
10. डॉ. बालकृष्णन, सुधा, नारी: अस्तित्व की पहचान (साठोत्तरी लेखिकाओं की कहानियों में), पृ. 11
11. डॉ. तुम्बाहांगफे, शिवमाया, नेपाल में महिला आंदोलन, पृ. 85
12. वही, पृ. 85
13. कार्की, सुशीला, लैंगिक समानता, पृ. 81
14. पाण्डे, बिंदा, नेपाल के श्रमिक आंदोलन में महिला सहभागिता, पृ. 42
15. उप्रेती, बी. आर, द प्राइज आंफ नेक्लेक्ट, पृ. 225
16. www. https://samvedan–spars.blogspot.com
17. सं. चौबे, देबेन्द्र, यादव, अजय कुमार, तेली गणपत, हिंदी साहित्य का इतिहास कुछ पाठ कुछ विचार, पृ. 358
18. कांकरियां, मधु, खुलेगगन के लाल सितारे, पृ. 157
19. खेतान, प्रभा, छिन्नमस्ता, पृ. 14
20. (सं.) चौबे, देबेन्द्र, यादव, अजय कुमार, तेली, गणपत, हिंदी साहित्य का इतिहास कुछ पाठ कुछ विचार, पृ. 367
21. गर्ग, मृदुला, कठगुलाब, पृ. 32
22. त्रिपाठी, सुधा, नारीवाद के कठघरे में नेपाली साहित्य, पृ. 16

23. वही, पृ. 6
24. शर्मा, शारदा, ताप, पृ. 72
25. त्रिपाठी, सुधा, नारीवाद के कठघरे में नेपाली साहित्य, पृ. 73
26. वही, पृ. 13

अध्याय पांच

५. समकालीन स्त्री उपन्यासों में ग्रामीण राजनीति : जाति का सवाल एवं वर्ग संघर्ष की स्थिति

५.१ समकालीन भारतीय ग्रामीण समाज आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति

भारतीय समाज विविधता में एकता का प्रतिनिधित्व करने वाला समाज है । यहां अनेकों भाषा, कला, साहित्य, संस्कृति, धर्म और जाति के लोग एक ही भौगोलिक क्षेत्र के भीतर रहते हैं । भारतीय समाज का अपना ही एक अलग इतिहास है । वैदिक काल से लेकर अब तक के समाज का यदि अध्ययन करे तो इसमें कई प्रकार के परिवर्तन देखे जा सकते है । जाति, धर्म, वर्ग एवं लिंग में बंटे हुये समाज को आज की स्थिति में पहुंचने के लिए सदियां लगी है । जिस समाज में मानव-मानव बीच का विभेद इतना गहरा था कि इस को मिटाने की कल्पना तक संभव नहीं थी लेकिन यह स्थिति आज भी पूरी तरह समाप्त तो नहीं हुई है, हाँ इसमें कुछ परिवर्तन या सुधार अवश्य आयें हैं । चाहे वह स्त्री के संदर्भ में हो, दलित की स्थिति के संदर्भ में हो या फिर जाति के संदर्भ में हो । इस परिवर्तन का श्रेय लोकतांत्रिक व्यवस्था को देना उचित होगा । भारतीय समाज इस विभेदपूर्ण स्थिति में पहुंचा कैसे ? और इसके पीछे की राजनीति क्या थी ? यह महत्वपूर्ण सवाल हैं । सामान्यतया देखा जाये तो भारतीय धार्मिक ग्रन्थों और उसका संरक्षरण करने वाले उच्च ब्रह्मण वर्ग जो अन्य वर्गों की तुलना में अधिक चेतनशील थे । जिसने इस व्यवस्था को प्रश्रय दिया है । समाज को व्यवस्थित करने के लिए कार्य विभाजन के आधार पर जाति विभाजन किये जाने का तर्क देने वाले इस वर्ग ने समाज में अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए कार्य विभाजन के नाम पर जाति विभाजन की अवधारण का विकास किया है । इस आवधारण के तहत किसी भी व्यक्ति की पहचान उसके जाति के आधार पर होती है उसकी क्षमता या योग्यता के आधार पर नहीं । यदि कोई दलित जाति में पैदा होगा तो उसका व्यवसाय भी उसी आधार पर निर्धारित होगा । यह मान्यता एक संकुचित मान्यता है जो लोगों की क्षमताओं

को किसी निश्चित परिधि में बाँधकर रखता है । इस व्यवस्था के संबंध में यह सवाल उठाया जा सकता है कि क्या मोची का बेटा कवि या शिल्पकार नहीं बन सकता है ? उसे मोची ही बनाये जाने की यह बाध्यता उसकी क्षमता पर प्रतिबंध लगा देना है । इसलिए यह एक निरंकुश व्यवस्था कहलाने के लायक है । आज के समय में यह मान्यता रुढ़ मान्यता है । इसलिए कार्य विभाजन व्यवस्था जाति या नस्ल के नाम पर नहीं बल्कि व्यक्ति की रुचि या सीप के आधार पर होनी चाहिये यह विभाजन शोषक मानसिकता की ओर संकेत करता है । डॉ. भीमराव अंबेडकर जिसे दलित एवं उत्पीड़ित वर्ग का मसीहा माना जा सकता है ने इसके संदर्भ में कहा है **"भारत में प्रचलित सामाजिक व्यवस्था एक ऐसा मसला है, जिसे किसी भी समाजवादी को निपटाना ही पड़ेगा । जब तक वह ऐसा नहीं करता, वह क्रांति के अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता और खुश किस्मती से वह क्रांति करने में सफल हो जाता है, तब वह जिस लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है, उसके लिए सामाजिक व्यवस्था से उसे मोर्चा लेना होगा ।"**[1] वर्तमान भारतीय और नेपाली समाज में जाति व्यवस्था सामाजिक विभेद को बढ़ावा देने वाला ऐसा पेड़ है जिसकी जड़े समाज में बहुत गहरी है । भारतीय समाज की एक विशेष बात यह भी है कि विदेशी आकर्मणों के कारण अधिकतर ऐसे गांव प्रभावित हुये है जो आक्रमणकारियों के केन्द्र के आस-पास के थे । इसलिए मध्य भारत और उत्तरी भारत के गांव में मिश्रित सांस्कृतिक समाज अधिक देखा जाता है । यह सत्य है कि भारत अनेकों आर्थिक, राजनीतिक उतार-चढ़ाव से गुजरा है । इसका प्रभाव हम उसकी सामाजिक संरचना में देख सकते हैं । स्वतंत्रता के बाद सामाजिक, आर्थिक, राजनीति रुपांतरण में धीरे-धीरे तेजी आ रही हैं । प्राचीन मूल्य मान्यताओं पर चलने वाला समाज आज धीरे-धीरे परिवर्तन की ओर आगे बढ़ रहा है । इसका प्रथम कारण शिक्षा है तो दूसरा कारण भारतीय समाज में विभेद अंत करने के लिए बनाया गया कानून या संविधान है । आज हम जो भारतीय समाज में सामाजिक न्याय और समन्वय की भावना देख रहे है यह इसी का प्रतिफलन है । विगत के दिनों में घरों के भीतर

सीमित की गई स्त्री आज रोजगार के सिल-सिले में देश विदेश का भ्रमण कर रही है। आत्मनिर्भर होकर अपने जीवन के निर्णय खुद ले रही है। प्रजनन और यौनिकता के सवाल पर खुलकर बहस कर पा रही है। स्त्री जीवन के संबंध में गढ़े मिथकों को तोड़ने और उसके पीछे छुपे सत्य को खोजने में सफल हो रही है। उधर जाति के नाम पर उत्पीड़ित समाज भी अपने लिए समानता के सवाल को उठाने से हिचक नहीं रहा है। अपने समुदाय के उत्थान के लिए रोजगारी, सामाजिक न्याय लगायत आवश्यक अधिकारों की मांग करने के लिए आंदोलन में उतरा है। यह स्थिति सही मायने में भारतीय समाज को धर्म, सामाजिक रुढ़ियों और मूल्य मान्यताओं से ऊपर इंसान होने की बात को महत्व देती है। भारतीय समाज विगत के दिनों में इतना धर्मान्ध हो चुका था कि धर्म के नाम पर की गई हिंसा को हिंसा नहीं स्वीकार करता था। यानी धर्म के नाम पर कुछ भी किया जा सकता था। हालांकि आज भी इस मानसिकता में इतना अधिक बदलाव तो नहीं आया है परंतु शिक्षित लोग तार्किक जरुर हुये हैं। हिंदी साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसी विषय पर व्यंग्य करते हुये एक नाटक लिखा है जिसका नाम है 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' (1873) यह नाटक नवजागरण काल में लिखा गया है जिस समय भारती समाज में अंग्रेजी संस्कृति का प्रभाव पड़ रहा था। लोगों में आधुनिक विचारधारा को समझने की मानसिकता विकसित हो रही थी। यह प्रहसन तत्कालीन समाजिक रुढ़ियों पर करारा व्यंग्य था। आधुनिक विचारधारा के कारण भारत की सामाजिक संरचना ही नहीं स्थितियों में भी बदलाव आया। गांव के संयुक्त परिवार धीरे-धीरे एकात्मक अथवा एकल परिवार के रुप में बदलने लगे। सांप्रदायिक दंगों के कारण समाज में हमेशा त्रास का माहौल बना रहता था, सद्भाव में परिणत होने लगा, धर्म के प्रति कट्टरता कम होने लगी, स्त्री पुरुष के बीच की असमानता की खाई भी कम होती गई। इसके अलावा भारतीय समाज में सबसे बड़ा परिवर्तन उन्नीसवीं शताब्दी में मार्क्सवादी विचाधारा के चर्चा में आने के बाद देखा गया। इस विचारधारा ने समाज के सामंती वर्गों के खिलाफ

मोर्चा खोला । वर्षों से सामंतियों के शोषण का शिकार बने ग्रामीण किसानों ने समानता के लिए नक्सलबाडी में आंदोलन किया । यह आंदोलन भारतीय ग्रामीण समाज के चेतना के एक बहुत बड़े उदाहरण के रुप में दर्ज हुआ । समाज के पूंजीपतियों के लिए भी यह विचारधारा चुनौति बनकर सामने आयी । वर्ग, जाति, लिंग भेद जैसे सामाजिक विभेद को अंत करने के लिए यह विचारधारा मील का पत्थर साबित हुई । स्त्री अधिकार और विभोद के संबंध में स्त्रीवादी विचारधारा का प्रभाव गांवों पर भी पड़ने लगा । गांव में घूंघट के भीतर चेहरा छुपाने वाली महिलायेँ भी सार्वजनिक कार्यक्रमों में देखी जाने लगी । आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक अधिकारों के लिए उनकी सचेतना बढ़ने लगी । जिसके कारण वर्तमान भारतीय समाज में अंर्तजातीय विवाह, दहेज प्रथा, देवदासी प्रथा, सती प्रथा, डायन प्रथा जैसे असंख्य स्त्री विरोधी रुढ़ियों का अंत हुआ तो किसी में कमी आई । गांव की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए लघु ग्रामीण उद्योगों और ग्रामीण हस्तकला उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाने लगा । इस वातावरण ने भारतीय गांव को विकास का मार्ग सुझाया । आज भारतीय समाज जिस स्थिति में पहुंचा है, इसके केन्द्र में शिक्षा है । भारतीय समाज में परिवर्तन का दौर साठ-सत्तर के दशक से तेजी से बढ़ा है और निरंतर बढ़ रहा है । हम आज भी पूरी तरह यह कहने की स्थिति में नहीं है कि भारतीय समाज का समग्र विकास हो रहा है ।

५.१.१ भारतीय ग्रामीण समाज और आर्थिक स्थिति

किसी भी देश की जनता का एक बड़ा सा हिस्सा उस देश के गांव में रहता है । भारत और नेपाल जैसे कृषि प्रधान देशों में गांव की भूमिका राष्ट्र के विकास के लिए महत्वपूर्ण होती है । ऐसा कहा जा सकता है कि राष्ट्र का आधा से ज्यादा अर्थतंत्र कृषि उत्पादनों पर टिका होता है । ग्रामीण किसान एक तरफ उद्योगों के लिए कच्चा पदार्थ उत्पादन करता है तो दूसरी तरफ निर्यात करने के लिए खाद्यान्य भी उत्पादन करता हैं । राष्ट्र के विकास में ग्रामीण किसानों की दोहरी भूमिका को नकार नहीं जा सकता । परंतु विडंबना यह है कि इतनी मेहनत और संघर्ष के

बावजूद भी भारत और नेपाल के किसानों की आर्थिक स्थिति में कोई बदलाव नहीं आ सका है । आये दिन किसानों की आत्महत्या के समाचार आज भी हमें सुनने को मिलते हैं । अब सवाल यह उठता है कि किसानों की इस स्थिति का जिम्मेदार कौन है ? यदि आर्थिक विकास में किसानों का योगदान है तो इसका लाभ उनको क्यों नहीं मिल पा रहा है ? शहर की तुलना में ग्रामीण क्षेत्र का विकास कम होने के पीछे क्या यही परिस्थितियां जिम्मेदार है ? ऐसे कई सवाल गांव और गांव की जनता को लेकर उठाये जा सकते हैं । पहले सवाल के जवाब में कहा जा सकता है कि किसानों की स्थिति का जिम्मेदार पक्ष सर्वप्रथम तो राज्य है क्योंकि किसानों के लिए राज्य एक शोषक सत्ता के रुप में दिखाई पड़ रहा है । वह किसानों को उत्पादन के कार्य में संलग्न करा के पर्याप्त मेहनत और मजदूरी तो करवा रहा है परंतु उसके मुताबिक उसे उचित पारिश्रमिक या मुनाफा उपलब्ध नहीं करा पा रहा है । बाजार व्यवस्थापन और मूल्य निर्धारण जैसे निर्णय राज्य ने खुद तय करना शुरु किया, जब कि राज्य अधिकतर इस बाद से अनभिज्ञ रहता है कि एक किसान की लागत कितनी है और उसे कितना मुनाफा दिया जाना चाहिये । इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि राज्य ने किसानों के उत्पादन के लिए बाजार की व्यवस्था की है परंतु यह बात भी उतनी ही सत्य है कि किसानों के उत्पादन का आधा से ज्यादा मुनाफा राज्य को होता है । राज्य इस मुनाफे को किसानों एवं ग्रामीण विकास के लिए प्रयोग करता तो शायद किसानों और ग्रामीण क्षेत्र के विकास की संभावनायें प्रबल रहती । आज सरकार की नीति केवल शहरी विकास योजनाओं पर ही सीमित होती दिखाई पड़ती है क्योंकि शहर में जितनी रफ्तार से परिवर्तन दिखाई पड़ रहा है । इस बात का प्रमाण है कि राज्य का पचहत्तर प्रतिशत बजट शहर विकास में लगाया जा रहा है । एक तरफ शहर में जरुरत से ज्यादा बिजली की खपत है तो दूसरी तरफ गांव के कई घर परिवार ऐसे है, जो आज भी बिजली के अभाव में जीवन जी रहे हैं । इसके अलावा ग्रामीण सामंती वर्ग और मध्यस्त कर्ता भी किसानों की स्थिति के विकास में बाधक बने हुये हैं । राज्य का

प्रश्रय पाकर ये वर्ग किसानों का शोषण करते आ रहे हैं । ग्रामीण समाज में जमीनदार एक ऐसा वर्ग है जो निम्न वर्ग एवं जाति के लोगों को अपने हित के लिए प्रयोग करता है । गांव का संपूर्ण अर्थतंत्र और राजनीति इनके कब्जे में होती है । इसलिए गरीब ग्रामीण जनता इनके त्रास को वर्षों से झेल रही है । गांव में जितनी भी सुविधायें पहुंची है वे सब इन तक ही सीमित रह जाती हैं । गांव में असुरक्षा और अशांति फैलाने का काम भी इन्हीं के द्वारा होता है । यह वर्ग हमेशा सत्ता के करीब रहता है । इसके अलावा अशिक्षा और चेतना के अभाव को भी किसानों की स्थिति के विकास में बाधक माना जा सकता है । इसको दूर करने के लिए गरीब जनता को स्वयं पहल करने की आवश्यकता है । संक्षिप्त रुप में कहा जाये तो ग्रामीण विकास के बाधक तत्व के रुप में सरकार, पूंजीपति या सामंत वर्ग को लिया जा सकता है । यदि वाकई ग्रामीण क्षेत्रों का विकास करना है तो राज्य को सर्वप्रथम कृषि संबंधी योजनाओं को प्रभावकारी बनाने की आवश्यकता है । ग्रामीण उत्पादनों के लिए उचित मूल्य निर्धाण कर किसानों के जीवन स्तर को सुधारने की तरफ राज्य का ध्यान जाना चाहिये । उत्पादन बढ़ने से केवल किसानों की ही नहीं राज्य की भी आर्थिक स्थिति में सुधार आता है । सिंचाई, मल-खाद, बीज लगायत कें आधुनिक कृषि सामग्रियों, उपकरणों एवं ऋण उपलब्ध कराने के कार्य में राज्य को सहजीकरण की भूमिका निभानी आवश्यक है । इसके अलावा ग्रामीण घरेलू उद्योगों और कला को प्रोत्साहित किया जाना भी जरुरी है । किसानों की कमजोर आर्थिक स्थिति बेरोजगारी, अशिक्षा के कारण ही भारतीय गांव शहर की तुलना में विकास के मामले में पीछे रह गये हैं । शहरों में दुनिया की सारी सुविधायें उपलब्ध है मसलन सड़के, गाडी़, बिजली, पानी, बैंक, इंटरनेट, अस्पताल लगायत सयौं सुविधामुखी साधन यत्र-तत्र मिलते है । वहीं गांव में आज भी सड़के कच्ची है और अस्पताल के लिए लोगों को दूर-दूर तक पैदल चलकर जाना पड़ता है । स्कूल और कॉलेज उपलब्ध तो है परंतु उनमें पढ़ाने वाले शिक्षकों का अभाव है जो है वे भी योग्य नहीं है । इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का स्तर भी शहरों

की तुलना में कमजोर है । अशिक्षा के कारण धार्मिक एवं सामाजिक रुढ़ियां आज भी भारतीय समाज में फल-फूल रही है । धार्मिक अंधविश्वास से भारतीय गांव आज भी द्वंद्व की स्थिति से गुजर रहें है सांप्रदायिक दंगे, जातीय और लैंगिक विद्रोह इसी के उदाहरण है । उपनिवेश काल में ब्रिटिश शासकों ने इसी अंधविश्वास का फायदा उठाया 'फूट डा़लों और शासन करो' की नीति के तहत दो सौ साल तक भारत को अपने कब्जे में रखा । उपनिवेशकालीन स्थिति को ग्रामीण संदर्भ में दो तरह से देखा जा सकता है एक तो यह कि इस समय भारतीय ग्रामीण समाज संक्रमण काल से गुजर रहा था । जिसके दौरान जनताओं पर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अत्याचार किये जा रहे थे और भारतीय संस्कृति छीन्न-भिन्न हो रही थी । दूसरा यह कि इसी समय भारत में आधुनिक शिक्षा की नींव डा़ली गई । शिक्षा के कारण लोगों में चेतना का विकास हुआ उन्होंने अपने हक अधिकारों को पहचाना । विकास के पूर्वाधार निर्माण हुये समाज परंपरागत पद्धति से बाहर निकलने लगा, दूसरे शब्दों में कहे तो भारत आधुनिकता की ओर बढ़ने लगा था । लेकिन हम इस सत्य को भी नहीं नकार सकते है कि बाहरी शक्तियों के आक्रमण के कारण जो क्षत-विक्षत हुई भारतीय संस्कृति थी वह एक अपूर्णीय क्षति थी । जिसके कारण भारतीय गांव कई समुदायों में विभाजित हो गयें थे कला, संस्कृति, साहित्य का विकास भी अवरुद्ध हो गया था । समाज में संप्रदायिक दंगे होना शुरु हुये । कहीं पर जाति के नाम पर तो कहीं पर क्षेत्र, लिंग और समुदाय के नाम पर समाज में निरंतर संघर्ष की स्थिति बनी रही । स्वतंत्रता संग्राम के दौरान गांधी ने धर्म और जाति के नाम पर बंटे हुये समाज को जोड़ने का प्रयास किया । उनका ध्यान गावं की विकट स्थिति पर गया और ग्राम स्वराज की अवधारण को विकसित किया । जिसके तहत 'भारत गांव में ही बसता है' के विचार साझा किया गया । उनका मानना था कि गांव के विकास से ही भारत अपनी खोई हुई चमक वापस पा सकता है । गांधी के विचार में भारतीय सामाजिक संरचना का संरक्षक और प्रतिपादक गांव ही है । जब तक गांव आत्मनिर्भर या समुन्नत नहीं होगा तब तक

देश का विकास संभव नहीं है । गांव अविकसित होने से शहर में जनसंख्या का दबाब बढ़ेगा, जिसके कारण शरह में बेरोजगारी और अपराध बढ़ेंगे । शहर अव्यवस्थित स्थिति में पहुंचेगा देश की समस्या सुलझने की बजाय उलझती जायेगी । गांधी की मान्यता थी कि ग्रामीण क्षेत्र और वहां की पिछड़ी जाति एवं वर्ग के आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए घरेलू उद्योग धंधो, हस्तकला उद्योगों, खादी ग्राम उद्योगों के विकास में अधिक बल दिया जाना चाहिये । बी. पी. माथुर लिखते है **"गांधी ने शहरी और ग्रामीण, दोनों ही परिवेशों के लिए विकेन्द्रित और स्व नियन्त्रित समुदायों के निर्माण की परिकल्पना की थी । उनके हिसाब से एक अच्छे शहर की परिकल्पना भी तभी की जा सकती है, जबकि गांव का सामुदायिक विकास सही ढंग और सुनियोजित तरीके से किया गया हो ।"**[2]

गांधी ने अपनी राजनीतिक सक्रियता को सर्वप्रथम समाज सुधार के कार्यों से जोड़ा था । जिसमें जाति, धर्म, लिंग विभेद के अंत के साथ-साथ गांव की पुनर्निर्माण की योजना भी शामिल थी । ऐसा कहा जा सकता है कि गांव के सामाजिक, आर्थिक सुधार को उन्होंने प्राथमिकता में रखा । चंपारण और खेड़ा के किसान आंदोलन में उनकी सहभागिता को इसके उदाहरण के रुप में लिया जा सकता है । गांधी ने ग्रामीण विकास के उद्देश्य हेतु सन् 1934 में 'आल इंडिया विलेज इंडस्ट्रीज एसोसिएसन' की स्थापना की ताकि गांव में घरेलू उद्योग धंधों के विकास पर जोर दिया जा सके । गांव के आर्थिक और सामाजिक विकास को सुनिश्चित किया जा सके । सुरेन्द्र एस जोधा ने लिखा है **"भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल बिन्दु कृषि रहा है, और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पूरी तरह से आज भी उसी पर आधारित है । इसलिए गांधी के गांव के प्रति जो विचार थे उनको नकारा नहीं जा सकता ।"**[3] यह सच है कि भारत के गांव के विकास के लिए जितनी चिंता गांधी को थी शायद ही किसी और की रही हो । भारतीय गांव के बारे में उन्नीसवीं शताब्दी में पहला अध्ययन किया गया, परंतु यह अध्ययन ब्रिटिश साम्राज्यवादी दृष्टि से किया गया

था । पहली बार हॉलट मैकेंजी ने भारतीय ग्रामीण समुदाय संबंधी रिपोर्ट प्रस्तुत की । इसके बाद चाल्स मेटकॉफ ने भारतीय गांवों का बारीकी से अध्ययन किया । मेटाकॉफ ने निष्कर्ष निकाला कि **"भारतीय ग्रामीण समुदाय छोटे गण राज्यों की तरह है, जिसमें उनकी आवश्यकता की सारी चीजें उपलब्ध होती है तथा किसी भी विदेशी संबंध से मुक्त है ।..साम्राज्यों के बाद साम्राज्य बदलते गये, क्रांति के बाद क्रांतियां आती गई । हिंदू, पठान, मूगल, मराठा, सिख, अंग्रेज, बारी-बारी से राज किये परंतु ग्रामीण समुदाय वही रहें ।"**[4]

इस बात को स्वीकारा जा सकता कि विदेशी आक्रमणों का प्रभाव जितना भारत के शहरों पर पड़ा है गांव में उससे बहुत कम पड़ा है चाहे वह विकास के मामले में हो या क्षति के मामले में हो । परंतु ऐसा कतई नहीं है कि ग्रामीण समुदाय क्रांति का हिस्सा नहीं बने या वो इससे अछूते रहें, या उनका जनजीवन प्रभावित नहीं हुआ । हम जानते है कि ग्रामीण किसानों का जितना शोषण अंग्रेजों के शासन काल में सामंतियों और अंग्रेजों द्वारा हुआ है शायद ही किसी अन्य काल में हुआ है । बंगाल के किसानों द्वारा किया गया नील विद्रोह (1859) इसका सबसे बड़ा उदाहरण है । इसके अलावा भी भारत के कई जिलों और गांवो में ऐसे आंदोलन चले है । लेकिन मुद्दे की बात यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में शहर की तुलना में बीस प्रतिशत भी विकास संभव नहीं हो पाया है । गांव आज भी शहरों से सौ साल पीछे रह गये हैं । इस स्थिति को कैसे सुधारा जाये ? यह वर्तमान शासकों के लिए सबसे बड़ा सवाल होना चाहिए । शहर और गांव के विकास के बीच इस अंतर ने विगत में बनाये गये भारतीय ग्रामीण विकास योजनाओं को संदेह के घेरे में ला खड़ा किया है । हम यह भी जानते है कि संविधान निर्माण प्रक्रिया के दौरान डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने स्पष्ट कर दिया था कि देश के प्रत्येक नागरिक और क्षेत्र के विकास को बराबर का महत्व दिया जायेगा । जिस तरह देश के प्रत्येक नागरिक का वोट राज्य के लिए अनिवार्य है उसी तरह राज्य को भी नागरिक का अधिकार उपलब्ध

कराना राष्ट्र की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है । यानी संविधान में समान हक अधिकार की बात का उल्लेख किया जा चुका था । परंतु वर्तमान ग्रामीण जनताओं की स्थिति को देखकर यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि संविधान में उल्लिखित बातों का कार्यान्वयन आज तक नहीं किया गया है । शहरी और ग्रामीण जनता के बीच के इस विभेद को पाटने में और अधिक समय लगने की आशंका को नकारा नहीं जा सकता । हम जानते है कि सन् 1991 में नयी आर्थिक नीति लागू की गई थी । इसमें उदारीकरण के साथ-साथ निजीकरण और बाजारीकरण की संकल्पना सम्मिलित थी । उदारीकरण के तहत भारतीय अर्थव्यवस्था में राज्य के हस्तक्षेप को कम करना और निजीकरण बढ़ावा देना था । जिसमें मूलतः अतर्रराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय अर्थवस्था को ले जाने का (ग्लोबलाइजेशन) का उद्देश्य था । परंतु यह आर्थिक नीति कुछ हद तक तो भारतीय ट्रेड को दुनिया के बहुत से देशों मे पंहुचाने में सफल भी रही परंतु बहुत सी अन्य कमी कमजोरी की वजह से जितना इसको प्रभावशाली होना चाहिये नहीं बन पायी । हालांकि सन् 1991 के बाद गरीबी उन्मूलन के बहुत से कार्यक्रम को रद्द किया गया । कृषि विकास के क्षेत्र में अधिक निवेश किया जाने लगा । किसानों को ऋण उपलब्ध कराने से लेकर रसायनिक मल-खादों और सिंचाई पर सब्सिडी देने की व्यवस्था की गई थी । परंतु कुछ ही समय बाद इसे अर्थव्यवस्था पर अतिरिक्त बोझ बताकर इसका विरोध किया जाने लगा । स्वतंत्रता के बाद से अब तक किसानों एवं ग्रामीण विकास के लिये कई नीतियां बनाई गयी परंतु यथार्थ यही है कि आज भी भारतीय गांव बिजली पानी जैसी आधारभूत समस्याओं से जुझ रही है । उनकी आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं आ पाया है ।

५.१.२ भारतीय ग्रामीण राजनीति और स्त्री

भारत में यदि ग्रामीण राजनीति की चर्चा करे तो प्राचीन काल से ही यहां न्याय, शांति, सुरक्षा एवं विकास के लिए ग्राम पंचायत की व्यवस्था रही है । यह व्यवस्था ग्रामवासियों की रक्षा और समृद्धि के लिए उत्कृष्ट व्यवस्था मानी जाती थी । गांव

के पंच के रुप में ऐसे व्यक्ति को चुना जाता था जो सर्वमान्य हो और निस्वार्थ भाव से पंचायत का कामकाज सम्भालने में सक्षम हो। गांव में अमन चैन, न्याय, सुरक्षा और विकास का प्रमुख दायित्व इन पंचों पर होता था। इसलिए तत्कालीन समाज में पंच को देवता का रुप माना जाता था। जिसकी बात को कोई काट या टाल नहीं सकता था। उनके निर्णय पर सबको सहमति जतानी पड़ती थी। दूसरे शब्द में यह भी कह सकते है कि गांव की कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका की जिम्मेदारी ग्राम पंचायत को निभानी पड़ती थी। गांव एक स्वशासित राज्य की तरह होता था। लेकिन समय के साथ-साथ यह व्यवस्था भी भ्रष्ट होती गई। पंचो में स्वार्थ की भावना बढ़ने लगी और वे गांव के हित से भी ज्यादा अपने हित के कार्य को प्राथमिकता देने लगे। मुगलों और अंग्रेजों के आक्रमण ने गांव की इस स्वशासन व्यवस्था की जड़ों को हिला दिया। भारतीय गांव अब अस्त-व्यस्त स्थिति में दिखाई पड़ने लगे। अशांति, असुरक्षा और न्याय विहिन स्थिति से गांव में एक प्रकार का त्रास फैल गया। इसी का परिणाम था कि तत्कालीन भारतीय समाज में सामंतियों का बोलवाला होना। कमजोर किसानों की जमीन पर बलपूवर्क कब्जा किया जाना। जातीय, लैंगिक और वर्गीय विभेद के नाम पर राजनीति किया जाना। जिसके कारण असमानता और विभेद बढ़ने लगा। गरीबों का चरम शोषण हुआ। उच्च वर्ग के लोग विदेशी आक्रमणकारियों की चापलूसी के करण दिन प्रतिदिन शक्ति संम्पन्न बनते गये। कुछ इतिहासकारों को पढ़कर तो ऐसा चित्र उभरकर सामने आता है कि भारतीय सामंतियों या पूंजीपतियों ने अंग्रेजों से ज्यादा भारतीयों का शोषण किया है। बहरहाल हम यह कह सकते है कि विदेशी आक्रमणों के कारण भारतीय ग्रामीण व्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। शहरों के साथ-साथ गांव की स्थिति भी बहुत नाजुक बनती गई। भारतीय ग्रामीण जनताओं में थोड़ी आशा और उत्साह तब जगी जब गांधी ने यह आश्वासन दिया कि स्वराज प्राप्ति के बाद भारतीय स्वशासित ग्राम पंचायत की व्यवस्था की जायेगी। स्वतंत्रता के बाद जब संविधान निर्माण हुआ तो उसके अनुच्छेद चालीस

में पंचायत व्यवस्था के प्रावधान की बात उल्लेख की गई कि **"राज्य पंचायतों का गठन कर सकता है और उन्हें वह अधिकार और शक्ति दे सकता है, जो उन्हें स्थानीय स्वायत्त सरकार की तरह कार्य करने की शक्ति प्रदान कर सके।"**[5] इस अधिकार की घोषण ने शुष्क और अलग-थलग पड़े गांव की जमीन और जनता में ऊर्जा का संचार तो हुआ लेकिन भारतीय सामाजिक संचरना में जो विभेद, आपसी द्वंद्व और असमानता कूट-कूट कर भरी गई थी उसके चलते यह विश्वास करना मुश्किल था कि क्या पंचायत व्यवस्था प्रभावकरी हो पायेगी या नहीं। इस परिस्थिति के संदर्भ में अंबेडकर ने कहा था **"26 जनवरी 1950 को हम एक अंतर्विरोधों भरे जीवन में पर्दापण करने जा रहे हैं। राजनीति में हम समान धरातल पर रहेंगें, जबकि सामाजिक और आर्थिक जीवन में हम असमानता के धरालत पर रहेंगें राजनीति में हम एक व्यक्ति एक वोट और एक मूल्य जैसे सिद्धांत को पुर्नसंगठित करेंगे, जबकि अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में हम अपनी सामाजिक और आर्थिक संरचना के चलते एक व्यक्ति एक मूल्य वाले सिद्धांतों को नकारते रहेंगें।"**[6]

दीर्घकालीन परिणाम भले ही इसका कुछ भी हो परंतु सत्ता विकेन्द्रीकरण के हिसाब से इस निर्णय को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। शक्ति एक ही जगह केन्द्रित होने से उपेक्षित गांव और समुदायों की स्थिति और दयनीय होने की संभावना बनी रहती है यह दूसरे पक्ष का सत्य है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में व्यापक राजनीतिक सहभागिता एवं विकास के लिए धीरे-धीरे इसकी आवश्यकता और अधिक महसूस की गई इसलिए गांव के उपेक्षित वर्गों को विकास के मूलधार में लाने के लिए राजीव गांधी सरकार ने सन् 1989 में 64 वां संविधान संशोधन अधिनियम प्रस्तावित किया लोक सभा में यह विधेयक सन् 1992 में और राज्य सभा में सन् 1993 में पास किया गया। भारत के सत्र राज्यों ने इसे स्वीकृति दी। यह विधान संविधान के 73 वें संशोधन अधिनियम सन् 1992 के तहत पारित हुआ। पंचायती राज्य

संस्था, ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, और जिला परिषद् में कुल सीटों का एक तिहाई भाग (33) प्रतिशत अनुसूचित जातियों एवं उपेक्षित वर्गों के लिए सुनिश्चित किया गया । परंतु स्त्रियों ने पचास प्रतिशत आरक्षरण सीटों की मांग की गई थी ताकि ग्रामीण महिलायें अधिक से अधिक राजनीति में सहभागी हो सके । लेकिन इनको राज्य सभा में 33 प्रतिशत और कुछ गांव में जैसे उत्तराखंड, राजस्थान आदि में पचास प्रतिशत आरक्षण मिला । इस राजनीतिक निर्णय ने स्त्री जीवन को रुपांतरित करने में काफी मदद की यद्यपि स्त्रियां अधिकार प्राप्त करने के बाद भी पितृसत्तात्मक मानसिकता के अवरोध का शिकार बनी हुई है परंतु सकारात्मक पक्ष यह है कि अब उनके पास कानूनी अधिकार है वे खुलकर स्वतंत्र रुप में इसका प्रयोग कर सकती है पुरुष चाह कर भी उनकी क्षमता को दबा नहीं सकता । ग्रामीण स्त्रियों के लिए नेतृत्व स्तर पर आने का यह बहुत बड़ा अवसर है । यूं तो संविधान में समानता की अवधारणा को पहले ही समावेश किया जा चुका था । सभी जात, जाति, लिंग, वर्ग, धर्म के लोगों को समान अवसर दिये जाने के प्रति लोगों में आशायें जग चुकी थी । इसके अलावा महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण की बात ने उनके विकास के संभावना को और प्रगाढ़ कर दिया । वर्षों से शोषण की चरम यातना सह रही स्त्री के लिए आरक्षण ने मलहम का काम किया । इस समय स्त्रियों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना आने लगी थी । लेकिन यह भी विचारणीय बात है कि शहर की तुलना में गांव की स्त्रियों में यह चेतना कम थी । इसके पीछे कई कारण विद्यमान हैं, शिक्षा, स्वतंत्रता, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक पिछड़ापन और धार्मिक अंधविश्वास की पराकाष्ठा । इन्ही कारणों से गांव की स्त्रियां शहर की स्त्रियों की तुलना में दशकों पीछे है । आज जहां शहर की स्त्रियां प्रजनन और यौनिक स्वतंत्रता की बात कर रही है वहीं ग्रामीण स्त्रियां घूंघट प्रथा का अंत करने और दहेज प्रथा को हटाने के मुद्दों तक ही सीमित है । आर्थिक परतंत्रता की पराकाष्ठा आज भी भारतीय गांव की स्त्रियों में देखी जाती है । यहां तक की बेटी को दहेज नहीं शिक्षा चाहिए के विचार को भी वे खुलकर

नहीं रख पाती । ग्रामीण समाज की स्त्रियां आज भी विवाह को संस्कार मानने की मानसिकता से ही गुजर रही हैं । जबकि शहर की स्त्रियां उसे जरुरत या रुचि के रुप में स्वीकार कर के आगे बढ़ चुकी है । सबसे बड़ी विडंबना यह है कि ग्रामीण समाज आज भी बेटी को पराया धन मानने की मानसिकता से उबर नहीं पाया है । यदि हम भारत के दूर दराज के गांव में जायेंगे तो कई स्त्रियां ऐसी मिलेंगी जिनको अपना नाम तक पता नहीं है । इस यथार्थ से रु-ब-रु करते हुए मधु कांकरियां खुले गगन के लाल सितारे में लिखती हैं **"ताजिंदगी जिसने अपने लिए अमुक की बहू, अमुक की माँ ही सुना हो, वह पैसठ वर्षींया तत्काल अपना नाम नहीं ले पाई, कुछ ठहर कर ही शर्माते हुए उसने अपना नाम लिया था । ऐसा उदाहरण सिर्फ इसी देश में संभव है कि स्त्री अपना नाम तक भूल जाये और इसका सीधा ही मतलब है - अपने स्व का सम्पूर्ण विसर्जन ।"**[7] यह अपने स्व का संपूर्ण विसर्जन की स्थिति पैदा होना या किया जाना कोई सामान्य घटना नहीं है । इसके पीछे पुरुषसत्ता की राजनीतिक चालबाजी स्वतः दिखायी पड़ती है । कहने का तात्पर्य यह है कि गांव की स्त्रियां आज भी पुरुषसत्ता के चंगुल से बाहर नहीं निकल पायी है परंतु शहरों की स्त्रियों में यह समस्या इतनी जटिल स्थिति में नहीं दिखाई पड़ती । वे अपने जीवन के निर्णय खुद लेने का दमखम रखती है । यह शिक्षा एवं आर्थिक स्वावलंबनता से संभव हो सका है । शहर की स्त्रियां अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकारों को जानती ही नहीं है बल्कि उसे प्रयोग में लाने का प्रयास भी कर रही है । यही कारण है कि आज वह पुरुष के साथ बराबरी की मांग कर रही है । यूं तो लोकतंत्र भारतीय समाज के सभी शहर एवं गांव वासियों के लिए एक वरदान के रुप में मिला है परंतु कुछ व्यक्तियों ने इसे अपने निजी स्वार्थ के लिए प्रयोग करना शुरु किया जिसके कारण इस व्यवस्था में अनेकों विसंगतियां देखी जाने लगी है । ऐसी जटिल परिस्थिति ने स्त्री समाज के सामने और अधिक चुनौतियां ला खड़ी की है । यह स्थिति गांव और शहर दोनों जगह पर देखी जा सकती है । फिर भी भारतीय स्त्रियां निरंतर संघर्षरत है । एक

ऐसी व्यवस्था के भीतर घुसकर खुद के लिए अलग जगह बनाने में जहां हर कदम पर चुनौतियां खड़ी की जा रही है। भारत में स्त्री समाज को उन्नति के मार्ग पर ले जाने का कार्य पढ़ी लिखी महिलाओं द्वारा हो रहा है, इसमें कोई दो मत या दो राय नहीं है। लेकिन गांव की स्त्रियों के योगदान को भी नकारा नहीं जा सकता। जीवन की अति व्यस्तता के बावजूद भी गांव की स्त्रियां समाज के उद्धार के लिये आगे आ रही है। परिवार, खेत-खलिहान, चौपाई, बच्चे लगायत घर के सारे कामों की जिम्मेदारी निभाते हुये वे सामाजिक कामों में संलग्न हो रही हैं। गांव में स्त्री सरपंचों की कार्यप्रणाली पर किये गयें सर्वेक्षण में कई तथ्य तो ऐसे भी मिले कि कुछ स्त्रियां पुरुषों से बेहतर सरपंच की जिम्मेदारी निभा रही हैं। महाराष्ट्र के आदिवासी इलाके की डोगरी गांव की भूतपूर्व सरपंच बताती है कि **"गांव की जरुरतों को हम महिलायें ही समझती हैं। पानी, राशन कार्ड, सड़कों, स्कूलों में जरुरी सुविधाओं, महिलाओं और बच्चों के स्वस्थ्य से संबंधित समस्याओं को हम ही समझ सकती हैं। जब एक महिला सरपंच के तौर पर काम करती है तो इन सारी समस्याओं को हल करने की कोशिशें अक्सर सफल होती हैं। जब एक पुरुष सरपंच के तौर पर चुना जाता है तो, वह सिर्फ चुनाव को लेकर हो रही राजनीति में ही उलझा रहता है और असली समस्याओं की तरफ ध्यान नहीं देता।"**[8]

इस तथ्य पर इसलिए भी विश्वास किया जा सकता है जो स्त्री एक परिवार कों व्यवस्थित रुप से चलाने में सक्षम हो सकती है। उसके लिए गांव या राज्य को चलाना मुश्किल नहीं हो सकता। फिर भी पितृसत्तात्मक समाज स्त्री को शक्ति संपन्न होते नहीं देख पा रहा है इसलिए बार-बार वह उसकी क्षमता पर सवाल उठाता रहता है। इतना ही नहीं जगह-जगह पर वह उसका मखौल भी उड़ाता है। जब कोई स्त्री सरपंच किसी पुरुष से सिस्टम या कार्य प्रणाली के बारे में जानने की कोशिश करती है तो उसे क्षमता विहिन मान लिया जाता है और हीन दृष्टि से देखा जाता है जो एक प्रकार से हिंसा या शोषण है। पुरुषों में इस मानसिकता

का विकास होना आवश्यक है कि वह स्त्री को अयोग्य न समझे बल्कि उसकी परिस्थिति को समझ कर उसकी सहायता करने के लिए आगे आये तभी उसकी स्वच्छ मानसिकता का प्रमाण मिल सकता है । इसके अलावा कई घटनायें ऐसी भी सामने आयी है कि सहायता के नाम पर महिलाओं के पति या बेटें आगे आते है और वही उनके पद का फायदा उठाते हैं । ऐसी घटनायें भारत में ही नहीं नेपाल में भी देखी गई है । यह स्थिति स्त्री के व्यक्तित्व विकास में बाधक बन सकती है । उसके भीतर निर्णय लेने की क्षमता का विकास अवरुद्ध हो जाता है । अतः स्त्री को ऐसी समस्याओं को सुलझाने का उपाय ढूंढना चाहियें न कि पति और बेटे पर निर्भर होना चाहिये । इसका प्रमुख कारण शिक्षा का अभाव या स्त्रियों को कार्य संपादन संबंधी तालिम न दिया जाना है । ग्रामीण स्त्री में आत्मविश्वास भरने और उनकी क्षमता का विकास करने के लिए शिक्षा को अनिवार्य करना अति आवश्यक है । इसके अलावा ग्रामीण स्त्रियों को उनके कार्य के संबंध तालिम दिये जाने की व्यवस्था भी की जानी चाहिये । यदि ऐसा नहीं किया जायेगा तो ग्रामीण क्षेत्र में स्त्री सहभागिता केवल नाम के लिए रह जायेगी । स्त्री के अज्ञानता का फायदा पुरुषों को होगा । ऐसी स्थिति में स्त्री का व्यक्तिगत विकास जितना होना चाहिए उतना नहीं हो पायेगा और स्त्रियां केवल शो पीस बनकर रह जायेंगी । शहर में काम के दौरान एक स्त्री केवल स्त्री या एक जिम्मेदार नागरिक के रुप में प्रस्तुत होती है परंतु गांव में स्त्री केवल स्त्री नहीं होती है वह किसी की पत्नी, मां, बेटी या अयोग्य व्यक्ति होती है जो उसे हसी का पात्र बना देती है । इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि स्त्रियां पुरुषों की तुलना में शैक्षिक हिसाब से कमजोर है, जानकारी या सूचना के मामलों में भी वह आगे है । यही कारण है कि कुछ स्त्रियां अपनी पदीय जिम्मेदारियों को निभाने में हिचक रही हैं । स्त्री को चाहिये की वह अपनी इन कमी कमजोरियों को हटाने का प्रयास करे और पुरुषों की तरह खुद में आत्मविश्वास भरे । जहां तक दोहरी जिम्मेदारियों का सवाल है इसके लिए

पुरुषों को भी घर के कामों में लगाना बहुत आवश्यक है । इस तरह काम का संतुलन बना रहेगा और स्त्रायां अधिक काम के बोझ से दबेंगी भी नहीं ।

५.१.३ हिंदी स्त्री उपन्यास लेखन में ग्रामीण राजनीति का यथार्थ

हिंदी स्त्री लेखन में अस्सी और नब्बे का दशक एक क्रांतिकारी दशक के रुप में जाना जाता है । इसी दौरान कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल नासिरा शर्मा, मेहरुन्निसा पर्वेज, कात्यायनी, रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, मधुकांकरियां जैसी लेखिकाओं की कलम ने भारतीय पुरुषसत्ता के षडयंत्रों की पोल खोली साथ ही स्त्रियों को अपने अधिकार के लिए सचेत भी कराया । पुरुषसत्ता द्वारा विचार विहिन और अतार्किक घोषित किये गये स्त्री लेखन को इन लेखिकाओं ने तर्क और विचार की उस धूरी तक पहुंचाया जहां तक शायद पुरुष रचनायें भी नहीं पहुंच पायी हैं । गीतांजली श्री का बुकर से नवाजा जाना इसका उदाहरण है । स्त्री अधिकार और शोषण से जुड़े मुद्दें ही उनकी रचनाओं के विषय नहीं बने बल्कि भारतीय दूर-दराज के गांव की राजनीति पर भी स्त्री की दृष्टि पड़ी है । मेहरुन्निसा परवेज, कात्यायनी, रमणिका, अनामिका जैसी लेखिकाओं ने अपनी कविताओं में भारतीय ग्रामीण समाज, राजनीति और स्त्री के संघर्ष को चित्रित किया है, तो कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, अल्का सरावगी जैसी लेखिकाओं ने उपन्यासों एवं कहानियों में भारतीय ग्रामीण राजनीति का यथार्थ चित्रण किया है । कृष्णा सोबती 'जिंदगीनामा' में भारतीय पंजाब प्रांत के गांव की राजनीति को प्रस्तुत करती हैं । अंग्रेजी सत्ता का आंतक और उनका प्रश्रय पाकर शोषण की पराकाष्ठा पार करते हुये भारतीय सामंती वर्ग एवं पुलिस प्रशासन की भ्रष्टता को कृष्णा सोबती ने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है । इसी तरह मन्नू भंडारी के महाभोज में भी सरोहा गांव की राजनीति का भ्रष्ट एवं विभत्स स्वरुप का चित्रण पाया जाता है । सरोहा गांव की बदलती हुई तस्वीर का चित्र खींचते हुये मन्नू भंडारी लिखती हैं **"गांव सरोहा शहर से ज्यादा दूर नहीं**

है । मुश्किल से बीस मील लेकिन कुछ सालों पहले यही दूरी बहुत ज्यादा थी । इतनी कि गांव में जो भी घटता, गांव का ही होकर रह जाता । शहर उससे एकदम बेअसर और अछूता ! पर अब यह दूरी एक दम सिमट गई ।"[9] स्वतंत्रता के बाद भारत के गांवों में कमोवेश परिवर्तन अवश्य आया है । यातायात के साधनों ने शहर और गांव के बीच की दूरियों को कम किया है तो सूचना तथा संचार के माध्यमों ने गांव के लोगाों के चेतना के स्तर को बढ़ा है । जिसके कारण आज का भारतीय गांव आधुनिक बनने की तैयारी में है । लेकिन राजनीतिक स्वार्थ के कारण भारतीय समाज में जाति और धार्मिक विभेद को बढ़ावा दिया जा रहा है । जिसके कारण गांव इस विभेद के गड्डे से बाहर नहीं निकल पा रहा है । महाभोज समाज में पोषित हो रही इसी जातीय, धार्मिक, क्षेत्रीय एवं गुट की राजनीति को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत करता है । भारतीय गांव में आज भी दलितों की उपस्थिति केवल सवर्ण एवं जमीनदारों की सेवा के लिए है का उदाहरण इस उपन्यास में दिखाया गया है । विसेसर में जाति के अधिकार के प्रति चेतना का विकास हो जाता है वह यह समझ जाता है कि जाति के नाम पर वर्षों से उनका शोषण होता आ रहा है और वह अपने जाति के लोगों को सचेत करने का प्रयास भी करता है यही बात जमीदारों और नेताओं के आंख में खटक जाती है और वे बिसेसर की हत्या कर देते है । चुनाव में टिकट के लिए होने वाली खींचा-तानी, मीडियाबाजी, विपक्षियों के प्रति आक्रोश, सत्ता लोलुपता, हिंसा दोगलापन आदि राजनीति विसगंतियां विशेष रुप से उपन्यास में चित्रित की गई हैं । लेकिन राजनीति में स्त्री सहभागिता के पक्ष से महाभोज कमजोर दिखाई पड़ता है । इसमें स्त्री की राजनीतिक गतिविधियों को उल्लेख करने की तरफ लेखिका का ध्यान नहीं गया है । स्त्री राजनीतिक सहभागिता के विषय को मैत्रेयी पुष्पा ने 'चाक' उपन्यास में प्रस्तुत किया है । स्वतंत्रता के पश्चात बदलते हुये भारतीय ग्रामीण राजनीति में स्त्री की उपस्थिति को दर्ज कराने में मैत्रेयी सफल देखी जाती है । पितृसत्तात्मक परिवेश में एक स्त्री को अपने अधिकारों के लिए लड़ना कोई सामान्य बात नहीं है । पुरुषों के लिए स्त्री

की आवश्यकता महज इतनी है कि वह उसकी शारीरिक इच्छाओं को पूरा करे । उसके घर परिवार की देखभाल करे । गाय, भैस खेत खलिहानों में काम करे । बनाये गये रीति रिवाज परंपराओं को शिद्दत से निभाये । उसके वंश को आगे बढ़ाये । मगर चेहर में घूंघट और होठों पर चुप्पी साधे, बिना सवाल किये, अधिकार रहित अवस्था में । गांव की स्त्रियां जब पितृसत्ता के नियमों का पालन नहीं करती है तो उन्हें रेशम, गुलकंदी, हरिप्यारी, सकुंतला और शारदा की तरह मृत्यु दंड दिया जाता है । इस सत्य को लेखिका पहले ही उद्‌घाटित कर लेती है कि **"इस गांव के इतिहास में दर्ज दास्तानें बोलती है.... ।"**[10]

इस यथार्थ से वाकीफ होने को बावजूद भी सारंग जो उपन्यास में मुख्य भूमिका में है । बेबाकी से अपने बातों को रखने से पीछे नहीं हटती । उसे अपने इस बेबाकपन के कारण कितनी ही बार पितृसत्ता द्‌वारा गढ़े गये दिल और दिमाग को भेदने वाले शब्दों का सामना करना पड़ता है । छीनाल, रण्डी, उदंड, मुँहफट, संस्कारहीन आदि..आदि मगर सारंग अपने इस बेबाकपन और निडरता को छोड़ती नहीं जिसके कारण गांव भर में उसकी चर्चा होती रहती है । रेशम की हत्या इस बाद का सबूत है कि गांव में कोई भी स्त्री अपनी मन मर्जी नहीं चला सकती । उसे गांव में रहना है तो गांव के नियमों का पालन करना आवश्यक है । मगर सारंग इन सबसे डरती नहीं बल्कि न्याय के लिए गुहार लगाती है । धीरे-धीरे वह गांव की सारी व्यवस्था को समझ जाती है । प्रधान फत्तेसिंह के ताकत के पीछे का राज जानने के बाद ही वह यह निर्णय लेती है कि यदि गांव में न्याय, शांति, सुरक्षा की स्थापना करनी है तो स्त्री को सत्ता या राजनीति में आना आवश्यक है । स्त्री को राजनीति में प्रवेश कराने के पीछे लेखिका की एक नयी दृष्टि उभरती हुई नजर आती है । परंपरागत पुरुष वर्चस्व के खिलाफ स्त्री का राजनीति में आना समाज और राष्ट्र के लिए ज्यादा लाभदायक और प्रभावकारी होगा क्योंकि पुरुष राजनीति में हिंसा, हत्या, लूट, पिट और अवसवादी प्रवृत्ति को अपनाता आ रहा है

। यदि स्त्रियां सत्ता में आयेंगी तो राजनीति ज्यादा संवेदनशी, मानवीय और रचनात्मक बन सकेगी। लेखिका ने अपने इसी विचार को सार्थक करने के लिये सारंग के व्यक्तित्व का विकास भी इसी आधार पर किया है। वैसे तो सारंग के राजनीतिक व्यक्तित्व का विकास करने में मास्टर श्रीधर, भंवरसिंह और गजाधर की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। सारंग इन्हीं का आश्रय पाकर प्रधान पद के लिए अपनी उम्मीदवारी दर्ज कराती हैं। इस खबर को सुनकर उसका पति रंजीत हिंसक हो उठता है इतना ही नहीं उसकी उम्मीदवारी वापस लेने के लिए पन्ना सिंह और फत्तेसिंह उसके पति रंजीत के सामने पैसे का लालच भी रखते है। परंतु सारंग निर्णय ले चुकी होती है। सारंग का यह निर्णय केवल पितृसत्ता सामाजिक ढांचे के खिलाफ विद्रोह नहीं था। यह राजनीतिक व्यवस्था सुधारने की एक पहल भी थी। सारंग के इस विद्रोह को उसकी मूर्खता समझकर गांव की पितृसत्ता उसका मजाक उड़ाते हुयें कुछ इस अवस्था में सामूहिक रुप में मनोरंजन करती है।

" 'जनाना' दीपराम पेट पकड़कर हंसी रोक रहा है, या हंस ही रहा है- पिंदोला साब, पिंदोला। हां हां हां हां !'

चोप ! पेटीकोट-गबर-मेंट।' लड़खड़ाती जुबान दरोगाजी की।

सुलेमानसिंह भारी स्वर में बोले, सा s s s बासा।"

थानसिंह लगातार चांदराम की पीठ ठोंक रहे है। फत्तेसिंह सबके हंसने पर दांत निकाल देते है।'

जनाना राज ! जनाना !"[11]

इस उपन्यास में उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड इलाके के अत्तरपुर गांव के राजनीतिक परिवेश को प्रस्तुत किया गया है। अस्सी और नब्बे के दशक में आते-आते भारतीय गांव कुछ बदलने लगे थें "**चकरोड़ ने गांव को सड़क से जोड़ दिया। ट्यूब्बेल के बहाने बिजली आई। इन दिनों यहां दियों-ढिबरियों के साथ-साथ बल्ब भी जल**

उठते हैं । गर्मियों में जो लोग बिजली के पंखे मांग लेते है, उनके घर फर्राटेदार हवा भी चलती है । रेडियों बजता है । गांव के प्रधान फत्तेसिंह के घर जल्द ही टेलीविजन आने वाला है ।"[12] चाक उपन्यास की इन पंक्तियों से गांव के परिवर्तन का दृश्य समग्र रुप में उभरता है । लेखिका ने गांव की हर उस छेटे-बड़े परिवर्तन का जिक्र किया है जो स्वाभाविक रुप से गांव वालों ने महसूस किया है । इसके अलावा ढिबरियों और बल्ब के साथ-साथ जलने का संदर्भ गांव के संपन्न और गरीब वर्ग की ओर इशारा करता है । वैसे तो गांव में सब कुछ बदल रहा है चमार जाति के लोग भी राजनीति में शामिल हो रहे हैं । अंर्तजातीय विवाह भी होने लगे हैं । महिलायें अपनी बात को बेहिचक रख रही हैं । घूंघट भी थोड़ा छोटा होने लगा हैं । न्याय के लिए औरतें गुहार लगाने लगी हैं । लेकिन बड़ी बात यह है कि गांव की बागडोर आज भी समाज के उच्च वर्ग के हाथों में ही पड़ी हुई है । भ्रष्टाचार थमने का नाम नहीं लेता और चुनाव हमेशा लाठी के भरोसे ही किया जाता हैं । जातीय विभेद शायद गांव में कम भी होता परंतु नेताओं ने इसे राजनीति का हथियार बनाया हुआ है । गांव के मास्टर पढ़ाते कम है राजनीति ज्यादा करते है । अधिकतर भ्रष्टाचार के मामले स्कूलों में ही देखे जाते हैं । स्कूल के लिए भेजे गये बजट को प्रधान और हेडमास्टर मिल बांटकर खाते है । गांव में स्कूल पढ़ाने के अलावा अन्य कामों में भी प्रयोग में आते हैं, मसलन बारात घर, पंचायत घर, मेहमान घर, दावत घर और प्रधान के फसल के बीज रखने वाले गोदाम के रुप में । इस तरह हम देखते है कि स्कूल की गरिमा को गांव के लोगाों ने मखौल बना दिया है । वे जैसे चाहे उसे अपने हित में प्रयोग करते है यानी स्कूल का व्यवस्थापन वहां का हेडमास्टर नहीं प्रधान करता है । कितना बजट किस क्षेत्र में खर्च करना है, इसका हिसाब किताब भी प्रधान अपने नियंत्रण में करता है । इसलिए गांव के स्कूलों की हालत गंभीर बनती जाती है । श्रीधर स्कूल को स्कूल बनाना चाहता है परंतु प्रधान और थानसिंह श्रीधर को भी धमकियां दे कर भ्रष्टाचार में शामिल कराने का प्रयास करते है । ऐसी अन्य कई घटनायें है जिससे यह साबित होता है

कि लोकतांत्रिक व्यवस्था के भीतर के भारतीय गांव में राजनीतिक मूल्यहीनता को बढ़ावा दे रहे हैं। स्त्री समानता की बात गांवों में आज भी स्वपन संकल्प की तरह है। लेकिन लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से इस विचार को अभिव्यक्त किया है कि यदि स्त्री अपने अधिकार के लिए स्वयं पहल नहीं करेगी तो पितृसत्ता उसके अधिकारों को कागजों में ही सीमित रख देगी अत: अपने अधिकार के लिए पहल खुद करने की आवश्यकता है। सारंग का निडर व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने के पीछे यह संदेश पाया जाता है, कि स्त्री के भीतर का डर और संकोच ही उसके व्यक्तित्व के विकास के सबसे बड़े बाधक तत्व है। इसलिए स्त्री को अपने जीवन से ऐसे तत्वों को हटाना होगा और निर्भिक रुप में आगे बढ़ना होगा ।

५.२ हिंदी स्त्री लेखन और जाति का सवाल

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था धर्म और संस्कृति के रुप में विकसित हुई है। इसकी जड़े इतनी गहरी है कि आजादी के पच्चहत्तरवें साल तक अनेकों प्रयत्न के बावजूद भी इसे हिला नहीं पाई। यद्यपि लोकतांत्रिक व्यवस्था के तहत संविधान के 15 वे अनुच्छेद में राज्य के द्वारा धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर नागरिक के प्रति देश के किसी क्षेत्र में भेदभाव न किये जाने की बात उल्लेख की गई है। इसके अलावा समाज के उपेक्षित जाति और जनजातियों को देश के विकास के मूलधार में लाने के लिए आरक्षण की व्यवस्था भी की गई है, फिर भी इसकी जटिलता कम नहीं हुई है। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इसे देश के विकास के लिए घातक व्यवस्था के रुप में परिभाषित किया है। उनका मानना है कि जाति व्यवस्था मानव-मानव बीच भेदभाव ही नहीं करती यह श्रम विभाजन के नाम पर श्रमिकों का विभाजन कर शोषण की पराकाष्ठा को पार करती है। इसलिए सन् 1927 में डॉ. अंबेडकर ने मानवीय समाज में विभेद की अवधारणा विकसित करने वाले हिंदू ग्रंथ मनुस्मृति को जला दिया था। मनुस्मृति जातीय विभेद को ही नहीं लैंगिक विभेद को भी बढ़ावा देने वाला ग्रन्थ था इसलिए विरोध के रुप में उसे जलाया गया था। ताकि लोगों में ऐसी गलत धारणा का विकास और अधिक न

बढ़े । अंबेडकर भारत के उपेक्षित जाति, वर्ग और लिंग के प्रति अत्यंत सद्भाव रखते थें । उनकी लड़ाई धर्म विरोधी नहीं थी बल्कि मानव के बीच विभेद उत्पन्न करने वाले विचारों से थी । वे चाहते थे कि समाज के सभी उपेक्षितों को बराबरी का दर्जा मिले और समाज से विभेद एवं शोषण का अंत हो । जाति व्यवस्था को श्रम विभाजन और शोषण का मूल आधार बताते हुये वे इससे ऊंपर उठने के सुझाव देते हैं **"श्रम का यह विभाजन स्वतः स्फूर्त नहीं है, न ही इसका आधार प्राकृतिक रुझान है । सामाजिक और व्यक्तिगत दक्षता की मांग यह है कि हम किसी भी व्यक्ति की क्षमता को इस ऊंचाई तक विकसित करें कि वह अपना व्यवसाय चुन सके और उसमें आगे बढ़ सके । जाति व्यवस्था में इस सिद्धांत का उल्लंघन होता है, क्योंकि यह व्यवस्था पहले से ही निर्धारित कर देती है कि किस व्यक्ति का व्यवसाय क्या होगा-मूल क्षमताओं के प्रशिक्षण के आधार पर नहीं बल्कि इस बात पर कि उसके माता-पिता की सामाजिक हैसियत क्या है ?"**[13]

यानी गौर से देखा जाये तो यह व्यवस्था मानव के व्यवसाय का चुनाव करने की स्वतंत्रता को ही छीन लेती है । इससे व्यक्ति के प्रगति में बाधा तो उत्पन्न होती ही है, साथ ही देश की उन्नति में भी इसका प्रभाव पड़ता है । यह एक बंद प्रणाली है किसी व्यक्ति को चाहकर या न चाहकर भी इस व्यवस्था के भीतर रहना पड़ता है । इसके द्वारा निर्धारित नियमों का पालन अनिवार्य होता है । एक चमार का बेटा ब्राह्मण की तरह वेद वाचन या पूजा-पाठ नहीं कर सकता क्योंकि वह चमार जाति में पैदा हुआ है । उसे वही कार्य करने होंगे जो व्यवस्था ने निर्धारित किये हैं । इसके अलावा शादी-व्याह, व्रतबंध, खान-पान सब अपने ही जाति के लोगों के साथ निर्धारित नियम या दायरे में रहकर करने की हिदायत भी यह व्यवस्था देती है । यानी एक निर्धारित दायरा समग्र समाज को अलग-अलग खाँचे में बांट देता है । भारतीय समाज में विशेषकर चार जातियों का जिक्र किया गया है। सबसे पहली जाति में आते है ब्राह्मण जो समाज की शिक्षित एवं वर्चस्वशील जाति है

। इसके पास अन्य जातियों के तुलना में ज्यादा अधिकार है । इसे अन्य सब जातियों का मार्गदर्शक माना जाता है । सत्ता से लेकर समाज के विकास एवं निर्माण के कार्यों के लिए इस जाति की सलाह अनिवार्य होती थी । वेद, पुराण लिखने, पढ़ने और पूजा-पाठ एवं कर्म-कांड करने का जिम्मा इस जाति को दिया गया है । दूसरी जाति को क्षेत्रीय कहा जाता है । यह जाति राज-पाठ करने, सेना और सुरक्षा का काम करने वाली जाति के रुप में परिचित है । वैश्य जाति व्यापार व्यवसाय करने और अन्न उत्पादन करने का काम करने वाली जाति है । अंतिम जाति शूद्र है, जिसे वर्तमान समय में दलित या अनुसूचित जाति के नाम से भी जाना जाता है । गांधी ने इन्हें हरिजन का नाम भी दिया है । यह जाति समाज के सबसे उपेक्षित जाति के रुप में दर्ज है । क्योंकि यह जाति शिक्षा, सुरक्षा और आर्थिक रुप से भी सबसे पिछड़ी जाति है । इसका काम ऊंपर उल्लेख की गई सभी जातियों की सेवा करना है । समाज के सबसे निम्न स्तर का काम इस जाति को दिया गया है । जिसमें मेहनत ज्यादा है, न सम्मान है न लाभ इसलिए इस जाति के लोग अन्य सभी जातियों की तुलना में सभी पक्ष से पिछड़े हुये हैं । अन्य कामों के लिए योग्य होते हुये भी जबरन अरुचिकर कार्यों में सलंग्न करवाया जाना एक प्रकार का जाति के नाम पर भीषण शोषण या हिंसा है । इसी समस्या की ओर संकेत करते हुए डॉ. अंबेडकर कहते है **"भारत में बहुत से ऐसे व्यवसाय है, जो हिंदुओं द्वारा निम्न स्तर के माने जाते हैं, और इसका कारण उन लोगों में विरुचि पैदा करते हैं, जो इन व्यवसायों में लगे हुये हैं । इन व्यवसायों से बचने और इनसे पलायन करने की इच्छा लगातार बनी रहती है, जिसका जन्म सिर्फ उस दारुण प्रभाव से होता है, जिसका शिकार हिंदू धर्म द्वारा इन व्यवसायों के साथ जड़ दिये गये अपमान और कलंक के कारण इन व्यवसायों में लगे हुये लोगों को होना पड़ता है । जिस व्यसाय में न आदमी का दिल उसके काम के साथ होता है और न उसका दिमाग, वहां कौन सी दक्षता पैदा हो सकती है ? अतः एक आर्थिक संगठन के तौर पर**

जाति मनुष्य की नैसर्गिक क्षमताओं और रुक्षानों को सामाजिक नियमों की अनिवार्यता के अधीन कर देती है, इसलिए यह एक हानिकारक संस्था है ।"[14]

भारत और नेपाल जैसे देश आर्थिक रुप में पिछड़े होने का महत्वपूर्ण कारण यहां की जाति व्यवस्था है । इस बात की पुष्टि अंबेडकर के इन विचारों से हो जाती है । जातीय विभेद केवल आर्थिक विकास के ही आड़े नहीं आता यह समाज की एकता और सद्भावना को भी भंग करती है । आपसी वैमनस्यता को बढ़ावा देती है । ऊंच-नीच, उत्कृष्ट-निकृष्टता की भावना पैदा कर समाज को विभाजित करता है । श्रम की प्रतिष्ठा की संकल्पना के विरुद्ध कार्य करने के कारण यह राजनीतिक दासता का मूल कारण बनी हुई है । जाति प्रथा के ही कारण देश में विभिन्न समूह में बंटे हुए धार्मिक संगठन सामाजिक और राजनीतिक रुप से एक दूसरे के समीप नहीं आ पा रहे हैं । उच्च जाति के लिए जाति व्यवस्था शोषण का साधन है, तो निम्न जाति के लिए यह अन्याय, कुंठा और प्रताड़ना है । साहित्य में भी जाति की इन्हीं विंडबनाओं को कहानी, कविता, उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास अनेकों लेखकों ने किया है । साहित्य में जाति और धर्म की समस्या को लेकर खुलकर बात करने वाले साहित्यकारों में सर्वप्रथम कबीर दास का नाम आता है । कबीर ने भारतीय जाति व्यवस्था को सामाजिक विभेद का कारक तत्व बताया है । उनके विचार में यह व्यवस्था मानव-मानव के बीच विभेद पैदा कराती है । एकता विरोधी और विखंडनकारी है । इसके कारण समाज में असंतुलन पैदा होता है के विचार उनके साहित्य में जाता हैं । यह एक शुरुआत थी सामाजिक विसंगतियों को साहित्य में उतारने की, लेकिन समाज की गंभीर जातीय समास्या को प्रेमचंद ने सद्गति और कफन कहानी में इस तरह उतारा कि भारतीय समाजिक व्यवस्था को झकझोर कर रख दिया है । सद्गति का दुखी चमार भारतीय समाज का ऐसा दलित पात्र है जो उच्च जातियों के द्वारा शोषण की पराकाष्ठा का शिकार होता है । मृत्यु उपरांत भी जानवरों की तरह घसीटकर लाश तक को चील-कौवें के हवाले करने वाला यह समाज कभी भी दलित समाज की समस्याओं के प्रति गंभीर

नहीं दिखाई दिया । प्रेमचंद का यह चित्रण काल्पनिक नहीं है यह भारतीय समाज में अनेकों बार घटी गई घटना है । प्रेमचंद ने उपनिवेश कालीन समाज में दलितों की स्थिति को बहुत ही करीब से देखा है । समाज में उनकी उपेक्षा और सामाजिक त्रासदी की परतों को चित्रात्मक भाषा में अभिव्यक्त किया है । रंगभूमि का दलित पात्र सूरदास, गोदान की दलित पात्र झुनिया, कफन का घीसू और माधव भारतीय दलित समाज के प्रतिनिधि पात्र हैं । इसके अलावा ठाकुर का कुआं, मंदिर, मंत्र, घासवाली, सवा सेर गेहूं आदि कहानियों में भी दलित की स्थिति का चित्रण मिलता है । प्रेमचंद लोकतंत्र के पक्षधर थे राष्ट्रीयता संबंधी विचारों में उन्होंने समानता को महत्व दिया है वे कहते हैं **"हम जिस राष्ट्रीयता का स्वप्न देख रहें है, उसमें तो जन्मगत वर्णों की गंध तक न होगी वह हमारे श्रमिकों और किसानों का साम्राज्य होगा, जिसमें न कोई ब्राह्मण होगा न हरिजन न कायस्त न क्षत्रिय । उसमें सभी भारतवासी होंगे, सभी ब्रह्मण होंगे या सभी हरिजन होंगे ।"**[15]

प्रेमचंद के इस विचारों का समर्थन आगे आने वाले लेखकों ने भी किया, जो पृष्ठभूमि जातीय समस्या को लेकर प्रेमचंद ने तैयार की थी उसी को नये विचारों के साथ लेखक लेखिकाओं ने आगे बढ़ाया । नयी कविता, नई कहानियों से लेकर उपन्यायासों में भारतीय तत्कालीन समाज की जाति व्यवस्था का यथार्थ चित्रण किया जाने लगा । जाति व्यवस्था के सवालों को छायावादी कवि निराला ने भी गंभीर रुप में उठाया है निराला की कुछ कवितायें कहानी और उपन्यास पूंजी और जाति विरोधी देखे जाते है वह तोड़ती पत्थर, कुकुरमुत्ता, भिक्षु, कहानी चतुरी चमार, उपन्यास कुल्ली भाट आदि तत्कालीन भारतीय विभेद युक्त समाज का चित्र खिंचती है । जिस तरह दलित साहित्य में ब्राह्मणवाद का विरोध मिलता है उसी तरह हिंदी के गैर दलित लेखकों ने दलितो की समस्याओं को समझा है इस बात की पुष्टि इन विवरणों से हो जाती है । दलितों की पीड़ा, उपेक्षा एवं उत्पीड़न को दलितों से पहले गैर दलित साहित्यकारों ने साहित्य में रेखांकित किया है । और

लोगों में यह चेतना फैलाया है कि जातीय विभेद सभ्य समाज का सूचक नहीं है । यह एक प्रकार का शोषण है जिसको निहित स्वार्थी समूह ने गढ़ा था । हिंदी साहित्य में अधिकतर दलितों के लिए समान अधिकारों की मांग की गई है । दलित शोषण की स्थिति को चित्रित करते हुये सामाजिक बहिष्कार और उत्पीड़न के अंत के लिए पहल की गई है । अमृतलाल नागर (नाच्यौ बहुत मदन गोपाल), जगदीश चन्द्र (धरती धन न अपना, नरक में वापस), गोपाल उपाध्याय (एक टुकडा इतिहास), इसी तरह कहानियां रामेश्वर उपाध्याय (दुखवा में वितल रतिया), चन्द्रमोहन प्रधान (जूठे भात का सच), अखिलेश मिश्र (ग्रहण) कविताओं में नागाजुर्न (हरिजन गाथा, चमारों की गली), धूमिल (मोचीराम), वीरेन डंगवाल (घुटनों घुटनों तक भात हो मालिक), विष्णु खरे (सिर पर मैला ढोने की प्रथा) आदि पुरुष रचित रचनायें हैं । ये रचनायें जातिय विभेद का यथार्थ तो बयान करती ही । साथ ही जाति के नाम पर होने वाले अत्याचार को जघन्य सामाजिक अपराध बताते हुये सामाजिक न्याय और एकता को कायम रखने के लिए जाति व्यवस्था संबंधी अपने विचार बदलने का सुझाव भी देते हैं । जाति के सवाल पर स्त्री लेखन की तरफ दृष्टि डाले तो साठ और सत्तर के दशक से स्त्रियों ने इस मुद्दे को साहित्य में स्थान देना शुरु किया कृष्ण सोबती, मन्नू भंडारी, नासिरा शर्मा, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा जैसी समाजवादी लेखिकाओं ने समाज के उपेक्षित जाति के लोगों को रचनाओं में स्थान दिया । मन्नू भंडारी ने महाभोज में भारतीय समाज में देखी जाने वाली दलित समास्याओं को लोगों के समक्ष रखने का प्रयास किया है । विसेसर भारत के दलित समाज का प्रतिनिधी पात्र है । जिसने उच्च जाति के षडयंत्रों को समझ लिया था । वह अपनी जाति के उत्थान के लिए मुहिम चलाने की तैयारी में था । लेकिन दुर्भाग्यवश जाति और राजनीतिक षडयंत्रों का शिकार बन जाता है । उसकी हत्या को आत्महत्या में परिणत किया जाता है । न्याय दिलाने वाले सारे दरबाजे बंद कर दिये जाते है । कहने का तात्पर्य है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था के भीतर अलोकतांत्रिक व्यवस्था चलाई जा रही है, संविधान में जाति, लिंग, क्षेत्र, धर्म आदि

के आधार पर विभेद न किये जाने की बात की धज्जियां उड़ाई जा रही हैं। शक्ति और सत्ता के नाम पर वो लोग शासन कर रहें है जिनमें समाज के उपेक्षितों के प्रति न दया है न ही देश का विकास करने की भावना अगर कुछ है तो बस सत्ता में टिके रहने की ललक और सत्ता बचाने की चिंता। मन्नू भंडारी ने इस उपन्यास में जाति व्यवस्था संबंधी यह सवाल उठाया है कि क्या दलितों की उपस्थिति लोकतांत्रिक भारत में वोट देने के लिए मात्र है ? क्या दलितो को न्याय पाने का भी अधिकार नहीं है ? यदि है तो दलितों की बस्तियां जलकर राख क्यों हो रही है ? क्या ये राख बनाने वाली जाति कभी उसकी उपस्थिति को स्वीकार कर पायेगी ? बहरहाल यह सवाल केवल मन्नू भंडारी के मात्र नहीं है यह हर वह सचेत व्यक्ति के जहन में है जो चाहता है कि जाति और धर्म के नाम पर होती आ रही यह राजनीति खत्म हो। मानव को मानव समझने की प्रवृत्ति का विकास हो। मैत्रेयी पुष्पा ने भी ग्रामीण समाज में देखें जा रहें जातीय मुद्दों को चाक में समेटने का प्रयास किया है। बदलते हुये भारतीय ग्रामीण समाज में लोग आधुनिक भौतिक साधनों के प्रति अपना नजरिया बदल रहें हैं। परंतु धर्म, जाति और लिंग के भेदभाव प्रति उनका नजरिया वहीं है जो दशकों पहले था। इसी मानसिकता को प्रस्तुत करने के लिए मैत्रेयी पुष्पा ने गुलकंदी और बिसुनदेवा के अंतर्रजातीय विवाह को एक घटना के रुप में प्रस्तुत किया है। बिसुनदेवा की पृष्ठभूमि बताते हुए लिखती हैं **"बिसुनदेबा झूठा। जाति का खटीक है। बनता है पंडित। पंडित न बने तो भिक्षा-दक्षिणा कैसे पाये। कोई-कोई रोजगार भी बिना जाति के नहीं चलता। घर से भागा था बचपन में ही। पिता गांव के साहूकार के घोड़े की टाँगों की मालिश करते थे। रातिब दाना देते थे। बिसुनदेवा साथ जाता था। एक दिन उसका कान ऐंठते हुये साहूकार जी बोले बाप बेटे दोनों लगें, तब भी ब्याज पूरा न होगा। खड़ा-खड़ा क्या देख रहा है ? तेरी किताब-कापियों के लिए उधार माँगा है तेरा बाप, तेरी जैसी औलाद का पेट भरने के लिए, यहां बाबू बना खड़ा है साला।"**[16]

भारतीय समाज में दलितों की स्थिति और सवर्णों का व्यवहार और मानसिकता इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाती है । गुलकंदी उच्च जाति की लड़की है परंतु विसुनदेवा दलित (खटिक) जाति का । प्रेम संबंध होने के कारण दोनों समाज के नियमों के विरुद्ध विवाह कर लेते है, परंतु उनका विवाह जातीय विभाजन के नाम पर राजनीति करने वालों की आंखों में इतना खटकता है कि होलिका दहन के दिन बड़ी चालाकी से घर सहित दोनों को जला दिया जाता हैं । इस प्रसंग के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा जाति बचाओ अभियान में लगे हुये समाज के ठेकेदारों से पूछती है कि क्या इसी परिवर्तन के लिए स्वतंत्रता संग्राम की बेदी पर लाखों भारतीय बलि चढ़ाये गये है ? विसुनदेवा और गुलकंदी जैसे लोग जो सामाजिक समानता की स्थापना के लिए पहल करते है, उनको ही जड़ से समाप्त कर देना क्या ये भ्रष्टतंत्र का उदाहरण नहीं है ? लोकतांत्रिक समाज में दलितों के लिए सुरक्षा और न्याय का सवाल सबसे बड़ा सवाल है । इसके अलावा ब्राह्मणवादी मानसिकता समाज में विध्वंस को बढ़ावा देती है । जब तक समाज में इस मानसिकता का अंत नहीं होगा तब तब समाज को परिवर्तन की स्थिति में लाना मुश्किल है । इसके अलावा राजनीति में कुवरपाल जैसे दलित प्रतिनिधि को समावेश कराके आधुनिक राजनीति में कोटा पूरा किये जाने के ढोंग का भी लेखिका खुलासा करती है । मधु कांकरियां के विचार में भंगी और कम्युनिष्ट को सामंती शोषक समाज ही पैदा करता है । जब समाज में शोषण का चरम रुप दिखाई पड़ने लगता है तो असंतुष्ट वर्ग या जाति विद्रोह पर उतरने लगता है । यहीं से क्रांति की शुरुआत होती है और फिर नये समाज या सत्ता का निर्माण होता है । इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि जाति के सवाल को हिंदी लेखिकाओं ने गंभीर रुप में उठाया है ।

५.३ वर्ग संघर्ष की स्थिति और समकालीन हिंदी स्त्री साहित्य

वर्तमान समय में दुनियाभर में सब से ज्यादा प्रचलित विचाधारा मार्क्सवादी विचाधारा है । जिसे अंग्रेजी में (Class Struggle) के नाम से जाना जाता है । इसके

प्रसिद्ध होने या अधिक प्रचलन में आने का कारण बढ़ता हुआ पूंजीवाद एवं औद्योगीकरण है जिसके कारण लोगों के बीच आर्थिक असमानतायें बढ़ती जा रही हैं । यह असमानता शोषित वर्गों में असंतुष्टि पैदा करती है । यह असंतुष्ट वर्ग समाज का एक ऐसा वर्ग है जो उत्पादन प्रक्रिया में सबसे ज्यादा योगदान देता है । परंतु जब लाभ लेने की बारी आती है तो पूंजीपति इस पर अपना आधिपत्य जमा लेते हैं । श्रमिकों को उनके श्रम की तुलना में न्यूनतम ज्याला दिया जाता है । जिसके कारण उनका श्रम शोषण होता है । यह श्रम शोषण तब तक चलता है जब तक शोषित वर्गों में विरोध या क्रांति करने की चेतना का विकास नहीं हो जाता । इस तरह समाज के ये दो वर्गों के बीच निरंतर संघर्ष की स्थिति बनी रहती है । जिसे वर्ग संघर्ष के नाम से जाना जाता है । इतिहास की तरफ नजर डालकर वर्ग संघर्ष की अवधारण को और अधिक स्पष्ट रुप से समझा जा सकता है । प्राचीन काल में दास प्रथा का प्रचलन था जिसमें स्वामी और सेवक दो परस्पर विरोधी वर्ग थें । मध्यकाल में आकर सामंत प्रथा के अंतर्गत किसान और जमींदार परस्पर विरोधी वर्ग के रुप में दिखाई पड़ें और आधुनिक काल में आकर पूंजीपति व्यवस्था विकसित हुई जिसमें मजदूर और पूंजीपति परस्पर विरोधी वर्ग के रुप में सामने आयें । यह विभेद और शोषण की प्रक्रिया समाज में निरंतर चली आ रही है जो समाज का एक पक्षीय विकास करती है । समाज का बहुसंख्यक वर्ग राज्य के सभी सुविधाओं से वंचित रह जाता है । उसके साथ, सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक शोषण होने के कारण वह वर्ग आगे नहीं बढ़ पाता और सामाजिक असमानता बनी रहती है । कम्युनिष्ट पार्टी के घोषणा पत्र का पहला ही वाक्य **है "अभी तक आविर्भूत समस्त समाज का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास रहा ।"**[17] इसी घोषणा पत्र की आगे की पक्तियां है कि **"स्वतंत्र मनुष्य और दास, अभिजात वर्ग और साधारण प्रजा सामंती प्रभु और भू-दास, शिल्प-संघ के मालिक और मजदूर-कारीगर, संक्षेप में उत्पीड़क और उत्पीड़ित बराबर एक दूसरे से लड़ते रहे हैं, जिस लड़ाई का अंत हर बार या तो पूरे समाज के क्रांतिकारी पुर्नगठन में,**

या संघर्षरत वर्गों की बर्बादी में हुआ है ।"[18] मार्क्स का मानना है कि आज तक के समाज की राजनीतिक सत्ता प्रभुत्वशाली वर्ग के हाथों में रही है जिसने दूसरे वर्ग को पराधीन बनाकर उसका शोषण किया । इस दृष्टि से वे राज्य को उत्पीड़न का साधन मानते है । यही तर्क देकर मार्क्स इस नतीजे पर पहुंचते है कि सामज में वर्ग संघर्ष तब तक जारी रहेगा, जब तक उत्पीड़ित या मजदूर वर्ग समाज की बागडोर अपने हाथ में नहीं ले लेता । ऐसा करने से उत्पादन के प्रमुख साधनों पर सामाजिक स्वामित्व स्थापित होगा और सब लोग समान हैसियत के हो जायेंगे । तभी समाज शोषण, उत्पीड़न, वर्ग विभेद और वर्ग संघर्ष जैसी समस्या से मुक्त होगा । यानी मार्क्स में दो वर्गों के बीच का यह संघर्ष गुणात्मक परिवर्तन के द्वारा तीसरी परिघटना न होने तक चलती रहती है । मार्क्स इस बात की भी पुष्टि करते है कि इतिहास में जिस वर्ग ने शोषणकर्ताओं से सत्ता छीनी है । अंत में वह खुद भी शोषक बन गये हैं । इसलिये आज तक जितनी भी क्रांतियां हुई, वह इतनी प्रभावकारी नहीं हुई अर्थात वह अपने अंतिम लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाई । इसलिए शोषण मुक्त समाज नहीं बन पाया, परंतु वे इस बात को भी स्वीकरते हैं कि अब जो पूंजीपति और सर्वहारा वर्ग के बीच क्रांति होगी वह पिछली सभी क्रांतियों से भिन्न होगी । इस क्रांति से शोषक वर्ग का अस्तित्व ही मिट जायेगा और वर्ग विहिन समाज की स्थापना होगी । मार्क्स के इस वर्ग विहिन समाज की संकल्पना को ही साम्यवाद के नाम से जानी जाती है । यह सत्य है कि मानवीय समाज जितना अर्थमुखी होता गया है उतना ही समाज में विभेद और शोषण बढ़ा है । इससे यह साबित होता है कि शोषण का मुख्य कारण अर्थ है । अर्थ जो राज्य के विकास के साथ-साथ मानवीय विकास भी करता है । अब यहां पर सबसे अहम सवाल यह उठता है कि अर्थ पर समान स्वामित्व होने से क्या समाज में द्वंद्व या संघर्ष की स्थिति पूरी तरह खत्म हो जायेगी ? चीन साम्यवाद का सबसे बड़ा उदाहरण है परंतु आज हम देख रहे है कि यहां के समाज में भी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विभेद हो रहा है । इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है

कि साम्यवाद भी पूंजीवाद के प्रभाव से बच नहीं पा रहा है । इसलिए वर्तमान समाज की इन समस्याओं के लिए परिस्थिति के मुताबिक एक नया विकल्प ढूंढने की आवश्यकता है । मार्क्सवाद का एक सबल पक्ष यह है कि यह वर्गयुक्त समाज का विरोध करता है । उपेक्षित वर्ग के अधिकारों को प्रत्याभूत करने के विचार को साझा करता है और समाज में शोषक वर्ग के अत्याचारों की पोल खोलता है । जिससे सर्वहारा, मजदूर या किसान वर्ग में यह चेतना जागती है कि अत्याचार के खिलाफ एक जुट होकर आवाज उठाने से अधिकार को प्राप्त किया जा सकता है । साहित्य में मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष की बात करे तो सन् 1936 से प्रगतिवाद के उदय के साथ ही इस विचारधारा को प्रयोग देखा जाता है । इसी समय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना भी की गई थी । इसके अध्यक्ष का पदभार प्रेमचंद ने संभाला इसके अलावा केदारनाथ, नागार्जुन, त्रिलोचन, शिवमंगल सिंह केदारनाथ सिंह, धूमिल, कुमार विमल, अरुण कमल, राजेश जोशी, राहुल सांस्कृत्यायन, रांगेय राघव, यशपाल, राम विलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय आदि अन्य पुरुष साहित्यकार भी जुड़ते गयें । सत्य तो यह है कि वह सभी साहित्य प्रगतिवाद की श्रेणी में आता है जो समाजवादी विचारधारा से जुड़ा है । या समाज के उपेक्षित वर्गों की वकालत करता है । स्त्री लेखन में यह विचारधारा साठ और सत्तर के दशक से देखी जाती हैं । जिसमें समाज के अति उपेक्षित वर्ग में आने वाली स्वयं स्त्री के संघर्ष को बयान किया है । इसके अलावा समाज के अन्य उपेक्षित वर्ग मजदूर, किसान, दलित, आदिवासी लगायत साम्राज्य विस्तारवादी शक्ति के विरुद्ध संघर्ष भी इनके साहित्य में देखा जाता है । कृष्णा सोबती का उपन्यास 'दिलोदानीस' स्वतंत्रता पूर्व के सामंती समाज व्यवस्था के भीतर स्त्री लगायत समाज के अन्य हाशिये के वर्ग के शोषण एवं संघर्ष की गाथा बयान करता है । उपन्यास में स्त्री और पुरुष दो भिन्न लिंग से भी ज्यादा वर्ग के रुप में दिखाई पड़ते है क्योंकि इसमें ऐसी स्त्रियों का जिक्र है जो आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी स्तर से शोषित है और यहां केवल एक स्त्री की शोषण की बात

नहीं है । समग्र स्त्री जाति के शोषण और संघर्ष के यथार्थ को चित्रित किया गया है । भारतीय समाज जो स्त्री को भोग्या या वस्तु के रुप में उपभोग करता आया है । इस स्थिति का विरोध कर अपने लिए एक सहज और समानता का वातावरण निर्माण करने की जद्दोजहद इस उपन्यास की कथावस्तु है । स्त्री के लिए न्याय का सवाल अहम मुद्दा है । क्योंकि न्याय विहिन स्थिति में स्त्री केवल आर्थिक परतंत्र का ही शिकार नहीं बनती बल्कि असुरक्षा की स्थिति में सहम कर जीवन जीने पर बाध्य होती हैं । महाभोज में वर्ग संघर्ष की चर्चा करे तो जोरावर क्रूर शोषक सामंती, जमीदार वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है, तो विसेसर और उससे जुड़ा दलित समुदाय सर्वहारा के प्रतिनिधि पात्र है जिन्हें अपने निहित स्वार्थ की पूर्ति के लिए समाज का जमीदार वर्ग उपयोग करता है और काम न आने की स्थिति में उसे समाप्त कर देता है । इसी स्थिति को मन्नू भंडारी ने दलित बस्ती में लगाई गई आग के मध्य से चरितार्थ किया है । मन्नू भंडारी लिखती है **"गांव की सरहद से जरा परे हटकर जो हरिजन- टोला है, वहां कुछ झोपड़ियों में आग लगा दी गई थी, आदमियों सहित । दूसरे दिन लोगों ने देखा तो झोपाड़ियां राख में बदल राख में बदल चुकी थीं और आदमी कबाब में ।"**[19]

अपने निहित स्वार्थ के लिए जोरावर दलितो की बस्ती में आग लगा देता है और उसके गवाह विसेसर को भी मौत के घाट उतार देता है । यह संम्पूर्ण घटना कुछ लोगों के मन में त्रास उत्पन्न करती है तो कुछ के मन में दुःख और कुछ के मन में सुकून पैदा करती है । समाज किस द्वंद्वात्मक स्थिति से गुजर रहा है । इस घटना के माध्यम से पता चलता है । मन्नू भंडारी गुलामी को आत्मा का क्षय बताती है तो विरोध या विद्रोह को मानवीय चेतना की स्थिति के रुप में स्वीकार करती है । चित्रा मुद्गल अपने उपन्यास आवां में आधुनिक औद्योगिक युग में मजदूर और उद्योगपतियों के बीच के संघर्ष की स्थिति को चित्रित करती हैं । मजदूर यूनियन जिसे मजदूरों के अधिकारों की रक्षा और समस्या समाधान के लिए स्थापित किया

गया था लेकिन चित्रा मुद्गल बताती है कि आज के समय में ऐसी संस्थाओं का नेतृत्व बदल गया है। लोगों ने मजदूरों की हित का नहीं अपने हित का उद्देश्य साध लिया है। इस उपन्यास में चित्रा मुद्गल तीन वर्ग की ओर संकेत करती है, एक मजदूर वर्ग जो अत्यंत शोषित एवं उत्पीड़ित है दूसरा मध्मयस्तकर्ता वर्ग जो संस्था का नेतृत्व करता है। यह वर्ग अत्यंत महत्वकांक्षी है, यह उच्च या पूंजीपति वर्ग से मिलकर मजदूरों की नहीं अपने स्वार्थ के हक में काम करता है। जिसके कारण मजदूर और अधिक शोषित एवं पीड़ित बनते जाते हैं। इन तीन वर्ग के बीच का संघर्ष आंवा में देखा जाता है। चित्रा मुद्गल ने मुख्यतया उत्पीड़ित या शोषित वर्ग को अधिकार दिलाने के नाम पर हो रही राजनीतिक विसंगति के सवाल को उठया है उनका मानना है इस तीसरे वर्ग के उदय के कारण औद्यौगिक क्षेत्र में संग्लन मजदूरों की स्थिति दयनीय बनती जा रही है मजदूर चारों तरफ से शोषण का शिकार बन रहे है। अत: इस समस्या की ओर लोगों को सोचना चाहिये। इसके साथ-साथ चित्रा मजदूरों के स्वास्थ्य, सुरक्षा और आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा किये जाने की ओर भी इशारा करती है। प्रभा खेतान अपने उपन्यास तालाबंदी में मजदूर संगठनों और उद्योगपतियों के बीच चल रहे संघर्ष के यथार्थ को रेखांकित करती हैं। उनके उपन्यास का प्रमुख पात्र श्याम बाबू जो कभी स्वयं शोषित वर्ग का प्रतिनिधि पात्र था। उसके पिता जी मुनीम का काम करते थे, परंतु वह अपनी मेहनत और महत्वकांक्षा के कारण एक दिन सफल व्यापारी बन है। उसमें भी वही गुण आ जाते हैं जो पूंजीपतियों में होते हैं। अपना फायदा देखने का गुण इसी फायदा की राजनीति में मजदूरों के कितने अधिकार छीने जाते हैं। इसका किसी के पास कोई हिसाब किताब नहीं होता। श्याम बाबू का चरित्र मार्क्स के इस विचार की पुष्टी करता है कि **'इतिहास में जिस वर्ग ने शोषण कर्ताओं से सत्ता छीनी, कालातंर में वह स्वयं शोषण कर्ता सिद्ध हुआ।'**[20] श्याम बाबू को अब मालिक बन जाने के बाद केवल अपने फाइदे के अलावा और कुछ नजर आना बंद हो गया है। वे मार्क्सवाद को जानना चाहते है इसलिए नहीं कि उन्हें उसमें रुचि

है बल्कि इसलिए कि वह मजदूर आंदोलन का तोड़ खोजना चाहते हैं । मजदूर संगठनों में घूसी हुई राजनीति से वे बहुत परेशान हैं । लेखिका यह भी बताना चाहती है कि आज के मजदूर संगठन मजदूरों को बरगलाने का काम कर रहें हैं । राजनीतिक पार्टी के इशारे पर मजदूरों का भविष्य तय करते है । जिसके कारण मजदूरों की स्थिति सुधर नहीं पा रही है । यद्यपि उद्योगपति यह जानता है कि मजदूरों के बिना उसका उद्योग धराशायी हो जायेगा फिर भी वह पूंजी के बल पर मजदूरों का शोषण करने से बाज नहीं आता । **"हम लोग कितनी भी चाल चलें, जीजा जी, केस करते रहिए, पुलिस को रुपया खिलाते रहिए, क्या होगा आखिर इनसे लड़कर ? हम जित भी जाये, तो क्या होगा ? कमीजे तो हम-आप नहीं सी लेंगे । इनका क्या हमेशा भूख और गरीबी देखी है ।"**[21] मजदूर इसलिए बाध्य है कि उसके पास जीवीकोपार्जन का दूसरा कोई विकल्प नहीं है । उसकी गरीबी और भूख ही उसे शोषण की चरम अवस्था में भी श्रम करने पर बाध्य करती हैं । लेकिन जब तक श्रमिक वर्ग अपनी बाध्यता से ऊपर उठकर अपने वर्ग के उत्थान के लिए एक जुट नहीं होगा तब तक शोषक वर्चस्वशाली बनते जायेंगे । उनकी सत्ता शक्तिशाली बनती जायेगी । मधु कांकरियां भी खुले गगन के लाल सितारे उपन्यास में वर्ग संघर्ष के उस यथार्थ को साहित्य में उतारती है जो भारत के ग्रामीण समाज का सत्य है । सन् 1967 में नक्सलबाड़ी पर घटी घटना इस उपन्यास की कथावस्तु है नक्सलबाड़ी आंदोलन क्यों घटा ? इसके पीछे क्या उद्देश्य था ? और यह आंदोलन नेपाल के माओवादी आंदोलन की तरह सफल क्यों नहीं हो सका ? उपन्यास में ये बड़े और महत्वपूर्ण सवाल हैं । नक्सलबाड़ी आंदोलन घटने के पीछे का कारण तत्कालीन भारत की सामंती व्यवस्था के तहत किसानो पर किया जा रहा चरम शोषण था । जमीदारों द्वारा गरीब किसानों के भूमि के स्वामित्व का अधिकार छीना जा रहा था । खेतों के उत्पादन की वस्तु में किसानों का अधिकार अत्यधिक न्यून था । अत: किसानों कि स्थिति निरंतर दयनीय होती जा रही थी जिसके कारण किसानों ने इस शोषण के विरुद्ध में विद्रोह शुरु किया यही विद्रोह

नक्सलवाद के रुप में विकसित हुआ । इसका उद्देश्य जमीदार और किसानों की बीच की असमानता को दूर करना था । लेखिका तेभागा आंदोलन (1946-47) और तेलंगना आंदोलन की (1946-51) की चर्चा करते हुये लिखती है कि यह आंदोलन अपनी सोच की भूमि से फुटे हुये आंदोलन थे जबकि नक्कलसबाड़ी आंदोलन चीन का मॉडल था जो बाहर से आयात किया गया एक दर्शन था । शायद यही कारण रहा होगा इसकी असफलता का । इसके आगे वे इसको स्पष्ट करते हुये लिखती है **"अब मरुभूमि का पौधा मानसरोवर के निकट तो पनप नहीं सकता क्या..कहीं यह नहीं लगता कि जिंदगी का कोई भी रास्ता बना-बनाया रास्ता नहीं हो सकता कि हमें अपनी संस्कृति, अपने इतिहास और अपने समाज के आलोक में अपना माओ, अपना लेनिन, अपना मार्क्स और अपना चे-ग्वारा स्वयं गढ़ना था ।"**[22]

लेखिका इस विचार को व्यक्त करती है कि देश के किसी भी आंदोलन को उस देश की समय परिस्थिति, परिवेश, संस्कृति और परंपरा के अनुरुप या अनुकूल होना चाहिये न कि उसके विरुद्ध । ऐसा करने से जनता आंदोलन का साथ नहीं देती और आंदोलन असफल हो जाते हैं । आज भारत में वर्ग संघर्ष की स्थिति यह है कि जितना भारत विकसित होता जा रहा है वर्ग संघर्ष की स्थिति उतनी ही विकराल होती जा रही हैं । इसका कारण पूंजीवाद को बढ़ावा देना और मजदूर, किसान एवं सर्वहारा के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकार को सत्ता पक्ष द्वारा नजर अंदाज किया जाना है । आये दिन समाज के असंतुष्ट वर्ग का विरोध सड़कों पर देखा जा सकता है । यह असंतुष्टि और संघर्ष तब तक रहेगा जब तक सरकार वर्ग भेद को अंत करने के लिए कोई ठोस नीति नहीं लागू करती । चाक उपन्यास में वर्ग संघर्ष की बात करे तो मैत्रेयी पुष्पा ने भारतीय ग्रामीण समाज में सदियों से शासन करते आ रहें उच्च वर्ग के जमीदारों और किसानों के बीच के संघर्ष को प्रस्तुत किया है । फत्तेसिंह इसलिए गांव का प्रधान है क्योंकि वह समाज के उच्च वर्ग और जाति से संबंध रखता है । कुंवरपाल और बिसुनदेवा जैसे

दलित समाज को प्रतिनिधित्व करने वाले लोग उच्च वर्ग के हाथों की कठपुतली होते है । विसुनदेवा को गुलकंदी के साथ विवाह करने के ऐवज में जिंदा जलाये जाने का षडयंत्र समाज के उच्च वर्ग के लोगों द्वारा ही किया जाता है । इस तरह समाज में एक प्रकार का त्रास फैला दिया जाता है कि और कोई इस तरह का दुस्साहस करने के हिम्मत न करे । इस आधार पर हम कह सकते है कि भारतीय समाज में जातीय, लैंगीय और वर्गीय संघर्ष आज भी जारी हैं ।

५.४ समकालीन नेपाली ग्रामीण समाज : आर्थिक और राजनीतिक स्थिति

नेपाली ग्रामीण समाज भारत की तरह अनेकता में एकता का प्रतीक है । यहां अनेकों जात-जाति भाषा-भाषी कला-संस्कृति लोग विद्यमान है । सन् 2021 की जनगणना के मुताबिक इस देश में अभी भी 123 भाषायें बोली जाती हैं । ये भाषायें भारोपेली, चीनी और तिब्बती भाषा परिवार के अतंर्गत बोली जाने वाली भाषायें हैं । नेपाल में सरकारी कामकाज की भाषा नेपाली है । इसे राजा महेन्द्र के समय में ही राष्ट्र भाषा का दर्जा मिल चुका था । जिसके बाद इस भाषा का विकास तीव्र गति से हुआ । साहित्यकारों और पत्रकारों ने इसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । वर्तमान समय में यह भाषा देश-विदेशों में भी पहुंच चुकी है । भाषा के अलावा इस देश की संस्कृति भी समृद्ध मानी जाती है । भारतीय, मंगोल और तिब्बती संस्कृति का मिश्रण यहां देखा जाता है । नेपाल की संस्कृति में विद्यमान शिष्टाचार इसकी विशेषता है । रीति-रिवाज, संगीत, वास्तुकला, यहां के मठ-मंदिर, देवीदेवता से लेकर खानपान और भेष-भूसा के कारण यह दुनिया के अन्य देशों की तुलना में अपनी एक अलग पहचान बनाने में सफल हुआ है । नेपाल के भौगोलिक स्वरुप की अगर बात करे तो यह हिमालय, पहाड़ और तराई में बंटा हुआ है । नेपाली समाज प्राचीन काल से ही पितृसत्तात्मक संरचना पर आधारित समाज रहता आया है । इसलिये नेपाली समाज में स्त्री आज भी दूसरे दर्जे की प्राणी है । समाज के सर्वेसर्वा पुरुष है । यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी में चले नारीवादी आंदोलन का प्रभाव नेपाली स्त्री समाज में भी पड़ा था परंतु हिंदू मान्यता और जटिल

पितृसत्ता के कारण इसमें इतना परिवर्तन नहीं आ सका। आज भी यहां की महिलायें अपने अधिकार के लिए निरंतर संघर्षरत है। हिंदू धर्म की बाहुल्यता ने समाज को अतार्किक ही नहीं भाग्यवादी, रुढ़िवादिता, अंधविश्वासी बनाया है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि आज नेपाली समाज धार्मिक मान्यताओं के आधार पर ही संचालित होता है। माओवादी के सशस्त्र जनआंदोलन के बाद भी यहां की सामाजिक संचना पर इतना अधिक बदलाव नहीं आ सका है। जाति, वर्ग, लिंग के नाम पर हो रहे विभेद आज भी यत्र-तत्र देखे जा सकते है। दलित जाति जो नेपाली समाज की सबसे उपेक्षित जाति है, उसकी स्थिति में आज भी दयनीय ही है। आये दिन दलित के नाम पर कुटपीट के समाचार अखबारों में छपते रहते हैं। अतंर्रजातीय विवाह किये जाने पर हत्या के केस भी दर्ज होने का क्रम जारी ही है। बेरोजगारी के कारण विगत के सशस्त्र जनआंदोलन के समय से आज तक नेपाली युवा-युवतियों का रोजगारी के लिए विदेश जाने का क्रम घटा नहीं है, बल्कि और अधिक बढ़ रहा है। विदेशों में पुरुषों से ज्यादा महिलायें शोषित हो रही हैं। इनका दोहरा शोषण किया जा रहा है। श्रम के नाम पर और देह ने नाम पर अधिकतर स्त्रियों को रोजगारी के नाम पर झूटे जाल में फसा कर विदेशों के वेश्यालयों में बेचने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। इसका लाभ मेनपावर कंपनियां उठा रही है। यह समूह एक प्रकार से मानव तस्करी करने का व्यवसाय कर रहा है। इसमे सरकार भी संलग्नता भी देखी जा रही है क्योंकि ऐसे कामों के लिए इजाजत पत्र उपलब्ध कराना सरकारी संलग्नता को दर्शाता है। वैदेशिक रोजगार में गये मजदूर युवा-युवतियों द्वारा भेजे गयें पैसे के रेमिटेंस से देश की आर्थिक स्थिति में सुधार आ रहा है परंतु युवाओं के जीवन में नहीं। इस स्थिति ने महिला और पुरुष की आर्थिक अवस्था सुधरने की बजाय कमजोर बन रही है। महिलाओं के लिए यह अवस्था इसलिए दयनीय है कि काम के दौरान हुये शारिरिक और मानसिक शोषण के कारण वे जीवन से इस तरह उदासीन हो जाती है कि आत्महत्या की स्थिति तक पहुंच जाती है। यह स्त्री समाज के लिए बहुत बड़ी

समस्या है । इसके अलावा एक और गौर करने वाली बात यह है कि जो स्त्रियां वैदेशिक रोजगार के लिए जा रही है वह अधिकतर मध्यम वर्ग की महिलायें है, जिसमे आदिवासी, दलित और जनजाती स्त्रियां भी शामिल है । नेपाल में सभी वर्ग की महिलायें अपनी अलग-अलग समस्याओं से गुजर रही हैं । उच्च वर्ग की महिलाओं के पास पितृसत्ता का मानदंड बाधक है । वे रोजगारी के लिए स्वतंत्र नहीं है और निम्न वर्ग की महिलाओं को जीवीकोपार्जन के साधनों पर अधिकार तो है परंतु अर्थ, पहुंच और अवसर की कमी है । शिक्षा के अभाव के कारण यहां की स्त्रियां भारत की तुलना में अधिक शोषित है । भारत में अंग्रेजी हुकूमत ने स्त्री शिक्षा की चेतना को जगाया परंतु नेपाली समाज विदेशी शक्तियों से हमेशाा दूर रहा जिसके कारण यहां का समाज बहुत लंबे समय तक परंपरागत ढर्रे पर ही चलता रहा । आधुनिक शिक्षा प्रणाली के अभाव के कारण व्यापार, विचार, विमर्श और नयी पद्धतियां यहां प्रवेश नहीं कर पाई इसलिए इक्कीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक भी यहां का समाज परंपरावादी ही नजर आता है । आज जो भी थोड़ा बहुत बदलाव की स्थिति देखी जा रही है यह भी माओवादी जनआंदोलन की देन है । सामाजिक विभेद को अंत करने का अभियान माओवादी द्वंद्व काल में ही चला । राजसत्ता के संस्कारों ने यहां के जमीनदारों और ब्राह्मणों को शोषण की कला सीखा कर संरक्षण दिया । इसी कारण यहां पूंजीवाद और सामंतवाद फलता-फूलता गया और निम्न वर्ग उपेक्षित और शोषित हुआ । नेपाल का ग्रामीण समाज में पंचायत काल से राजनीतिक अवधारणा को धीरे-धीरे समझने लगा था । इससे पहले राणा काल में ग्रामीण सामाज में यह व्यवस्था नहीं थी । गांव के विकास में जुटे हुये या राजनीति में संलग्न लोगों को पंच कहा जाता था । यह पंच राजा और जनता के बीच का मध्यस्थ करता भी था । राणा शासन के अंत के बाद बहुदलीय व्यवस्था के तहत राजनीतिक पार्टी को राज्य संचालन का अधिकार दिया गया था परंतु नेताओं की कमजोरी और अदूरदृष्टि के कारण राजा महेन्द्र ने बहुदलीय व्यवस्था

को खारिज कर दिया और पंचायती व्यवस्था लागू कर दी । यही से नेपाली समाज में राजनीतिक उतार-चढ़ाव बढ़ता गया ।

५.४.१ नेपाली ग्रामीण समाज और आर्थिक स्थिति

नेपाली समाज भी भारतीय समाज की तरह कृषि उत्पादनों पर निर्भर समाज है । परंपरागत तरीके से खेती किये जाने के कारण उत्पादन में किसानों को इतना मुनाफा नहीं हो पाता है । यहां के कृषक समाज को तीन भागों में बांटकर देखा जा सकता है पहाड़ी, तराई और हिमाली । तराई के किसानों की तुलना में पहाड़ी और हिमाली़ किसानों को अधिक परेशानियां झेलनी पड़ती है क्योंकि हिमालयी और पहाड़ी क्षेत्र में भौगोलिक जटिलता विद्यमान है । यातायात से लेकर उत्पादन के लिए बाजार व्यवस्थापन की समस्या बड़ी समस्या है । इसके अलावा सिंचाई और मलखाद की समस्या भी प्रमुख समस्यायें हैं । सरकार ग्रामीण किसानों की इन समस्याओं पर इतनी संवेदनशील नहीं है । नेपाल की उत्पादन भूमि तराई की भूमि है क्योंकि पहाड़ों की तुलना में यहां पचहत्तर प्रतिशत उत्पादन अधिक होता है । यहां दो प्रकार के किसान पाये जाते है, एक वह जिसके पास पर्याप्त जमीन है दूसरे वो जिसके पास अपनी जमीन नहीं है परंतु वे दूसरे की जमीन पर बटैया के रुप में काम करते हैं । यह बटैया किसान जमीदारों के शोषण के कारण अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं ला पातें । जी तोड़ मेहनत के बाद भी उत्पादन का आधा से ज्यादा हिस्सा जमीनदार को देना पड़ता है, जिसके कारण उनको लाभ कम नुकसान ज्यादा होता है । नेपाली समाज के छोटे मजदूर किसानों ने इसी समस्या के समाधान के लिए बार-बार आंदोलन किये परंतु फिर भी समस्या ज्यों-की-त्यों विद्यमान है । नेपाल में भूमि स्वामित्व के संबंध में आरंभ में किसी प्रकार की पाबंधी नहीं थी । जिसके कारण किसी के पास सौ विघा जमीन थी तो कोई भूमि विहिन रह गया था । इस विकराल असमानता ने सामाजिक विभेद और देश की अर्थव्यवस्था को असंतुलित कर दिया । इसलिए सन् 1964 में भूमि सुधार नियम लागू किया गया । इस ऐन के अंतर्रगत तराई एवं भित्री मधेश में पच्चीस विघा,

काठमाण्डौ में पचास रोपनी, पहाड़ में अस्सी रोपनी से ज्यादा जमीन रखे जाने पर कानूनी कार्यवाही किये जाने का प्रावधान पारित हुआ । निर्धारित जमीन से ज्याद जिसके पास जमीन थी उसे सरकार को लौटाना पड़ा और सरकार ने भूमि विहिन किसानों को भूमि वितरण की व्यवस्था की । इस व्यवस्था ने भूमि को नाम पर लगान (कर) उठाने वाले पटवारी, तालुकतार, जिम्मावाल, मुखिया जैसे मध्यस्तकर्ता को भी हटाने की व्यवस्था की । बटैदार के संबंध में भी यह कानून बना की दस वर्ष से ज्यादा यदि कोई मजदूर किसान किसी जमीदार के खेत में किसानी कर रहा है तो जमीन पर उसका भी मालिकाना हक लगने लगेगा । उसे जमीदार अपनी मर्जी से नहीं हटा पायेगा । इस व्यवस्था ने गरीब किसानों को राहत मिली और गरीब किसान मजदूरों की स्थिति में सुधार आने की संभावना देखी गई । अतः भूमिसुधार ऐन गरीबों के लिए वरदान बनकर आया ।

क. भूमि के स्वामित्व पर नियंत्रण

ख. मोहियानी हक (भूमि पर उत्पादा करने वाले मजदूर किसान का जमीन पर अधिकार की सुरक्षा) की सुरक्षा

ग. जमीदारी प्रथा का अंत

घ. किसानों के लिए ऋण की व्यवस्था

ङ. कर निर्धारण

वर्तमान समय में नेपाल के ग्रामीण क्षेत्र में भी आधुनिकता का प्रवेश हुआ है । गांवों मे घरेलू उद्योगों और कुटीर अद्योगों को प्राथमिकता दी जा रही है जिसके कारण गांव के लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार आ रहा है । ग्रामीण व्यवसाय पशुपालन, मत्यस्यपालन, डेरी व्यवसाय करने वालों को सरकार ने ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था की है । जिसके कारण ग्रामीण किसानों का उत्साह बढ़ रहा है । सन् 1953 में संयुक्त राज्य अमेरिका की पहल से 'त्रिभुवन ग्राम विकास योजना'

की शुरुआत की । इस कार्यक्रम का उद्देश्य नेपाली ग्रामीण समाज के वनसंपदा का संरक्षण, ग्रामीण बजार व्यवस्थापन, घरेलू उद्योगों का विकास, भूमि तथा जल संरक्षण करना और ग्रामीण किसानों के जीवन स्तर में सुधार लाना था । इसी दौरा सन् 1973 में रसुवा नुवाकोट एकीकृत ग्रामीण विकास परियोजना शुरु की गयी । इस परियोजना के तहत वाग्मती अंचल के रसुवा और नुवाकोट जिला में करीब 29000 जनसंख्या को लाभ पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया था । इस तरह नेपाल की ग्रामीण स्थिति को आर्थिक रुप से संपन्न करने के लिए विदेशी फंडों का भी भरपूर प्रयोग किया गया है । परंतु विडंबना यह है कि भ्रष्टाचार के कारण अपेक्षानुकूल परिणाम नहीं मिल पाया । नेपाली ग्रामीण समाज में स्त्रियों की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय है इसको सुधारने के लिए अनेकों प्रयास किये गये है । यद्यपि यह एक बहुत बड़ी चुनौति है फिर भी इस ओर कदम आगे बढ़ाये गये हैं । नेपाल में तत्काल (सन् 2001) में किये गये जनगणना के मुताबिक पुरुषों की तुलना में महिलाओं की जनसंख्या अधिक है । देश की जनसंख्या का एक बड़ा सा हिस्सा बेरोजगार है । इसमें कोई दो मत या दो राय नहीं है कि इसी बेरोजगार तप्पके को राज्य के आर्थिक विकास के कार्यक्रम में शामिल किये जाने से राज्य और उपेक्षित तप्पके का भी विकास होगा । जब तक राज्य के विकास में इस बड़ी जनसंख्या को शामिल नहीं किया जायेगा तब तक विकास की संकल्पना संभव नहीं हो सकती अतः इस बड़ी समस्या की ओर सरकार का ध्यान जाना आवश्यक है । इसी संदर्भ में शारदा सिंह लिखती हैं **"महिलाओं की पूर्ण सहभागिता के बिना कोई भी देश आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं वातावरणीय विकास संभव नहीं दिखाई पड़ता । स्त्री पुरुष रथ के दो पहियें है उनमें से एक पहिया स्त्री है । स्त्री के अभाव में सृष्टि का नियम सुचारु नहीं हो सकता । समाज में पुरुष का दायित्व जितना होता है स्त्री का भी उतना ही होता है फिर भी अधिकतर देशों में महिला की भूमिका को कमजोर बनाया गया है । महिलाओं के प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग के बिना पुरुष आगे नहीं बढ़ सकता ।"**[23]

नेपाली ग्रामीण समाज में पितृसत्तात्मक मानसिकता का प्रभाव शहरों मे ज्यादा है । इसलिए यहां की स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक भूमिका को पुरुष तय करता है । महिलाओं के हिस्से मुख्यतया चूल्हा-चौका, घांस, लकड़ी, गाय, भैस, खेत-खलिहान का काम आया है । लोकतंत्र की स्थापना के बाद महिलाओं की सामाजिक हैसियत में कुछ वृद्धि तो हुई है इस वृद्धि का कारण नेपाल का नया संविधान है क्योंकि इसी संविधान ने स्त्री को पुरुष के बराबर होने की बात को स्वीकार किया है और उसे कानूनी हक दिलाने के लिए विशेष निर्देशन भी दिये हैं । जिसमें विशेषकर लैंगिक समानता का अधिकार, सुरक्षित मातृत्व एवं प्रजनन का अधिकार, महिला के साथ किये जाने वाले किसी भी हिंसा को गैर कानूनी करार, राज्य के सभी निकायों में स्त्री सहभागिता अनिवार्य, महिला शिक्षा, रोजगारी एवं सुरक्षा का अधिकार परिवार में संपत्ति का अधिकार आदि । लेकिन अब सवाल यह उठता है कि क्या नेपाल की ग्रामीण स्त्रियां इन अधिकारों का उपभोग कर पा रही है या नहीं ? यदि नहीं तो इसके पीछे क्या कारण है ? बहरहाल नेपाली स्त्रियां अधिकार संपन्न हुई है इसमें संदेह नहीं है लेकिन जहां तक स्त्रियों के अधिकार के उपभोग करने की बात है इसमें स्त्री समाज असफल दिखाई देता है । इसका सबसे बड़ा कारण स्त्री में चेतना का अभाव है । दूसरा कारण पितृसत्तात्मक संकुचित मानसिकता है, जिसके कारण स्त्रियां अपने राजनीतिक, आर्थिक अधिकार को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पा रही हैं । जब भी वे अपने अधिकारों की मांग करने आगे बढ़ती है तो अनेकों तरह की धमकियों का उन्हें सामना करना पड़ता है । घर छोड़ देने की धमकी, रिश्ता तोड़ देने की धमकी लेकिन इन सबके बावजूद भी कुछ शिक्षित महिलायें परिवार को समझाकर अपने लिए आर्थिक संपन्न होने का रास्ता खोज रही है । कृषि उत्पादन, व्यापार व्यवसाय एवं रोजगारी को महिलायें प्राथमिकता देने लगी है, जिसके कारण उनमें आत्मविश्वास जागा है । नेपाल और भारत के अलावा पाश्चात्य देशों की महिलायें परिवार से ज्यादा शिक्षा और

आत्मनिर्भरता को महत्व दे रही है । इसलिए उनकी सामाजिक हैसियत पुरुषों के बराबर होने में कोई संदेह नहीं है ।

५.४.२ नेपाली ग्रामीण राजनीति और स्त्री

नेपाल के संविधान 2015 (२०७२) के द्वारा प्रदत्त संघीय संरचना के मुताबिक नेपाल में शक्ति का विकेन्द्रीकरण तीन स्तर पर हुआ है । केन्द्रीय स्तर, प्रदेश स्तर और ग्रामीण स्तर पर । ग्रामीण राजनीति की हम बात करे तो उसे राज्य का सब से नीचला हिस्सा माना जाता है । इस स्तर के अंतर्गत वड़ा, गांव पालिका आदि आते है । इनकी रेख-देख में गांव का प्रशासन चलता है । सुरक्षा, रोजगारी, न्याय व्यवस्था आदि का अधिकार नेताओं को दिया जाता है । गांव में सिचाई के लिए नहर की व्यवस्था, घरेलू उद्योगों का विकास-संरक्षण, यातायात और स्कूल-कॉलेजों की व्यवस्था कृषि उत्पादन के लिए बाजार व्यवस्था आदि महत्वपूर्ण कार्य की जिम्मेदारी इस तरह के नेताओं के हाथ में होती है । लोकतंत्र के बाद के स्थानीय स्तर के चुनाव में महिला सहभागिता संतोषजक स्थिति में दिखाई पड़ती है । बड़ा सदस्य, अध्यक्ष और उप मेयर के पद में स्त्री नेतृत्व को चुना गया है । यद्यपि राजनीति में पुरुषों का वर्चस्व होने के कारण यहां का स्त्री समाज राजनीति में इतना सक्रिय नहीं दिखाई पड़ता है । जिसके कारण स्त्री के हक के लिए लिये जाने वाले महत्वपूर्ण निर्णय छूट जाते है, फिर भी संविधान में 33 प्रतिशत स्त्री सहभागिता अनिवार्य किये जाने के कारण पुरुष समाज स्त्री को स्थान देने के लिए बाध्य हुआ है । विडंबना यह है कि स्त्रियों को अपने इस अधिकार के प्रति जो उत्साह होना चाहिये वह नजर नहीं आता । इस निरास या उदासीनता के पीछे कई कारण छुपे हुये हैं । इनको समझना भी आवश्यक है । गांव की स्त्रियां जो वर्षों से चार दीवारियों के भीतर घूंघट में छिपाई गई थी अचानक सार्वजनिक होने के कारण स्वभावत: उनमें संकोच या डर का भाव देखा जाता है । यह कोई बड़ी बात नहीं है और उसके इस व्यवहार को उसकी कमजोरी मानकर मजाक बनाना भी मानवता के दायरे में नहीं आता । यह संभव है कि ग्रामीण स्त्रियां धीरे-धीरे अपने इस संकोच

को अपनी कमजोरी समझकर हटाने की कोशिश करेंगी और निडर होकर नेतृत्व के लिए आगे आयेंगी । यूं तो नेपाली राजनीति में स्त्री सहभागिता 1990 (2007) साल के राजनीतिक परिवर्तन के बाद से देखी जाती है । रेवंत कुमारी, मंगला देवी, पुण्यप्रभाव देवी और द्वारीका देवी ठकुरानी आदि महिलाओं ने नेपाली राजनीति में सबसे पहले अपनी उपस्थिति दर्ज कराई थी । धीरे-धीरे स्त्री समाज इनसे जुड़ता गया और आज की स्थिति में पहुंचा है । यह गौरव की बात है कि ये महिलायें पितृसत्ता के मानदंडों को तोड़कर अपनी पहचान के लिए आगे बढ़ी और आगे आने वाली स्त्रियों के लिए मार्ग तैयार कर रही हैं । आज के समय की महिला राजनीतिक सहभागिता का मूल्यांकन करे तो स्थिति इतनी प्रभावकारी नजर नहीं आती । क्योंकि भले ही विगत के दिनों की तुलना में राजनीति में स्त्री सहभागिता बढ़ी है परंतु स्त्री के संदर्भ में कुछ सवाल आज भी चुभते हैं । क्या यह सहभागिता प्रभावकारी है ? क्या स्त्री के मुद्दें संसद में बहस का विषय बन रहें है ? क्या स्त्री सशक्तिकरण का अभियान प्रभावकारी बन रहा है ? समाज में स्त्री के लिए न्याय की स्थिति सहज हो पाई है ? जब तक इन सवालों के जवाब सकारात्मक रुप में सामने नहीं आ पायेंगे तब तक स्त्री सहभागिता को प्रभाकारी नहीं माना जा सकता । महिलाओं को अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए घर परिवार से ज्यादा अपने कैरियर की तरफ अधिक ध्यान देना होगा क्योंकि जब तक स्त्री ऐसा नहीं करेगी तब तक उनके व्यवसायिक जीवन में सुधार नहीं ला पायेगी । इसके अलावा स्त्रियों को अध्ययन अध्यापन के कार्य में अधिक संलग्न होना होगा जिससे वे अन्य देशों की स्त्री के गतिविधियों के बारे में जानकारी हासिल कर सके और उनसे प्रेरणा ले सके । ग्रामीण क्षेत्र की अधिकतर महिलायें घरायसी कामों में व्यस्त होने के कारण पुरुष उनकी अनुपस्थिति का फायदा उठाता है । स्त्री को चाहिये कि वह इस यथार्थ को समझे और अपने व्यवसायिक जीवन से जुड़े चीजों को अधिक महत्व दे । राजनीति में स्त्री सहभागिता को बढ़ाने के लिए स्थानीय राजनीति का अधिक महत्व है क्योंकि स्थानीय स्तर देश की राजनीति की जड़ है

यदि यहीं से स्त्रियों में राजनीतिक संस्कार दिये जायेंगे तो स्त्रियों को राजनीति में आगे का रास्ता तय करने के लिए आसानी होगी । आत्मविश्वास बढ़ेगा और राजनीतिक गतिविधियों संबंधी अनुभव भी होगा । नेपाल संविधान (२०७२) ने महिलाओं के व्यक्तित्व के विकास के लिए गांव पालिका, नगरपालिका और स्थानीय सरकार के रुप में महत्वपूर्ण व्यवस्थापकीय अधिकार प्रदान किया गया है । इसके अलावा स्थानीय स्तर में आवश्यक कानून निर्माण करने का अधिकार भी (धारा २२६) में उल्लेख है । गांव और नगर दोनों सभाओं में स्त्री आरक्षण की व्यवस्था है । इस व्यवस्था ने स्त्री को आगे आने के लिए एक सहज वातावरण निर्माण किया है । **"गांव सभा के प्रत्येक बड़ा से कम से कम दो महिला प्रतिनिधि और गांव कार्यपालिका में कम से कम चार महिला प्रतिनिधि सदस्य की व्यवस्था का उल्लेख (धारा २२२) में किया गया है ।"**[24] इसके साथ-साथ देश की राजनीति का उच्च पद राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति, सभामुख या उपसभामुख, मेयर या उप मेयर आदि पदों में एक पद महिला के लिए अनिवार्य किया गया है । अब आवश्यकता है कि स्त्री को अपने इन अधिकारों के महत्व को पहचान कर निर्भिक होकर अपने जीवन में लागू करने की । जब स्त्री इन अधिकारों का सदुपयोग करने लगेगी उस दिन उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति में अपने आप बदलाव आना शुरु हो जायेगा ।

५.५ नेपाली स्त्री लेखन और जाति का सवाल

वर्तमान नेपाली समाज में जाति व्यवस्था एक जटिल समस्या है । यह समस्या समाज के उपेक्षि जाति के विकास में बाधक ही नहीं बल्कि संपूर्ण देश के विकास में भी बाधक है । इस व्यवस्था का फायदा हमेशा सवर्णों को होता आ रहा है जो वह जाति व्यवस्था के नाम पर राजनीति करके अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहें हैं । कोई भी समाज क्यों विभाजित किया जाता है ? और समाज में द्वंद्व की स्थिति क्यों सृजित होती है ? जाति के संदर्भ में इन सवालों का जवाब ढूंढ़ना अनिवार्य है ।

इन सवालों के जवाबों को खोजने के लिए सर्वप्रथम नेपाली समाजिक संरचना और व्यवस्था को खगालना पड़ेगा। वर्णाश्रम व्यवस्था द्वारा निर्मित यह जातीय संरचना समाज एवं राज्य के सभी अंगों में इस तरह घुलमिल चुकी है कि इससे निजात पाना असंभव दिखाई पड़ता है। लेकिन यह भी सत्य है कि राजनीतिक परिवर्तन ने इस व्यवस्था पर प्रहार किया है। धीरे-धीरे इसकी जड़े कमजोर पढ़ती भी नजर आ रही है। उदाहरण के रुप में बढ़ते जा रहें अंर्तजातीय विवाह को लिया जा सकता है। संवैधानिक रुप में जातीय विभेद अंत होने की घोषणा होने के बाद भी सफलता न मिलना निराशा अवश्य उपत्न करता है परंतु संभावना नहीं। नेपाली समाज में आज भी उच्च जाति का वर्चस्व और दबदबा कायम कायम है। जाति के नाम पर इतने विभेद होते है कि जिसकी गणना भी संभव नहीं है। दलितों का मंदिर में प्रवेश वर्जित, स्वर्णों के घर में जाना वर्जित, दलितों के साथ उठना बैंठना वर्जित, दलितों के साथ विवाह संबंध वर्जित ऐसे कई वर्जित किये जाने वाले नियम बनाये गये हैं जिसका पालन आज भी हो रहा है। यह कहना अनुचित न होगा कि यह व्यवस्था संस्कार के रुप में हस्तांतरित होती आ रही है। उन्नीसवीं शताब्दी में जब मार्क्स ने धर्म और जाति व्यवस्था को मानव के विकास में बाधक तत्व बताया तो लोगों में यह चेतना जागी कि जाति व्यवस्था शोषक वर्ग ने अपने निहित स्वार्थ पूर्ति के लिए गढ़ा है। तब से धीरे-धीरे इस व्यवस्था का विरोध होने लगा। दलितों के साथ-साथ कुछ गैर दलित भी इसका विरोध करते हुए देखे गयें। नेपाल में जाति व्यवस्था के उत्पति के बारे में पता करे तो यहां जाति व्यवस्था की उत्पत्ति का मूल आधार 'वर्ण व्यस्था' को ही मना जाता है। कार्य विभाजन के नाम पर चार जात में मानवीय समुदाय को बांटा गया है। यही व्यवस्था आज तक चली आ रही है। परंतु गौरतलब बात यह है कि राणा शासन काल में इस व्यवस्था में विभेद का विकराल रुप देखा गया। यह क्यों हुआ ? कैसे हुआ ? पता लगाते हुये पाया गया कि तत्कालीन राजा जंगबहादुर राणा जो शाह वंश को अपदस्त करके राजा बने थे। उनको डर था कि जनता उनकी सत्ता का विरोध न

करे इसलिए वो हमेशा देश में डर और त्रास का वातावरण बनाये रखना चाहते थे । वे ब्रिटिश शासन पद्धति से काफी प्रभावित थे, इसलिए वो अंग्रेजों के करीब आ गये थे । उनकी शासन पद्धति को भी अपने देश में लागू करने का प्रयास करते थे । सन् १८५४ में जब जंगबाहादुर बेलायत से लौटे तो उन्होंने नया मुलुक ऐन लागू किया । यह ऐन जाति व्यस्था संबंधी था, मनुस्मृति को संशोधन करके बनाय हुआ ऐन जिस तरह अंग्रेजों ने मनुस्मृति को अपने स्वार्थ के मुताबिक अनुवाद करा कर वर्ण व्यवस्था को 'जाति व्यवस्था' में बदलकर एक नया विचार समाज में संप्रेषण किया था । बाद में यह भारतीय समाज में काफी घातक सिद्ध हुआ । भारतीय जनताओं की एकता बिखर गई और आपसी वैमनस्यता बढ़ने लगी जिसका फायदा अंग्रेजों को हुआ । यह अंग्रेजों की 'फूट डा़लो और शासन करो' की नीति के अंतर्गता आता है । बाद में जंगबाहादुर ने भी इसी तरह की नीति अपनायी । नया मुलुकी ऐन के नाम पर जाति व्यवस्था को संशोधन किया गया । ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र को हटाकर नयी चार श्रेणी बनाई गई **"१. तागाधारी २. मतवाली ३.वैश्य (पानी नचल्ने तर छोई छिटो हल्न नपर्ने) ४.शूद्र (पानी नचल्ने छोई छिटो हाल्न पर्ने) ।"**[25] तागाधारी के भीतर दो जातियों को रखा गया ब्राह्मण और क्षत्रीय । तागाधारी का मतलब कंधे पर जनेऊँ रखने वाली जाति । मतवाली दारु मास खाने और कड़ा परिश्रम करने वाली जाति जिसे आदिवासी भी कहा जाता है । वैश्य जाति कृषि उत्पादन करने वाली जाती । शूद्र जो समाज का सबसे ज्यादा उपेक्षित जाति की श्रेणी में आते है जिसका छूवा हुआ पानी तक लोग नहीं पीते । इस तरह जंगबाहादुर राणा ने जाति व्यवस्था को कानूनी रुप में संस्थागत कराया । जाति व्यवस्था संबंधी यह एक नया नियम देश में लागू हुआ । यह व्यवस्था तब तक कायम रही जब तक राजा महेन्द्र ने इस व्यवस्था को खारिज कर नया मुलुक ऐन सन् १९६२ (२०१९) लागू किया । इस नये मुलुक ऐन में जातीय व्यवस्था को गैर कानूनी घोषित किया गया । सभी जाति को एक समान होने की बात उल्लेख की गई । जाति के नाम पर उत्पीड़िन किये जाने पर सजा की व्यवस्था भी की गई ।

नेपाल संविधान (२०१५) में दलित उत्थान हेतु जातीय भेदभाव को दंडनीय अपराध बताया गया । राष्ट्रीय दलित आयोग की स्थापना कर दलितों के अधिकारों को सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया । दलित आयोग में दलित की परिभाषा कुछ इस तरह प्रस्तुत की गई है **"दलित समुदाय वह है जो जातीय भेदभाव छूत-अछूत जैसे सामाजिक उत्पीड़न को झेलकर सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में सब से पीछे धकेला गया है और मानवीय सम्मान और सामाजिक न्याय प्राप्त करने में भी असमर्थ है । जिस जाति या समुदाय का उल्लेख अनुसूचि १ में किया गया है ।"**[26]

लेकिन संतोषजनक बात यह है कि राजतंत्र के अंत के बाद लोकतंत्र व्यवस्था ने इस समस्या को समाधान करने के विकल्प खोजे है । इसलिए दलितों को अधिकार दिलाने के लिए विशेष रुप से आरक्षण की व्यवस्था भी की गई है । अंतर्रजातीय विवाह करने वालों के लिए विशेष रुप से पुरस्कार की व्यवस्था भी की गई है । जाति के नाम पर भेदभाव करने वालों को दंड की व्यवस्था भी है जिसके कारण आज नेपाल में जातिय व्यवस्था की जटिलता कमजोर पड़ती जा रही है ।

आज का युग समानता का युग है । स्वतंत्रता का युग है । जिस तरह समाज अन्याय, अत्याचार और विभेद के खिलाफ लड़ रहा है उसी तरह साहित्य भी समाजिक विसंगतियों के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद कर रहा है । चाहे वह घटना किसी स्त्री की बलात्कार की हो या किसी किसी दलित के उत्पीड़न की हो । साहित्यकारों की नजरों से कुछ भी बच नहीं पाया है । आधुनिक काल में साहित्य का क्षेत्र और अधिक विस्तृत बनता जा रहा है इसका उदाहरण है आज का साहित्य । कल्पना की परतें हटकर अब साहित्य शिशे की तरह चमक रहा है । चाहे कहानी हो या उपन्यास समाज का यथार्थ बयान करने का क्रम तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है । नेपाली साहित्य में दलितों की स्थिति का याथार्थ चित्रण कमोबेश स्त्री और पुरुष दोनों के लेखन में देखा जा सकता है । नेपाली समाज में पुरुष लेखन में

दलित उत्पीड़न और जातिवाद को हू-ब-हू प्रस्तुत करने वाली रचना के रुप में भूपिन का उपन्यास 'मैदारो' को लिया जा सकता है । समाज में दलित जीवन और उसके संघर्ष के इतिहास को इसमें बयान किया गया है । 'मैदारो' किसी भी कार्य की समाप्ति को सूचित करने वाला शब्द है । उपन्यास का प्रमुख पात्र नदिम सार्कि है । जो दलित जाति से संबंध रखता है । जीवन में अनेकों कठिनाईयों के बावजूद भी वह फाईन आर्ट से उच्च शिक्षा हांसिल करता है । समाज के उच्च जाति की लड़की के साथ अंतर्रजातीय प्रेम विवाह करने का कारण दोनों को सामाजिक रुप से बहिष्कार किया जाता है । इन्हीं रुढ़िवादी मान्यता से तंग आकर कला अपने तीन महीने की बच्ची को छोड़कर माओवादी सशस्त्र जनयुद्ध में शामिल हो जाती है । मगर दुर्भाग्य वस जनयुद्ध में वह शहादत हासिल कर लेती है । इस घटना के बाद कला के माता-पिता नदिम को उसकी मृत्यु का जिम्मेदार ठहराते है और उसे अनेकों प्रकार से प्रताड़ित करते है । जिसके कारण अंत में वह आत्महत्या करने के लिए मजबूर होता है । मगर आत्महत्या से पहले वह सुसाइट नोट लिखता है जिसमें समाजिक क्रूर मान्याता के कारण आत्महत्या किये जाने की बात लोगों को पता चल सके । इस पत्र को पत्थर के नीचे दबाकर वह काली गण्डकी में छलांग लगा लेता है । मगर भाग्यवस वह किसी पेड़ में अटक जाता है और उसकी जान बच जाती है । समाज के डर से वह वर्षों तक जंगल के किसी गुफा में रहता है । यही घटना उपन्यास की कथावस्तु है । नेपाली समाज में दलित समुदाय केवल सामाजिक प्रताड़ना ही नहीं सहते बल्कि न्याय विहिन स्थिति में जीवन गुजारने पर बाध्य किये जाते हैं । यही यथार्थ इस उपन्यास में देखा जाता है । लेखक इस उपन्यास के माध्यम से कई ऐसे सवाल उठाते है जो देश की भ्रष्ट व्यवस्था और शोषक वर्ग के प्रति व्यंग्य है **"आज भी उल्टा चित्र ? मैंने जो देखा है उसे जैसे का तैसा उतारा है यह उल्टा नहीं सीधा चित्र है । उल्टे चलन को सीधा देखने वाले उल्टे है । इंसान की रक्षा और सुविधा के लिए बनाये गये धर्म उसका भक्षक बन रहें है यह उल्टा है । इंसान को जोड़ने के लिए बनाई गयी**

संस्कृति उसे बांट रही है यह उल्टा है। कानून तो ठीक है मगर कार्यान्वयन उल्टे है। मुक्ति का मार्ग तो ठीक है मगर परिणाम उल्टे है। गांव में सबसे अधिक श्रम करने वाला, अन्न उत्पादन करने वाला भूखा है, यह उल्टा है। मंदिर-मूर्ति बनाने वाला ही उसे छू नहीं पाता यह उल्टा है। जानवर घर के अंदर और इंसान घर के बाहर यह उल्टा है। इससे भी बड़ी बात प्रेम के नाम पर यातना यह उल्टा है। लगता है चमगादड़ की तरह सभ्यता पेड़ों पर उल्टी लटकी हुई है।"[27]

इस तरह हम देख सकते है कि जातीय व्यवस्था के प्रति लेखकों का विरोध और आक्रोश। स्त्री लेखन में भी इसी तरह का विरोध, और आक्रोश देखा जा सकता है। सरस्वती प्रतिक्षा का उपन्यास 'नथिया' बादी जाति की स्त्रियों की समस्या और सामाजिक हैसियत को लेकर लिखा गया है। बादी जाति के उत्पत्ति के सदंर्भ में प्रचलित मान्यतायें और इतिहास की जानकारी देते हुये लेखिका वर्तमान समय में उनकी स्थिति को रेखांकित करती हैं। उनके मुताबिक बादी जाति कला और संगीत के लिए जानी जाती थी। लोगों का मनोरंजन करके आय आर्जन करना इनका प्रमुख व्यवसाय था। विशेषकर ये जातियां राजाओं के दरबार में मनोरंजन करने के लिए बुलाई जाती थी। बाद में सामंती वर्गों ने इस समुदाय की स्त्रियों को अपनी यौन इच्छा पूर्ति के लिए प्रयोग करना शुरु किया। यहीं से वादी समुदाय की स्त्रियां वेश्या कहलायी जाने लगी यौन व्यवसाय इनके आय अर्जन का जरिया बना। वर्तमान समय में बेरोजगारी और शिक्षा के अभाव ने इस जाति के स्त्री पुरुष दोनों को समाज के सबसे उपेक्षित जाति के रुप में दर्ज करा दिया। इस जाति के पुरुष आज भी संगीत सामग्रियों को बनाकर बेचने का काम करते हुये पाये जाते हैं। लेखिका ने उपन्यास में वादी जाति के उत्थान के लिए समाज तथा सरकार का ध्यान आकर्षण कराने का काम किया है। वे कहती है कि किसी को भी अपनी जाति के संदर्भ में हीन भावना नहीं रखनी चाहिये। बल्कि उस पर गर्व करते हुये सुधार का विकल्प खोजने चाहिये। **"वादी खास में कलाकार है। कलाकार**

को गोत्र क्यो चाहिये ? अगर संभव हो तो जात ही हटा देना चाहिये। गीत, संगीत और नृत्य के माध्यम से राजा से प्रजा तक सभी का हम मनोरंजन करते है और बदले में पैसे लेते है। हम स्त्रियां शरीर नहीं दरअसल कला बेचती है क्योंकि कुछ पल के लिए ही सही हम अपने ग्राहक का दुख भुलाकर उसे आनंद देते है। आते समय भारी मन से आता है और जाते समय हलका होकर जाता है। इसके लिए हमें प्रेम का अभिनय करना पड़ता है ताकि उन्हें आनन्द मिल सके और वो आनंद लेने के बदले में पैसे देते है।"[28]

लेखिका के यह विचार उपेक्षित जाति में आत्मविश्वास भरने का काम करते है। स्त्री के संदर्भ में तो यह टोनिक का काम करता है। जिस देह व्यापार को समाज घृणा की दृष्टि से देखता है उसे कला के व्यवसाय का नाम देकर लेखिका ने इस व्यवसाय में संलग्न महिलाओं को सम्मान दिलाया है। स्त्री के देह से जुड़े पवित्र और अपवित्र जैसी मान्यताओं को वे खारीज करती हैं। देह व्यापार के संबंध में उनका मानना है, यह एक कला का व्यापार है। जैस एक सुन का व्यापारी सुन बेचता है। कपड़े का व्यापारी कपड़ा बेचता है। वैसे ही वेश्यायें अपनी प्रेम और कला बेचती हैं। जिसे जरुरत है वो आता है पैसा देता है कला खरीदता है जाता है। इसलिए यहां पर हीन, उपेक्षा या कुंठा जैसे भाव को आने की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। यौन व्यवसाय के लिए एक नया और आधुनिक नजरिये का प्रतिपादन कर लेखिका ने समाज को आधुनिक सोच अपनाने का सुझाव दिया है। उपन्यास की कथावस्तु सामली नाम की पात्र पर आधारित है। जो बादी समुदाय से संबंध रखती है। यौन व्यवसाय के दौरान किये गये उसके अनुभव और उसके साथ घटी हुई घटानाओं को ही कहानी के रुप में प्रस्तुत किया गया है। इसी तरह आन्विका गिरी का उपन्यास आदमी का रंग (मान्छेको रंग) भी जातीय और वर्गीय विभेद की समस्याओं को ले कर लिखा गया उपन्यास है। उपन्यास की संपूर्ण कहानी सशस्त्र जनयुद्ध की घटनाओ पर आधारित है। लेखिका ने सशस्त्र जनयुद्ध के उद्देश्य और कारणों की चर्चा करते हुये बताया है कि सामाजिक, आर्थिक,

राजनीतिक धार्मिक, सांस्कृतिक, जातीय और वर्ग संघर्ष की विकराल असमानता का अंत करने के लिए सशस्त्र जनयुद्ध की आवश्यकता महसूस की गई है। भीमा और कर्किनी बूढ़ी को दलित समाज का प्रतिनिधि पात्र के रुप में प्रस्तुत हुई हैं। समाज का विभेदपूर्ण रवैया ही इन्हें आंदोलन की आग में झोकता है। जातीय विभेद के सवालों को निलम कार्की निहारिका ने भी 'योगमाया' उपन्यास में उठाया है। उनके मुताबिक धनी-गरीब, जात-पात, धर्म-अधर्म, सब इंसानों द्वारा स्वार्थ वस गढ़ी गई चीजें है। इनके नाम पर दुनिया में आज राजनीति की जा रही है। अत: इन सब चीजों से लोगों को ऊपर उठने की जरुरत है। राणा कालीन समाज में जातीय व्यवस्था का कठोर रुप में व्यवहार किया जाता था। अछूतो की स्थिति समाज में अत्यंत दयनीय थी। योगमाया ने इस विसंगति का अंत करने के लिए दलित समुदाय के लोगों को पूजा-पाठ में बुलाकर उच्च जाति के लोगों के साथ बिठाना शुरु किया ताकि इस विकराल असमानता को कम किया जा सके। लेकिन सत्तापक्ष इसको विद्रोह समझने लगा था। इसलिए योगमाया को राज्य की तरफ से धमकियां मिलने लगी थी। फिर भी योगमाया ने सामाजिक विभेद को अंत करने के मुहिम को निरंतरता देते हुये अपने जान की आहुति दे दी। यह एक बहुत बड़ा योगदान था समाज सुधार के पक्ष में। जातीय समस्या चाहे वह नेपाल में हो या भारत में एक जटिल समस्या के रुप में दिखाई पड़ती है। इसके अंत के लिए अनेकों पहल कियें जा चुकें हैं। चाहे वह सामाजिक स्तर से हो या राजनीतिक स्तर से। फिर भी इसमें अपेक्षित परिवर्तन नहीं आ पाया है। इसलिए संवैधानिक अधिकार प्राप्त कर लेने से मात्र समस्या का समाधान हो सकता है कि मान्यता भी कमजोर दिखाई पड़ती है। सामाजिक असमानता को दूर करने के लिए संविधान में उल्लेखित मान्यताओं को व्यवहार में लागू करना अनिवार्य है। इसके साथ-साथ उच्च वर्ग के लोगों को अपनी संकुचित मानसिकता में भी बदलाव लाने की आवश्यकता है। अंर्तरजातीय विवाह को बढावा देने से भी यह समस्या कुछ हद तक कम हो सकती है। धर्म, परंपरा और रीति-रिवाज जो किसी जाति को निम्न

या उच्च दिखाने वाली है उनमें सुधार लाना होगा । कोई भी काम किसी वंश या जाति के आधार पर न हो कर क्षमता और रुचि पर आधारित होता है कि मान्यता को आगे बढ़ाना होगा ।

५.६ वर्ग संघर्ष की स्थिति और समकालीन नेपाली स्त्री लेखन

वर्ग संघर्ष समाज के दो अलग-अलग आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक हैसियत वाले लोंगों के बीच का अतंर द्वंद्व है । इसमें एक वर्ग शासक या शोषक होता है तो दूसरा वर्ग शाषित या शोषित होता है । समाज में इन वर्गों के बीच निरंतर संघर्ष सापेक्ष या निरपेक्ष, ऊंपरी या आंतरिक रुप में चलता रहता है । जिसे हम सामान्यतया मजदूर और उद्योगपतियों के बीच का संघर्ष या किसान और जमीदारों के बीच के संघर्ष के रुप में जानते हैं । यह संघर्ष कभी हड़ताल के रुप में । कभी जुलूस के रुप में तो कभी सशस्त्र युद्ध के रुप में देखा जाता है । इसका मुख्य जिम्मेदार पक्ष सत्ता या पूंजीपति वर्ग होता है, जो आधारभूत उत्पादन के स्रोत साधानों में प्रत्यक्ष या अप्रत्य रुप से नियंत्रण रखता है । इसके लिए वह विधि, विधान, नियम एवं योजनायें भी बनाता है । वर्ग संघर्ष कभी उग्र रुप में तो कभी धीमी गति में चलता रहता है । दास युगीन काल खंड में सत्ता पक्ष के विरुद्ध जनता का संघर्ष लंबे समय तक उग्र रुप में चला तो इधर सामंती युग में भी जमीदारों और किसानों के बीच का संघर्ष लंबा चला । दास विद्रोह भूमध्य सागर के तटीय देशों में चला था । जहां की शासन व्यवस्था को दास व्यवस्था का मौलिक रुप माना जाता था । इन देशों में भौतिक संरचना के तीव्र विकास और सभ्यता के निर्माण में मुख्य उत्पादक शक्ति दास ही थे । जिनका अपने शरीर पर भी अधिकार नहीं था । सामाजिक उत्पादन पर अधिकार की बात तो कल्पना से परे की बात थी । दास वर्ग के द्वारा उस दासत्व के खिलाफ बार-बार विद्रोह होते रहें । सिसली, मिश्र जैसे देशों में विद्रोहियों द्वारा सत्ता बदले जाने का इतिहास है । सामंती युग में आकर वर्ग संघर्ष का यह रुप बदल गया । इसने बहुपक्षीय और बहु आयामिक रुप धारण कर लिया । एक तरफ उत्पादन के प्रमुख साधन जल, जमीन, खानी,

जंगल आदि सब पर पहले सामंत आभिजात वर्ग का कब्जा था । धीरे-धीरे राजनीतिक परिवर्तन के कारण राज्य व्यवस्थायें बदली समाज में उत्पादन प्रणाली में बृद्धि हुई और अतिरिक्त उत्पादन होने लगा विनिमय प्रणाली का विकास, बाजार विस्तार, वेतन के स्वरुप में परिवर्तन आदि के कारण समाज में कई वर्गों का उदय हुआ और वर्ग संघर्ष की स्थिति सभी क्षेत्रों में बढ़ने लगी । संक्षिप्त रुप में कहा जाये तो वर्ग संघर्ष के स्वरुप में विगत से लेकर वर्तमान तक पहुंचते कई परिवर्तन देखे जाते हैं । सबसे महत्वपूर्ण बात शोषित श्रमजीवी वर्ग की चतेना में अकल्पनीय विकास हुआ है । इसलिए इन में परिपक्वता आ गयी है । चाहे वह वैचारिक रुप में हो या संगठनात्मक रुप में हो या राजनीतिक रुप में हो । किंतु वर्ग संघर्ष का उद्देश्य कल भी दमित शोषित वर्ग को मुक्ति दिलाना था आज भी वहीं है । नेपाली समाज में वर्ग संघर्ष की स्थिति का जायजा लिया जाये तो । यह समाज सामाजिक रुढ़ियों के कारण जाति, धर्म, संस्कृति, लिंग अनेकों वर्गों में बंटा हुआ है । इसलिए वर्ग संघर्ष की स्थिति गंभीर है क्योंकि एक तरफ शहरों में उद्योगपतियों और मजदूरों के बीच का संघर्ष समय-समय पर चरम रुप लेता है तो दूसरी तरफ किसानों, जमीदारों और सरकार के बीच का संघर्ष चलता रहता है । इसके अलावा कई अन्य वर्ग का भी उदय हो रहा है । इसलिए नेपाली समाज में वर्ग संघर्ष की स्थिति एक जटिल समस्या है । जब तक साम्यवादी विचारधारा कार्यान्वयन नहीं होगी तब तक यह समस्या यूं ही बढ़ती जायेगी । साहित्य में वर्ग संघर्ष की स्थिति की चर्चा करे तो आधुनिक युग में आकर नेपाली साहित्य में समाजवादी विचारधारा का विकास हुआ है । इस विचारधारा ने नेपाली समाज के साथ-साथ साहित्य में भी गहरा प्रभाव डाला है । पारिजात पहली ऐसी लेखिका बनी जिसने समाजवादी विचारधारा को साहित्य में प्रयोग किया और समाज में व्याप्त विसंगतियों को साहित्य में उतारना शुरु किया । भवानी प्रसाद पाण्डे अपने शोध में लिखते है कि **"वैसे तो (२०२९) साल से (२०३३) साल तक देश में कोई राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन नहीं हुआ । लेकिन पारिजात ने श्रमिक जनताओं के साथ हो**

रहे व्यापक शोषण एवं उत्पीड़न को साहित्य में चित्रित कर उन्हें मुक्ति दिलाने का संकल्प लिया है ।"[29]

पारिजात की कवितायें, कहानियां, उपन्यास आदि सभी विधाओं में वर्ग संघर्ष की स्थिति देखी जा सकती है । यदि इनके उपन्यास दीवार के अंदर और बाहर की बात करे तो इस उपन्यास में चार वर्गों का उल्लेख हुआ है । एक निरंकुश सत्ता है, जो जनताओं का विविध प्रकार से शोषण कर रही है, दूसरा वर्ग जनता है जो निरंकुशता के खिलाफ विरोध पर उतर आयी है । तीसरा वर्ग सरकारी कर्मचारी या ठेकेदार है, जो मजदूरों के पारिश्रमिक और रासन पर कमीशन खाकर मजदूर सर्वहारा वर्ग का शोषण कर रही है । ये चौथा सर्वहारा वर्ग समाज का सबसे उपेक्षित वर्ग है । राज्य की सभी सुविधाओं से वंचित अशिक्षा और अभाव की जिंदगी जीने पर बाध्य है । पारिजात ने गोर्की और प्रेमचंद की तरह किसी उद्योगों में काम कर रहें मजदूर नहीं बल्कि सड़को पर पसीना बहाने वाले बिना घरबार के सर्वहारा मजदूरों की स्थिति का चित्रण किया है । विकास की धीमी गति से कछुये की चाल की तरह आगे बढ़ रहे नेपाल में सर्वहाराओं के लिए इससे बेहतर दूसरा कोई विकल्प नहीं था । क्यूरी इस सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है जो अन्य मजदूरों की तुलना में थोड़ा सचेत है । इसलिए जब उसे दंगा का आरोप लगाकर काम से बाहर निकाल दिया जाता है, तो विरोध करते हुये आवेश में आकर कहता है । मैं वो सब कुछ जानता हूं किस तरह से आप लोग हमारी मजदूरी और राशन पर कमीशन खाते हैं । मुझे वो सब पैसा वापस चाहिये वरना मैं किसी भी मजदूर को काम नहीं करने दूंगा । वैसे तो ये सामान्य सी घटना लगती है परंतु इसने संपूर्ण नेपाली समाज के सर्वहाराओं की स्थिति के यथार्थ को चित्रित किया है । सत्ता के शोषण के यथार्थ को चित्रित करते हुये लेखिका ज्वाला के माध्यम से कहती है **"कानून सत्ता का गुलाम है, किसको पता नहीं है, फिर भी हम संकट के समय पुलिस से ही आश लगाये रहते है, कितनी हास्यास्पद बात है**

।"[30] सत्ता को एक वर्ग के रुप में प्रस्तुत करके लेखिका ने समाजवादी अवधारणा को लागू करने की ओर भी संकेत किया है । ताप उपन्यास में शारदा शर्मा ने धार्मिक स्थलों में उच्च पद वाले लोगों द्वारा निम्न पद के लोगों का शोषण किये जाने के बात को साझा किया है । उनका मानना है कि मंदिर और मठों के भीतर कार्यरत लोगों के बीच एक प्रकार का संघर्ष चलता रहता है । ऊंचे और नीचे पद की भावना द्वंद्व को सिर्जना करती है जो धीरे-धीरे एक बड़ी समस्या के रुप में परिणत होती जाती है । इसके अलावा पितृसत्तात्मक समाज में लैंगिक संघर्ष भी वर्ग संघर्ष के ही श्रेणी में आता है । चन्द्रिका और सुजाता इस उपन्यास की स्त्री पात्र नेपाली समाज में स्त्री संघर्ष के यथार्थ को बयान करने वाले चरित्र है । आन्विका गिरी का उपन्यास मान्छे को रंगं (आदमी का रंगं) नेपाल की माओवादी क्रांति के संघर्ष की कथा को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है । इस उपन्यास की पृष्ठभूमि वर्ग संघर्ष पर आधारितर है । जनयुद्ध में स्त्री सहभागिता का पक्ष भी उपन्यास में प्रबल रुप में उभरकर सामने आता है । तत्कालीन सत्ता पक्ष की निरंकुशता और विभेद की नीति के कारण समाज में असमानता और विभेद की स्थिति ने कई समस्याओं को आमंत्रित कर लिया था जिसके कारण समाज में सामंती वर्ग का वर्चस्व बढ़ा । सामाजिक कुरीतियों को फलने फूलने का अवसर भी मिला । सामाजिक न्याय की स्थिति कमजोर पड़ी । गांव के किसान वर्ग दोहरे शोषण के शिकार हुयें । स्त्रियों की स्थिति में कोई सुधार नहीं आ पाया । इन्हीं वजह से माओवाद का जन्म हुआ और नेपाली समाज में एक नयी चेतना जागी । समानता की, वर्ग भेद के अंत की, पितृसत्ता के अंत की, सामंतवाद के अंत की, पूंजीवाद के अंत की । एक नये नेपाली समाज की परिकल्पना ने जनता में उत्साह भर दिया था । इसी उत्साह और संघर्ष का वणर्न इस उपन्यास में किया गया है । हरिमाया भेटवाल का उपन्यास कल्ली भी नेपाल के ग्रामीण समाज में देखे जाने वाले वर्ग संघर्ष के यथार्थ को चित्रित करता है । उपन्यास की कल्ली मात्र पितृसत्तात्मक समाज की एक उपेक्षित पात्र है । जो निरंतर संघर्षरत है फिर भी

उसकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति ज्यों की त्यों है । समाज में सम्मान की स्थिति तो उसके लिए कल्पना मात्र है । यहां तक कि पति से ज्यादा शिक्षित होने पर भी उसे वह सम्मान नहीं मिलता जो उसके पति को मिलता है । उपन्यास में लाहुरे बाँ सामंती वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है जो इतना क्रूर है कि अपनी पोती के उम्र की लड़की कल्ली के साथ यौन दुर्व्यवहार करता है । इसी डर से कल्ली का बालविवाह किया जाता है जो उसके लिए जीवन भर की यातना बन जाती है । लाहुरे बाँ उसके पिता की जमीन पाने की लालच में उसे दारु पीलाकर उसकी हत्या कर देता है और पुलिस को भी अपने पक्ष में कर लेता है । जिसके कारण उसकी माँ लक्षीमा और भाई घरवार विहीन हो जाते है । इसी दुख से आत्महत्या कर लेते हैं । वैदेशिक रोजगार के लिए विदेश गया हुआ कल्ली का पति भी व्यापारियों के कारण किसी हत्या के आरोप में फंसा दिया जाता है जिसे कल्ली अनेकों प्रयत्न करके छुड़ाती है । इस तरह हम देखते है कि नेपाली लेखिकाओं ने अपने देश के सामाजिक संरचना को बहुत ही बारीकी से जाना और परखा है । समाज की छोटी-बड़ी घटना की चर्चा कर के स्त्री सचेतना का उदाहरण पेश किया है । इस आधार पर हम कह सकते है कि हिंदी और नेपाली समकालीन लेखिकाओं में अपने समय के सामाजिक, राजनीति, आर्थिक परिवेश की जानकारी में कोई कमी नहीं दिखाई पड़ती है ।

निष्कर्ष : हिंदी और नेपाली स्त्री लेखन में ग्रामीण राजनीति वर्ग और जाति के संबंध में तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों देशों का ग्रामीण परिवेश एक ही समान है । दोनों देशों के गांव जाति, धर्म, वर्ग, लिंग, क्षेत्र के आधार पर बंटे हुये हैं । दलितों की स्थिति दोनों देशों में दयनीय अवस्था में है । ब्राह्मण वर्चस्ववादी समाज में दलित समुदाय की बस्तियां कोशों दूर किसी कोने में बसाई जाती है । उसकी उपस्थिति समाज में केवल उच्च जातियों की सेवा के लिए मात्र है । जो समाज में निम्न स्तर का काम करने के लिए जाने जाते है । यह जाति शिक्षा, स्वस्थ्य, सुरक्षा, न्याय जैसे अतिआवश्यक मानव अधिकार से वंचित

रहता आया है । लेकिन दोनों देशों में लोकतंत्र की व्यवस्था के बाद स्थिति में थोड़ा परिवर्तन देखा जाने लगा है । आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में पहुंच न हो पाने से इस समुदाय का विकास संतोषजनक स्थिति में नहीं है । भारतीय और नेपाली ग्रामीण समाज में स्त्री की स्थिति पुरुषों की तुलना में आर्थिक और राजनीतिक दोनों पक्ष से अत्यंत कमजोर है । इसका कारण पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना और स्त्री शिक्षा या चेतना का अभाव है । दोनों देशों के संविधान में 33 प्रतिशत स्त्री सहभागिता को अनिवार्य करने के बाद ही स्थिति में कुछ सुधार आने लगा है । वर्ग संघर्ष की स्थिति आधुनिक औद्योगिकीकरण के कारण बढ़ रही है परंतु गरीब किसान एवं मजदूरों की चेतना के स्तर में वृद्धि होने के कारण शोषण का विरोध भी हो रहा है । दोनों देशों में ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में शोषण की अलग-अलग प्रक्रियायें देखी जा रही है । भारत में विदेशी आक्रमण के कारण अन्य विदेशी संस्कृति का प्रभाव अधिक देखा जाता है तो नेपाल में इस तरह की स्थिति नहीं है । साहित्य के संदर्भ में हिंदी स्त्री लेखन नेपाली स्त्री लेखन की तुलना में एक विशाल फलक को आत्मसात किये हुये बहुसंख्यक रुप में आगे बढ़ रहा है और नेपाली साहित्य संख्यात्मक रुप में कम है परंतु संतोषजक बात यह है कि समाज की समस्याओं को साहित्य में उताने में वह सफल हो रहा है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राजकिशोर, (अनु), भीमराव अंबेड़कर, जातिका विनास, पृ. 57
2. चौबे, देवेन्द्र, यादव, अजय कुमार, तेली गणपत (सं.), हिंदी साहित्य का इतिहास ुकुछ पाठ कुछ विचार, पृ. 274
3. वही, पृ. 275
4. वही, पृ. 265
5. http://www.niradpr.org.in
6. अक्षयवर, देविना, समकालीन स्त्री उपन्यसा लेखन में राजनीतिक चेतना (१९९०-२०१०), वर्ष २०१५, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
7. कांकरिया, मधु, खुले गगन के लाला सितारे, पृ. 136
8. Chattopadhyaya, Suhrid Sankar, www.frontline.in, 26 th june 2008, Vol.25, Issue11
9. भंडारी, मन्नू, महाभोज, पृ. 7
10. पुप्पा, मैत्रेयी, चाक, पृ. 7
11. वही, पृ. 433
12. वही, पृ. 25
13. राजकिशोर, (अनु), भीमराव अंबेड़कर, जाति का विनास, पृ. 58
14. वही, पृ . 59
15. http://www.samkaleenjanamat.in
16. मैत्रेयी, पुप्पा, चाक, पृ. 208
17. डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ.324
18. वही, पृ. 324
19. भंडारी, मन्नू, महाभोज, पृ. 1
20. गाबा, ओमप्रकाश, राजनीति-चिंतन की रुप रेखा, पृ. 187
21. खेतान, प्रभा, तालाबंदी, पृ. 97
22. कांकरिया, मधु, खुले गगन के लाल सितारे, पृ. 20

23. https://www.nepjol.info.tuj. View
24. https://www.elibrary.tucl.edu.np
25. https://www.nepaljapan.com
26. https://www.elibrary.tucl.edu.np
27. https://www.ekantipur.com
28. प्रतिक्षा, सरस्वती, नथिया, पृ. 241
29. डॉ. पाण्डे, भवानी, प्रसाद, पारिजात के उपन्यास में समाजवादी यथार्थ, पृ. 174
30. पारिजात, दीवार के अंदर और बाहर, पृ. 56

अध्याय छह

६. स्त्री भाषा का राजनीतिक संदर्भ

६.१ स्त्री भाषा की पृष्ठभूमि

पितृसत्ता के जाल में फंसी स्त्री को अठारहवीं शताब्दी में आकर पता चलता है कि उसकी एक स्वतंत्र पहचान हो सकती है । वह पुरुषों की तुलना में कमजोर या अविवेकी नहीं है बल्कि बनाई गई है । परतंत्रता उसकी बाध्यता नहीं है बल्कि उस पर नियंत्रण रखने के लिए बनाया गया हथियार है । जिसके माध्यम से पुरुष स्त्री को जैसे चाहे वैसे अपने हक में प्रयोग कर सकता है । इसी ज्ञान व चेतना के कारण स्त्री अपने स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान के लिए अग्रसर हुई हैं । उसने स्त्री जीवन से जुड़े सभी पहलूओं को खोजने का अभियान जारी किया । इसी दौरान उसने महसूस किया कि स्त्री स्वतंत्रता उसके अस्तित्व की एक अलग पहचान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकार को प्राप्त करने से मात्र पूर्ण नहीं हो सकती । उसे अपनी स्वतंत्र पहचान के लिए स्त्री की भाषा, कला एवं साहित्य को भी स्वतंत्र रुप में अस्तित्व में लाना जरुरी है । किसी भी भाषा का संबंध उसके बोलने या उपयोग करने वाले वर्ग, समुदाय, जाति या लिंग से होता है । इसलिए स्त्री भाषा का संबंध उसके भोगे हुए या भोगे जा रहे यथार्थ से है । इसी प्रसंग में जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं **"स्त्री के हितों की लड़ाई का स्त्री भाषा के निर्माण की प्रक्रिया में गहरा संबंध है । स्त्री हितों की रक्षा एवं विस्तार की कोशिश जितनी तेज होगी स्त्री भाषा के निर्माण की संभावनायें उतनी ही प्रबल होगी । स्त्री संघर्ष के बगैर स्त्री भाषा संभव नहीं है । उसी तरह स्त्री की भाषा के बगैर स्त्री के संघर्ष को सही दिशा देना भी संभव नहीं है ।"**[1]

यानी कि स्त्री भाषा और उसका जीवन संघर्ष एक दूसरे से अंतर्संबंध रखता है । दूसरे शब्दों में कहे तो स्त्री भाषा की उत्पत्ति उसके जीवन संघर्षों से मानी जा

सकती है । स्त्री के लिए उसकी भाषा केवल विचार या भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र नहीं है । बल्कि उसकी अस्मिता की लड़ाई लड़ने का एक सशक्त हथियार भी है । इसीलिए उसने इस सवाल का जवाब ढूंढने का प्रयास किया कि क्या स्त्री भाषा के माध्यम से स्त्री जीवन के संघर्षों एवं द्वंद्व को समझा या अभिव्यक्त किया जा सकता है ? क्या स्त्री भाषा इसके लिए सक्षम है ? अगर नहीं है तो इसमें क्या-क्या सुधार किये जा सकते है ? पुरुष भाषा की तुलना में किस-किस संदर्भ में स्त्री भाषा अलग या भिन्न है ? इसके अलावा स्त्रियों ने यह भी पता लगाया कि पुरुष भाषा का वर्चस्व कायम रखने के लिए पुरुषों ने कौन से सामाजिक राजनीतिक हथकण्डे अपनाये हैं । मैंनेजर पाण्डे ने पुरुषों के इस षडयंत्र का पर्दाफाश करते हुए लिखा है कि **"हिंदी में स्त्रियों संबंधित ऐसे अनेक शब्द है जिनका कोई पुलिंग नहीं है । उदाहरण के लिए हिंदी में 'सती' शब्द है लेकिन उसका कोई पुलिंग नहीं है । वैसे ही 'बंध्या' है लेकिन उसका कोई भी पुलिंग नहीं है । हिंदी में ऐसे शब्दों के न होने का अर्थ है हिंदी समाज उसकी संवेदना और संस्कृति में पुरुष संबंधी अनेकों स्थितियों को अस्वीकार करता है ।"**[2] इसके अलावा पुरुषसत्ता को शासक वर्ग के रुप में प्रस्तुत करने वाले ऐसे अनेकों शब्द है जिन पर गौर किया जा सकता है । उससे यह पता लगता है कि भाषिक रुप में स्त्री को नीचा या परनिर्भर दिखाने का षडयंत्र कैसे किया गया है । स्त्री पुरुष संबंधों की प्रचलित शब्दावली पर गौर करते हुए मैनेजर पाण्डे लिखते है **"इन शब्दावलियों में स्वतः स्त्री की पराधीनता और पुरुषों की श्रेष्ठता निहित है । जैसे 'वर' शब्द श्रेष्ठता का सूचक है जबकि 'कन्या' हीनता का या 'पति' शब्द का अर्थ होता है मालिक या स्वामी । यहाँ स्पष्ट करना जरुरी है कि 'पति' शब्द का अर्थ श्रेष्ठता का ही नहीं सत्ता का भी सूचक होता है । जैसे वैदिक काल में प्रयुक्त भूपति या ग्रामपति जैसे शब्द स्वामित्व के द्योतक होते थे । इसी हिसाब से स्त्री भी षुरुषों के लिए एक संपत्ति की तरह है जिसका पति पतित होने पर भी पति (स्वामी) बना रहता है ।"**[3]

मैंनेजर पाण्डे के इस विचारों को और अधिक स्पष्ट करने के लिए स्त्री के संदर्भ में प्रयोग किये जाने वाले अन्य शब्दों को भी इसमें शामिल किया जा सकता है। जैसे वेश्या, कूल्टा, बांझ, रण्डी, रखैल, चूड़ेल आदि। ये शब्द स्त्री के चरित्र को नीच और पतित होने के संदर्भ में प्रयोग किये जातें हैं। जबकि पुरुषों के चरित्र के लिए ऐसे किसी शब्दों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। जैसा कि हमने पहले ही उल्लेख कर लिया है कि पुरुष कभी पतित नहीं होता वह वेश्यागमन करता है परंतु खुद वेश्या नहीं होता। इसी तरह वह स्त्रियों का बलात्कार करता है परंतु दोषी या कसूरवार नहीं होता। कसूरवार या दोषी वे स्त्रियां होती है जिनका बलात्कार होता है। पुरुष चार विवाह के उपरांत भी वर बन सकता है परंतु स्त्रियां एक विवाह में अपनी पवित्रता गंवा देती है। इसलिए पतिव्रता, पवित्रता, कौमार्य जैसे शब्दों का प्रयोग सिर्फ स्त्री के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है। भारतीय सामाजिक संरचना में भाषा का सामाजिकरण भी इसी आधार पर होता है। यही वजह है कि पितृसत्तात्मक भाषा शक्तिशाली बनकर उभर आयी और स्त्री भाषा उपेक्षित होकर हाशिये पर चली गई और वह निषेध भाषा के रुप में दबती-कुचलती रही। यहां तक कि भारतीय समाज में लिंगभेद की स्थिति केवल परिवार की बोलियों में ही सीमित नहीं रही। स्कूलों के पाठ्यक्रम में भी यह विभेद देखा जाता है। बचपन से ही हमें यह वाक्य रटाये जाते है कि राम पुस्तक पढ़ रहा है। सीता झांडू लगा रही है। मोहन खेलने जायेगा। रमा खाना बनायेगी। बच्चे इसी मानसिकता से बड़े होते है, उन्हें लगता है कि पुरुषों का काम पढ़ना या खेलना है और स्त्रियों का काम झाँडू लगाना या खाना बनाना है। सामाजिकरण की इस प्रक्रिया ने स्त्री भाषा और जीवन पर और अधिक गहरा प्रभाव डाला है और इन्हीं कारणों की वजह से पुरुष भाषा शक्तिशाली एवं ओजपूर्ण बनती गई। पुरुष और स्त्री भाषा के बीच असमानता के कारण भी इन्हीं तत्वों को माना जा सकता है। फ्रेन्च नारीवादी लेखिका लूइस इरिगरे भाषा पर पुरुषसत्ता के वर्चस्व के बारे में बताते हुए लिखती हैं **"एक बच्ची जब बोलना शुरु करती है, तब उसे खुद पर या खुद से बोलना**

संभव नहीं होता है । वह पुरुष भाषा में सीमित रहती है और स्वाभिव्यंजना से वंचित रह जाती है। पुरुष भाषा उसे अपनी मां तथा दूसरी औरतों से अलग रखती है और वह उसमें नहीं बोलती हुई भी उसे बोलती रहती है।"[4]

इस अभिव्यक्ति की सच्चाई पर किसी को संदेह नहीं होना चाहिए कि पुरुष केन्द्रित भाषा व संरचना पर ही एक स्त्री की परवरिश होती रही है । इतना ही नहीं मध्यकाल तक स्त्रियों को एक सीमा से बाहर तक सोचने या लिखने पर भी पाबंदी थी । जाहिर है कि लेखन, वाचन और आलोचना जैसे हर क्षेत्र में पुरुष का ही वर्चस्व था। यही कारण था कि बहुत समय बाद तक संरचनात्मक और अभिव्यक्ति के रुप में दोनों भाषाओं में भिन्नता दिखाई पड़ने का। स्त्रियों की भाषा पर इसी तरह के अनेक तत्वों का हस्तक्षेप रहता है । यह हस्तक्षेप पाठ में और पाठ से बाहर भी होता है जैसे स्त्री की मनोदशा, उनके जीवन पर प्रभाव डालने वाले तत्व, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश आदि । स्त्रियां किस तरह के सामाजिक अलगाव या उपेक्षा से गुजरी है इसका भी अंदाजा उसकी भाषा के माध्यम से लगाया जा सकता है । स्त्री भाषा जहां एक ओर उसकी जिंदगी की विवशता को प्रकट करती है। वहीं दूसरी ओर उसकी मुक्ति की छटपटाहट को भी बयान करती है। प्रो. देबेन्द्र कुमार चौबे स्त्री भाषा के संदर्भ में लिखते है **"भाष एक ओर जहां उनकी सीधी सादी जिंदगी को दिखलाती है, वहीं दूसरी ओर उनके अंदर के संघर्ष और उससे उत्पन्न नई स्थितियों की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट कराती है।"[5]**

इस विचार के मुताबिक यह माना जा सकता है कि स्त्री भाषा स्त्री के समग्र पक्ष को समेटने में सक्षम है । इस भाषा में भी अन्य भाषाओं की तरह समयानुसार परिवर्तन देखा जा सकता है । भारतीय संदर्भ में स्त्री भाषा के इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो प्राचीन काल से ही स्त्री भाषा स्त्री के भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने में सक्षम दिखाई पड़ती है। उसकी भाषा में स्त्री जीवन के विविध

पक्षों को समेटने का सामर्थ्य भी है और अभिव्यक्ति की कला भी है । उसकी भाषा में विशेषकर जीवन के संस्कार, वात्सल्य का भाव, भक्ति भाव, प्रेम भाव, जीवन की जटिलता, त्रास, बेदना, उत्पीड़न लगायत सौम्यता भी दिखाई पड़ती है । जब एक स्त्री बच्चे के लिए लोरी रचती है तो उसमें सृजन शक्ति की क्षमता देखी जा सकती है । वहीं दूसरी और जब वह उस रचना को लयबद्ध करके मधुर स्वर में गाती है तो उसकी अभिव्यक्ति कला का सामर्थ्य भी दिखाई पड़ता है । इसी तरह लोक संस्कृति में भी स्त्री रचना और भाषा की अहम भूमिका देखी जा सकती है । विवाह में गाये जाने वाले गीत, तीज, त्यौहारों में गाये जाने वाले गीत, खेत खलिहान एवं अन्न पूजा के लिए रचे जाने वाले गीत । ईश्वर की आराधना एवं पूजा-पाठ के लिए तैयार किये जाने वाले भजन कीर्तन आदि में स्त्री भाषा एवं अभिव्यक्ति की कला को बारीकी से समझा जा सकता है । यह स्त्री का दुर्भाग्य है कि स्त्रियों ने अपने इस भाषा के ज्ञान को वैज्ञानिक शक्ल देकर पुरुष भाषा की तरह दुनिया में प्रचार नहीं किया । इसके पीछे स्त्री की अदूरदृष्टिता, उसके आर्थिक, सामाजिक परनिर्भरता को दोषी माना जा सकता है । भक्ति आंदोलन के दौरन भी हमने स्त्री के सशक्त विचार प्रवाहमयी भाषा के रुप में देखा है । कश्मीर की लल्लद भारतीय स्त्री सभ्यता को दुनिया के सामने परिचय कराने वाली पहली सशक्त महिला थी । जिन्होंने पुरुषसत्ता के सामाजिक संरचना का विरोध ही नहीं किया बल्कि भारतीय स्त्री समाज को स्वतंत्र जीवन और अस्तित्व निर्माण किये जाने का मार्ग भी बताया । उनके श्लोकों में आत्मा-परमात्मा के बीच के तारतम्य और संबंध के साथ-साथ सामाजिक रुढ़ियों के प्रति विद्रोह भी देखा जा सकता है । इसी तरह पितृसत्तात्मक समाज में तमिल की गोदा अंडाला जैसी एक अद्‌भुत स्त्री व्यक्तित्व का भी परिचय हमें मिलता है । इन के बारे में किशोर कुणाल लिखते है बारह आलवार संतों में अंडाल ही एक मात्र नारी आलवार संत थी । इनकी तुलना बड़े संतो के साथ की जाती है । इसके अलावा कारैक्काल अम्मैयार, अक्कामहादेवी, मीराबाई, बावरी साहिबा, जनाबाई, सहजोबाई, वेणस्वामी,

मुक्ताबाई, सोयराबाई, निर्मलाबाई, ताजबीबी, जातूकूरी मोल्ला, हब्बा आतून, बहिणाबाई, संत उमा, कोकिलाबाई, नूपीबाई आदि संत महिलायें थी। इन्होंने भक्ति परक साहित्य की रचना की इनकी वाणी में भक्ति रस के साथ स्त्री जीवन की जटिलता, संघर्ष और पुरुषसत्ता के प्रति असंतुष्टि दिखाई पड़ती है। सरल और दबे हुए शब्दों में इस समय की विदुषियों ने अपने विचार व्यक्त किये है। हिंदी साहित्य के इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि आदिकाल की तुलना में भक्तिकाल भाषा के विकास के संदर्भ में अधिक प्रौढ़ था। कबीर, तुलसी, सूर, जायसी, मीरा जैसे साहित्यकारों ने हिंदी में नयें शब्दों, भाषा शैलियों, छंदों और विचारों का इजाद किया। रीति काल में भाव की अपेक्षा भाषा के अंलकरण पर अधिक ध्यान दिया गया। अंलकार, छंद, रस जो काव्य कों सुंदर बनाने के प्रसाधन थे उनका प्रयोग चमत्कारिक रुप में किया गया। इस समय की भाषा का लक्ष्य कम शब्दों में अधिक से अधिक भाव एवं विचारों की अभिव्यक्ति करना था। बिहारी, मतिराम, घनानंद, ग्वाल, भूषण जैसे कवियों ने हिंदी भाषा का चरम विकास किया परंतु गौर तलब बात यह है कि इन कालों में दो, चार स्त्री लेखिकाओं ने प्रतिनिधित्व तो किया परंतु वे भी स्त्री भाषा का इतना विकास नहीं कर पायी। स्त्री जीवन की जटिलताओं और भक्ति के कुछ पद लिखने में सफल रही। आधुनिक युग पुरुष चेतना के साथ-साथ स्त्री चेतना का भी युग था। साहित्य पद्य से गद्य पर अवतरण हुआ। विषय वस्तु के अलावा नवीन भाषा शैली विचार और गद्य विधाओं का आविष्कार होने लगा। इस परिवर्तन ने साहित्य को एक बड़ा फलक प्रदान किया। सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा जैसी विचारशील महिलाओं का साहित्य क्षेत्र में अवतरण हुआ। जिनके कारण धीरे-धीरे स्त्री भाषा आधुनिकता की ओर आगे बढ़ने लगी। दबी, कुल्ची स्त्री भाषा ने अपने पंख पसारना शुरु किया। महादेवी की कविताओं ने स्त्री के अद्भुत शब्द चैन की क्षमता को लोगो के समक्ष रखा तो उनकी श्रृंखला की कड़ियां ने स्त्री के विचार दर्शन की क्षमता को लोगों के समक्ष रखा। सुभद्रा कुमारी चौहान स्त्रियों में राष्ट्रीयता की भावना जगाने के काम में मसरुफ हो गई

। उनकी कविताओं में तत्कालीन स्त्री वीरांगनाओं का वीर रस युक्त साहित्य देखा गया। स्वतंत्रता संग्राम के बहाने स्त्रियों ने स्वतंत्रता और स्व: की पहचान के महत्व को समझ लिया था। इसलिए अधिकतर उच्च घरानों की महिलायें जो थोड़ी बहुत पढ़ी लिखी थी उन्होंने अपनी एक अलग पहचान बनाने के लिए साहित्य लिखना शुरु किया । श्रीमती सरस्वती गुप्ता, प्रियंवदा देवी, हेमंतकुमारी, यशोदा देवी कंन्चनलता सब्बरवाल आदि महिलायें सामने आयी। इन्होनें कहानी और उपन्यास के माध्यम से स्त्री भाषा में तत्कालीन समाज में स्त्री की स्थिति को बयान किया । हालांकि इनकी भाषा में विरोध का चरम स्वर नहीं था लेकिन पितृसंत्ता के प्रति असंतुष्टि का भाव अवश्य था। इन लेखिकाओं ने स्त्री के आदर्श रुप को ही यथावत स्वीकार करते हुए समाज परिवर्तन की परिकल्पना को शब्द-बद्ध किया है। इनकी भाषा में दबा और सहमा हुआ भाव दिखाई पड़ता है। इससे सहज अंदाजा लगाया जा सकता है कि इस समय कि लेखिकायें खुल नहीं पायी थी। कहीं न कहीं उनमें पितृसत्ता का त्रास उनके अंर्तमन तक बैठा हुआ था। इसलिए उनकी भाषा को शैशव अवस्था की भाषा कहा जा सकता है।

६.२ समकालीन हिंदी विमर्शवादी साहित्य और स्त्री भाषा

प्राचीन सामाजिक मान्यताओं को तोड़ते हुए स्त्री भाषा जिस रफ्तार से समृद्धि की ओर आगे बढ़ रही है, उससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि यह भाषा दुनिया के अन्य तमाम भाषाओं को जल्द ही पीछे छोड़ देगी। इस बात में सत्यता इसलिए है कि आज जो स्त्री भाषा का स्वरुप हमारे सामने आ रहा है वह पुरुष भाषा की तुलना में अधिक सुगठित, निर्भिक और स्वतंत्र है। स्त्रियों ने विषय वस्तु के साथ-साथ अभिव्यक्ति कला और भाषा को भी आधुनिक मोड़ दिया है। लैंगिक विभेद पर आधारित पुरुष साहित्य का विरोध करते हुये स्त्री लेखिकाओं ने अपनी भाषा में स्त्री को प्रधानता देने वाले शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। स्त्री भाषा एक तरफ पुरुषों की हैकमवादी प्रवृत्ति का विरोध करती है तो दूसरी तरफ अपनी इच्छा, आकांक्षाओं और अधिकार के सवाल को बेहिचक समाज के सामने रखती है।

समकालीन हिंदी लेखिकाओं ने विषयवस्तु, पात्र, परिवेश, घटनक्रम को माध्यम बनाकर स्त्री भाषा को अधिक से अधिक सुगठित बनाने का प्रयास किया है। स्त्री भाषा बिना किसी आवरण के अपने विचार और भाव अभिव्यक्त करने में सक्षम देखी गयी है। भाषा में वाक्य गठन हो या शब्द चैयन कहीं भी स्त्री चुकी नहीं है उसने बड़ी सजकता और बौद्धिकता से भाषा का प्रयोग किया है। स्त्री भाषा कहीं पर सरल और सामान्य दिखती है तो कहीं पर इतनी जटिल और बौद्धिक है कि सामान्य पढ़ा लिखा व्यक्ति उसके भाव तक को समझ नही पाता। कहने का तात्पर्य स्त्री भाषा में जटिलता और सरलता दोनों का समन्वय पाया जा सकता है। यदि हम स्त्री विमर्शवादी आलोचकों या समालोचकों की भाषा का अध्ययन करे तो भाषा में जटिलता और क्लिष्टता दिखाई पड़ेगी। आलोचना और विमर्श के लिए विचारधारा, आशय निरुपण और सैद्धांतिक की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए ऐसी रचनाओं में स्वत: भाषा में क्लिष्टिता आ जाती है। आलोचना और विमर्श ऐसी रचनाएं है जिसमें कल्पना से ज्यादा विचार विमर्श और तथ्यों की आवश्यता होती है। लेखक को वैयक्तिक पूर्वाधारों को छोड़कर निरपेक्ष विवेक का प्रयोग करना होता है। संक्षिप्त रुप में कहे तो अद्यतन सैद्धांतिकी ज्ञान, वैचारिकी, विवेचना शक्ति, संवेदनात्मक ज्ञान, सामयिक परिप्रेक्ष्य का पूरा आंकलन इस कार्य के लिए आवश्यक है। इसके अलावा लेखक की अंदरुनी दृष्टि की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भी विषय वस्तु की आलोचना एवं विमर्श के लिए भाषा अवश्य है। साथ ही ज्ञान के कार्यकारी पक्ष भी उतना ही आवश्यकता है। पुरुषों की तुलना में स्त्री आलोचकों की संख्या हिंदी में कम दिखाई पड़ती है। इसका कारण स्त्री की दोहरी जिम्मेदारी और कार्य व्यस्ता को माना जा सकता है क्योंकि आलोचना और विमर्श पर कलम चलाने का मतलब है कि भाषा अभिव्यक्ति के ज्ञान के साथ-साथ विषय वस्तु का गहन गंभीर अध्ययन भी जरुरी है। लेकिन यह संतोषजनक बात है कि भारत में स्त्री आलोचकों और विमर्शवादी लेखिकाओं की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। यूं तो हिंदी में स्त्री विमर्श आलोचनात्मक लेखन की शुरुआत

छायावादी कवयित्री महादेवी बर्मा से मानी जाती है । हिंदी में महादेवी का योगदान संस्मराणात्मक लेखन, रिपोतार्ज, रेखाचित्र के अलावा विमर्शवादी गद्य साहित्य में भी है महादेवी हिंदी कि ऐसी लेखिका है, जिन्होंने हिंदी स्त्री भाषा के साथ-साथ स्त्री वैचारकी को भी लोगों के समक्ष रखा है । स्त्री के आदर्शवादी गुणों की चर्चा करते हुए इन्होंने स्त्री के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकारों की मांग की है । इनकी भाषा काव्य में चित्रात्मक, रहस्यमय, आंलकारिक है तो गद्य में विचार वैविद्य और संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से भाषा का स्वरुप अत्यंत प्रौढ दिखाई पड़ता है । इनकी किसी भी रचना के चार पंक्तियां मात्र पढ़ने से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि लेखिका को शब्दों के अलावा वाक्य गठन और भाषा शैली के संबंध में सूझबूझ काफी गहरी है । महादेवी की भाषा में गंभीर चिंतन के अलावा शालीनता भी देखी जा सकती है । एक तरफ अनंत प्रेमी से मिलने की छपटाहट है दो दूसरी तरफ अपने अधिकारों के प्रति सजकता भी है । इसलिए हिंदी स्त्री भाषा का विकासक्रम महादेवी बर्मा से मानने में कोई हिचक नहीं होनी चहिए । इसके बाद स्त्री भाषा का विकास सीधे साठ और सत्तर के दशक में दिखाई पड़ता है । आलोचना के क्षेंत्र में स्त्री भाषा का विकास करने का श्रेय अनामिका (मन मांझने की जरुरत, स्त्रीत्व के मानचित्र, स्त्री विमर्श का लोकपक्ष, स्त्री विमर्श की उत्तरगाथा), कात्यायनी (दुर्गद्वार पर दस्तक, कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत), रमणिका गुप्ता (दलित चेतना: साहित्यिक और सामाजिक सरोकार, निजधरे परदेशी, आदिवासी कौन, समय के साथ), मृणाल पाण्डे (परिधि पर स्त्री स्त्री, अधिकार और कानून, देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, स्त्री एक लंबा सफर), प्रभा खेतान (बाजार के बीच: बाजार के खिलाफ, भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न, उपनिवेश में स्त्री), मृदुला गर्ग (चुभते नहीं सवाल), नासिरा शर्मा (युद्ध और मुसलमान, औंरत के लिए औरत), मैत्रेयी पुष्पा (खुली खिड़कियां, सुनो मालिक सुनो) विभा देवसरे (स्वागत है बेटी), क्षमा शर्मा (स्त्रीवादी विमर्श समाज और साहित्य) आदि लेखिकाओं को जाता है जिन्होंने स्त्री चिंतन और भाषा दोनों को

इस पुरुष प्रधान समाज में एक बराबरी का मुकाम दिलाते हुए स्त्री साहित्य को समृद्धि के शिखर तक पहुंचाया है । इनकी रचनाओं में स्त्री जीवन की जरुरतों उसकी समाज में स्थिति और सुधार के पक्ष पर गहन, गंभीर बैद्धिक चिंतन दिखाई पड़ता है । अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए लेखिकाओं ने आलोचना के क्षेत्र में प्रचलित विश्लेषणात्मक, विवेचनात्मक, तथ्यात्मक, व्याख्यात्मक, विवरणात्मक और आलोचनात्मक शैली का प्रयोग बड़ी ही सुझबुझ से किया है । विषयवस्तु संबंधी अपने ज्ञान को साझा करने में वे कहीं हिचकिचाती नहीं हैं । स्त्री आलोचकों की नजर स्त्री को पीछे धकेलने वाले सभी तत्वों पर पड़ी है राजनीतिक, सामाजिक, अर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि राज्य के सभी पक्ष को खंगालने का काम स्त्री आलोचकों ने किया है । स्त्री अधिकार के मुद्दें आलोचना का प्रमुख विषय बने हैं । आलोचना के क्षेत्र को आगे बढ़ाने के लिए अनिता भारती, रजनी तिलक, सुशीला टांक भौरे सरला माहेश्वरी, इलिना सेन, सुधा सिंह, राधाकुमार, प्रभा दीक्षित, नीलम कुलश्रेष्ठ जैसी महिलायें निरंतर संघर्षरत हैं । आलोचनात्म विमर्श साहित्य भारत में चले स्त्री आंदोन की जांच-पड़ताल करने के साथ-साथ भारत में रहने वाली सभी वर्ग, जाति और समुदाय की स्त्री की दयनीय स्थिति और समस्याओं के निवारण के लिए भी सरल भाषा में सुझाव देता है । स्त्री भाषा के विकास का दूसरा श्रेय स्त्री कथाकारों और उपन्यासकारों को जाता है । अपने बेवाक लेखन से पितृसत्ता के जड़ो को हिलाकर रख देने वाली लेखिकाओं में कृष्णा सोबती (जिदंगीनामा, मित्रोमरजानी, सूरजमुखी अंधेरे), नासिरा शर्मा (सातनदिया एक समंदर, ठीकरे की मंगनी, जींदा मुहावरे, अक्षयवट, कुइयाजान, जीरो रोड), राजी सेठ (निष्कवच, तत्सम), मृदुला गर्ग (अनित्य, उसके हिस्से की धूप, कठगुलाब, चित्तकोबरा), ममता कालिया (बेघर, नर कदर नरक, एक पत्नी के नोट्स, दौड़, अंधेरे का ताला, दुक्खम सुक्खम, कल्चर वल्चर, सपनों की होम, डिलीवरी) मैत्रेयी पुष्पा बेतवा बहती, इदन्नमम, चाक, झूलानट, अल्माकबूतरी, कहै ईसुरी फाग, चिन्हार, गुनाह बेगुनाह), अनामिका (अवांतरकथा, पर कौन सुनेगा, दस द्वारे का

पिंजरा, तिनका तिनके के पास), प्रभा खेतान (आओ पेपे घर चले, तालाबंदी, अग्निसंभव, छिन्नमस्ता, अपने-अपने चेहरे, पीली आंधी, स्त्री पक्ष) आदि है। जैसा कि हम यह जानते है स्त्री के लिए बेवाकी से लिखना पितृसत्तात्मक समाज में कितना चुनौति पूर्ण कार्य है। जिस समाज में स्त्री को उठने बैठने का तौर तरीका भी पुरुष की इच्छा के मुताबिक सिखाया जाता है। उस समाज में स्त्री के विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति किसी अपराध से कम नहीं है। तसलीमा नसलीन द्वारा अपने विचारों की अभिव्यक्ति के कारण भोगी गई यातना आज भी वर्तमान है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि पुरुषसत्ता आज भी इस बात को स्वीकारना नहीं चाहती है कि स्त्री जैसी चीज जो उसके लिए बनाई गई है वो उसके विरुद्ध में खड़ी हो। उसकी अपनी भाषा हो, विचार वैशिष्ट हो, स्वतंत्र गतिविधियां हो। इसलिए वह तिलमिलाया हुआ दिखाई पड़ता है। आज जो बलात्कार की घटनायें आये दिन पत्रिकाओं की सुर्खियां बन रही है वह उसी का नतीजा है। बहरहाल हमें भाषा के संदर्भ को देखना है तों इस तरह की सामाजिक घटनाओं को बड़े ही आकर्षक शैली में कृष्णा सोबती ने मित्रोमरजानी में अभिव्यक्त किया है। समाज का यथार्थ और पात्रों के चुनाव के साथ संवाद शैली का भी अद्भुत प्रयोग देखने को मिलता है। मित्रों आज की भारतीय महिलाओं का ऐसा उदाहरण है जो अपनी इच्छाओं को दबाती नहीं बल्कि उन इच्छाओं को पूरा करने की कोशिश करती है। कृष्णा सोबती इस उपन्यास के माध्यम से पितृसत्ता द्वारा स्त्री के लिए बनाये गयें उन नैतिक-अनैतिक मूल्यों को तोड़ने का प्रयास करती है। स्त्री कठपुतली या गुड़िया नहीं है वह स्वतंत्र जीवांआत्मा है इसलिए उसकी अनेकों व्यक्तिगत, समाजिक और शारीरिक इच्छायें होती है, जैसे विचारों को सशक्त भाषा शैली में प्रस्तुत किया है। राजेन्द्र यादव उनकी रचना कला के संदर्भ में लिखते हैं **"उनकी रचना धड़ मास की आत्मा-प्रबुद्ध कद्दावर गर्वोन्नत औरत बनकर खड़ी होने लगती है। जरुरी है कभी-कभी रचना खुद रचनाकार को अनावश्यक और अप्रासांगिक बना जाती है।"**[6]

किसी भी उपन्यास की सफलता उसकी कथावस्तु और भाषा अभिव्यक्ति के कौशल पर आधारित होती है । कभी-कभी उपन्यास के पात्र इतने प्रसिद्ध हो जाते है कि लेखक उनके सामने गौण हो जाता है । जैसे प्रेमचंद के उपन्यास का पात्र होरी, मदर उपन्यास का पात्र पावेल वैसे ही मित्रोमरजानी की पात्र मित्रो है । लेखिका ने उस पात्र को इतना सशक्त बना कर खड़ा किया है कि उसके हाव-भाव उसके व्यक्तित्व का निर्माण, संवाद शैली, उसके क्रियाकलाप, अभिव्यक्ति कला आदि इतनी दमखम रखने वाली है कि वह काल्पनिक पात्र जीवंत बन पड़ा है । मित्रो भारतीय नारी को पितृसत्ता की जकड़न से बाहर निकालने के लिए गढ़ी गई पात्र है । धर्म और संस्कृति के नाम पर दबने या कुंठाओं का शिकार होकर जीवन जीना उसे स्वीकार्य नहीं है । वह स्वतंत्र रुप में बिना लागलपेट के अपनी इच्छायों को व्यक्त करने का साहस रखती है । उसकी यही खूबी उसे अन्य पात्रों से विशेष बनाती है । इसलिए मित्रो की भाषा और उसका स्वाभाव स्त्री को उठने बैठने के तरीका सिखाने वाले समाज पर ही तमाचा बन जाता है । मित्रो के इस संवाद से उसके संपूर्ण चरित्र को समझा जा सकता है **"देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता । बहुत हुआ घटते परिवार और मेरी देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास की मच्छली सी तड़पती हूं ।"**[7] इसी तरह यदि हम नासिरा शर्मा की भाषा शैली का अध्ययन करे तो उनकी भाषा आम भारतीय जनता की भाषा है । उनके साहित्य में भारतीय ग्रामीण और शहरी जीवन का सजीव चित्रण मिलता है । इनकी भाषा इतनी प्रभावशाली है कि पात्र सजीव हो उठता है और पाठक की रुचि बढ़ जाती है । साहित्य और भाषा का घनिष्ट संबंध का उदाहरण इनकी भाषा में दिखाई पड़ता है । शांतिस्वरुप गुप्त ने साहित्य और भाषा के संबंध में जो विचार व्यक्त किये हैं **"भाषा उपन्यासकारों के हाथों में एक शक्तिशाली उपकरण है । वह शब्द योजना, वाक्य संरचना, वाक्य विन्यास और ध्वनी पैटर्न के प्रयोग द्वारा अपनी बात को विशेष प्रभावशाली ढंग से संम्प्रेषित करने में समर्थ होता है । पाठक पर विशेष प्रभाव डाल सकता है ।"**[8]

यही भाव भाषा के संबंध में नासिरा शर्मा के साहित्य में देखा जाता है । उनकी भाषा भाव और उद्देश्य की वाहक है, इन्हों ने पात्रों के परिवेश और स्वभाव के आधार पर ही भाषा का अवलंबन किया है । नासिरा की शिक्षा फारसी में होने के कारण इनके साहित्य में अरबी और फारसी के शब्द अधिक दिखाई पड़ते है । इस बात से यह भी प्रमाणित होता है कि लेखक के परवरिश का प्रभाव उसके साहित्य में भी दिखाई पड़ता है लेखक चाहकर भी उसे छुपा नहीं सकता । इसके अलावा इनके साहित्य में इलाहाबाद की बोली और वहां की संस्कृति भी देखी जा सकती है । जिंदा मुहावरे उपन्यास में नासिरा ने उत्तर प्रदेश के फैजाबाद गांव की संस्कृति को दिखाया है । वहां की बोली, परिवेश, संस्कार, वातावरण, रहन-सहन सभी को पूरी तरह समेटने में नासिरा सफल हुई है । नासिरा ने साहित्य में मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग कर के भाषा को और अधिक आकर्षक बनाया है । तारीफों के पुल बांधना, तहलका मचाना, अरमान धरा का धरा रहना, भ्रम टूटना, कटी पतंग की तरह डोलना जैसे प्रचलित मुहावरें और लोकगीत इनके साहित्य को ग्रामीण जीवन की आभा दिलाते है । सात नदियां एक समंदर में उन्होंने इरानी लोकगीत का भी प्रयोग किया है । स्त्री जीवन इनके साहित्य में कुंठा, अकेलापन, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक शोषण के रुप में देखा जाता है । नासिरा का शाल्माली उपन्यास भारतीय समाज में विवाह संस्कार के नाम पर किये जाने वाले शोषण को दिखाता है । शाल्माली और नरेश का विवाह होता है । विवाह के पश्चात शाल्माली को यह अहसास होता है कि नरेश उसका पति से भी ज्यादा उसका मालिक बनना चाहता है और उसे पत्नी नहीं सेविका के रुप में देखना चाहता है । विवाह के नाम पर खड़ी इस मजबूत दीवार को शाल्माली हमेशा महसूस करती रहती है जो उसके जीवन में कांटे की तरह चुभता रहता है । नरेश हमेशा शाल्माली को यह तंज कसता है कि "**तुम ठहरी एक आधुनिक विचार की महिला.....विचारों में स्वतंत्र, व्यवहार में उनमुक्त, तुम्हारे संस्कार हम से अलग है ।**"[9] नरेश के इन बातों से शाल्माली को घृणा होने लगती है । शाल्माली में लेखिका

ने नारी का एक अलग और आधुनिक रुप दिखाने का प्रयास किया है । शाल्माली भारतीय समाज में स्त्रियों के लिए निर्धारित किये गये रुढ़िवादी मान्यताओं को स्वीकार नहीं करती है वह अपने मौजूदगी का अहसास दिखाना चाहती है । परिस्थिति चाहे जितनी भी विपरीत क्यों न हो आदमी को अपने खिलाफ हो रहे अत्याचार के प्रति मौन नहीं होना चाहिए के विचार इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है । समकालीन स्त्री लेखन के आधार पर यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि भारतीय स्त्रियों ने विवाह के पीछे छुपे स्त्री शोषण के रहस्य को पहचान लिया है और अब वह विवाह को जीवन के लिए अति आवश्यक नहीं मानती । जिस तरह पुरुषों के लिए विवाह उनकी शारीरिक इच्छाओं को पूरा करने के लिए कानूनी स्वतंत्रता थी । आज की स्त्री इस स्वतंत्रा पर अंकुश लगाना चाहती है । इसलिए उन्होंने बिना विवाह के संबंध को भी कानूनी मान्यता देने की मांग की है । ताकि स्त्री के चरित्र पर कोई सवाल न उठे और विवाह जैसी संस्थाओं के कारण उसका शोषण भी न हो । बिना विवाह के माँ बनने का अधिकार और लिविंग रिलेशनशिप इसी अवधारणा की उपज है । स्त्री के विचारों में आये इस परिवर्तन के कारण पितृसत्ता का ढांचा अब चरमरा रहा है । स्त्री समाज के इस बदलाव के संदर्भ में राकेश कुमार लिखते है **"समकालीन स्त्री लेखन में स्त्री अपनी स्थिति को नियति मानकर नहीं देखती, अपितु इन स्थितियों के जिम्मेदार तत्वों, पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचनाओं के अंतर्विरोधों कारणों को भी तलाशती है कि उनकी निष्क्रिय, कमजोर, उपेक्षित, उत्पीड़ित स्थिति किसी ने बनाई और क्यों ? यही स्त्री लेखन की सोच में बुनियादी बदलाव है ।"**[10] यानी हम कह सकते है कि आज के स्त्री लेखन में विचार और चिंतन का गहन रुप देखा जा सकता है । नासिरा का दूसरा उपन्यास ठिकरे की मंगनी स्त्री की एक अलग संघर्ष गाथा को हमारे सामने रखता है । स्त्रियां आजादी के बाद यह समझ पायी है कि मेहनत, लगन और योग्यता के बल पर अपनी एक अलग पहचान बनाई जा सकती है । महरुख के जीवन में ठहराव था इसके अलावा उसमें यह खूबी थी कि वह बहुत से लोगों को साथ लेकर

चल सकती थी । इसी कारण उसने भीतर और बाहर के सत्य को पहचाना और इसके दम पर वह अपने जीवन पर आगे बढ़ती है । महरुख के जन्म के साथ ही ठीकरे की मंगनी हुई थी । तेज रप्तार से अगे बढ़ रहे इस समाज में पितृसत्ता के मूल्यों को स्वीकारने पर महरुख को विवश कर दिया जाता है । यह उसकी जिंदगी की सबसे बड़ी घटना थी । ठोस इरादे और नजरिये के कारण वह इस थोपी हुई सत्ता के खिलाफ खड़ी हो जाती है । एक तरफ गरीब असहाय लोगों की सेवा को वह अपना जीवन का लक्ष्य बना लेती है, तो दूसरी तरफ परंपरागत पितृसत्ता के ढ़ांचे के खिलाफ लड़ती है । स्त्री विमर्श की दृष्टि से नासिरा शर्मा का साहित्य उत्कृष्ट श्रेणी में आता है । भाषा वैविध्य ने इनके साहित्य में चार चांद लगा दिया है । इन्होंने अपनी रचना को और अधिक आकर्षक यथार्थ परक और रोचक बनाने के लिए विविध भाषा शैली का प्रयोग किया है । वर्णनात्मक शैली, पूर्वदीप्त शैली, चित्रात्मक शैली, स्मृतिपरक शैली आदि इनकी भाषा को रोचक बनाते है । साहित्य और समाज के संबंध को एक कुशल रचनाकार अपनी भाषा के माध्यम से ही यथार्थपरक रुप में उसकी प्रगाढ़ता को प्रस्तुत करता है । हिंदी विमर्श लेखन में ममता कालिया ने इसी तरह का उदाहरण पेश किया है उनकी कालजयी रचनायें स्त्री भाषा का विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है । इनकी रचनाओं में स्त्री भाषा का विविध पक्षीय विकास देखा जाता है । ममता कालिया हिंदी साहित्य में अपने बेवाक लेखन के लिए जानी जानी जाती है । उनके रचनाओं के पात्र यथार्थ की जमीन पर चढ़ते-उतरते मिलते है । स्त्री जीवन जो भारतीय समाज में जीता नहीं रेंगता है, हर वर्ग, जाति और हर क्षेत्र की स्त्री उनके साहित्य में अपना यथार्थ चुटिले अंदाज में बयान करती हुई दिखाई पड़ती है । ममता कालिया का जो व्यक्तित्व है उनकी रचनायें उससे अलग दिखाई पड़ती है । जब वह रचना के धरातल पर उतरती है तो पितृसत्ता के जड़ों को हिला कर रख देती है । उनकी बेवाकी का अंदाजा इन पक्तियों से लगाया जा सकता है ।

‘‘प्यार शब्द घिसते-घिसते चपटा हो गया है ।

अब

हमारी समझ में सहवास आता है ।"[11]

सन् 1960 में इन की यह कविता प्रकाशित हुई और लंबे समय तक चर्चा में भी रही । साहस, आक्रोश, विवशता, उत्तेजना, विरोध इनकी रचनाओं का मुख्य आकर्षण है । इनके उपन्यासों की तरह कहानियां भी भारतीय समाज में व्याप्त अभाव, उत्पीड़न, बेरोजगारी, शोषण आदि का चित्र खिंचती हैं । पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति को वे कुछ इस तरह बयान करती है **"दुनियाभर में विवाहित औरतों का केवल एक स्वरुप होता है । उन्हें सहमति प्रधान जीवन जीना होता है... हर घर का एक ढर्रा है जिसमें आपको फिट होना है...घर को सुचारु रुप से चलाने के लिए सिर्फ दो शब्दों की जरुरत है, 'जी' और हाँ जी ।"[12]** भारत में पितृसत्तात्मक संरचना और पुरुष की दोहरी मानसिकता को लेखिका ने कम से कम शब्दों में सटीक व्याख्या की है । इनका मानना है पुराने पितृसत्तात्मक समाज की तुलना में आज के पितृसत्तात्मक समाज में आधुनिकता आई है । आज का पुरुष चाहता है **"पत्नी शिक्षित हो परंतु दबकर रहे, आधुनिक हो लेकिन आज्ञाकारी हो, समझदार हो परंतु अलग सोच विचार वाली न हो ।"[13]** इस परिवर्तन से पढ़ी लिखी औरतें भी प्रभावित हुई हैं । पढ़ी लिखी औरतें पितृसत्ता के नियंत्रण में रहने के लिए मजबूर बनाई जा रही है । आर्थिक क्रांति के कारण दुनिया में आ रहें बदलाव का शिकार भी अधिकतर स्त्रियां ही बन रही है । चाहे वह विज्ञापन के नाम पर हो या ग्लैमर के नाम पर हो या फिर सौंन्दर्य प्रतियोगिता के नाम पर हो, स्त्री शोषण की नयी पद्धतियां दुनिया में देखी जा रही हैं । झूठ, फरेब और धोखाधड़ी से भरे इस पुरुष साम्रज्य की पोल खोलते हुए ममता कालिया मेला कहानी में लिखती है **"इतना विशाल मेंला क्या कुछ भी कालातीत सिखा पायेगा या वैसे के वैसे अपने संकीर्ण सरोकारों में वापस हो जायेगा । जो झूठ बोलता है, बोलता रहेगा, जो घूस लेता है लेता रहेगा, जो मिलावट करता है करता रहेगा जो चोरी**

करता है, करता रहेगा, और जो कामचोरी करता है करता रहेगा। औरत के जीवन में इस एक डूबकी से क्या हो जायेगा। उनकी हालत बदलेगी ? गगांमाई में पाप सचमुच धुले या यह भी एक सरलीकरण है जिसकी स्वीकृति में ही फिलहाल निष्कृति है।"[14] स्त्रियों का कटाक्ष केवल पुरुषों के लिए ही नहीं है पुरुषत्ता के भीतर पितृसत्तात्मक मानसिकता रखने वाली स्त्रियों के लिए भी है। लेखिकाओं ने कई ऐसे स्त्री पात्रों की रचना की है जो पितृसत्तात्मक मानसिकता से ग्रस्त है। चाक उपन्यास में रेशम की सास हुकमकौर ऐसी ही पात्र है जो चाहती थी कि उनकी विधवा बहू रेशम ताउम्र पतिव्रता धर्म का पालन करे। इसलिए विधवा रेशम के माँ बनने की खबर सुनकर कहती है कि **"रंडी मेरे पूत की चिता तो सीरी हो जाने देती।"**[15] इस आधार पर हम यह कह सकते है कि स्त्रियों ने समाज को विविध पक्ष से देखने का प्रयास किया है। चाक भारतीय बदलते ग्रामीण परिवेश की कई घटनाओं को समेटकर लिखा गया उपन्यास है। इसमें स्वतंत्रता के बाद के समाज को चित्रात्मक, वर्णनात्मक और आलोचनात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। नब्बे के दशक में स्त्री लेखन को एक विशेष ऊँचाई प्रदान कराने का काम किया है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने साहित्य में ग्रामीण स्त्री जीवन की जटिलताओं और उनसे जूझ रही स्त्रियां इदन्नमम् की मंदा, चाक की सारंग और रेशम, अल्माकबूतरी की अल्मा और झूलानट की शीलो को ऐसे प्रस्तुत किया है जैसे वे हममें से ही कोई एक हो। कभी उपन्यास पढ़ते-पढ़ते पाठक भावुक हो जाता है तो कभी आवेश में आ जाता है, यह लेखक की भाषिक कला का ही परिणाम है। लेखक, पाठक और रचनाओं का संबंध केवल रचना पढ़ने तक ही नहीं होता बल्कि कुछ रचनायें पाठक का जीवन परिवर्तन करने का सामर्थ्य भी रखती है। आजीवन पाठक के स्मरण में रहती है। मैत्रेयी की रचनाओं का प्रभाव भी स्त्री जीवन पर ऐसे ही पड़ा है। स्त्री जीवन से लेकर ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों का चित्रण उनके साहित्य में देखा जा सकता है। चाक उपन्यास में अत्तरपुर गांव का पूरा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिवेश को

समेटा गया है । अत्तरपुर गांव की जीवन शैली, भाषा, त्यौहार, लोकगीत, खान-पान, खेत खलिहान आदि सभी का चित्रण मैत्रेयी पुष्पा ने अद्‌भुत रुप में किया है । **"खेतों में अच्छी पैदावार होती है । कभी हरी रंगत से नहाए पसार के पसार, कभी सुनहरी बालों से भरे चक । सरसों, अलसी, मटर, चना और अरहर के पीले, गुलाबी, बैंगनी और चितकबरे फूलों के अलावा गेंदे का फूल भी लोगों ने उगते देखा है यहां ।"**[16] इस अभिव्यक्ति ने लेखिका के ग्रामीण जीवन के संबंधी पर्याप्त जानकारी को तो व्यक्त की ही है । साथ ही एक सुंदर आकर्षक ग्रामीण जीवन का चित्र खिचकर लोगों को ग्रामीण जीवन के प्रति आकर्षित कराने का प्रयास भी किया है । सामान्य रुप में यह कहा जा सकता है कि स्त्री लेखिकाओं ने तत्कालीन समय में प्रचलित सभी आधुनिक गद्य एवं पद्य विधाओं में कलम चलाते समय शैली एवं भाषा के साथ-साथ अपने विचार एवं भाव की अभिव्यक्ति को भी अधिक महत्व दिया है । इनकी भाषाओं में ठेठ ग्रामीण, शहरी भाषा लगायत अंगेजी, उर्दू, फारसी, संस्कृत, ब्रज, अवधि, भोजपुरी, मैथिली आदि का प्रयोग देखा जा सकता है । पात्रों के चरित्र के मुताबिक भाषा चयन उत्कृष्ट दिखाई पड़ता है । इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्त्री भाषा का विकास साठ के दशक से निरंतर आगे बढ़ रहा है । आज की स्त्री भाषा में एक विशेष परिवर्तन देखा जा सकता है । वह यह है कि लेखिकाओं ने प्रत्येक व्यवसाय में प्रयोग किये जाने वाले विशेष शब्दों के प्रयोग पर भी ध्यान दिया है । मसलन राजनीति में प्रयोग किये जाने वाले शब्द विधायक, प्रतिपक्ष, सत्तारुढ़, निवार्चन, सांसद, ऐन कानून, धारा जैसे शब्द उनकी नजरों से नहीं छूटे हैं । इसी प्रकार तकनीकि शब्दों का प्रयोग, कानूनी भाषा का प्रयोग, व्यवसायिक भाषा का प्रयोग, प्रशासनिक भाषा का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ स्त्री लेखन में दिखाई पड़ता है । संवाद शैली हो या लोकोक्तियों का प्रयोग कथा की मांग के मुताबिक रुचिकर बन पड़ते है । स्त्री भाषा की इस सफलता का श्रेय समकालीन स्त्री लेखिकाओं को जाता है, जिन्होनें अपने अथक प्रयास से स्त्री भाषा को ये मुकाम दिलाया है ।

६.३ समकालीन हिंदी स्त्री भाषा का राजनीतिक संदर्भ

स्वतंत्रता के बाद स्त्री जीवन और उसके विचार एवं व्यवहार में परिवर्तन देखा जा रहा है । यह परिवर्तन स्त्री की चेतना और उसके भीषण संघर्ष का ही परिणाम है । भारतीय समाज जो कई शताब्दियों से एक ही सत्ता के वर्चस्व का वाहक था । स्त्रियों के पहल से ही उसे समाज में अनेकों जाति, धर्म, लिंग, समुदाय, वर्ग होने का अहसास हुआ और अब इस एक पक्षीय सत्ता की नींव कमजोर पड़ने के संकेत भी मिल रहे हैं । भारतीय समाज में स्त्रीवादी आंदोलन जो पश्चिम से होता हुआ भारत आया था और जो भारतीय स्त्रियों द्वारा स्वतंत्रता संग्राम के माध्यम से चलाया गया था का प्रभाव इतना गहरा पड़ा कि समाज के अन्य उत्पीड़ित वर्गों ने भी अपने हक की आवाज उठाने का साहस जुटाया । इस दबाव ने वर्चस्ववादी सत्ता को इस ओर सोचने के लिए बाध्य कर दिया । दलित, आदिवासी, थर्ड जेंडर लगायत सभी समाज के हाशिये के वर्ग की आवाज स्त्रीवादी आवाज का ही प्रतिफलन है । भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने स्त्रियों में जोश और उत्साह भरा तो पश्चिमी आंदोलन ने स्त्रियों को सिद्धांत एवं विचारधारा संबंधी ज्ञान दिया । यह इस आंदोलन के लिए आवश्यक भी था, परंतु इसके बावजूद भी यहां पर एक सवाल यह उठया जा सकता है कि भारत में स्वतंत्रता आंदोलन और स्त्री मुक्ति आंदोलन जब एक साथ शुरु हुये थे तो इन की सफलता की प्रक्रिया में इतना अंतर क्यों दिखाई पड़ा ? स्त्रीवादी दृष्टि से अगर इसका जवाब ढूंढे तो । स्वतंत्रता आंदोलन में सभी जाति वर्ग समुदाय ने देश की पीड़ा और वेदना को समझा और इसके के समाधान के लिए एकजुट होकर संघर्ष किया लेकिन स्त्री मुक्ति आंदोलन के मामले में ये सभी पीछे हट गयें और स्त्री अपने संघर्ष में अकेली रह गयी । जाहिर सी बात है कि यदि इस अभियान में भी पुरुष समाज का साथ समर्थन स्त्री को मिलता तो यह मुद्दा कब का सामान्य हो गया होता । बहरहाल अब इसके संदर्भ में स्त्रीवादी दृष्टि दूसरा सवाल यह उठाती है कि पुरुष के स्त्री मुद्दों से पीछे हटने का कारण कहीं उसकी वर्चस्ववादी राजनीतिक मानसिकता तो नहीं है ?

इन्हीं सवालों का जवाब समकालीन स्त्रीवादी विमर्श साहित्य में ढूंढा जा सकता है । निसंदेह स्त्री अत्यंत प्रतिकूल सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थिति से गुजरी है । न उसके पक्ष में परिवार था, न समाज और न सत्ता । इस स्थिति में अपने हक की लड़ाई लड़ना एक बहुत बड़ी चुनौती थी । पितृसत्ता के भीतर हजारों समझौता करती हुई स्त्री को विरोध जताने के लिए राजनीतिक संरचना के ज्ञान के साथ-साथ राजनीतिक विचारधार और चिंतन की आवश्यकता तो थी ही । इसके अलावा एक सशक्त स्त्री भाषा और उसे अभिव्यत करने की शैली की भी आवश्यकता थी । हिंदी साहित्य जो पितृसत्ता के वर्चस्व का एक अभिन्न अंग रहा है । जिसने स्त्री साहित्य को घरेलू साहित्य का दर्जा दिया है । ऐसी स्थिति में स्त्री को अपनी एक अलग भाषा को गढ़ना आवश्यक था । वरना उसका साहित्य पुरुष साहित्य की तुलना में आगे बढ़ पाना संभव नहीं था । स्त्री की समाज में अलग पहचान बनाने के पीछे जितना स्त्री आंदोलन का हाथ है उतना ही स्त्री भाषा का भी है । स्त्री भाषा की अनिवार्यता पर विचार व्यक्त करते हुए जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं **"सामाजिक परिस्थितियों का जैसा प्रभाव भावों और विचारों पर पड़ता है वैसा ही प्रभाव उसको व्यक्त करने वाली शैली व्यंजना के ढंग, शब्द चयन, वाक्य विन्यास आदि पर भी पड़ता है । सामाजिक जीवन में परिवर्तन के साथ-साथ भाषा में भी परिवर्तन आते है । स्त्रियों की स्वतंत्र भाषा की मांग आधुनिक काल में उठी, कारण यह कि स्त्री की स्वतंत्रता व्यक्ति के रुप में पहचान का उदय, आत्मनिर्भर छवि का उदय, समानतावादी नजरिये का विस्तार एवं स्त्री विरोधी संस्थाओं और मूल्यों के खिलाफ संघर्ष के लिए यह आवश्यक था ।"**[17]

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्त्री भाषा केवल उसके राजनीति, आर्थिक सामाजिक अधिकारों की अभिव्यक्ति के लिए ही नहीं, उसके व्यक्तित्व का निर्माण करने के लिए भी अनिवार्य थी । स्त्री भाषा की अवधारणा का विकास उन्नीसवीं शताब्दी में माना जाता है । इस विषय की चर्चा सब से पहले पाश्चात्य

स्त्रीवादी विचारक वर्जीनिया वूल्फ ने की सन् 1926 उन्होंने 'वूमेन एंड फिक्सन' नामक एक निबंध लिखा जिसमें स्त्री और पुरुषों की भाषा शैली भाव, अभिव्यक्ति और वाक्य संरचना के बीच अंतर बताया गया। निष्कर्ष यह निकला की स्त्री और पुरुषों की भाषा में अंतर होता है और स्त्री की एक अलग भाषा होती है। बाद में इनके विचारों का समर्थन लूस इरिगरे, हेलेन सिक्सु, मेनिका विर्टि, सांद्रा गिलबर्ट आदि स्त्री वादी विचारकों ने भी किया। इनका मानना था स्त्री भाषा उसकी मुक्ति से जुड़ी हुई है। स्त्री शोषण की घटंनायें अधिकतर उसके साहित्य में मिलती है। मुक्ति की कामना और शोषण की छटपटाहट के भाव के कारण इनकी भाषा मस्तिष्क से ज्यादा हृदय से निकली है। इसलिए स्त्री लेखन पुरुष लेखन की तुलना में अधिक संवेदनशील, भावुक, हृदय स्पर्शी, अनौपचारिक होता है। प्रमिला के. पी ने भी अपनी पुस्तक स्त्री अध्ययन की बुनियाद में लिखा है कि **" स्त्रियां पुरुष पोषक वाक्य लिखती हैं, वैसे ही पुरुष स्त्री पक्षीय वाक्य लिखता है। अन्वेषणों के अनुसार, पुरुषों के वाक्य युक्तिसंगत, बौद्धिक, नियंत्रित और कर्तृत्व से स्फूत होते हैं। जबकि स्त्रियों के वाक्य गठन में पुरुषों लेखन का अनुकरण का प्रयास, परंपरागत रुपकों की भरमार, प्रच्छन्न शब्द प्रयोग आदि की विशेषतायें दिखती है।"**[18]

स्त्री भाषा के संदर्भ में यह विचार भले ही अन्वेषण पर आधारित हो परंतु आज के संदर्भ में यह विचार उपयुक्त नहीं माने जा सकते क्योंकि आज की स्त्री भाषा युक्तिसंगत, बौद्धिक, नियंत्रित और औपचारिक है। किसी भी विषय वस्तु संबंधी विचारों को स्त्री अपनी पूरी सूझबूझ के साथ अभिव्यक्त करने में सक्षम हो रही है। बल्कि कुछ रचनायें तो ऐसी है जिनमें पुरुषों से अधिक बौद्धिकता दिखाई पड़ती है। अपने स्वतंत्र विचार और भाव अभिव्यक्ति के लिए स्त्रियां अपनी भाषा पर गर्व महसूस करती है उनका मानना है कि उन्हें अपनी इच्छाओं को कुचलकर जीने का विधान स्वीकार नहीं है। उनका मन जो कहेगा वो लिखेंगी, पांव जहां ले चलेंगे, इन्द्रिया जिस सुख को अनुभव करेंगी मनुष्य होने के नाते ये इनके कुविचार नहीं

है बल्कि जन्मसिद्ध अधिकार है । गृहस्थ जीवन से ऊंपर उठकर देश दुनिया की सभी गतिविधियों पर नजर रखते हुए उन पर अपनी राय तैयार करना कोई सामान्य कार्य नहीं था । पुरुष ने आज तक इस क्षेत्र में सफलता इसलिए हासिल की थी कि उसके पास प्रयाप्त समय था पढ़ने के लिए चीजों को समझने के लिए लिखने के लिए । परंतु स्त्री के पास ऐसा माहौल नहीं था, वे लिख तो रही है परंतु बचे हुए समय में जो उनके लिए पर्याप्त नहीं है । इसके बावजूद भी यदि स्त्री पुरुष साहित्य लेखन की तुलना करे तो दोनों में इतना ज्यादा अंतर दिखाई नहीं पड़ता और किसी भी पक्ष या दृष्टि से स्त्री साहित्य कमजोर भी नहीं है स्त्रियों ने साहित्य के संदर्भ में खुद को सक्षम साबित किया है । जैसा कि हम जानते है स्त्री लेखन आज के संदर्भ में एक व्यापक आयाम को आत्मसात करके चल रहा है । सभी विषय वस्तुओं को साहित्य में समेटा जा रहा है । राजनीति जिसे पुरुषों ने स्त्री की क्षमता के इतर का विषय मान हुआ है लेकिन आज की स्त्री ने इस भ्रम को भी तोड़ दिया है । स्त्री की राजनीतिक दृष्टि व्यापक हो रही है । यूं तो समग्र स्त्रीवादी साहित्य राजनीति से जुड़ा हुआ विषय है । स्त्री की स्वतंत्र पहचान, सुरक्षा, सामाजिक न्याय, आर्थिक स्वावलंवनता, शिक्षा, रोजगारी, समानता, प्रजनन, यौनिकता और अन्य सभी संवैधानिक अधिकार स्त्री अधिकार के मूल मुद्दें रहे हैं । इसलिए स्त्री के संदर्भ में राजनीतिक और सामाजिक मुद्दें आरंभ से ही स्त्री शोषण से जुड़े हुयें है । राजी सेठ का मानना है कि पुरुष स्वीकृत है और स्त्री स्वीकृति के लिए लड़ रही है । इस वजह से पुरुष और स्त्री के मुद्दें अलग-अलग है । स्त्री ने देर से ही सही अपनी स्थिति और समस्या को पहचाना और सुधारवादी दृष्टि रखते हुये आगे बढ़ी । जैसा कि हम चर्चा कर चुके है कि स्त्रीवादी राजनीतिक साहित्य स्त्री अधिकार के सवालों से जुड़ा हुआ है । इन्हीं सवालों के साथ उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, गीतांजलीश्री, मधु काकरियां आदि लेखिकाएं आगे आयी । इन्होंने तत्कालीन भारतीय राजनीतिक परिवेश को अपनी रचनाओं में समेटने का प्रयास किया । यहां यह भी जानना जरुरी है कि

पुरुष लेखन में राजनीतिक विषय वस्तुओं को समेटने की परंपरा चल चुकी थी। इनके साहित्य में राष्ट्रीयता एवं ब्रिटिश सत्ता का शोषण, जनता द्वारा सत्ता का विरोध, ब्रिटिशों की विभाजन नीति, सांप्रदायिक दंगें, भारत-पाकिस्तान का विभाजन कि विभीषिका, क्षेत्रीय एवं जातीय राजनीति, भ्रष्ट लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का चित्रण देखा जाता है। प्रेमचंद, जैनेन्द्र, फणीश्वरनाथ रेणु, अमृतलाल नागर जैसे लेखक विशेष रुप में आगे आये थे। लेकिन हमें इस बात को भी स्वीकारना होगा कि राजनीति के क्षेत्र में स्त्री का पदार्पण भले ही देर से हुआ हो परंतु उन्होंने अपने साहित्य में राजनीति से जुड़े सभी गंभीर मुद्दों को समेटा है। कृष्णा सोबती ने जिंदगीनामा में। मन्नू भंडारी ने महाभोज में। मृदुला गर्ग ने अनित्य में। मैत्रेयी पुष्पा ने चाक में। चित्रा मुद्गल ने आंवा में। मधुकांकरिया ने खुलेगगन के लाल सितारे में। गीतांजली श्री ने हमारा शहर उस बरस में। अमृता प्रीतम ने पींजर में। कृष्णा सोबती जिंदगी नामा में। भारत के राजनीतिक इतिहास और वर्तमान को बड़ी बारीकी से परत दर परत खोला है। कृष्णा सोबती का जिंदगीनामा भाषा, कथावस्तु और राजनीतिक विचार दृष्टि के हिसाब से प्रेमचंद की रंगभूमि और कर्मभूमि, यसपाल का झूठा सच, अमृतलाल नागर का अमृत और विष, फणीश्वरनाथ रेणु का मैंला आंचल, श्रीलाला शुक्ल के रागदरबारी के श्रेणी में आता है। अविभाजित पंजाब के ग्रामीण परिवेश के साथ वहां के प्रशासनिक और राजनीतिक माहौल को कृष्णा सोबती ने बड़े ही मार्मिक ढंग से व्याख्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। उपनिवेशकालीन पंजाब में पुलिसतंत्र तंत्र द्वारा मचाये गये त्रास को विशेष रुप से कृष्णा सोबती ने शब्द-बद्ध किया है। ब्रिटिश सत्ता के शोषण और आंतक का चरम रुप शायद ही इस तरह की शैली में किसी अन्य लेखक ने प्रस्तुत किया होगा। पुलिसों के आंतक के साथ जमीदारों और साहूकारों का आंतक भी इस उपन्यास में शामिल किया गया है। सौ रुपया का ब्याज हजार रुपिया बनाने में साहूकारों को ज्यादा दिन नहीं लगते है जब थक हार कर जनता न्याय के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाती है तो जीत साहूकार की होती है। पुलिसों

द्वारा जनता को इस कदर पीटा जाता है कि बाकि जनता डर से कभी अन्याय का विरोध करने का साहस नहीं जुटा पाती। न्याय विहिन समाज में जनता किस तरह सत्ता की गुलाम बनाई जाती है का यथार्थ इस उपन्यास में मिलता है। कृष्णा सोबती ने उपन्यास में किसी समय सीमा का निर्धारण तो नहीं किया है परंतु घटनाओं के आधार पर यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि यह समय सन् 1907-1915 का रहा होगा। गरीब किसानो पर किया जाने वाला ब्याज का दुष्चक्र भारतीय समाज मे लंबे समय तक चला। कृष्णा सोबती का मानना है कि जो पुलिस तंत्र ब्रिटिश हुकूमत के दौरान था आज के आजाद भारत में वह घटा नहीं है बल्कि उसमें गुणात्मक वृद्धि हुई है। भ्रष्टाचार और शोषण की स्थिति वहीं है चेहरे अवश्य बदले है। कृष्णा सोबती ने मुख्य रुप से इस उपन्यास के माध्यम से सामाजिक न्याय के सवाल को लोगों के समक्ष रखा है। सामाजिक विभेद, सांप्रयायिकता और बेरोजगारी के मुद्दें भी उपन्यास के अहम पहलू है। पंजाब की लोक संस्कृति, भेष-भूषा, और भाषा का प्रयोग भी उपन्यास का आकर्षक बिन्दु है। इस उपन्यास में कोई व्यक्ति नायक नहीं है बल्कि पूरे गांव को नायक के रुप में प्रस्तुत किया है। दूसरे शब्दों में कहें तो पात्रों के चरित्र निरुपण के लिए चरित्र सृष्टि न करके पंजाब प्रांत के सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश के चित्रण द्वारा चरित्र सृष्टि की गई है। पंजाब का डेरा जट्टा गांव उपन्यास का प्रतिकात्मक चरित्र बन जाता है। उपन्यास का मूल राजनीतिक संदेश यह है कि बंटवारे के कारण जो एक भूखंड दो भागों में बंटा गया है वह महज एक भूखंड का बंटवारा नहीं था, एक साझी संस्कृति का बंटवारा था। धर्म और राजनीति के दांव-पेंच के कारण इस तरह अखंड संस्कृति को तोड़ना किसी के हित में नहीं है। यह सिल-सिला आज भी जारी है बल्कि यह राजनीति का हथियार बन गया है। मानवीय स्वतंत्रता और रुढ़ियों का प्रतिरोध उपन्यास की मौलिकता है। चित्रात्मक भाषा, वर्णनात्मक एवं काव्यात्मक शैली, प्रतीक और बिंबों का प्रयोग हिंदी के साथ पंजाबी भाषा के मेल ने उपन्यास को भाषा की दृष्टि से उत्कृष्ट बनाया है। स्त्री के राजनीतिक विचार एवं भाषा की

दृष्टि से मन्नू भंडारी के महाभोज को भी उत्कृष्ट उपन्यास माना जाता है । यह उपन्यास राजनीति घटनाक्रम, भाषा शैली शब्द चयन, वाक्य गठन, संवाद शैली, पात्र चयन आदि सभी दृष्टि से उत्कृष्ट दिखाई पड़ता है । व्यंग्यात्मक शैली इस उपन्यास की आत्मा है जिसके कारण राजनीति जैसा रुखा विषय भी रोचक बना है । उपन्यास का नायक दा साहब तत्कालीन भारतीय राजनीति का ऐसा चरित्र है जो सिर से पांव तक स्वार्थ में लिपटा हुआ है । बाहर से भव्य और शालीन दिखने वाले दा साहब अंदर से उतने ही कुटिल और क्रूर है । उनमें मानवीय संवेदना का अंश भर नहीं है । देश के एक सजक नागरिक विसेसर जो दलित समुदाय से संबंध रखता था कि हत्या को आत्महत्या बताकर उसकी मृत्यु को चुनाव लड़ने का हथियार बनाया जाता है । इस हत्या को आत्महत्या के रुप में परिणत करने के लिए नेता, पुलिस, न्याय व्यवस्था, मीडिया राज्य के सभी महत्वपूर्ण एवं जिम्मेदार पक्ष संलग्न होते है । आजादी के बाद सामाजिक न्याय और समृद्धि का जो सपना जनता ने देखा था वह भ्रष्ट नेताओं के कारण चकनाचूर हो जाता है । लेखिका जो स्वयं स्त्रतंत्रता संग्राम की साक्षी रही है, उन्होंने भातीय राजनीति में विसंगति को फैलते हुए देखा है । लोकतंत्र की मूल्य मान्याताओं को वही लोग ध्वस्त कर रहे है जिसे इसका रक्षक माना जाता है । मन्नू भंडारी ने इस उपन्यास में लोकतंत्र की रक्षा का सवाल, सामाजिक न्याय का सवाल, आम गरीब उपेक्षित जनता के सुरक्षा का सवाल, जनता के अधिकारों की प्रत्याभूति का सवाल, जातिवादी और गुटवादी राजनीति का शिकार होती जनता के सम्मान का सवाल उठाया है । वोटो की राजनीति के तले पीसती जनता की पीड़ा को मन्नू ने बखूबी समझा है । इसलिए जनता को सचेत कराने हेतु महाभोज की रचना की है । नेताओं के भाषणों के माध्यम से मन्नू नें दलों के बीच की प्रतिस्पर्धा के साथ-साथ उनकी संकुचित मानसिकता को भी दिखाया है । दा साहब, सुकुल बाबू, लोचन बाबू, लखनसिंह जोराबर जैसे पात्रों को गढ़ कर पूरे भारत की व्यवहारिक राजनीतिक का प्रतिबिंब चित्रित किया है । प्रत्येक पात्र अपने विचारों एवं हाव-भाव के साथ ऐसे उपस्थित

दिखाई पड़ता है मानों वह हमारे सामने प्रत्यक्ष उपस्थित हो **"गुस्से से लखन की कनपटियों की उभरी हुई नसे तक फड़क रही हैं । कोई विश्वास करेगा कि यह दा साहब के संरक्षण में पला हुआ आदमी है ? एकदम उनके विपरीत । केवल रंग और कद-काठी में ही नहीं, स्वभाव और आदतों में भी ।"**[19]

संवाद शैली और नेताओं के भाषण को लेखिका ने इतने आकर्षक शैली में प्रस्तुत किया है कि पाठक की रोचकता बढ़ती ही जाती है । उपन्यास की भाषा का विशेष आकर्षण नेताओं द्वारा किया गया भाषण है । भाषण के माध्यम से देश के भ्रष्ट नेता इस बात को स्वीकार करते दिखाई पड़ते है कि आजादी का मकसद क्या था ? लोकतंत्र की मूल्य मान्यतायें क्या है ? आज के भारत की राजनीति का उद्देश्य क्या जनता के हित में है ? भाषण भले ही विपक्षी को कमजोर और जनता की सहानुभूति जीतने के लिए किया गया था परंतु नेता के ही मुंह से यथार्थ को कबूल करवाना मन्नू भंडारी की अद्भुत कला का परिचय है । महाभोज भ्रष्टाचार, संप्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद दलगत एवं गुटगत राजनीति के विकृत रुप को व्यंग्यात्मक और आलोचनात्मक शैली में प्रस्तुत करता है । इसे पढ़ने के बाद यह भ्रम टूट जाता है कि स्त्री राजनीति जैसे जटिल विषय के संबंध में अपनी राय नहीं दे सकती । बल्कि महाभोज पितृसत्तात्मक साहित्य के समक्ष यह सवाल उठाता है कि स्त्री साहित्य को घरेलू साहित्य के आरोप से ऊपर उठने के लिए और कौन सा उदाहरण पेश करना पड़ेगा ? स्त्री लेखन में महाभोज एक अपवाद नहीं है कई ऐसे राजनीतिक उपन्यास है जो उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत किये जा सकते है । आज का स्त्री लेखन चुनौती स्वीकार ही नहीं करता बल्कि चुनौती देते हुये आगे बढ़ रहा है । चित्रा मुद्गल ने आवं उपन्यास में स्त्री शोषण के यथार्थ के साथ-साथ ट्रेड यूनियन में घुस रही भ्रष्ट राजनीति का यथार्थ चित्रण किया है । मजदूर संगठन जो पूंजीवादी व्यवस्था को नियंत्रण करने और मजदूरों के अधिकार की वकालत करने के लिए स्थापित किये गये थे । वे किस तरह आज कुछ व्यक्तियों के निहित

स्वार्थ की वजह से पूंजपतियों के हाथ की कठपुतली बन गये हैं का चित्रण आवां में दिखाई पड़ता है। मजदूर यूनियन के नेता मजदूरों के हक में आवाज उठाने की बजाय राजनीतिक दलों के हक में मजदूरों के वोंट को सुनिश्चित करने और अपने लिए राजनीति में आगे जाने के रास्ते तय करने के तिकड़म में जुटे रहते हैं। चित्रा ने इस परिवेश को यथार्थ रुप में प्रस्तुत करने के लिए एक सशक्त भाषा के साथ धूर्त और अवसरवादी किरदारों को भी गढ़ा है। अन्ना साहब जो कामगार अगाडी का अध्यक्ष है। वह बाहर से जितना भद्र भला आदमी दिखता है अंदर से उतना ही कुटिल और अवसरवादी है। अपने मित्र देवी शंकर पाण्डे की बेटी को हमदर्दी दिखाकर अपनी यौन इच्छाओं को पूरा करने की साजिश रचता है। नमिता उसके हमदर्दी की जाल में फंस जाती है और वह 'कामघार' अगाडी छोड़ देती है। आवां मूलत: मुम्बई के मजदूरों के संघर्ष की कथा है। राष्ट्र के एक संपन्न राज्य के किसी कोने में रहने वाले मजदूर जो स्वतंत्रता के बाद भी बिजली, पानी, राशन और शौचालय की समस्या को रोज झेल रहे हैं। उनकी मौजूदगी इतने भर है कि वो नेताओं के वोटर हैं। उनके वोट पाने के लिए वर्षों से उन्हें यह आश्वासन दिलाया जा रहा है कि उनके लिए वैकल्पिक आवास की व्यवस्था की जायेगी परंतु किसी को पता नहीं है कि कब इस समस्या का समाधान किया जायेगा । स्वतंत्र भारत के राजनीतिक यथार्थ को चित्रा मुद्गल ने अपनी भाषा शैली में कुछ इस तरह बयान किया है **"प्रमाण के अभाव में पुलिस लाचार है। हालांकि वह भली-भांति जानता है जब तक मेरा मनोबल जीवित है, मैं जीवित हूँ, वह पनप नहीं सकता। अन्याय के विरुद्ध ही तो मेरी लड़ाई है। अन्याय की जात चाहे पूंजीपति हो, या ट्रेड यूनियनिस्ट या राजनीतिज्ञ या ढोंगी समाजसेवी ...सुपारी ठेका देकर उसने तुम्हारी हत्या का षडयंत्र रचा था ! चाहता था कि तुम्हारी जगह वह स्वयं मेरा दाहिना हाथ बन जाए।"**[20]

राजनीति में चल रहे इस धूर्ततंत्र को हिंदी की सचेत लेखिकाओं ने बखूबी पहचाना है। और अपनी भाषा में इसकी आलोचना की है। उपन्यास में मुख्य रुप से अभाव ग्रस्त जीवन जी रहे मजदूरों के अधिकार का सवाल उठाया गया है। इसके अलावा आधुनिकता के नाम पर स्त्री अस्मिता के साथ हो रहे खिलवाड़ को रोकने के लिए न्याय का सवाल, बेरोजगारी और स्त्री शिक्षा का सवाल, भ्रष्टाचार और पूंजीवाद के भीषण स्थिति को रोकने के सवाल को चित्रा मुद्गल ने विशेष रुप से उठाया है। स्त्री की चेतना चूल्हे-चौके से निकल कर राज्य और समाज की गतिविधियों को परखने में लगी हुई है का उदाहण चित्रा मुद्गल ने प्रस्तुत किया है। वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक, चित्रात्मक एवं व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग करके उपन्यास को अधिक रोचक और आकर्षक बनाया गया है। महाराष्ट्र की पृष्ट भूमि पर कथावस्तु तैयार किये जाने के कारण भाषा में अधिकतर मुम्बैया शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे चप्पल, खोली, आतिथ्य, हरामखोर आदि। इसके अलावा ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मराठी उर्दू तथा अंग्रेजी भाषा के साथ मुहावरों का प्रयोग भी किया गया हैं। सिलवट न चिपकना, दीयों में तेल चुआकर बैठना, ताकते रह जाना जैसे मुहावरों का प्रयोग देखा जाता है। इनकी भाषा की एक मुख्य विशेषता यह है कि इन्होंने बढ़े सुंदर ढंग से चित्रात्मक भाषा का प्रयोग किया है "चौके में पांव देते ही मां की आवाज लगी। **'नमी ! नई वाली चप्पले तो दे तनिक अपनी।"[21] इसके अलावा बिंब-विधान का प्रयोग भी बड़ा रोचक लगता है "प्लास्ट-उघडी, चूते खपरैलवाली किसी पुरानी की आठ-बाई -आठ की कोठरी जैसा, जिसमें शायद उसके लिए एक छोटी सी खिडकी भी न हो।"[22]** हम कह सकते है उपन्यास केवल विषय वस्तु की दृष्टि से ही नहीं भाषागत शिल्प की दृष्टि से भी उत्कृष्ट माना जा सकता है। पात्र गठन और शब्दों का चुनाव ही भाषा को सशक्त बना सकते है। भाषा का आकर्षण पाठको को अंत तक बांधे रखता है। घटनाये रचना को रोचक अवश्य बनाती है परंतु भाषा उसमें आकर्षण पैंदा करती है। स्त्री लेखन में भाषा अभिव्यक्ति की कला में प्रौढ़ता देखी जाती है। चित्रा मुद्गल के साहित्य

में भाषा और कथावस्तु किसी चीज में समझौता नहीं किया गया है । उपन्यास में तर्क, विचार, अनुभव, भावना, कल्पना, प्रेम, धृणा, हत्या, हिंसा सभी का संगम देखा जा सकता है । इसी तरह यदि स्त्री भाषा को समृद्ध करने में मधु कांकरिया के योगदान को भी भूलाया नहीं जा सकता । खुलेगगन के लाला सितारे को उदाहरण के तौर पर लिया जा सकता है । उपन्यास में बौद्धिकता, तार्किकता, आलोचना, समीक्षा तो है ही साथ ही पात्र चयन की समझ भी तारीफे काबिल है । आवश्यतकता के मुताबिक ही पात्रों को खड़ा किया गया है । एक वृहद आंदोलन पर आधारित कथावस्तु सीमित पात्रों के माध्यम से भी रोचक बनी है । संवाद शैली और विचार अभिव्यक्ति को बड़े ही गंभीर रुप में प्रस्तुत किया गया है । देश की मुक्ति के संदर्भ में लेखिका के विचारों को कुछ इस तरह देखा जा सकता है । **"नेतागण बड़े-बड़े स्टील प्लान्टों और दैत्याकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों में देश की मुक्ति खोज रहे थे और चावन पर रुपए किलो (उस समय का चार रुपया) बिक रहा था । कस्बों, गांवों में लोग अभी भी सिर पर मैला -विसर्जित मल मूत्र) ढो रहे थे । बाटा गांव-गांव शहर-शहर, ठौर-ठौर पांव पसार चुकी थी और गांव का मोची बेकार था । भारत के गांवों में बिजली नहीं पहुंची थी, लेकिन कोकाकोला पहुंच चुका था ।"**[23]

देश की स्थिति को देखने का लेखिका का एक अपना अलग नजरिया है । वे देश की मुक्ति शहरों में स्थापित किये गये चंद उद्योग और कंपनियों से नहीं बल्कि उन दूर-सुदूर गांव की गरीब जनता की समृद्धि से मानती हैं । गांव की जनता जिस दिन समानता और विकास का लाभ उठा पायेगी सही मायने में देश की मुक्ति कहलायेगी का विचार उनके उपन्यास में देखा जा सकता है । भूमिहीन किसानों द्वार की गई क्रांति के माध्यम से लेखिका ने सामाजिक विभेद और शोषण की स्थिति को प्रस्तुत किया है तो राज्य के दमन को प्रस्तुत करके निरंकुश और पूंजीपति मानसिकता को प्रस्तुत किया है । मूलतः उपन्यास में असमानता, विभेद,

बेरोजगारी, गरीबी, भूखमरी, अशिक्षा, धर्मान्धता की समस्या को दिखाया गया है । धर्म को वे अफीम की श्रेणी में रखती है उनका मानना है । जिसकी लत ने उन्हें लाचार कर दिया है वे शोषण और अत्याचार को सहने पर बाध्य बनते जाते है । उनकी लाचारी को वे इस तरह बयान करती है 'जो विधि राखे राम सो विधि रहिए ।' लेखिका ने भारतीय सामाज के राजनीतिक इतिहास के साथ-साथ उसकी वर्तमान स्थिति को भी आर्कषक भाषा शैली में प्रस्तुत किया है । अंग्रेजी, भोजपुरी, बंगाली, संस्कृति शब्दों के प्रयोग से भाषा में आधुनिकता आई है । लोकोक्तियां और मुहावरों ने उपन्यास को रोचक बनाया है । जिसकी खाये बाजरी उसकी साजे हाजिरी । गरीब की लुगाई गांव की भौजाई । धन धनिया को, ग्वाल के हाथ लकड़ी । भाषा अभिव्यक्ति की कला, पात्र चयन, विषयवस्तु का चयन, वाक्य गठन, संवाद शैली, बिंब और प्रतीकों का प्रयोग, लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग विचार वैविध्य सभी दृष्टि से हम कह सकते है कि स्त्री भाषा एक सक्षम भाषा के रुप में उभर रही है । निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि स्त्री भाषा आज के दिन में पुरुष भाषा की तुलना में किसी भी पक्ष से कम नहीं आंकी जा सकती । स्त्री भाषा में जहां भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता है तो वहीं विचार और अनुभवों को भी अभिव्यक्त करने की क्षमता है । आलोचना से लेकर गद्द की सभी विधाओं को स्त्री भाषा में लिखा जा सकता है । चरम उत्पीड़न के गर्भ से स्त्री भाषा का उद्‌भव हुआ है । जिससे स्त्री जीवन की अनेकों आकांक्षायें जुड़ी हुई है ।

६.४ नेपाली स्त्री भाषा की पृष्ठभूमि

नेपाल में स्त्री भाषा अपने प्रारंभिक दौर से गुजर रही है । आधुनिक युग में आकर उसमें स्त्री भाषा संबधी चेतना जागी है । पितृसत्ता का दंश आज भी नेपाली स्त्री साहित्यकारों के बीच यथावत है । स्त्री जब भी कुछ अच्छा या नया लिखने का प्रयास करती है तो उसका उपहास किया जाता है या उसके लेखन पर अनेक तरह के आरोप लगा दिये जाते है । पिछले समय में सरस्वती प्रतीक्षा के साथ इसी तरह

की घटना घटी। उनकी रचना नथिया (2017) जो दलित स्त्री जीवन के शोषण के चरम यथार्थ को बयान करती है को विवादित कर दिया गया। उसकी अभिव्यक्ति कला पर सवाल उठाये गयें। अश्लील शब्द प्रयोग किये जाने का आक्षेप लगाया गया। जब कि प्रतीक्षा का कहना था कि मैंने वही लिखा है जो समाज का यथार्थ है, जो स्त्रियों ने भोगा है, जो शब्द पुरुषों ने स्त्री के लिए प्रयोग किये हैं, वही साहित्य में उतारे गये हैं। यह घटना नेपाली स्त्री लेखन के संदर्भ में दो बातें स्पष्ट करती है। एक यह कि स्त्री आज भी लेखन क्षेत्र में स्वतंत्र नहीं है दूसरा यह कि उसकी चुनौतियां बढ़ रही हैं। पुरुष अपने खिलाफ न कुछ सुनना चाहता है न स्त्री को आगे बढ़ते देखना चाहता है। आज तक उसने जो कुछ भी स्त्री के संदर्भ में लिखा है उसके पीछे खुद को चर्चा में लाने का उद्देश्य के अलावा और कुछ नहीं था। स्त्री की स्थिति को सुधारने और सहानुभूति दिखाने जैसे जो विचार फैलाये गये थे, वह महज भ्रम मात्र है। बहरहाल आज स्त्री को उसकी सहानुभूति नहीं चाहियें उसे जरुरत है तो केवल इसकी की वह स्त्री को अपना समकक्षी समझे खुद से कमजोर या कमतर नहीं। यह सत्य है कि नेपाली लेखिकायें वर्तमान में अपने साहित्य और भाषा के विकास में जुटी हुई है। स्त्री विमर्श के माध्यम से भाषा और अपने अधिकार के मुद्दों को साझा करने का उनका अभियान दुगुनी रफ्तार से आगे बढ़ रहा है। स्त्री अधिकार के मुद्दों को साझा करने के दौरान ही स्त्री लेखिकाओं का ध्यान भाषा की ओर गया। इससे पहले नेपाली स्त्री भाषा भी हिंदी की तरह पितृसत्तात्मक समाज में दबी-कुचली हुई थी। भाषा की संरचना की नींव लैंगिक विभेद के आधार पर रखी गई थी। जिसके कई उदाहरण पेश किये जा सकते हैं। भारत की तरह नेपाल में भी पुरुष भाषा ही सामाजिकरण का माध्यम थी। जिसमें लैंगिक विभेद सहज ही देखा जा सकता है। पुरुष को संबोधन करने वाले शब्द लोग्ने, श्रीमान, केटा और छोरा इन चारों शब्दों की संरचना स्वतंत्र रुप में हुई ये आत्मनिर्भरता के प्रतीक माने जाने वाले शब्द है। तो दूसरी तरफ 'ई' कार लगाये गयें शब्द स्त्री के संबोधन के लिए प्रयोग में लाये जाते है। जैसे

श्रीमती, स्वास्नी, केटी, छोरी आदि इन सभी शब्दों को परनिर्भर शब्द के रुप में स्वीकार किया गया है। यानी नर पर निर्भर होने के कारण नारी शब्द को स्त्री के लिए उचित समझा गया। स्त्री के लिए परनिर्भरता को जताने वाले इन शब्दों को मान्यता देना पुरुष सत्ता की भाषिक राजनीति का उदाहरण है। नेपाली में अधिकतर शब्द पुलिंग है। स्त्री लिंग के जो उदाहरण पेश किये गये हैं, उसके पीछे कमजोर और हीनता बोध का भाव देखा जाता है। अपवाद स्वरुप 'शक्ति' शब्द स्त्री लिंग को सूचित करने वाला शब्द है परंतु यह जीती जागती स्त्री के लिए नहीं है किसी एक अदृश्य शक्ति के लिए है। बहरहाल स्त्री को भ्रम रखने वाले ऐसे कई शब्द हमे पुरुष भाषा के भीतर मिल जायेंगे। इसके पीछे की राजनीति का कुछ और इतिहास है जिसके बारे में शोध किया जाना आवश्यक है। सदियों से नेपाली स्त्री समाज इस पितृसत्तात्मक भाषीय संरचना को ही स्वीकारने पर बाध्य था। बाद में जब लैंगिक समानता की बात उठी तो नेपाली स्त्रियों ने लैंगिक विभेद करने वाले शब्दों को बहिष्कार करना शुरु किया। सरकारी कार्यालयों में कागज पत्रों पर श्रीमती की जगह श्री से संबोधन किये जाने वाले शब्दों को रखे जाने की मांग की गई। ताकि लैंगिक समानता को आनुभूत किया जा सके। जेंडर समानता के लिए शब्दों की खोज का अभियान ही चलाया गया। यहीं से नेपाल में स्त्री भाषा पर जांच पड़ताल शुरु हुई और इस अभियान में स्त्री लेखिकाओं ने भी विशेष ध्यान दिया। साहित्य के क्षेत्र में लैंगिक विभेद के बारे में सुधा त्रिपठी लिखती है **"साहित्य चेतना का सशक्त माध्यम है, जो काम साहित्यिक पाँच दिन प्रभावकारी रुप में कर सकता है। उसी काम को अन्य माध्यमों से करने में महीनों लगते है। ऐसे प्रभावकारी माध्यम को पुरुष स्रष्टाओं ने अपनी समुज्वल छवि प्रस्तुत करने के लिए महिलाओं को अष्टावक्र और सहस्रवक्र रुप में प्रस्तुत करके उसका एक तरफा प्रयोग किया है। इसी कारण साहित्यिक मंच में लैंगिक विभेद विषम रुप में देखा जाता है।"**[24]

नेपाली स्त्री साहित्य समाज में स्त्री लेखिकाओं द्वारा इस विभेद को पहचानना ही उनकी पहली सफलता है । चारों तरफ से बंद स्त्री समाज इस स्थिति पर पहुंचा है कि अपने साथ हो रहे अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने का माध्यम खोज सके । इन माध्यमों में सबसे बड़ा और प्रभावकारी माध्यम साहित्य है और साहित्य के लिए भाषा अनिवार्य है । भाषा के बगैर साहित्य की कल्पना संभव नहीं है । अब यहां पर यह सवाल अहम हो उठता है कि स्त्री विचार एवं समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए भाषा कैसी होनी चाहिए ? उसका स्वरुप कैसा होना चाहिए ? स्त्री लेखिकाओं ने इन सवालों को ध्यान में रखते हुये स्त्री भाषा के विकास की ओर अपने कदम बढ़ाये हैं । उनकी भाषा में अपने विचारों को रोचक ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता देखी जा सकती है । यूं तो स्त्री भाषा का सवाल वर्जीनिया उल्फ ने सन् 1926 में ही उठा दिया था, उनका मानना था कि पुरुष वाक्यों का अनुकरण, परंपरागत स्वरुप संरचना, नारीद्वेष गालियों व शैलियों के प्रयोग तथा लिंगभेद को सूचित करने वाला शब्द प्रयोग आदि का स्त्री लेखन में महत्व नहीं है । स्त्री लेखन को स्त्री लेखन मानना जितना गलत है, उतना ही गलत है समग्र पुरुष भाषा को लिंग विभेद रहित मानना या सर्वसामान्य मानना । प्रत्येक रचना के वाचन के विविध प्रसंग होते हैं । अतिकथनों के भी राजनीतिक कारण होते है । सामान्य रुप में साहित्यिक वाचन या आलोचना कार्य पुरुष कार्य माना जाता है लेकिन यह तो स्पष्ट है कि अब कोई लिंग सापेक्ष या लिंग निरपेक्ष अपने अर्थ में वाचन कर के अपने अनुकूल लिखतं या पढ़ंत जोड़ सकता है । आज का समय इसी तरह के अलग हस्तक्षेप का है । समानता, लोकतान्त्रिक विश्वबंधुत्व एवं समग्र मानव जीवन के विविध पक्षों को समेटने वाला स्त्री दर्शन । यह उन लोगों को जगाता है जो नारी शोषण के पक्ष को अनदेखा करके चलते है । यह अपनी भाषागत प्रक्रिया में सतत् परिवर्तन की चाह रखता है । नारीवाद संबंधी प्रचलित अनेक धारणायें अस्तित्ववाद, निर्णयवाद, अस्मितावाद आदि सभी स्त्रीवाद को ही समेटकर चलते है । इस बात को स्वीकार किया जा चुका है कि स्त्री अनुभवों की अभिव्यक्ति के

लिए परंपरागत भाषा संरचना पर्याप्त नहीं है । इसलिए स्त्री भाषा की एक अलग अवधारणा का विकास किया गया है । पितृसत्तात्मक भाषा कितने ही संदर्भ में स्त्री विरोधी रही है इसका यथार्थ हम जान चुके है । उदाहरण के लिए जब किसी गाली देने वाले पुरुष को प्रत्युतर में गाली देने के लिए उसके पास विशेष शब्द नहीं होते थें । तब उसे नये शब्द ढूंढने या गठित करने की आवश्यता महसूस हुई । कहने का तात्पर्य यह है कि पितृसत्तात्मक समाज की गालियां, अश्लील शैलियां तथा असभ्य प्रयोग जब स्त्रियों को करना पड़ता है तो वे आत्मनिंदा महसूस करती है । ऐसी स्थिति में पितृसत्तात्मक भाषा स्त्री के लिए उपहास बन जाती है । स्त्री ऐसे भाषा शब्द प्रयोग करने पर विवश हो जाती है, जो उसके इच्छा के विरुद्ध कार्य करता है । पितृसत्तात्मक भाषा द्वारा स्त्रीत्व पर यह एक बहुत बड़ा उपहास है । कई लेखिकायें ऐसी है जिन्हें भाषा की इस राजनीति के बारे में कोई भी जानकारी नहीं है । परंपरागत समाज साहित्यिक प्रतिष्ठा के झूठे लालच में पड़ कर अन्याय को थोपने वाली भाषा संरचना का अनुकरण करती है । स्त्री लेखिकाओं को पता होना चाहिए कि वे उस भाषा का प्रयोग नहीं कर रहीं हैं बल्कि एक शक्तिशाली भाषा उनका प्रयोग कर रही है । सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक दृष्टि से यह साफ है कि अधिकार की तयसुधा भाषा में मौलिक चिंतन की संभावना कम रहती है । अमेरिकी भाषा वैज्ञानिक रोबिन लाँकोफ ने स्त्री भाषा को अलग रुप से देखा था । एड्रीन रीच ने भी कहा है कि **"परंपरागत समाज में लेखिकायें वर्चस्ववादी भाषा का प्रयोग करती है, कई कारणों से वे उसे खारीज नहीं कर पाती हैं, उनकी अलग भाषा शैली अभी तक पूर्ण रुप से विकसित नहीं हो पाई है । प्रयास जारी रखना है कि स्त्रीत्व का पूरा उभार संभव कराने योग्य भाषा संरचना बन सके ।"**[25]

स्त्री भाषा का सवाल उसकी पहचान से जुड़ा हुआ सवाल है । इसलिए इस भाषा के मुद्दों को गंभीर रुप में लेने की आवश्यकता है । स्त्री भाषा की समृद्धि तभी हो सकती है जब इसके बारे में दुनियाभर की औरतें खुलकर बहस करेंगी और इसकी

उपयोगिता एवं आवश्यकता को वैज्ञानिक रुप में पितृसत्ता के सामने रखेंगी । जब इस भाषा का अधिक से अधिक प्रयोग किया जायेगा यह अपने आप पढ़ने और सुनने का विषय बन जायेगी । नेपाल में स्त्री भाषा के संबंध में अन्य देशों की तुलना में इतना अधिक विचार-विमर्श या बहस तो नहीं हुआ है । हाँ यह अवश्य देखा जा सकता है कि महिलायें स्त्री भाषा को जानने समझने का प्रयास कर रही है । इस बात को स्वीकार कर रही है कि स्त्री भाषा पुरुषों से अलग होती है । भाव, विचार और अनुभवों को अपने लहजे में अभिव्यक्त करने के लिए शब्द और शैलियां ढूंढने लगी है । नेपाली महिला रचनाकारों का मानना है कि वे पुरुषों की तुलना में अपने जीवन के यथार्थ और अनुभवों को अधिक बेहतर रुप में शब्द-बद्ध कर सकती है । यूं तो पुरुषों ने भी स्त्री समस्याओं को अपनी रचनाओं में शामिल किया है परंतु उनमें पुरुष विचारधारा या वर्चस्व कहीं न कहीं किसी न किसी रुप में उपस्थित हो ही जाता है । इसलिए जितने गंभीर रुप में स्त्री अपने अनुभवों को अपने निजी नजरिये से साझा करेगी स्त्री का यथार्थ उतना ही निखर कर आयेगा । इसलिए स्त्री विमर्श स्त्री जीवन का आइना है । परंतु लीला लुइटेल स्त्री लेखन को स्त्री समस्या तक ही सीमित न रखते हुए इसे मानव जीवन के हक की लड़ाई लड़ने वाला साहित्य मानती है और इसके माध्यम से भाषा शैली के विकास की संभावना को भी साझा करती हैं **"समग्र रुप में स्त्री समस्या और स्त्रीवादी चिंतन की प्रस्तुति, मानवीय जीवन मूल्यों की खोज, मनोविश्लेषणात्मकता, प्रगतिशीलता, जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण, युगीन यथार्थ का चित्रण, भाषा शैलीय विन्यासगत विविधता आदि आधुनिक स्त्री विमर्श का वैशिष्टय है ।"**[26]

सत्य तो यह है कि स्त्री साहित्य समाज के उपेक्षितों का साहित्य है । हाशिये के लोगों का साहित्य है जिसमें सत्ताधारी वर्ग का विरोध मिलता है । पतन होते मानवीय मूल्य की खोज मिलती हैं । अपनी आम जरुरतों के लिए तरसते लोगों की वेदना मिलती हैं । समानता का भाव मिलता है । जाहिर है इस अभिव्यक्ति के लिए

स्त्री ने अपनी एक निजी भाषा को गढ़ा है । पितृसत्तात्मक मानसिकता के मुताबिक नेपाली स्त्री साहित्य आज भी दोयम दर्जो का साहित्य है । यह अलग बात है कि पुरुष जब भी स्त्री लेखन की आलोचना करता है उसमें पारिजात के प्रति थोड़ा नरम रवैया दिखाता है, वह इसलिए कि पारिजात ने नेपाली साहित्य में समाजवादी विचारधारा को पुरुष लेखन से भी उकृष्ट रुप में उत्कृष्ट शैली में प्रस्तुत किया है । इसलिए पारिजात केवल स्त्री लेखन के लिए ही प्रेरणा का स्वरुप नहीं है वह पुरुष लेखन के लिए भी प्रेरणा का स्वरुप है । लीला लुइटेल और सुधा त्रिपाठी जैसे स्त्री आलोचकों का मानना है कि स्त्री साहित्य की आलोचना आज तक पुरुष दृष्टि से ही होती आयी है । अतः अब स्त्री दृष्टि से होना आवश्यक है ऐसा करने से बहुत से ऐसे सबल पक्ष जो स्त्री साहित्य में पुरुष मानसिकता के कारण नजर अंदाज किये जाते रहे हैं वह सामने आयेंगे और स्त्री साहित्य जितना कमजोर बताया जाता है दरअसल उतना कमजोर नहीं है । पारिजात के अलावा स्त्री भाषा के विकास में योगदान देने वाली महिला लेखिकाओं में भागीरथी श्रेष्ठ, माया ठकुरी, वानीरा गिरी, मंजु काँचुली, तोया गुरुङ, शारदा शर्मा, बाबा बस्नेत, भद्रकुमारी घले, शांता श्रेष्ठ, गीता कार्की, नीलम कार्की, झमक घिमीरे, रीता खत्री, सरस्वती प्रतीक्षा आदि हैं । इन्होंने नेपाली भाषा और स्त्री लेखन को एक विशेष मुकाम दिलाने का काम किया है । नेपाली लेखिकायें अपने देश और परिवेश में होने वाले स्त्री शोषण की घटनाओं को अपनी भाषा में अभिव्यक्त करने में सफल हो रही । हर्ष की बात यह है कि उनकी रचनाओं में न अंधानुकरण है न अतिरंजना उनकी रचनाओं में स्त्री जीवन के अभाव और अधिकारों को पाने की जद्दोजहद एक ऐसी शैली में अभिव्यक्त किया गया है कि पाठक की आँखों में तरलता आ जाये । जो स्त्री पुरुषसत्ता के नियंत्रण में वर्षों से रही है । जिसके उठने, बैठने बोलने तक में पुरुषों का नियंत्रण रहा है उसको इस मुकाम तक पहुंचने में कितना संघर्ष करना पड़ा और क्या-क्या चुनौतियां झेलनी पड़ी यह बड़ा सवाल है । संतोषजनक बात यह है कि इस प्रतिकूल परिस्थिति में खुद के अस्तित्व की रक्षा करते हुए पितृसत्ता के

लिए एक चुनौति बनना । आर्थिक परनिर्भरता के चलते भी अपनी रचनाओं को प्रकाशित करने का साहस जुटाना ही स्त्री का सबसे बड़ा विद्रोह है । आज स्त्री साहित्य इन्हीं वजह से पुरुषों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हुए आगे बढ़ रहा है । विचार, तर्क, शैली और काव्यसौन्दर्य हर पक्ष से नेपाली स्त्री साहित्य पुरुष साहित्य का समकक्षी है । दुख की बात यह है कि फिर भी स्त्री साहित्य दोयम दर्जे के आरोप से मुक्त नहीं हो पाया है । स्त्री साहित्य केवल स्त्री की पहचान मात्र नहीं है वह उस देश की पहचान भी है जहां उसकी रचना की गई है । डॉ. सुधा त्रिपाठी लिखती हैं **"महिलायें चाहे समाज में हो या साहित्य में व्यक्तित्व पहचान के सवाल में हमेशा उपेक्षित रही हैं । भौतिक सौन्दर्य को स्त्री का संपूर्ण व्यक्तित्व समझने वाले समाज में उसके आंतरिक सौन्दर्य की तरफ देखने का प्रयत्न तक नहीं किया जाता । ऐसी स्थिति में स्त्री को खास व्यक्तित्व पहचान के लिए पहल करनी चाहिए ।"**[27]

सुधा त्रिपाठी के मुताबिक स्त्री को चाहे भाषा के मामले में हो या अस्तित्व को बचाने के मामले में हो, अपनी पहचान को अधिक महत्व देना चाहिये । जैसा कि हम जानते है किसी भी देश की भाषा और साहित्य उस देश की सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक है । वह जितनी समृद्ध होगी वहां की सभ्यता भी उतनी ही समृद्ध मानी जायेगी । यही संदर्भ स्त्री की भाषा में भी लागू होता है । स्त्री को दुनिया में अपनी अलग पहचान के लिए अपनी भाषा और कला को समृद्धि करने की ओर विशेष ध्यान देना होगा । यह सत्य है कि आज के समय में स्त्री भाषा में नये-नये प्रयोग किये जा रहें हैं । परंपरागत भाषा पीछे छूट चुकी है । लोकोक्तियों और मुहावरों में भी आधुनिकता देखी जा रही है । बिंब और प्रतीक में भी स्त्री भाव या स्त्री दर्शन झलकता है । वाक्यों गठन में भी कम से कम शब्द प्रयोग करके अधिक से अधिक भाव या विचार अभिव्यक्ति करने का लक्ष्य देखा जाता है । शैलियों के प्रयोग में भी स्त्रियों ने विशेष ध्यान दिया है । आलोचनत्मक, व्यंग्यात्मक और

विश्लेषणात्मक शैली विशेष रुप से प्रयोग में लायी जा रही है । जिसके माध्यम से पितृसत्ता का विरोध किया जा सके ।

६.५ समकालीन नेपाली विमर्शवादी साहित्य और स्त्री भाषा

नेपाल में समकालीन विमर्शवादी साहित्य को स्त्री भाषा के विकास का महत्वपूर्ण माध्यम माना जा सकता है क्योंकि इसी दौरान नेपाली स्त्रियों ने भाषीय विभेद को पहचाना और अपने लिए स्त्री भाषा को उपयुक्त मानने के विचार को आत्मसात किया । नेपाली साहित्य में स्त्री भाषा को सर्वप्रथम प्रयोग में लाने वाली लेखिका के रुप में पारिजात को लिया जा सकता है क्योंकि ये पहली लेखिका है जिन्होंने यथार्थवाद को साहित्य में प्रयोग किया था । समाज के सभी उपेक्षित वर्गों की पीड़ा वेदना त्रास, भय, राज्य के प्रति जनता की उदासीन मनोस्थिति को इनके साहित्य में देखा जा सकता है । पारिजात का साहित्य नेपाल की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति को प्रस्तुत करने में भी सफल हुआ है । इनकी रचनाओं के अधिकतर पात्र नेपाली समाज के निम्न और मध्यम वर्ग के हैं । इसलिए वे अपनी जीवन चर्या के लिए निरंतर संघर्षरत दिखाई पड़ते है परंतु उनके जीवन में यथोचित परिवर्तन न आ पाना चरम शोषण की स्थिति को प्रस्तुत करता है । पारिजात ने फुटपात पर रहने वाली स्त्री से लेकर महल में रहने वाली स्त्री के जीवन की विडंबनाओं को साहित्य में उतारा है । पारिजात की स्त्री पात्र अपनी जिम्मेदारियों को खूब समझती हैं और निभाने का प्रयास भी करती है । नैकाफे सर्किनी पारिजात की कहानी की एक ऐसी स्त्री पात्र है जो दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जीवन में आर्थिक संकटों को झेलते हुए, भीषण गरीबी में भी अपनी जिम्मेदारी नहीं भूलती । पति अपांग है फिर भी उसमें मालिक होने का अहम कूट-कूट कर भरा है । वे लिखती हैं **"उसका पति उसको शारीरिक रुप में प्यार भी नहीं कर सकता और घृणा भी नहीं कर सकता, इसलिए वह उसे भाषा से मारता है । आँख के**

हाव-भाव से बलात्कार करता है। शब्द से लात मारता है। एक अति विवश पुरुष भी अपनी विवशता प्रति रत्तीभर भी सचेत नहीं है।"[28]

पारिजात की इस अभिव्यक्ति से समाज का यह सत्य सामने आता है कि एक मृत अवस्था का पुरुष भी जीती जागती स्त्री पर शासन करता है। और एक जीती जागती स्त्री को लाश के समान समझा जाता है । नैकाफे सर्किनी में एक तरफ दलित स्त्री के जीवन की जटिलताओं को रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है तो दूसरी तरफ उसे तपस्वीनी की उपमा देकर स्त्री की यौन स्वतंत्रता को पुरुष सत्ता द्वारा नियंत्रण किये जाने की समस्या को उठाया गया है। पारिजात जिस तरह सामाजिक समस्याओं से जुड़े विषय वस्तुओं को उठाने में सक्षम हुई है, उतना ही भाषा को रोचक बनाने में भी सक्षम है। पितृसत्ता के विरोध करने वाले कई वाक्य उनके साहित्य में देखे जा सकते है मसलन " **तेरो बाबुको लादी घिच्** "[29] पारिजात नेपाली समाज की उन गली कुचो में घुस कर समाज को देखती है जहां शायद ही कोई पुरुष पहुंचा है। 'तिउरी को फूल, पायरिया को गंध' कहानी में पारिजात ने शारीरिक विकलांग स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डाला है। प्रतिदिन सामाजिक सुरक्षा के लिए तरसती स्त्रियां गांव, शहर के चौराहे पर मिल जाती है। विडंबना यह है कि ऐसी स्थिति में भी देश का प्रशासन और पुरुष उसके साथ सहानुभूति नहीं जताता बल्कि उसकी विषम परिस्थिति का भी फायदा उठाने के फिराक में रहता है। पारिजात ऐसी स्त्री के सुरक्षा के सवाल को इस कहानी में उठाकर समाज में मानवीय मूल्यों और न्याय की स्थापना करना चाहती हैं। वे बताना चाहती है कि विकलांग या मानसिक अस्वस्थ्य स्त्रियों को विशेष सुरक्षा और सुविधा की आवश्यकता होती है इसलिए इनकी जिम्मेदारी राज्य और देश के जिम्मेदार नागरिकों की होनी चाहिए। जब एक स्त्री का इस अवस्था में शोषण होता है तो जाहिर है कि ऐसी घटनायें उस देश की क्रूरता और असभ्यता को प्रस्तुत करती है। उनकी यह कहानी विषयवस्तु की दृष्टि से जितनी संवेदनशील है भाषा पक्ष की

दृष्टि से भी उतनी ही गंभीर है । वर्णनात्मक शैली में लिखी गई यह कहानी स्त्री की गंभीर समस्या की ओर सब का ध्यान आकर्षण करती है । पारिजात की स्त्री पात्र अपने जीवन के अभावों के साथ तो लड़ती है ही साथ ही पितृसत्ता की बेड़ियों को तोड़ने का असफल प्रयास भी करती हैं । वे पितृसत्ता के खिलाफ विद्रोह या क्रांति नहीं कर पाती उनके भीतर एक प्रकार का अंर्तद्वंद्व हमेशा चलता रहता है । उनके उपन्यास शिरीष के फूल की स्त्री पात्र सकक्बरी जीवन के प्रति घोर निराशा, कुंठा, विसंगति बोध, अनास्था जैसी विकारों से घिरी रहती है । इसलिए वह मानसिक रोगी के रुप में पाठकों के सामने में उपस्थित होती है । यदि वह इन चीजों से ऊपर उठ पाती तो शायद एक प्रगतिवादी, क्रांतिकारी पात्र के रुप में पितृसत्ता के खिलाफ लड़ती और एक सशक्त पात्र का उदाहरण प्रस्तुत कर पाती । पारिजात का भाषा शिल्प अद्भुत है । प्रश्नावली शैली ने इनकी भाषा को बौद्धिक और तार्किक स्थान दिलाया है । वे प्रस्तुत की गई घटना और उससे पीछे छुपे कारणों को प्रश्नात्मक शैली में प्रस्तुत करती है । **"मरे हुये के पास क्या पुरुषार्थ होता है । उसे इस तरह यहां पेश करना । मैं खुद से बहस करने लगी । मरे हुये को किसी भी तरह पेश करो क्या फरक पड़ता है ?"**[30] पारिजात की इस कला ने नेपाली साहित्य को शोध मूलक बनाने की प्रेरणा दी है । समस्या और उसका निवारण गंभीर हो कर खोजा जाना चाहिये की मान्यता से ही पारिजात साहित्य लिखती हैं । कहीं पर वह व्यंग्यात्मक शैली अपनाती है तो कहीं पर विश्लेषणत्मक शैली । परिस्थिति के मांग के मुताबिक भाषा का प्रयोग करना भाषा संबंधी उनके ज्ञान को दर्शाता है । यदि कोई पढ़ा लिखा पात्र है तो उसकी भाषा में अधिकतर अंग्रेजी के शब्द प्रयोग किये गये है । यदि कोई निम्न वर्ग का अशिक्षित पात्र है तो उसके लिए ग्रामीण क्षेत्र में प्रयोग किये जाने वाली बोलियों का प्रयोग किया गय है । उनके साहित्य मे विषय वैविध्य के साथ-साथ शब्दों का नवीन प्रयोग भी देखा जाता है । कहीं पर विनम्र भाव है तो कहीं पर उग्र भाव भी है । यह वाक्य उदाहरण के रुप में लिया जा सकता है "**खबरदार ! पोडे चमार तेरो बाबु को खाल हो यो**

। (खबरदार ! चमार तेरे बाप की खाल है ये ।) ।"[31] पारिजात ने अपनी भाषा को और अधिक रोचक एवं प्रभावकारी बनाने के लिए नेपाली समाज में प्रचलित लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया है । पानी मुनि छाया, ढ़ाटे की भए हजुर को मासु खाने, इसके अलावा इनकी भाषा में बिंबो और प्रतीको का उत्कृष्ट प्रयोग भी देखा जा सकता है । निष्कर्ष के रुप में हम कह सकते है कि नेपाली स्त्री भाषा के विकास में पारिजात का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । हिंदी लेखिकाओं के साथ इनकी तुलना मनोवैज्ञानिक और व्यंग्य रचना के लिए ये मन्नू भंडारी के साथ की जा सकती है, तो स्त्रीवादी विचारधारा के संदर्भ में ये महादेवी वर्मा के निकट आती है । क्योंकि इनके साहित्य में स्त्री के आदर्शवादी चरित्र के साथ उसकी मुक्ति की कामना की गई है । वे पुरुषसत्ता का विरोध तो करती है परंतु उग्रवादी नारीवाद के रुप में नहीं उदारवादी और मार्क्सवादी विचारधारा के रुप में । इनका मानना है कि स्त्री की स्वतंत्रता उसके आत्मनिर्भर होने में निहित है । वे स्त्री पुरुष को समकक्ष रुप में स्वीकारती है । पारिजात के भाषा शिल्प की बात करे तो ये मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल के समान दिखाई पड़ती हैं । इनके साहित्य में अधिकतर निम्न वर्ग और मध्यम वर्ग की महिलाएं प्रमुख पात्र के रुप में देखी जा सकती है । ये स्त्री पात्र देशकाल और वातावरण के साथ इस तरह साहित्य में प्रस्तुत की गई है कि समूचा नेपाली स्त्री समाज अपने वास्वविक रुप में प्रतिबिंबित होता दिखाई पड़ता है । संवाद कला, चित्रात्मक, वर्णनात्मक और प्रश्नात्मक शैली पारिजात के साहित्य का मुख्य आकर्षण है । नेपाली के अलावा इनके साहित्य में हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी के शब्द भी देखे जा सकते है । इसी तरह नेपाली स्त्री भाषा के विकास में अन्य कई स्त्रीवादी लेखिकाओं का नाम लिया जा सकता है माया ठकुरी, मंजु कांचुली, सरिता प्रधान, प्रेमा शाह, अनिता तुलाधर, भुवन ढुंगाना, इन्दिरा प्रसाई, सिर्जना शर्मा, रेवती राज भंडारी, बेज्जु शर्मा, हिरण्य कुमारी पाठक, जलेश्वरी श्रेष्ठ, गीता उपाध्याय, रामेश्वरी पंत, सुस्मिता नेपाल गौरा रिजाल, शोभा भट्टराई, प्रभा कैनी, सरला रेग्मी, रुकु कार्की आदि । इन लेखिकाओं ने स्त्री भाषा

में पुरुष वर्चस्व का विरोध किया है और स्त्री के लिए समाज में नये प्रतिमान गढ़े है। स्त्री जीवन को नया आयाम दिया है। पुरुष से डर कर नहीं लड़ कर स्त्री के मूल्यों को स्थापित किया जा सकता है कि मान्यता समाज के समक्ष रखी ही।

वैसे तो समग्र स्त्री वादी आंदोलन इनके साहित्य में गूंजता है। लेकिन इन लेखिकाओं की खास बात यह है कि इन्होंने अपने समाज और परिवेश को ध्यान में रख कर स्त्री अधिकार के मुद्दों को आगे बढ़ाया है। इनका मानना है सर्वप्रथम स्त्री के कार्य का मूल्यांकन परिवार से होना चाहिए फिर समाज में और फिर राज्य में होना चाहिए। यदि स्त्रियां अपने परिवार में ही उपेक्षित रहेंगी जहां उन्हें रात-दिन काम करना है तो ऐसी स्थिति में उसकी उपलब्धि न के बराबर होगी। इन लेखिकाओं ने स्त्री जीवन से जुड़े तमाम मुद्दों को अपनी भाषा में प्रस्तुत किया है। स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक स्वतंत्रता इनके साहित्य के मूल मुद्दें है। इसके बावजूद भी इन्होनें समाज में देखी जा रही स्त्री समस्याओं के आधार पर कई नयें मुद्दों को भी जोड़ा है। मसलन स्त्री के प्रजनन संबंधी अधिकार, यौनिकता संबंधी अधिकार, महिला हिंसा संबंधी नईं नीतियों की मांग, बलात्कृत स्त्री को न्याय के अलावा सम्मान सहित जीवन यापन करने के लिए उचित वातावरण निर्माण की मांग, यौन व्यवसाय में संलग्न स्त्रियों को सामाजिक सम्मान के साथ कानूनी अधिकार की मांग, विदेशों में कार्यरत महिलाओं पर होने वाले यौन एवं अन्य घरेलू हिंसा के लिए प्रभावकारी न्याय प्रणाली की मांग, सार्वजनिक स्थल पर विभेद न किये जाने की मांग। इनकी रचाओं में देखा जा सकता है। शारदा शर्मा ने इन सबसे हटकर धार्मिक क्षेत्रों, मठ-मंदिरों में स्त्री के साथ होने वाली समस्याओं को साहित्य में उठाया है। उनका मानना है कि स्त्री के साथ विभेद की प्रक्रिया धार्मिक स्थलों में भी देखी जाती है। बुद्ध धर्म जिसे हम आज के समय में अहिंसा औंर समानता का प्रतीक मानते है ऐसे स्थानों पर भी स्त्री शोषण का शिकार बनती है। उसे उसकी देह से ऊपर उठकर देखने का संस्कार किसी भी धार्मिक संस्थाओं में नहीं देखा जाता। बौद्ध विहारों को उदाहरण के रुप में लिया जा सकता है। स्त्री

जितनी भी ज्ञानवान क्यों न हो उसे पुरुष भिक्षुण के बराबर का औहदा नहीं मिलता है । शारदा शर्मा ने स्त्री भाषा में आनी सुलक्षणा के मुंह से कहलवाया है **"पुरुष भिक्षु दश वर्ष गुम्बा के जीवन बिताने के बाद स्थविर बन जाता है । बीस वर्ष के बाद महास्थविर बनता है । बुद्ध धर्म द्वारा दिया गया यह बहुत बड़ा सम्मान है, परंतु हम हमेशा आनी ही रह जाती है । इसलिए मुझे इन छोटी बच्चियों से कड़ीकडाउ करने का मन नहीं होता । जितना भी उपर उठने की कोशिश करे इससे उपर नहीं जा सकती बेचारी ।"**[32]

इसमें कोई संदेह नहीं है कि शारदा शर्मा ने बौद्ध विहारों का सूक्ष्म अध्ययन किया है । उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने बौद्ध विहारों के भीतर के स्त्री जीवन को खंगालकर लोगों के समक्ष रखा है । बाहर से देखने में विभेद रहित सम्मानित दिखने वाली यह धार्मिक संस्थायें आंतरिक रुप से विभेद युक्त है । जिस उद्देश्य को लेकर स्त्रियां बौद्ध विहारों में जाती है उसका अंश भर भी उन्हें प्राप्त नहीं होता । स्त्रियों के लिए बौद्ध विहार रहने और खाने का ठिकाना मात्र बनाकर रह गये हैं । ताप उपन्यास केवल विषयवस्तु की दृष्टि से ही नहीं भाषा शिल्प की दृष्टि से भी उत्कृष्ट है । लेखिका ने उपन्यास में वर्णनात्मक, चित्रात्मक, विश्लेषणत्मक, व्याख्यात्मक और प्रश्नात्मक शैली का प्रयोग किया है । तिब्बती और पाली शब्द लगायत अंग्रेजी, हिंदी, संस्कृत के शब्दों का प्रयोग इनकी भाषा में देखा जा सकता है । प्रतीक, बिंब और मुहावरों को भी आवश्यकता अनुरुप प्रयोग में लया गया है । वाक्य गठन और संवाद शैली के पक्ष से भी उपन्यास उत्कृष्ट है । पात्रों का चयन भी आवश्यकता के मुताबिक ही किया गया है । अनावश्यक पात्रों से उपन्यास बोझिल नहीं बना है । कथावस्तु में एक विशेष प्रकार का तारतम्य दिखाई पड़ता है । लेखिका ने धार्मिक विसंगति के साथ-साथ स्त्री स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता और सामाजिक विद्रोह की स्थिति को भी प्रस्तुत किया है । नेपाली समाज में एक स्त्री द्वारा संबंध विच्छेद का निर्णय लेना और अपनी संतान की परवरिश की जिम्मेदारी

उठाना पितृसत्ता के खिलाफ बहुत बड़ा विद्रोह है । चन्द्रिका जैसी सशक्त स्त्री पात्र का निर्माण कर शारदा शर्मा ने बदलते हुए नेपाली समाजिक परिवेश को चित्रित किया है । सुजाता वर्तमान नेपाली समाज की एक ऐसी स्त्री पात्र है जो अपनी स्वतंत्रता और पहचान के लिए संघर्ष करती है । आज की युवा पीढ़ी अनेकों समस्याओं से घिरने के बावजूद भी अपने माता पिता पर बोझ बनना नहीं चाहती । अपने जीवन का निर्णय खुद लेती है और जीविकोपार्जन के साधन भी खुद ही खोजती है । वर्तमान नेपाली समाज में स्त्रियां केवल पुरुषों से प्रताड़ित नहीं है बल्कि स्त्रियों से भी प्रताड़ित है कि मान्यता को मंदिरा मधुश्री ने अपनी कहानी 'आइमाई' में प्रस्तुत किया है । समाज में विधवा एवं एकल महिला को हमेशा संदेह की दृष्टि से देखा जाता है । उनके चाल-चलन पर समाज नजरे गढ़ाये रखता है, जिसके कारण ऐसी स्त्रियों में आत्मविश्वस कम होता है और वे अपने जीवन में स्वतंत्रता और यथोचित प्रगति नहीं कर पाती । हीन भावना और कुंठा से ग्रस्त रहती है । इसलिए वे सर्वप्रथम पितृसत्तात्मक मानसिकता से मुक्त होने की सलाह देती है । उनकी कहानी की शोभा स्त्री पात्र इसी मानसिकता का शिकार बनती है । मधुश्री ने इसके अलावा माओवादी द्वंद्वकाल और स्त्री पर उसके प्रभाव को साहित्य के माध्यम से बताने की केशिश की है ।

यूं तो नेपाली समाज में स्त्री शोषण की घटनायें आये दिन दर्ज की जाती है परंतु द्वंद्व काल स्त्री के लिए और ही अधिक भयावह बना एक तरफ पुलिसों द्वारा जनआंदोलन में संलग्न स्त्री का शोषण हुआ तो दूसरी तरफ पुलिस प्रशासन में संलग्न स्त्रियों का माओवादियों द्वारा शोषण किया गया । शोषण की इस दोहरी स्थिति ने स्त्री जीवन को पूरी तरह तहस नहस कर दिया । स्त्री जीवन का विकास और स्त्री साहित्य इससे काफी प्रभावित रहा । हिंदी लेखिकाओं के जीवन में स्वतंत्रता पश्चात् इतने लंबे समय के लिए किसी प्रकार की बाधा दिखाई नहीं पड़ती परंतु नेपाली समाज एक लंबे अरसे तक गुमसुम रहा । इसलिए भी नेपाली स्त्री लेखन हिंदी की तुलना में पीछे दिखाई पड़ता है । बहरहाल नेपाली लेखिकाओं ने बहुत

सी चुनौतियों का सामना करते हुए साहित्य को प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ाया है यह हर्ष की बात है। उमा सुवेदी नेपाली स्त्री लेखन के विकास में एक ऐसा नाम है जिन्होंने प्रवासी स्त्रियों की समस्याओं को स्त्री भाषा में बयान किया है, उनका उपन्यास 'तोदा' जनयुद्ध के दौरान के नेपाली समाज का यथार्थ और स्त्री की स्थिति को चित्रित करता है। युद्ध की भयावह स्थिति ने समाज में असुरक्षा और बेरोजगारी की स्थिति को सृजन कर दिया था। जिसके कारण अधिकतर युवा विदेश पलायन कर गये थे और जो स्वदेश में रहे थे। उनको विविध संकटों और अभावों का सामना करना पड़ा। इन्हीं विषय वस्तुओं को लेखिका ने उपन्यास में उजागर किया है। इस दौरान स्त्री के जीवन में दो प्रकार के परिवर्तन देखे गये एक तो यह कि जिन स्त्रियों को पितृसत्ता ने जबरन घर में रहने के लिए बाध्य बनाया हुआ था उन्हें माओवादियों ने जबरन बाहर निकाला जिसके कारण उनमें आत्मविश्वास जागा और समाज को पहचानने का अवसर मिला दूसरा बेरोजगारी से आहत होती स्त्रियों के पास विदेश जाने के अलावा जीविकोपार्जन का कोई दूसरा विकल्प नहीं बचा था। इस परिस्थिति ने स्त्रियों को बाहर की दुनिया से साक्षात्कार कराया और आत्मनिर्भर भी बनाया। यहीं से नेपाली स्त्रियों में आत्मनिर्भरता की चेतना का विकास देखा जा सकता है। 'तोदा'उपन्यास स्त्री शोषण के कई पक्षों पर प्रकाश डालने में सक्षम दिखाई देता है। उपन्यास की प्रमुख पात्र पार्वती स्त्री होने के कारण ही नेपाली समाज में कितने विभेद को महसूस करती है, जब वह स्कूल जाने लगती है तो लोग उसके पिता को यह कहकर व्यंग्य करते है कि **"बनाउने भइस् होइन त तैंले आप्नी छोरीलाई इन्दिरा गांधी (बनाने के लिए तैयार हो गये अपनी बेटी को इंदिरा गांधी)"**[33] तोदा उपन्यास उमा सुवेदी पितृसत्ता का परिवर्तित होते स्त्री जीवन पर कसा गया यह तंज उसकी संकीर्ण और त्रसित मानसिकता की ओर संकेत करती है। उमा सुवेदी ने इस वाक्य के माध्यम से समाज में स्त्री की स्थिति और शिक्षा पर स्त्री की पहुंच के संदर्भ में पुरुषों की प्रतिक्रिया को समझाने का प्रयास किया है। स्कूलों में लड़कियों को संबोंधन किये जाने वाली

पितृसत्तात्मक भाषा को वे कुछ इस तरह प्रस्तुत करती है **"ओइ केटी, कहाँ आएकी ? स्कूलमा, किन आएकी ? पढ़न (ऐ लड़की, कहाँ आई है ? स्कूल में, क्यों आई है ? पढ़ने) ।"**[34]

इस वाक्य से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि नेपाली समाज में पितृसत्तात्मक भाषा किस तरह स्त्री को निम्नकोटि का होने और उसमें हीन भावना भरने की भूमिका निर्वाह करती है । उमा सुवेदी ने स्त्री विरोधी पुरुष भाषा की पोल खोलते हुए । स्त्री भाषा को स्थापित करने की कोशिश की है । वे नेपाली पितृसत्तात्मक समाज में वर्षों से चली आ रहे अनेको मिथकों की चर्चा करते हुये इस बात की पुष्टि करती है कि ये मिथक स्त्री के ऊपर शासन करने के लिए गढ़े गये थे । जिसके कारण स्त्रियां खुद की क्षमता को पहचान न सके और पुरुषों पर निर्भर होती रहें । वे लिखती है **"स्त्री अक्षर चिन्नका लागि जन्मेकै होइन । ऊं संतान पाउन जन्मिएकी हो (स्त्री अक्षर पहचानने के लिए नहीं संतान पैदा करने के लिए जन्मी है) ।"**[35] इस तरह की मानसिकता का प्रभाव स्त्री समाज में वर्षों तक पड़ा । आज धीरे-धीरे स्त्री इसके पीछे छुपी राजनीति को समझ रही है । उसने इस बात को समझ लिया है कि वह पुरुषों से किसी भी तरह कमजोर या असक्षम नहीं है । बल्कि उसे बनाये जाने की साजिश रची गई है । उमा सुवेदी स्त्री विचारों को स्त्री भाषा में अभिव्यक्त करने में सफल दिखाई पड़ती है । इनके साहित्य में वैचारिक और कलात्मक पक्ष का सुंदर संगम देखा जा सकता है । हिंदी, अंग्रेजी और संस्कृत के शब्दों के प्रयोग से इनकी भाषा में आधुनिकता आई है । पात्रों का चयन भी आश्यकता के मुताबिक ही किया गया है । उपन्यास में नेपाली और जर्मन संस्कृति और सभ्यता की झांकी प्रस्तुत करने से दो देशों के बीच के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अंतर का पता चलता है । पाठक इस बात को सहज ही भांप लेता है कि जर्मन एक खुले समाज का प्रतिनिधित्व करने वाला देश है और नेपाल बंद समाज का प्रतिनिधित्व करने वाला देश है । जर्मन में स्त्रियां

विवाह उपरांत बच्चों की परवरिश करने के बाद भी अपने जीवन को स्वतंत्र रुप से जीती उनके निजी जीवन पर कोई भी हस्तक्षेप नहीं करता और उनके जीवन में मर्यादा और यौन शुचिता जैसी कोई चीज नहीं होती । विवाह केवल एक समझौता है आवश्यकता के मुताबिक इसे जोड़ा भी जा सकता है और तोड़ा भी । नेपाल की तरह यह एक धर्म या संस्कार नहीं है । जिसे तोड़ने पर सामजिक उपेक्षा का शिकार होना पड़े । स्त्री पुरुष के संबंध यहां व्यक्ति निर्धारित करता है समाज या परिवार नहीं । बच्चों की परवरिश की जिम्मेदारी जितनी पुरुष की है उतनी ही स्त्री की भी । यहां कार्य का विभाजन लैंगिकता पर नहीं क्षमता और रुचि पर होता है । नेपाली साहित्य में अभिव्यक्ति कला के हिसाब से पारिजात के बाद नीलम कार्की निहारिका का नाम लिया जा सकता है । क्योंकि इनके साहित्य में कला और विचार पक्ष दोनों का सुंदर समन्वय देखा जा सकता है । स्त्री जीवन के सभी उतार चढ़ावों को चित्रित करने का अभ्यास भी इन्होंने किया है । संवाद शैली से लेकर वाक्य गठन, पात्र चयन, प्रतीक एवं बिंबों का प्रयोग, लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग । इनके साहित्य को विशेष बनाते है । गद्य साहित्य में भी पद्य की पंक्तियों के प्रयोग से इनके साहित्य में नवीनता आई है । कहीं-कहीं पर विचारों का खंडन और विश्लेषण की प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है । लेखिका एक पक्षीय विचार किसी पर लादती या थोपती नहीं वे दो पात्रों के बीच के संवाद के बाद ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचती है । पात्रों के बीच और कथा के बीच का तारतम्य मिलाने के खूबी इनके साहित्य में देखी जा सकती है । अतः इनकी रचनाओं में विषय वैविध्य के साथ-साथ कला पक्ष का विकास भी देखा गया है । गंभीर चिंतन और तर्क-वितर्क के कारण इनकी भाषा में क्लिष्टता आयी है । इन्होंने उन्हीं विषयवस्तु को साहित्य के लिए चुना है जिनको इन्होंने महसूस किया है या जिसके बारे में इनको गहन जानकरी है । चीरहरण हो या योगमाया दोनों ऐतिहासिक रचनायें है परंतु दोनों स्त्रीवादी दृष्टि से लिखे गये शोधमूलक रचनायें भी हैं । ये दोनों रचनायें स्त्री जीवन से जुड़ी समस्याओं पर बारीकी से दृष्टि डालती हैं ।

'योगमाया' एक विशेष प्रकार के अनुसंधान के बाद लिखा गया उपन्यास है । इस उपन्यास में मझुवाबेसी गांव और वहां के जनजीवन का समग्र चित्रण बहुत ही रोचक शैली में किया गया है । वहां की स्थानीय बोली, रहन-सहन रीति-रिवाज, खेत खलिहान, नदी-नाले पेड़-पौधे, खान-पान, देवी-देवता, जाति, धर्म, विवाह लगायत समाज के सभी पक्षों को सूक्ष्म दृष्टि से चित्रित किया गया है । एक हिसाब से इसे आंचलिकता की श्रेणी में भी रखा जा सकता है । मझुवाबेसी नायिका योगमाया के जीवन से इस तरह से जुड़ा है कि उसके जीवन के विकास का माध्यम ही वह गांव और वहां की जनता है जिसके उत्थान के लिए योगमाया हमेशा प्रयत्नशील रहती है । उनके जीवन स्तर को सुधारने के लिए वह अनेकों संकटों का सामना करती है । समाज में प्रचलित जाति, धर्म और लिंग के विभेद को अंत करने के लिए वह हमेशा प्रयासरत रहती है । नेपाली समाज के एक समग्र स्वरुप को अपनी भाषा में अभिव्यक्त करने में नीलम कार्की सफल हुई है । उनकी इस रचना के आधार पर नेपाल के गांवों को जाना जा सकता है । यही समग्र चीजें इनके साहित्य को अन्य लेखिका से अलग बनाती है । नेपाली स्त्री भाषा को सशक्त बानने के पीछे सरस्वती प्रतीक्षा का नाम भी महत्वपूर्ण माना जा सकता है । सरस्वती प्रतीक्षा की तुलना भाषा और विषय वैविध्य के आधार पर ममता कालिया और मैत्रेयी पुष्पा के साथ किया जा सकता है । सरस्वती प्रतीक्षा स्त्री चेतना की बुलंद आवाज के रुप में उभर रही है । इनकी भाषा में किसी प्रकार की काल्पनिकता या फिर आवरण नहीं देखा जाता । इनकी भाषा यथार्थ के ठोस धरातल से उपर उठती है । समाज में प्रचलित स्त्री को हीन और तुक्ष्य दिखाने वाले शब्दों को इन्होनें खोज-खोजकर साहित्य में समेटा है । नेपाली पुरुष साहित्यकारों ने जिस यथार्थ को छुपाने की कोशिश की है सरस्वती प्रतीक्षा ने उसे उकेर कर रख दिया है । ममता कालिया की तरह बेवाकी से इन्होने स्त्री शोषण के यथार्थ को चित्रित किया है । नथिया उपन्यास में इन्होने प्रेम और विवाह के नाम पर हो रहे शोषण का पर्दाफांश करते हुये स्त्री को इस भ्रम से बाहर निकलने की

सलाह दी है । दलित स्त्रियों द्वारा भोगे जा रहें सामाजिक असमानता और यौन शोषण का यथार्थ इनके साहित्य में देखा जाता है । इनकी भाषा में स्थानीय शब्दों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया गया है । इन्होंने अलग-अलग समुदाय के पात्रों को उपन्यास में स्थान दिया है । जिसके कारण रचना में समता और समन्वय का भाव भी महसूस किया जा सकता है । इस आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि समकालीन नेपाली स्त्री लेखन निरंतर विकास के मार्ग पर अग्रसर है । स्त्रीवादी साहित्य के कारण ही स्त्री भाषा का विकास संभव हो सका है और सबसे बड़ी बात यह है कि स्त्री भाषा स्त्री के पहचान के रुप में आगे बढ़ रही है और भाषा के माध्यम से किये जा रहे स्त्री शोषण के पक्ष को खंगालते हुये । पुरुष भाषा के षडयंत्र को समाज के सामने रखने में सफल हो रही हैं ।

६.६ समकालीन नेपाली स्त्री भाषा का राजनीतिक संदर्भ

नेपाली समाज में स्त्री हमेशा उपेक्षा का पात्र रही है । विगत से लेकर वर्तमान तक में पुरुष स्त्री को खुद से कमजोर और अविवेकी मानता आया है । लेकिन हर्ष की बात यह है कि आज स्त्रियां खुद को सक्षम साबित करने में जुटी हुई हैं । अब सवाल यह उठता है कि स्त्री की यह स्थिति पैदा कैसे हुई और इसका जिम्मेदार पक्ष कौन है ? उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिम में उठे स्त्रीवादी आंदोलन ने इन सवालों के जवाब खोजें और यह पता लगाया कि स्त्रियां कमजोर या अविवेकी नहीं है, उसे जबरन बनाया गया है । इसके पीछे पुरुष सत्ता की एक बहुत बड़ी साजिश है । वह बड़े संख्या में रहने वाले मानव समुदाय पर शासन करना चाहता था । स्त्री को अपने हक में प्रयोग में लाने के लिए उसने ऐसे नियम बनायें जिसके तहत उसे नियंत्रण में रखा जा सके । धर्म इसका मजबूत आधार बना जो पुरुषों को श्रेष्ठ और स्त्री को कमजोर बताने में सफल हुआ । इसके बाद स्त्री की जैविक भिन्नता उसकी प्रजनन क्षमता को गलत तरीके से संप्रेषण किया गया । जिसका परिणाम यह निकला कि स्त्री खुद को कमजोर और असुरक्षित समझने लगी । कार्य विभाजन की अवधारणा इस षडयंत्र के लिए मिल का पत्थर साबित हुई । जिसके माध्यम से

स्त्री को बाहर की दुनिया से अलग रख कर घर की चार दीवारी तक सीमित कर दिया गया । सूचना तथा शिक्षा के अभाव के कारण स्त्री का बौद्धिक विकास आवश्यकतानुरुप नहीं हो सका । आर्थिक गतिविधियों में असंलग्न होने के कारण उसकी परनिर्भरता बढ़ती गई । जिसकी वजह से उसे जीवन निर्वाह करने के लिए पुरुष की दया दृष्टि पर निर्भर होना पड़ा । यही वजह थी कि पुरुष स्त्री का सहयात्री न होकर मालिक बन गया । उसके कार्य का मूल्यांकन न किये जाने पर उसमें हीन भावना उत्पन्न हुई । इस परिस्थिति ने स्त्री को लाचार बना दिया । वह घर के भीतर स्त्री पशु तुल्य जीवन जीन पर बाध्य हो गयी । जैसे ही स्त्रियों ने इस रहस्य को जाना उनके विचार और व्यवहार में बदलाव आने लगा । यहीं से स्त्री जीवन का एक नया अध्याय आरंभ हुआ । स्त्रियां अपने अधिकार की खोज में आगे बढ़ी । अपने राजनीतिक अधिकार की मांग करनी शुरु की । स्त्री जीवन में परिवर्तन लाने के लिए राजनीति में स्त्री की पहुंच अनिवार्य थी । धीरे-धीरे स्त्रियों ने राजनीति के महत्व और उसके दांव-पेंच सीखना आरंभ किया । सत्ता के महत्व और उसकी शक्ति को पहचाना । जिसके कारण स्त्री समाज में एक बहुत बड़े बदलाव की अपेक्षा की जाने लगी । नेपाली समाज में स्त्री राजनीतिक चेतना का विकास राणाओं के विरुद्ध आंदोलन से देखा गया है परंतु इस चेतना का प्रभाव स्त्री जीवन पर इतना गहरा नहीं पड़ पाया । कुछेक उच्च वर्ग की महिलाओं तक ही इसका प्रभाव देखा गया, लेकिन माओवादी द्वंद्व काल मानवीय संवेदना के हिसाब से भले ही अराजकता का काल रहा हों परंतु स्त्री चेतना के विकास के हिसाब से यह काल बहुत ही प्रभावकारी काल माना गया । इस समय महिलायें जितनी त्रसित और आंतकित थी उतनी ही सचेत भी । उच्च वर्ग की महिलायें अधिकतर त्रसित रही तो निम्नवर्ग की महिलायें स्वत: आंदोलन में सहभागी होने लगी । निम्न वर्ग की महिलाओं के लिए माओवादी जनआंदोलन अपने अंदर की पीढ़ा को सार्वजनिक करने, आत्मविश्वास जगाने और शोषण की स्थिति में बदलाव लाने का एक बहुत बड़ा माध्यम बना ।

कहना अनुचित न होगा कि आज स्त्री जीवन में जो बदलाव देखा जा रहा है वह बदलाव माओवादी जनआंदोलन की देन है । राजतंत्र के अंत और लोकतंत्र की स्थापना ने महिला अधिकार को और अधिक पुख्ता कर दिया । संविधान ने स्त्री पुरुष के समानता के अधिकार को स्वीकृति दी जिसके कारण स्त्री जीवन ने एक नया मोड़ लिया । इसी दौरान अनेकों संघ सस्थाओं की स्थापना की गई जिसका काम स्त्री पुरुष के बीच बढ़ती असमानता को दूर करने संबंधी विशेष कार्यक्रम को संचालन करना था । पढ़ी लिखी स्त्रियां खुद इस अभियान से जुड़ने लगी । पुरुष वर्चस्व का विरोध शुरु हुआ, अधिकतर स्त्रियों की मांग यह थी कि नेपाल जैसे छोटे देश में जहाँ पुरुषों की तुलना में स्त्री की जनसंख्या ज्यादा है वहां स्त्रियों को केवल तैतीस प्रतिशत सहभागिता असंवैधानिक है । बहुसंख्यक समुदाय को राज्य में पूरा अधिकार मिलना चाहिये कि मांग आज नेपाली स्त्रियों की है । यह सत्य है कि संविधान में नेपाली स्त्रियों के हक में कई नये अधिकार जोड़े गये हैं । स्त्री के विवाह, संबंध विच्छेद, प्रजनन, यौनिकता, रोजगारी, नागरिकता, समानता, समावेशी जैसे अधिकारों को पाकर स्त्री सही मायने में देश की स्वतंत्र नागरिक कहलाने की स्थिति में पहुंची है । परंतु अफसोस की बात यह है कि पितृसत्तात्मक मानसिकता आज भी जड़ जमाकर बैठी हुई है । आज भी पुरुष खुद को स्त्री का मालिक समझने और उसको देह से उपर उठकर देखने की मानसिकता का विकास नहीं कर पाया है । यही कारण है कि समाज में स्त्री हिंसा की घटनायें बढ़ रही हैं । सामाजिक और राजनीति स्त्री समाज इन घटनाओं के खिलाफ निरंतर आवाज उठा रहा है । स्त्री साहित्य भी इस यथार्थ से अनभिज्ञ नहीं है, उसने भी अपनी कलम को हथियार बना लिया है और इसके परिस्थिति के विरोध में उतर गया है । स्त्री समस्या औंर अधिकार के मुद्दें उनके साहित्य के विषय बन रहें हैं । पारिजात स्त्री पुरुष को एक दूसरे का पूरक मानती है । उनका मानना है कि जब तक पुरुष स्त्री को अपना समकक्षी नहीं स्वीकार करेगा यह संघर्ष निरंतर जारी रहेगा । वे लिखती है **"स्त्री पुरुष एक दूसरे के पूरक है इसलिए यह सहकार्य और सह-अस्तित्व का**

मामला है इसके बीच जब तक निराशा, विसंगति, कुंठा, शोषण, दमन और असमझौता रहेगा तब तक स्त्री मुक्ति संभव नहीं है ।"[36]

नेपाली समाज परिवर्तन के एक लंबे दौर के बाद भी बंद मानसिता से ग्रस्त समाज है । यहां आज भी पुरुष स्त्री को भोग्या ही समझता है । इसलिए आये दिन बालात्कार की घटानायें बढ़ रही है जब कि कानून इसे अपराध बताकर इसके लिए विशेष सजा की व्यवस्था भी कर चुका है । यह घटनायें इस बात का सबूत भी है कि आज भी पितृसत्ता स्त्री को डरा धमका कर रखना चाहती है । अपने वीर्य को स्त्री के गर्भ से श्रेष्ठ समझने की मानसिकता और स्त्री की यौनिकता को मर्यादा से जोड़े जाने के विचार के कारण आज भी नेपाली स्त्रियां उन्नीसवी शताब्दी में ही जी रही है । पाश्चात्य देशों की स्त्रियों के साथ अब यह समस्या नहीं है । वह अपने जीवन के फैसले खुद लेती है और स्त्री यौनिकता से जुड़े पवित्रता और अपवित्रता का सवाल उनके जीवन में नहीं है । यह एक बड़ा अंतर है पूर्वीय और पाश्चात्य स्त्रियों के बीच । नेपाली महिलाओं को पुरुष की इस मानसिकता से बाहर निकलने के लिए और अधिक समय लगने की संभावना देखी जाती है । आज भी राज्य मे स्त्री के चरित्र के आधार पर उसे जिम्मेदारियां दी जाती है उसकी क्षमता के आधार पर नहीं । नेपाल का स्त्री साहित्य पाश्चात्य स्त्री साहित्य से भिन्न अर्थात पीछे होने का कारण भी यही है । नेपाली स्त्री लेखन में विगत के कुछ वर्षों की तुलना में परिवर्तन अवश्य आया है । लेखिकाओं ने विषयवस्तु की विविधता के साथ-साथ भाषा के विकास की ओर भी ध्यान दिया है । स्त्री लेखन में राजनीतिक विचारधारा और घटनाक्रमों का उल्लेख अब आम बात बन रही है । नेपाली साहित्य में राजनीतिक विषय वस्तु को प्रवेश कराने का श्रेय पारिजात को जाता है । पारिजात ने राजनीति के सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक पक्ष को बखूबी समझा है और लोगों को भी समझाने का प्रयास किया है । लोकतांत्रिक मूल्य मान्यताओं पर विश्वास रखने वाली लेखिका ने पूंजीवादी और सामंती व्यवस्था का विरोध करती है । उनका उपन्यास अनिदो पहाड सगै (सुषुप्त पहाड के संग) और पर्खाल भित्र र

बाहिर (दीवार के अंदर और बाहर) नेपाली राजनीतिक विसंगति को प्रस्तुत करने वाले दस्ताबेज है । पंचायती राज्य व्यवस्था के दौरान नेपाली जनता द्वारा भोगी गयी त्रासदी को इन उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है। अनिदो पहाड सगै उपन्यास में सन् 1978/79 के विद्यार्थी आंदोलन के दौरान राज्य द्वारा किये गये दमन का यथार्थ चित्रण है । इसके अलावा पंचायती व्यवस्था की आड़ में राजा का प्रश्रय पाकर नेताओं द्वारा किये गये जनसामान्य का शोषण भी इस उपन्यास की कथावस्तु है । राज्य की गतिविधियों से लेकर विद्यार्थियों के उग्र आंदोलन को देशव्यापी रुप में फैलते जाने की चर्चा राजनीतिक भाषा में की गयी है । उपन्यास में आदिवासी आंदोलन और मजदूर आंदोलन को भी जोड़ा गया है । सेना का परिचालन, जेल में विद्यार्थियों की स्थिति, तनाव और त्रासपूर्ण वातावरण को गंभीर चिंतन के साथ प्रस्तुत किया गया है। पारिजात सत्ता का मूल उद्देश्य जनता का हित और राष्ट्र के विकास को मानती है । यह तब तक संभव नहीं है जब तक सत्ताधीश में स्वार्थ और सत्ता में बने रहने का लालच निहित है। राज्य के विकास के लिए सामाजिक न्याय की स्थिति भी महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करती है । जब तक जनता अन्यायपूर्ण वातावरण में रहने के लिए बाध्य की जायेगी तब तक उसका व्यक्तिगत और सामाजिक विकास संभव नहीं है । न्याय जनता को तनाव और कुंठा से बाहर निकालता है। उनमें उत्साह और उमंग भरता है जिससे समाज में शांति बनी रहती है और समाज विकास की ओर अग्रसर होता है । पारिजात का दूसरा उपन्यास दीवार के अंदर और बाहर में नेताओं के दोहरे चरित्र और सत्ता की निरंकुशता को दिखाया गया है। इसके अलावा भ्रष्ट प्रशासनिक व्यवस्था, श्रम शोषण नेताओं में पनपती जा रही पद लोलूपता, उद्देश्य विमुख होता जनआंदोलन और देश में बढ़ती जा रही बेरोजगारी के कारण आहत होती जनता का यथार्थ इस उपन्यास की कथावस्तु है । पारिजात अपने राजनीतिक उपन्यासों में देश और जनता के संबंध को लेकर सवाल उठाती है । सर्वप्रथम उनका सवाल सामाजिक विभेद को लेकर है वे कहती है कि सामाजिक विभेद को बढ़ावा देकर की जा रही

राजनीति क्या देश और जनता के हित में है ? अगर नहीं तो क्यों इन गतिविधियों को रोका नहीं जा रहा है ? उनका दूसरा सवाल बेरोजगारी और आर्थिक असमानता को लेकर है । वे वर्गीय समाज को अस्वीकार करती है उनका मानना है समाज का एक वर्ग राज्य की सभी सुख सुविधाओं का उपभोग कर रहा है तो दूसरा वर्ग अपनी न्यूनतम आवश्यकता के लिए भी तरसता है । एक वर्ग के पास इतना धन है कि वो दूसरे वर्ग को धन से खरीद लेता है । क्या यह स्थिति सामाजिक न्याय के खिलाफ नहीं है ? सामाजिक असंतुलन को बढ़ा देने वाले ऐसे तत्वों को नियंत्रण करना राज्य का प्रमुख दायित्व होना चाहिये । इसके अलावा राजनीति में स्त्री सहभागिता के सवाल को भी उठाते हुये पारिजात लिखती है कि राजनीति किसी एक वर्ग, जाति या लिंग के लोगों द्वारा किया जाने वाला कार्य नहीं है । यह क्षमतावान और सामाजिक हित की कामना रखने वाले किसी भी लिंग, व्यक्ति या जाति द्वारा किया जाने वाला कार्य है । अतः इस पर सबका अधिकार होना चाहिये । पारिजात के राजनीति संबंधी यह विचार उनके गहन अध्ययन और ज्ञान को दर्शाता है । पारिजात ने सैद्धांतिक और व्यवहारिक राजनीति के स्वरुप को घटनाक्रम के माध्यम से बताने का प्रयास किया है । राजनीतिक विचारों और घटनाओं को सामान्य नेपाली भाषा में अभिव्यक्त किया है । राजनीतिक क्षेत्र में प्रयोग किये जाने वाले शब्दों का अधिक से अधिक प्रयोग किया गया है, मसलन आंदोलन, धरपकड़, छापामार, विपक्ष, विरोधी, आंतक, संशोधन, संबोधन, गैरकानूनी, व्यवस्थापन, संचालन, भाषण, क्रांति, जुलूस, संविधान, षडयंत्र जैसे कैयो शब्द उनके साहित्य में देखे जा सकते है । वर्णनात्मक, प्रश्नात्मक, आलोचनात्मक और व्याख्यात्मक शैली के प्रयोग से इनका साहित्य बड़ा ही रोचक बना है । रचनाओं में पात्रों की उपस्थिति भी आवश्यकता अनुसार ही है । अनिदो पहाड संगै में गोरीमाया, भीष्म आले (डी.एस.पी), चन्द्रमाया, सुबानी, प्रदीप आदि प्रमुख पात्र है तो दीवार के अंदर और बाहर में रमेश, बाटुली, ज्वाला, क्यूरी आदि प्रमुख पात्र है । पात्रों के बीच का संवाद भी पाठकों को आकर्षित करता है पारिजात के प्रत्येक पात्रों का स्वभाव अलग-

अलग है, जैसे ज्वाला उग्र एवं हमेशा आवेश में रहने वाला पात्र है तो रमेश शांत गंभीर और दूरदर्शी है। बाटुली नेपाली समाज की एक ऐसी स्त्री पात्र है जो हमेशा परिस्थिति से समझौता करते हुये आगे बढ़ती है। उसने जीवन मे केवल एक ही चीज सीखा है मेहनत करना। पारिजात के बाद स्त्री लेखन में राजनीतिक विषय वस्तु को निरंतरता देने वाली लेखिकाओं में बानिरा गिरी, मंजु कांचुली, शारदा शर्मा, गीता केसरी, नीलम कार्की 'निहारिका', उमा सुवेदी, हरिमाया भेटवाल, आन्विका गिरी, शिवानी सिंह थारु, सरस्वती प्रतीक्षा आदि लेखिकायें हैं।

शिवानी सिंह थारु का उपन्यास 'काठमाण्डौंमा एक दिन' (काठमाण्डौं में एक दिन 2017) मधेश आंदोलन का इतिहास है। शिवानी ने इस उपन्यास में न सिर्फ आंदोलन की गतिविधियों को चित्रित किया है बल्कि मधेश की सामाजिक, आर्थिक स्थिति को भी दिखाने का प्रयास किया है। भौगोलिक रुप से सुगम होते हुये भी मधेश आर्थिक रुप से विपन्न क्षेत्र है। यहां की जनता में शिक्षा संबंधी चेतना कम है। राजनीतिक रुप से भी पिछड़ने के कारण यहां का विकास अन्य प्रदेशों की तुलना में बेहतर नहीं हो सका। यहां की महिलायें आज भी घूंघट के भीतर ही रहने पर बाध्य की जाती है। दहेज प्रथा के कारण महिलायें असुरक्षित एवं प्रताड़ित है। नेपाल के अन्य क्षेत्रों की तुलना में यहां के लोग कम पढ़े लिखे हैं। इन सब कारणों की वजह से मधेश हमेशा उपेक्षित रहता आया है। पहाड़ी मूल के नेताओं का वर्चस्व होने के कारण यहां के नेता शक्ति संघर्ष में पीछे रह जाते है। शिवानी ने इन्हीं सब समस्याओं को उपन्यास के माध्यम से दिखाया है। इनकी भाषा में मधेशीपन अधिक देखा जाता है पात्रों की भेष-भूषा और संवाद शैली मधेशी परिवेश में बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत की गई है। मधेश आंदोलन की कुछ झलकियां देखते ही बनती है **"मधेश के सकेट बम, सुतली बम, पडकाने वाले समूह से भी एक कदम आगे आने वाला यह नामुद समूह कौन सा समूह है 'मधेश जनतान्त्रिक सेना'। अंदर ही अंदर ईष्या होने लगी घुर्ना को।"**[37] लेखिका ने उपन्यास में मधेश

के उन क्षेत्रों की चर्चा की है जहां पर आंदोलन को अन्जाम दिया गया था । आंदोलन के दौरान प्रयोग किये गये हथियारों और भाषा की चर्चा भी इनके उपन्यास में मिलती है । पुलिस और जनता के बीच का संघर्ष कहीं पर त्रास उत्पन्न करता है तो कहीं पर गंभीर चिंता । बहरहाल उपन्यास कथावस्तु और भाषा शिल्प की दृष्टि से बेहतरीन माना जा सकता है । इसी तरह माओवादी द्वंद्वकालीन परिवेश को आंविका गिरी ने अपने उपन्यास मान्छे को रंग (आदमी का रंग) में प्रस्तुत किया है । माया इस उपन्यास की प्रमुख स्त्री किरदार है इसी के जीवन के इर्द-गिर्द पूरा उपन्यास घूमता है । माया एक ऐसी स्त्री पात्र है जो समाज को बदलने का अभियान लेकर आंदोलन में कूद पड़ती है । अनेकों संघर्ष के बाद जब लोकतंत्र की घोषणा की जाती है तो खुशी से वह फूले नहीं समाती परंतु उसकी यह खुशी जल्द ही भ्रम में बदल जाती है । जब समाज को फिर उसी वर्ग विभाजित स्थिति में देखती है । उपन्यास जिस तरह कथावस्तु के आधार पर सशक्त है उसी तरह पात्र एवं भाषा शैली के आधार पर भी सशक्त है । अंग्रेजी, और स्थानीय नेपाली भाषा के प्रयोग से उपन्यास रोचक बना है । इस आधार पर हम यह मान सकते है कि स्त्री भाषा का विकास द्रुत गति से हो रहा है । हिंदी नेपाली स्त्री भाषा के विकास में कुछेक अंतर देखे जा सकते है परंतु अधिकतर इनमें समानता ही देखी जाती है । भारत में स्त्री भाषा का विकास नेपाल से पहले हुआ और लेखन कार्य भी द्रुत गति से आगे बढ़ा । नेपाली समाज में राजनीतिक अस्थिरता और शिक्षा के अभाव के कारण स्त्री भाषा का विकास यथोचित नहीं हो पाया फिर भी नेपाली महिला लेखिकाओं का प्रयास जारी है । नये दौर में नयी लेखिकायें भिन्न और आधुनिक विषय वस्तु को लेकर साहित्य जगत में प्रवेश कर रही है । इसे एक सकारात्मक पक्ष माना जा सकता है । हिंदी स्त्री भाषा ने अपनी लय पकड़ ली है आने वाले कुछ ही समय में हिंदी स्त्री भाषा अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगी ।

निष्कर्ष : हिंदी नेपाली स्त्री भाषा के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों देशों की लेखिकाओं ने आरंभिक काल से ही अपने जीवन की पीड़ा

वेदनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए स्त्री भाषा का प्रयोग किया है। स्त्री आंदोलन के दौरान से ही स्त्री भाषा की अवधारणा अस्तित्व में आई और इसे व्यवहार में उतारना शुरु किया गया। स्त्री विमर्श के दौर में स्त्री भाषा का विकास उत्कर्ष पर पहुंचा। हिंदी और नेपाली साहित्य में स्त्री भाषा के कई रुप देखे गयें। कहीं पर स्त्री भाषा नरम, लचीली कोमल दिखाई पड़ती है तो कहीं पर इतनी शख्त और ठोस है कि बिना लाग लपेट के प्रयोग में लाई गई है जिसके कारण भाषा में रुखापन आ गया है। इसके साथ-साथ स्त्री लेखिकाओं का ध्यान राजनीतिक, प्रशासनिक और व्यवसायिक क्षेत्र में बोले जाने वाली भाषा पर भी गया है। जिससे स्त्री भाषा में सर्वव्यापी रुप देखाई पड़ता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृ. 278
2. पाण्डेय, मैनेजर, अनभै साचा, पृ. 190
3. पाण्डेय, मैनेजर, आलोचना की सामाजिकता, पृ. 146
4. के.पी., प्रमिला, स्त्री अध्ययन की बुनियाद, पृ. 95
5. (सं).चौबे, देवेन्द्र कुमार, समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, पृ. 240
6. यादव, राजेन्द्र, आदमी की निगाह में औरत, पृ. 153
7. सोबती, कृष्णा, मित्रोमरजानी, पृ. 41
8. http:/www.milliyear.com
9. http:/www.ijim.in
10. (सं.) चौबे, देवेन्द्र कुमार, यादव, अजय कुमार, तेली, गणपत, हिंदी साहित्य का इतिहास कुछ पाठ कुछ विचार, पृ.361
11. http:/www.grihaswamini.com
12. वही
13. वही
14. वही
15. पुष्पा, मैत्रेयी, चाक, पृ. 19
16. वही पृ. 26
17. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, स्त्रीवादी विमर्श, पृ.18
18. के. पी., प्रमिला, स्त्री अध्ययन की बुनियाद, पृ. 140
19. भंडारी, मन्नू, महाभोज, पृ. 12
20. मुद्गल, चित्रा, आवां, पृ. 81
21. वही, पृ. 19
22. वही, पृ. 20
23. कांकारिया, मधु, खुलेगगन के लाल सितारे, पृ. 12
24. त्रिपाठी, सुधा, नारीवाद के कठघरे में नेपाली साहित्य, पृ. 192

25. वही, पृ. 142
26. http://www.brtnepal.com
27. त्रिपाठी, सुधा, महिला समालोचक और नेपाली समालोचना, पृ. 2
28. पारिजात, संकलित रचना, ग्रंथ 3, पृ. 183
29. वही, पृ. 135
30. वही, ग्रन्थ 2 , पृ. 117-118
31. वही, ग्रन्थ, 3, पृ. 216
32. शर्मा, शारदा, ताप, पृ. 42
33. सुवेदी, उमा, तोदा, पृ. 37
34. वही, पृ. 36
35. वही, पृ.38
36. पारिजात, संकलित रचनायें, ग्रन्थ 6, पृ. 89
37. थारु, शिवानी सिंह, काठमाण्डौं में एक दिन, पृ. 115

उपसंहार

समकालीन हिंदी और नेपाली स्त्री उपन्यास लेखिकाओं को केन्द्र में रखकर उनकी राजनीतिक दृष्टि एवं चेतना का तुलनात्मक मूल्यांकन करना एक जटिल कार्य था । लेकिन यह उतना ही महत्वपूर्ण और उपयोगी भी है । दो देशों के स्त्री उपन्यास लेखन के इतिहास को जानने, साहित्यिक स्वरुप और स्त्री राजनीतिक विचारधाराओं को समझने के साथ-साथ स्त्री अधिकार से जुड़े मुद्दों की जानकारी लेने के लिए भी यह शोध सहायक सिद्ध होगा । शोध के केन्द्र में स्त्री राजनीतिक चेतना से जुड़े विविध पक्षों को महत्व दिया गया हैं । स्त्री राजनीतिक चेतना की जाँच-पड़ताल करने के लिए विशेष रुप से निम्नलिखित प्रश्नों को आधार बनाया गया हैं । नेपाल और भारत की स्त्री लेखिकाओं के बीच राजनीतिक विचारधाराओं में समानता और असमानता । उनकी राजनीतिक चेतना के स्तर का मूल्यांकन । लेखिकाओं द्वारा उठायें गयें राजनीतिक मुद्दों की पहचान । राजनीतिक विसंगतियों का स्वरुप । स्त्री मुक्ति आंदोलन और इसका प्रभाव, राजनीतिक आंदोलन और स्त्री सहभागिता, ग्रामीण राजनीति में महिलाओं की स्थिति । स्त्री लेखन में जातीय संरचना एवं वर्ग संघर्ष की स्थिति और स्त्री भाषा का प्रयोग आदि प्रश्न शोध के मुख्य अंग हैं और यह प्रश्न इस शोध को मजबूत आधार भी प्रदान करते हैं । सर्वप्रथम दोनों देशों के राजनीतिक परिवर्तन के कारणों को खोजा गया हैं । भारत में राजनीतिक परिवर्तन उपनिवेशवादी सत्ता के चरम शोषण और आतंक के विरुद्ध संघर्ष से हुआ तो नेपाल में राजनीतिक परिवर्तन अपने ही देश के निरंकुश राणा शासकों के विरुद्ध से हुआ । यद्यपि इस राजनीतिक परिवर्तन का प्रभाव राज्य के विविध पक्षों पर पडा़ परंतु स्त्री के पक्ष में यह बहुत कारगर सिद्ध हुआ । वर्षों से चारदीवारी के भीतर समेटी गई स्त्रियों ने राज्य की शक्ति, शासान व्यवस्था और सामाजिक संरचना को पहचाना और पितृसत्ता के कारण अपने अस्तित्व पर मड़रा रहें खतरे को भी भापा । उपनिवेश काल में भारत में सकारात्मक और नकारात्मक तो तरह का प्रभाव देखा गया । नकारात्मक प्रभाव के अंतर्गत प्रत्येक क्षेत्र में शोषण की चरम अवस्था

बढ़ी, सामाजिक न्याय की स्थिति शून्य अवस्था में पहुँची, वर्गीय विभाजन के कारण सामाजिक असमानता विकराल रुप में सामने आयी, विशाल भारत खंडित हुआ। सकारात्मक प्रभाव के अंर्तगत आधुनिक शिक्षा प्रणाली का विकास होना, स्त्री शिक्षा की शुरुआत, परंपरावादी एवं रुढ़िवादी मान्यताओं में परिवर्तन, विकास के पूर्वाधार निमार्ण की प्रक्रिया आगे बढ़ना, साहित्य लेखन का नया रुप सामने आना, कृषि उत्पादन के क्षेत्र में आधुनिक स्रोत-साधन एवं तकनीकि को प्रयोग लाया जाना जैसे परिवर्तन को सकारात्मक प्रभाव के रुप में लिया जा सकता है। जिसके कारण भारत स्वतंत्रता के बाद समृद्धि की ओर आगे बढ़ा। गांधी ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान दुनिया को आदर्श और अहिंसात्मक राजनीति की शिक्षा दी तो नेहरु ने भारत के नवनिमार्ण का खाका तैयार किया। धीरे-धीरे भारतीय राजनीति में नेताओं का व्यक्तिगत स्वार्थ हावी हुआ और सत्ता में टिके रहने के लालच के कारण राजनीतिक भ्रष्टाचार और विसंगतियां बढ़ने लगी। यही राजनीतिक कुसंस्कार आज के भारतीय राजनीति का यथार्थ है। इस यथार्थ से भारतीय हिंदी समाज अछूता नहीं रह सका और उसने इस यथार्थ को जनता के सामने रखने का मूहिम चलाया। वर्तमान हिंदी जगत का स्त्री और पुरुष लेखन इस यथार्थ को जनता के समक्ष रखने में सफल दिखाई पड़ता हैं। नेपाल में राणा शासन के अंत के बाद बहुदलीय प्रजातंत्र की स्थापना हुई। यहां भी राजनीतिक परिवर्तन के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव सामने आयें। राणा सत्ता के अंत ने नेपाली जनता को अपने देश के भीतर स्वतंत्र महसूस काराया। मानव अधिकार, शांति, सुरक्षा, न्याय व्यवस्था, शिक्षा और रोजगारी जैसे अति आवश्यक एवं आधारभूत आवश्यकताओं को जनताओं ने महसूस किया। नकारात्मक प्रभाव के रुप में नेताओं की असक्षमता, अवसरवादिता, अदूरदृष्टिता के कारण बहुदलीय प्रजातंत्र व्यवस्था को अपदस्त कर के निर्दलीय पंचायत व्यवस्था लागू की गई, इस घटना ने राज सत्ता के प्रति जनता के विश्वास को ड़गमगा दिया। इन्हीं राजनीतिक घटनाक्रमों को नेपाली साहित्यकारों ने बारिकी से देखा और जनता तक पहुंचाने का काम किया। हिंदी की तरह पुरुष

लेखन ही इसका प्रवर्तक बना । स्त्री लेखन में इसका प्रभाव साठ और सत्तर के दशक में आकर देखा गया । हिंदी में कृष्णा सोबती का जिंदगीनामा, मन्नू भंडारी का महाभोज, चित्रा मुद्गल का आवां, मैत्रेयी पुष्पा का चाक, प्रभा खेतान का तालाबंदी, मधु कांकरियां का खुले गगन के लाल सितारे जैसी अनेकों रचनायें भारतीय राजनीतिक विसंगतियों को प्रस्तुत करने वाले दस्तावेज के रुप में दर्ज हुयी । इसके साथ-साथ स्त्री उपन्यासों में भारतीय समाज में देखे जा रहें जातीय उत्पीड़न, वर्ग संघर्ष की स्थिति और स्त्री शोषण के यथार्थ का भी चित्रण मिलता है । भारत की तुलना में नेपाल का राजनीतिक इतिहास कुछ अलग दिखाई पड़ता है । यद्यपि नेपाल में किसी विदेशी शासकों ने शासन तो नहीं किया परंतु आक्रणकारियों का निशाना अवश्य बना है । नेपाल आंतरिक खिचातानी की बजह से हमेशा ग्रसित रहा जिसके कारण इस देश का आर्थिक और सामाजिक विकास अपेक्षा अनुकूल नहीं हो सका । शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा जैसे मौलिक अधिकार से लंबे समय तक नेपाली जनता वंचित रहीं । जिसके कारण जनता के चेतना के स्तर में विकास नहीं हो पाया । (1947) में जब भारत आजाद हुआ तो इसका फायदा नेपाली जनताओं को भी हुआ क्योंकि कुछ उच्च वर्ग के लोग भारत में बढ़ने के लिए आने लगे । जिससे उनकी राजनीतिक चेतना विकसित हुयी और यही से सत्ता के विरोध का संघर्ष शुरु हुआ । इस संघर्ष में सभी राजनीतिक दलों के साथ-साथ साहित्यकार भी सक्रिय रुप में आगे बढ़े । लेखनाथ पौड्याल, धरणीधर कोईराला, महानंद सापकोटा, लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा आदि पुरुष राजनीतिक लेखन के रुप में दिखाई दियें तो देवकुमारी थापा, चन्द्रकला नेवार, पारिजात, पद्मावती, भागरथी श्रेष्ठ, मंजु काँचुली जैसी स्त्री लेखिकायें भी आगे आयी । नेपाली साहित्य में स्त्री राजनीतिक लेखन की शुरुआत हिंदी की तुलना में कुछ समय बाद हुई । इसके कई कारण सामने आते है, स्त्री शिक्षा का अभाव, पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना और स्त्री की परनिर्भरता ने उन्हें हिंदी लेखिका और पुरुष लेखन से काफी पीछे धकेल दिया । लंबे समय तक हिंदी और नेपाली स्त्री लेखिकायें इसी जद्दोजहद

में जीवन गुजारती रही कि कहीं तो उन्हें अपनी बात कहने और सुनाने का मौका मिले परंतु यह मौका उसे दिया नहीं गया बल्कि उसने अपने बलबूते पर इस मौके की तलास की । स्त्री शिक्षा एक ऐसा माध्यम बनी जिसने उसमें चेतना और आत्मविश्वास दोनों एक साथ भरा, हालांकि पाश्चात्य देशों में स्त्री शिक्षा संबंधी चेतना भारत और नेपाल से पहले ही आ चुकी थी । भारत में इष्ट इंण्डिया कम्पनी की स्थापना के बाद स्त्री शिक्षा संबंधी चेतना की अवधारणा का विकास हुआ तो नेपाल में निरंकुश राणा शासन के अंत के बाद स्त्री शिक्षा अस्तित्व में आई । यही कारण है कि नेपाल में स्त्री लेखन भारत के स्त्री लेखन से देर से शुरु हुआ और कम संख्या में लिखा गया । नेपाली स्त्री लेखन कम संख्या में उपलब्ध होने का दूसरा कारण यह भी है कि नेपाली साहित्य समाज भारत के हिंदी साहित्य समाज से छोटा है । जिसमें रचनाकार और पाठको की संख्या कम है । भारतीय स्त्रियों ने शिक्षा का सहारा पाते ही लोगों के समक्ष अपने विचारों एवं भावनाओं को पत्र-पत्रिकाओं और साहित्य के माध्यम से साझा करना आरंभ कर दिया जिससे उनमें आत्मविश्वास बढ़ा । भारत में स्त्री शिक्षा के पहल का श्रेय अंग्रेजी हुकूमत को जाता है । भारतीय मराठी स्त्री लेखिका तारबाई शिंदे भी भारत में स्त्री चेतना और शिक्षा की नींव रखने का श्रेय ब्रिटिश सत्ता को देती हैं । उनका मानना है कि भारत में ब्रिटिश शासन के आने से ही आधुनिक समाज का निमार्ण हुआ हैं और समाजिक विभेद और रुढ़ियों की पहचान करने की चेतना जागी है । सन् 1848 में भारत में प्रथम बालिका विद्यालय की स्थापना हुई । जबकि नेपाल में स्त्री शिक्षा की औपचारिक शुरुआत सन् 1853 में दरबार हाई स्कूल से हुई । बहुत सारी सामाजिक जटिलताओं के कारण आरंभ में दोनों देशों के विद्यालयों में स्त्री की संख्या कम थी । धीरे-धीरे शिक्षा संबंधी चेतना जागने लगी और शिक्षा में स्त्री की संख्या बढ़ने लगी । जैसे ही स्त्री शिक्षा आरंभ हुई उसने सामाजिक संरचना के भीतर हुकूमत कर रहे पितृसत्ता के षड़यंत्रों को पहचाना इसलिए स्त्री मुक्ति का मार्ग खोजने की ओर अग्रसर हुई । सर्वप्रथम स्त्रियों ने अपने मन की पीड़ा, पितृसत्तात्मक संरचना

में छटपटाती उनकी इच्छाएं, मर्यादाओं के बोझदले दबा स्त्री जीवन और परनिर्भरता के चक्रव्यूह के भीतर दम तोड़ते स्त्री स्वाभिमान जैसे स्त्री अस्मिता और अधिकार से जुड़े विषयों को अपने लेखन के लिए चुना । स्त्री लेखन की यह शुरुआत एक साहस पूर्ण शुरुआत थी, क्योंकि प्रतिकूल परिवेश में अपनी वास्तविक पहचान छुपाकर भी अपने विचारों और भावनाओं को लोगों तक पहुंचाने का प्रयास किया गया था । हिंदी और नेपाली स्त्री लेखन का इतिहास इसी सत्य को बयान करता है । स्त्रियों द्वारा अपनी पहंचान छुपाये जाने के पीछे कई कारण देखे गयें हैं । एक तो परिवार के ड़र से या उनके हस्तक्षेप से बचने के लिए उन्हें ऐसा करना पड़ा । दूसरा पितृसत्तात्मक समाज के भय या त्रास से बचने के लिए पर्दें के पीछे छुपना उचित समझा गया । तीसरा उनमें कहीं न कहीं संकोच की भावना रही कि वे पुरुष लेखन की तुलना में अपने लेखन को कमतर मानने लगी थीं । लेकिन मुद्दे की बात यह है कि इतनी चुनौतियों के बाद भी कलम पकड़ने का साहस करना ही स्त्री का सबसे बड़ा विद्रोह है । हिंदी और नेपाली स्त्री लेखन की चुनौती और संभावनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से यह पता चलता है कि दोनों देशों में स्त्री जीवन की समस्यायें समान हैं । पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना के कारण दोनों देशों की महिलाओं ने आज की स्थिति तक पहुंचने में बहुत संघर्ष किया हैं । सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक रुढ़िवादिता स्त्री जीवन के लिए सबसे बड़ी चुनौतियां थी । एक ही तरह का सामाजिक परिवेश होने के कारण दोनों देशों की लेखिकाओं के विषयवस्तु भले ही समान है परंतु विचार वैविध्य और भाषा दृष्टि और संख्यात्मक हिसाब से हिंदी स्त्री साहित्य नेपाली स्त्री साहित्य की तुलना में आगे है । हिंदी में मन्नू भंडारी और नेपाली में पारिजात का साहित्य राजनीतिक और मनोवंज्ञानिक दृष्टि से करीब-करीब एक समान दिखाई देता है । इसके अलावा समकालीन सभी नेपाली लेखिकायें हिंदी लेखिकाओं की तर लिखने का प्रयास करती रही हैं । यह सत्य है कि नेपाली स्त्री लेखन भारतीय स्त्री लेखन से प्रभावित होता आया है । इसके पीछे कई कारण है, एक तो लिपि में समानता का कारण है ।

जिसकी वजह से हिंदी पढ़ने और समझने में उनको समस्यां नहीं होती दूसरा सामाजिक और धार्मिक कारण है। जिसकी बजह से उनमें एक अपनेपन की भावना हमेशा बनी रहती है नेपाली लेखिकाओं को अंग्रेजी, बंगाली, चीनी, उर्दू भाषा का इतना ज्ञान नहीं है इसलिए वे अन्य भाषाओं के साहित्य को भी हिंदी अनुवाद में पढ़ती हैं। अतः कहा जा सकता है कि हिंदी और नेपाली साहित्य के संबंध की एक ठोस वजह है और दोनों भाषा में जितनी घनिष्टता है शायद ही अन्य किसी भाषा के बीच में है। दोनों देशों की स्त्रियां एक ही तरह के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं से जुझ रही हैं। इसलिए विमर्शवादी साहित्य में भी समान मुद्दों को उठाया गया हैं। राजनीतिक परिवर्तन के बाद स्त्री स्वतंत्रता जितनी संभावनायें लेकर आयी हैं, उतनी ही चुनौतियां भी। एक तरफ महिलायें अपने मौलिक अधिकार के लिए लड़ रही हैं तो दूसरी तरफ लगातार हिंसा या शोषण का शिकार बन रही हैं। पितृसत्ता का दंश आज भी स्त्री अस्मिता पर मड़रा रहा है। महिला हिंसा की घटनायें नयें-नयें रुप में सामने आ रही है। बलात्कार, एसिड प्रहार से लड़कियों को कुरुप बनाया जाना, दहेज के कारण लड़कियों को जलाया जाना, वेश्यावृति के लिए बेटियों को देश या विदेशों में खरीदा या बेचा जाना, सार्वजनिक स्थलों पर लैंगिक विभेद से स्त्रियों के आत्मविश्वास को कम करने का प्रयास किया जाना, अश्लील विडियों बनाकर बेचना, सार्वजनिक स्थलों पर छेड़-खानी करना। सौन्दर्य प्रदर्शन के नाम पर स्त्रियों को सामूहिक रुप में नग्न होने पर मजबूर करना, पैत्रृक संपत्ति से बेटियों को वंचित रखा जाना, सेक्स वर्कर महिलाओं को समाज में अपमानित होकर जीने पर बाध्य किया जाना आदि अनेकों समस्याओं को दोनों देशों की लेखिकाओं ने साहित्य में उतारा है। संविधान में लैंगिक समानता की बात उल्लेख किये जाने के बावजूद भी व्यवहार में दिखाई न पड़ना पितृसत्ता की जटिलता का उदाहरण है। नेपाली और हिंदी साहित्य में राजनीतिक चेतना या विचार दृष्टि की स्थिति की बात करे तो मन्नू भंडारी ने महाभोज में समाजवादी विचारधारा से राजनीतिक विसंगतियों का विश्लेषण किया है। लोकतान्त्रिक पद्धति

का समर्थन करते हुए सामाजिक विभेद और राजनीतिक विसंगतियों को अंत कर देश में न्याय, शांति, सुरक्षा और मानव अधिकार की पुर्नवहाली करने का सुझाव इनके उपन्यास में देखा जाता है । इसके अलावा आम गरीब जनता के हित में राजनीति करने की सलाह भी दी गई है । महाभोज जैसे राजनीतिक उपन्यासों की हिंदी साहित्य में खास जगह इसलिए है कि इसमें समाज के संपूर्ण जिम्मेदार पक्ष को सचेत करने की क्षमता निहित है । समाज एवं परिवार की समस्या से ऊपर उठकर भारतीय भ्रष्ट राजनीति, वंचित जातियों के साथ अत्याचार और प्रतिनिधि चरित्रों द्वावारा उसका प्रतिरोध, पतन होते जा रहें राजनीतिक मूल्य, अंर्तद्वंद्व, अंतर्विरोध से जुझते सत्ताधारी वर्ग, सत्ता प्रतिपक्ष, मीड़िया और नौकरशाही वर्ग के अवसरवादी चरित्र पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करने का साहस स्त्री राजनीतिक उपन्यासों में देखा जाता हैं । वरिष्ठ उपन्यासकार चित्रा मुद्गल ने भी अपने समय के ज्वलंत राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याओं को व्यक्तिगत अनुभव और विचार वैशिष्ठ के साथ तर्क संगत रुप में प्रस्तुत किया है । मुंबई जैसे महानगर में जहां एक तरफ पूंजीपति वर्ग जीवन की सारी सुख सविधाओं के साथ जीवनयापन कर रहें हैं तो वहीं दूसरी तरफ समाज का मजदूर वर्ग बिजली, पानी, राशन और स्वाथ्य संबंधी समस्याओं से जूझ रहें हैं । इस स्थिति में भी राजनीतिक दल या पूंजीपति उनकी जरुरतों को पूरा करने की ओर नहीं बल्कि अपना स्वार्थ सिद्ध करने की ओर प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं । मजदूर संगठनों पर राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप सिर्फ मजदूरों का वोट पाने के लिए है । उसमें नीहित अभावों एवं कुरीतियों को रोकने के लिए नहीं है । उपन्यास की कथावस्तु दो रुप में दिखाई पड़ती एक तरफ आधुनिक पूंजीवादी समाज में एक स्त्री का जीवनयापन के लिए संघर्ष है तो दूसरी तरफ ट्रेड यूनियन के नाम पर चलने वाली राजनीति के रुप में है । इसी के भीतर लेखिकाने आधुनिक भारत को समग्र रुप में समेटा है । राजनतिक दलों द्वारा मजदूर संघ-संस्थाओं पर हस्तक्षेप, यूनियन के नेताओं की महत्वकांक्षा, उपेक्षित गरीब मजदूर वर्ग की लाचारी और पूंजीपतियों में स्खलित होती मानवता

जैसी समस्याओं को चित्रित किया हैं । नेपाली साहित्य में राजनीतिक मुद्दों को पारिजात ने समाजवादी विचारधारा से प्रस्तुत किया है । सन् 1978 में लिखे गये उपन्यास दीवार के अंदर और बाहर में बहुदलीय प्रजातंत्र व्यवस्था की पुर्नवहाली के लिए आंदोलनरत नेताओं और उनकी दोहरी मानसिकता का चित्रण किया गया हैं । निरंकुश राजतंत्र, समाजिक, धार्मिक, लैंगिक और जातीय विभेद, मुक्ति के नाम पर राजनीतिक पार्टियों के स्वार्थ सिद्ध करने के दांव को लेखिका ने मार्मिक रुप में प्रस्तुत किया है । दूसरे शब्दों में कहें तो व्यवहारिक और सैद्धांतिक राजनीति को दिखाने का प्रयास किया गया है । इसके अलावा उपन्यास में आंदोलन के दौरान जनताओं के साथ किया गया सत्ता का निर्मम व्यवहार, जेल में कैदियों की स्थिति, पुलिस प्रशासन का आतंक, सत्ता की दलाली, नेताओं की अदूरदर्शिता, लैंगीय, जातीय विभेद और वर्ग संघर्ष की स्थिति पर भी दृष्टि डा़ली गई हैं । नेपाली महिला लेखन में राजनीतिक विषय वस्तु को प्रखरता से प्रस्तुत करने वाली लेखिकाओं में आन्विका गिरी भी सामिल हैं । माओवादी द्वंद्व काल में स्त्री के संघर्ष का सजीव चित्रण इनके साहित्य में देखा जाता है । नेपाल में आधुनिक राजनीति की शुरुआत भी यही से मानी जाती है । इस संपूर्ण प्रक्रिया में माओवादी जनआंदोलन और पार्टी की अहम भूमिका रही है । बरसो से चले आर रहें नेपाली रुढ़िग्रस्त समाज को परिवर्तन करना इतना आसान नहीं था । माओवादी जनआंदोलन ने ही जनता को अपने अधिकार के लिए सचेत कराया और समाज में जड़ जमाकर बैठी हुई कमलरी, देउकी, छाउपडी़ प्रथा का अंत किया । जमीदारी प्रथा को रोकने के लिए भूमी पर हदबंदी व्यवस्था लागू की गई । छूवा-छूत को प्रसय देने वालों के लिए सजा की विशेष व्यवस्था लागू हुई । महिला हिंसा और बाल श्रम को गैर कानूनी बताया गया । समान काम के लिए समान पारिश्रमिक को मान्यता दी गई । स्त्री यौनिकता के सवाल को गंभीर रुप में लिया गया । राज्य में स्त्री की पहचान के लिए नागरिकता विधेयक कानून संशोधन हुआ । पिता के साथ-साथ माँ के नाम से भी बच्चों को नागरिकता देने बात को आगे रखा गया । देश सात प्रदेश में विभाजित

हुआ । इस परिवर्तन ने नेपाल की आर्थिक, सामाजिक स्थिति को बदल कर रख दिया । आन्विका गिरी इस परिवर्तन का श्रेय माओवादी लगायत सभी सचेत नागरिकों को देती हैं । जिन्होंने अपने प्राणों की परवाह किये बिना विभेद रहित समाज के निर्माण में अपना योगदान दिया । स्त्री लेखन में जाति का सवाल महत्वपूर्ण सवाल है । हिंदी और नेपाली लेखिकाओं ने इस विषय को विशेष महत्व के साथ उठाया है । भारत और नेपाल जैसे देश आर्थिक रुप में पिछड़े होने के कारण यहां जाति व्यवस्था जटिल रुप में दिखाई पड़ती है । इस बात की पुष्टी नेपाली और हिंदी लेखिकाओं के विचारों से होती है । जातीय विभेद केवल आर्थिक विकास के ही आड़े नहीं आता यह समाज की एकता और सद्भावना को भी भंग करता है । आपसी वैमनस्यता को बढ़ावा देता है । ऊच-नीच, उत्कृष्ट-निकृष्ट की भावना पैदा कर समाज को विभाजित करता है । श्रम की प्रतिष्ठा की संकल्पना के विरुद्ध कार्य करने के कारण यह राजनीतिक दासता का मूल कारण भी बनी हुई है । जाति प्रथा के ही कारण देश में विभिन्न समूह में बंटे हुए धार्मिक संगठन सामाजिक और राजनीतिक रुप से एक दूसरे के समीप नहीं आ पा रहे हैं । उच्च जाति के लिए जाति व्यवस्था शोषण का साधन है तो निम्न जाति के लिए यह अन्याय, कुंठा और प्रताड़ना है । इन सबसे भी गौर करने वाली बात यह है कि इस जाति व्यस्था की चक्की में ज्यादातर स्त्रियां ही पिसती हैं । वैसे तो पितृसत्ता के भीतर हर कोई स्त्री दलित, शोषित और दमित है फिर भी जाति व्यवस्था की दृष्टि से सामाजिक आचरण, पवित्रता, अपवित्रा, आर्थिक परतंत्रता, मर्यादा, प्रतिष्ठा के नाम पर जितना स्त्री समाज पिसा है उतना पुरुष नहीं । जाति व्यवस्था के भीतर यह भी तय किया गया है कि किस जाति की स्त्री की क्या भूमिका रहेगी और उसे कैसा आचरण करना होगा । इस मान्यता के आधार पर देखे तो उच्च जाति की स्त्रियां जाति व्यवस्था के भीतर अधिक शोषित दिखाई पड़ती हैं । दलित स्त्रियां इस मामले में कम शोषित हैं क्योंकि एक दलित स्त्री अपनी जीवीकोपार्जन के लिए जाति व्यवस्था द्वारा निर्धारित काम करने की छूट रखती हैं । आवश्यकता

पढ़ने पर वह पूरे परिवार की जिम्मेदारी भी उठा लेती है, परंतु एक ब्रह्मण स्त्री के लिए यह संभव नहीं है । उसके लिए घर से बाहर निकलना ही सबसे बड़ी चुनौती है, यदि निकल भी जाती है तो चरित्र हत्या का आरोप लगाकर उसे समाज से अलग कर दिया जाता है । इसलिए सामाजिक एवं व्यक्तिगत आचरण में शुद्धता बनाये रखना और मर्यादा में रहना उच्च जाति की स्त्री के लिए जाति व्यवस्था के भीतर की सबसे बड़ी प्रताड़ना है । आर्थिक स्वतंत्रता न होने के कारण अपनी जीवन की आवश्यकता पूरा करने के लिए इस जाति की स्त्रियों को आजीवन पति के भरोसे ही निर्भर रहना पड़ता है । इनके लिए मर्यादा और मान प्रतिष्ठा की समस्या एक बड़ी समस्या है जिसको कायम रखने के लिए कई स्त्रियां बाहर अपना मुंह नहीं खोलती । जबकि उनके साथ परिवार के भीतर अनेक तरह के शारीरिक एवं मानसिक शोषण की घटनायें घटती हैं । विवाह के मामले में भी कितना ही अयोग्य व्यक्ति क्यों न हो अपने ही जाति के भीतर विवाह करने की बाध्यता इनमें देखी जाती हैं । इस तरह उच्च जाति की स्त्रियां सामाजिक न्याय से भी वंचित रहती हैं । ब्राह्मण जाति की स्त्रियों को विधवा पुनर्विवाह के लिए कट्टरता आज भी कायम है जबकि इस मामले में पुरुष को पूरी तरह छूट है । पुरुष स्त्री के मरने पर ही नहीं एक स्त्री के जीते जी भी बहुविवाह कर सकता है । यह सत्य है कि भारतीय और नेपाली समाज में दलित स्त्रियां सबसे उपेक्षित है परंतु एक बात गौर करने वाली है कि इस जाति की स्त्रियों को आर्थिक स्वतंत्रता मिली हुई है । वह जाति व्यवस्था द्वारा निर्धारित मान्यताओं को नजरअंदाज करती दिखाई पड़ती हैं और अर्थ उत्पादन के कार्य को प्राथमिकता देती हैं । साहित्य के आधार पर दोनों देशो में वर्ग संघर्ष की स्थिति का स्वरुप भी समान ही नजर आता है । जनसंख्या की हिसाब से भारत में अधिक लोग इससे प्रभावित है परंतु समस्यायें लगभग एक समान हैं । मजदूर यूनियन जिसे मजदूरों के अधिकारों की रक्षा और समस्या समाधान के लिए स्थापित किया गया था । चित्रा मुद्गल बताती है कि आज के समय में ऐसी संस्थाओं का नेतृत्व बदल गया हैं लोगों ने मजदूरों के हित का नहीं

अपने हित का उद्देश्य साध लिया हैं । चित्रा मुद्गल ने मुख्यतया उत्पीड़ित या शोषित वर्ग को अधिकार दिलाने के नाम पर हो रहें राजनीतिक षड़यंत्र के सवालो को उठया हैं । उनका मानना है इस तीसरे वर्ग के उदय के कारण औद्योगिक क्षेत्र में संलग्न मजदूरों की स्थिति दयनीय बनती जा रही है । मजदूर चारों तरफ से शोषण का शिकार बन रहें हैं । अत: इस समस्या की ओर लोगों को सोचना चाहिये । इसके साथ-साथ चित्रा मजदूरों के स्वास्थ्य, सुरक्षा और आधारभूत आवश्यकताओं से पूरा किये जाने की ओर भी इसारा करती हैं । प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास तालाबंदी में मजदूर संगठनों और उद्योगपतियों के बीच चल रहे संघर्ष के यथार्थ को रेखांकित किया है । उनके उपन्यास का प्रमुख पात्र श्याम बाबू जो कभी स्वयं शोषित वर्ग का प्रतिनिधि पात्र था परंतु वह अपनी मेहनत और महत्वकांक्षा के कारण एक दिन वह एक सफल व्यापारी बन जाता है और फिर श्याम बाबू एक शोषित से शोषक वर्ग में परिणत हो जाता है । सामाजिक विभेद के इसी चक्र को लेखिका ने उपन्यास में प्रस्तुत किया हैं । उनका मानना है अपना फायदा देखने की राजनीति में मजदूरों के कितने अधिकार छीने जाते है इसका किसी के पास कोई हिसाब-किताब नहीं होता । इसी तरह नेपाली समाज में भी वर्ग संघर्ष की स्थिति एक जटिल समस्या है । सामाजिक रुढ़ियों के कारण यहां का समाज अनेकों वर्गों में बंटा हुआ हैं । इसलिए वर्ग संघर्ष की स्थिति गंभीर देखी जाती है । शहरों में उद्योगपतियों और मजदूरों के बीच का संघर्ष समय-समय पर चरम रुप लेता है तो दूसरी तरफ किसानों, जमीदारों और सरकार के बीच भी संघर्ष चलता रहता हैं । इसके अलावा आर्थिक समृद्धि की आड़ में नयें-नयें वर्ग सामने आ रहें हैं । लेखिकाओं का मानना है जब तक साम्यवादी विचारधारा कार्यान्वयन नहीं होगी तब तक यह समस्या यूं ही बढ़ती जायेगी । पारिजात की कवितायें, कहानियां, उपन्यास आदि सभी में वर्ग संघर्ष की स्थिति देखी गई हैं । इनके उपन्यास दीवार के अंदर और बाहर में चार वर्गों का उल्लेख हुआ है । एक वर्ग निरंकुश सत्ता है जो जनता का विविध प्रकार से शोषण कर रही हैं । दूसरा वर्ग जनता है जो

निरंकुशता के खिलाफ विरोध पर उतर आयी हैं । तीसरा वर्ग सरकारी कर्मचारी या ठेकेदार हैं जो मजदूरों के पारिश्रमिक और रासन पर कमीशन खाकर मजदूर सर्वहारा वर्ग का शोषण कर रहें हैं । चौथा सर्वहारा वर्ग समाज का सबसे उपेक्षित वर्ग है । राज्य की सभी सुविधाओं से वंचित अशिक्षा और अभाव की जिंदगी जीने पर बाध्य हैं । पारिजात गोर्की और प्रेमचंद की तरह किसी उद्योगों में काम कर रहें मजदूरों को नहीं बल्कि सड़को पर पसीना बहाने वाले बिना घरबार के सर्वहारा मजदूरों को प्राथमिकता देती हैं । इसी तरह पितृसत्ता के जाल में फसी स्त्री को अठारहवीं शताब्दी में आकर पता चलता है कि उसकी एक स्वतंत्र पहचान हो सकती है । वह पुरुषों की तुलना में कमजोर या अविवेकी नहीं हैं बल्कि बनाई गई हैं । परतंत्रता उसकी बाध्यता नहीं है बल्कि उस पर नियंत्रण रखने के लिए बनाया गया हथियार है, जिसके माध्यम से पुरुष स्त्री को जैसे चाहे वैसे अपने हक में प्रयोग कर सकता हैं । इसी ज्ञान व चेतना के कारण स्त्री अपने स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान के लिए अग्रसर हुई । उसने स्त्री जीवन से जुड़े सभी पहलूओं को खोजने का अभियान जारी किया । इसी दौरान उसने पाया कि स्त्री स्वंतंत्रा उसके अस्तित्व की एक अलग पहचान केवल उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकार को प्राप्त करने से ही पूर्ण नहीं हो सकती बल्कि उसकी स्वतंत्र पहंचान के लिए स्त्री की कला, भाषा एवं साहित्य का भी स्वतंत्र रुप से प्रयोग में आन जरुरी हैं । स्त्री भाषा स्त्री जीवन के विविध पक्षों को समेटने का सामर्थ्य रखती है और अभिव्यक्ति की कला भी है । उसकी भाषा में विशेषकर जीवन के संस्कार, वात्सल्य का भाव, भक्ति भाव, प्रेम भाव, जीवन की जटिलता, त्रास, बेदना, उत्पीड़न दिखाई पड़ता हैं । स्त्रियों ने विषय वस्तु के साथ-साथ भाषीय पक्ष को भी आधुनिक मोड़ दिया हैं । पात्र, परिवेश और भाषा के चुनाव में स्त्रियों का विशेष ध्यान गया हैं । स्त्री भाषा बिना किसी लागलपेट के अपने विचार और भाव को अभिव्यक्त करने में सक्षम देखी गयी है । इस निष्कर्ष के आधार पर कहा जा सकता है कि हिंदी और नेपाली स्त्री साहित्य अनेकों चुनौतियों का सामना करते हुये समृद्धि की

ओर आगे बढ़ रहा हैं । इस समृद्धि को और अधिक मजबूत करने के लिए स्त्री समाज को अवरोधात्मक तत्वों को जड़ से खत्म करने की ओर अग्रसर होने की आवश्यकता है । अपने राजनीतिक ज्ञान को किताबों में मात्र सीमित न रख के उसे व्यवहार में भी लागू करना आज के समय की मांग हैं ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

हिंदी

१. कांकरिया, मधु, ***खुलेगगन के लाल सितारे***, संस्करण २०१७, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

२. खेतान, प्रभा, ***तालाबंदी***, संस्करण २०२०, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

३. पुष्पा, मैत्रेयी, ***चाक***, संस्करण २०१६, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

४. भंडारी, मन्नू, ***महाभोज***, संस्करण २०१६, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली

५. मुदगल, चित्रा, ***आवां***, संस्करण २०१५, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

६. नीलम, कार्की, निहारिका, ***योगमाया***, संस्करण २०१७, सांग्रिला पुस्तक प्रा. लि. काठमाण्डौ

७. गिरी, आन्विका, ***मान्छेको रंग***, संस्करण २०१४, सांग्रिला पुस्तक प्रा. लि. काठमाण्डौ ८. ***पारिजात, पर्खालभित्र र बाहिर***, संस्करण २०१६, फिनिक्स बुक, काठमाण्डौ

९. भेटवाल, हरिमाया, ***कल्ली***, संस्करण २०१६, शिखा बुक्स, काठमाण्डौं

१०. शर्मा, शारदा, ***ताप***, संस्करण २०१६, सांग्रिला पुस्तक प्रा. लि काठमाण्डौ

सहायक ग्रन्थ हिंदी

१. अग्रवाल, सन्नों देवी, ***स्वतंत्रोत्तर हिंदी उपन्यास में समकालीन राजनीति***, संस्करण १९८४ प्रकाशन ग्रन्थायन, अलीगढ़

२. अग्रवाल, रोहिणी, ***स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प***, संस्करण २००१, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

३. अनामिका (सं.), ***कहती है औरतें***, संस्करण २००३, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहबाद

४. अनामिका, ***साझा चूल्हा***, संस्करण, २००२, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, दिल्ली

५. अरोडा, सुधा, ***आम औरत जिंदा सवाल***, संस्करण २०११, समसामयक प्रकाशन नई दिल्ली

६. अरोड़ा, सुधा, ***औरत की कहानी***, संस्करण, २००८, ज्ञानपीठ नई दिल्ली

७. रोडा, डॉ. प्रीत (सं.), ***महिला लेखन चुनौतियां और संभावनायें***, संस्करण २०१७, भावना प्रकाशन दिल्ली

८. अक्षयवर, देविना, ***समकालीन स्त्री उपन्यास लेखन में राजनीतिक चेतना (१९९०-२०१०)***, २०१५, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

९. अंबेडकर, बी. आर., (अनु.) ***शीलप्रिय बोद्ध, हिंदू नारी का उत्थान और पतन***, संस्करण, २००३, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली

१०. आनंद, प्रो. शुगम, ***भारतीय इतिहास में नारी***, संस्करण २००७, प्रकाशन साहित्य संगम इलाहाबाद

११. आर्य, साधना, मेनन, निवेदिता, लोकनीता, जिनी, (सं.), ***नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दें***, संस्करण २००६, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्याल

१२. उपाध्याय, करुणाशंकर (सं.) ***आवां विमर्श, समसामयिक***, संस्करण २०१०, बुक्स नई दिल्ली

१३. ***उत्किन, एदुआर्द, ट्रेड-यूनियन क्या है ?*** अनु. योगेन्द्र नागपाल, प्रगपित प्रकाशन, मास्को (पिपुल्स पब्लिसिंग हाउस (प्रा.) लिमिटे, नई दिल्ली)

१४. उल्फ, बर्जीनिया, ***अपना कमरा***, संस्करण २००२, संवाद प्रकाशन मेरठ

१५. कस्तावर, रेखा, ***स्त्री चिंतन की चुनौतियां***, संस्करण, २०१३, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

१६. किरण, ज्योती, ***हिंदी उपन्यास और स्त्री जीवन***, संस्करण, २००४, मेध बुक प्रकाशन, नई दिल्ली

१७. कुमार, दीपक, चौबे, देवेन्द्र (सं.), ***हाशिये का वृत्तांत***, संस्करण २०११, आधार प्रकाशन (पंचकुलां) हरियाणा

१८. कुमार, राधा, अनु. एवं (सं.) ***रमा शंकर सिंह (१८००-१९००)***, संस्करण २००९, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

१९. कुल्हाडिया, डॉ, विजय लक्ष्मी, ***नारी विमर्श : दशा एवं दिशा***, संस्करण २०१५, संजय प्रकाशन दिल्ली

२०. के.पी, प्रमीला, ***स्त्री अध्ययन की बुनियाद***, संस्करण २०१५, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

२१. कोठारी, रजनी, ***भारत में राजनीति***, संस्करण २०१३, ओरियंटल ब्लैकस्वान

२२. खेतान, प्रभा**,** ***छीन्नमस्ता***, संस्करण, १९९७, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

२३. खेतान, प्रभा, ***स्त्री उपेक्षिता, (द सेकण्ड सेक्स का हिंदी अनुवाद)***, संस्करण १९९८, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली

२४. खेतान, प्रभा, ***भूमंडलीकरण : ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र***, संस्करण २०१०, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

२५. गर्ग, मृदुला, ***कठगुलाब***, संस्करण २००२, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली

२६. गांवा, ओमप्रकाश, ***राजनीतिक चिंतन की रुपरेखा***, संस्करण २००७, मयूर पेपरबैक्स नोएडा

२७. गुप्ता, गणपतिचन्द्र, ***हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास***, संस्करण २०१५, लोकभारती प्रकाशन

२८. गुप्ता, रमणिका, ***स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने***, संस्करण २००८, शिल्पायान दिल्ली

२९. गुप्ता, रमणिका, ***स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास***, संस्करण २०१४, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

३०. चंन्द्र, विपन, ***आधुनिक भारत में विचारधारा और राजनीति***, संस्करण २००, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्युटर्स प्रा.लिमिटेड नई दिल्ली

३१. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, ***स्त्रीवादी साहित्य***, संस्करण २०००, अनामिका पब्लिशर्स नई दिल्ली

३२. चौबे, देवेन्द्र, कुमार, अजय, तेली गणपत (सं.), ***हिंदी साहित्य का इतिहास कुछ पाठ कुछ विचार***, संस्करण २०२१, आधार प्रकाशन पंचकूला (हरियाणा)

३३. चव्हाण, डॉ. अर्जुन, ***समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष***, संस्करण २००८, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

३४. जोशी, गोपा, ***भारत में स्त्री असमातना : एक विमर्श***, संस्करण २००६, संसोधित संस्करण २००१, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

३५. ठक्कर, पुप्पा, ***दिनकर काव्य में युग चेतना***, संस्करण, संस्करण १९८६, अंरविंद प्रकाशन

३६. ठाकुर, हरिनारायण, ***दलित साहित्य का समाजशास्त्र***, संस्करण २०१४, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

३७. डॉ. अमरनाथ, ***हिंदी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली***, संस्करण २०१६, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि.

३८. डॉ. नगेन्द्र, ***मानविकी परिभाषिक कोश***, संस्करण १९९८, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

३९. तिवारी, अजय, ***इतिहास की रणभूमि और साहित्य***, संस्करण २०१७, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

४०. तिवारी, विपिन, ***साहित्य की जनपक्षयधरता***, संस्करण २००७, मयर पेपरबैक्स, नई दिल्ली

४१. त्रिपाठी, शशिकला, ***उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री***, संस्करण २००६, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

४२. त्रिपाठी, रामप्रसाद, ***हिंदी विश्वकोश, खंड १***, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी

४३. तुङ, ***माओत्से की प्रतिनिधि रचनाओं का चयन***, संस्करण २००, राहुल फाउण्डेशन लखनऊं

४४. दिनकर, रामधारी, ***संस्कृति के चार अध्याय***, संस्करण २०१०, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

४५. द्विवेदी, डॉ. जया, ***आज का महिला लेखन, और मैत्रेयी पुष्पा की कहानियां***, सम्मेलन पत्रिका, संन् २००७, अधिवेशन अंक ११

४६. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, ***हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास***, संस्करण २००३, राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन, नई दिल्ली

४७. नागर, अमृतलाल, ***अमृत और विष***, संस्करण १९७१, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली

४८. पंडित रमाबाई, अनु., ***शंभू जोशी, हिंदू स्त्री का जीवन***, संस्करण २००६, संवाद प्रकाशन, मेरठ

४९. पाण्डेय, मैनेजर, ***आलोचना की सामाजिकता***, संस्करण २००५, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

५०. पाण्डेय, मैनेजर, ***अनभैसाचा***, संस्करण २००२, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली

५१. पाण्डे, मृणाल, ***परिधि पर स्त्री***, संस्करण २०१७, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली

५२. पाण्डे, मृणाल, ***देह की राजनीति से देश की राजनीति तक***, संस्करण २०१५, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

५३. पाल, विजय, कुमार, विवेक, ***दलित साहित्य का समाजशास्त्र***, संस्करण २०१४, नजराज प्रकाशन, नई दिल्ली

५४. पुष्पा, मैत्रेयी, ***चिन्हार***, संस्करण १९९१, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली

५५. पुष्पा, मैत्रेयी, ***इदन्नमम***, संस्करण १९९४, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली

५६. पुष्पा, मैत्रेयी, ***आवाज***, संस्करकण २०१४, समसामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

५७. वर्मा, महादेवी, ***श्रृंखला की कड़ियां***, संस्करण २०१५, लोकभारती पेपरबैक्स, इलाहाबाद

५८. मधुरेश, ***स्त्री की दुनिया***, संस्करण २०१५, नयी किताब प्रकाशन, नई दिल्ली

५९. मधुरेश, ***हिंदी उपन्यास का विकास***, संस्करण २००१, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद

६०. मालती, के.एम, ***स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य (हिंदी और मलयालम महिला काथा लेखन के विशेष संदर्भ में)***, संस्करण २०१४, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

६१. मिश्र, सत्यप्रकाश, ***प्रेमचंद के श्रेष्ठ निबंध***, संस्करण २००३, ज्योति प्रकाशन इलाहाबाद

६२. यादव, राजेन्द्र, ***आदमी की निगाह में औरत***, संस्करण २००१, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

६३. राजे, सुमन, ***हिंदी साहित्य का आधा इतिहास***, संस्करण, २०१५, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली

६४. राजकिशोर, अनु. भीमराव अंबेडकर, ***जाति का विनाश***, संस्करण २०१९, फारवार्ड प्रेस, नई दिल्ली

६५. राय, गोपाल, ***हिंदी उपन्यास का इतिहास***, संस्करण २०१०, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

६६. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, ***मुख्यधाारा और दलित साहित्य***, संस्करण २०१०, सामाजिक प्रकाशन दिल्ली

६७. शुक्ला, रुपेश कुमार, ***साठोत्तरी कविता में सत्ता और समाज के अंतर्रसंबंध***, २०१५, दिल्ली विश्वविद्यालय,

६८. श्रीवास्त, कृष्णचन्द्र, ***प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति***, संस्करण २००६, यूनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद

६९. सरोदे डॉ. पीताबंर, ***आधुनिक हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना***, संस्करण, १९८७, अतुल प्रकाशन, नई दिल्ली

७०. सिंह, नमिता, ***स्त्री -प्रश्न***, संस्करण २०१७, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

८०. सोबती, कृष्णा, ***जिन्दगीनामा***, संस्करण २०१९, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

सहायक ग्रन्थ नेपाली

१. अधिकारी, बालकृष्ण, ***नेपाली साहित्यको काल विभाजन ऐतिहासिक विश्लेषण***, संस्करण २०१२, विवेक सृजनशील प्रकाशन, प्रा. लि. काठमाण्डौ

२. अनेस्टो लि. ***नेपाल जनयुद्धले दिएका संदेशहरु***, संस्करण, २००५, संवाद प्रकाशन, काठमाण्डौं

३. आचार्य, भोजेन्द्र, ***लैंगिक तथा महिलावादी अध्ययन***, संस्करण २०११, ज्ञानकुंज प्रकाशन, काठमाण्डौ

४. आचार्य, बालराम नेपाल, ***नेपालमा सामाज और संस्कृति***, संस्करण२०१२, नेशनल बुक सेंन्टर, काठमाण्डौं

५ं ओझा, घननाथ, ***नेपालमा महिला***, संस्करण २०१९, पैरवी बुक हाउस, काठमाण्डौं

६. कार्की, सुशीला, ***लैंगिक समानता***, संस्करण २०११, पैरवी प्रकाशन, काठमाण्डौं

७. गिरी, ठेकेन्द्र प्रकाश, ***लोकतंत्र एवं राजतंत्रात्मक नेपाल***, संस्करण २०१२, रत्न पुस्तक भंडार, काठमाण्डौं

८. चापागाई, निनू, संग्रोला, खगेन्द्र (सं.), ***पारिजात स्मृति ग्रन्थ-२०५१***, संस्करण १९९४, पारिजात स्मृति केन्द्र काठमाण्डौं

९. डहल, रबर्ट ए, ***प्रजातंत्र का बारेमा***, संस्करण २००५, क्रियशन मीडिया प्रा.लि., काठमाण्डौं

१०. ढकाल, रजनी, त्रिपाठी गीता, ***नेपाली महिला लेखन प्रवृत्ति और योगदान***, संस्करण २०१४, शब्दार्थ प्रकाशन, काठमाण्डौं

११. तिम्ला, देवेन्द्र (सं.), ***विश्व प्रसिद्धका जीवनी र कार्यहरु***, संस्करण २००३, प्रगति पुस्तक सदन, काठमाण्डौं

१२. त्रिपाठी, सुधा, ***नारीवाद को कठघरामा नेपाली साहित्य***, संस्करण २००६, साझा प्रकाशन, काठमाण्डौ

१३. त्रिपाठी, सुधा (सं), ***महिला समालोचक र नेपाली समालोचना***, संस्करण २००५, साझा प्रकाशन, काठमाण्डौं

१४. तुम्बाहाङ्फे, डॉ. शिवमाया, ***नेपालमा महिला आंदोलन***, संस्करण २००९, वाणी प्रकाशन, विराटनगर

१५. थारु, शिवानी, सिंह, ***काठमाण्डौमा एक दिन***, संस्करण २०१७, फाइनप्रिन्ट बुक्स, काठमाण्डौ

१६. दहाल, रामकुमार, ***नेपालको राजनीति संविधान र सरकार***, संस्करण २००२, हिराबुक्स इन्टरप्राइजेज, काठमाण्डौं

१७. दुलाल, विष्णुभक्त, ***नेपालमा वर्ण व्यवस्था र वर्ग संघर्ष***, संस्करण २०१०, समता फाउन्डेशन, ललितपुर

१८. देवकोटा, गृष्मबहादुर, ***नेपाल को राजनीतिक दपर्ण दोस्रो भाग***, संस्करण १९७६, भट्टराई बंधु प्रकाशन, बनारस

१९. पराजुली, राजेन्द्र (सं.) ***नेपाली राजनीतिक कथाहरु***, संस्करण २००९, पाठ्य सामग्री पसल काठमाण्डौ

२०. पाण्डे, विन्दा, ***नेपालको श्रमिक आंदोलनमा महिला सहभागिता***, संस्करण २००, नेपाल ट्रेड यूनियन महासंघ, काठमाण्डौं

२१. पाण्डे, डॉ. भवानी प्रसाद, ***पारिजात का उपन्यासमा समाजवादी यथार्थ***, संस्करण २००७, अल्टिमेट मार्केटिङ, काठमाण्डौं

२२. पाण्डे, ज्ञानू, ***नेपाली महिला कथाकार भाग दुई***, संस्करण २०१३, प्रज्ञाप्रतिष्ठान काठमाण्डौं

२३. पारिजात स्मृति केन्द्र, ***पारिजात, संकलित रचनाहरु, ग्रन्थ एक***, संस्करण २०१६, फिनिक्स बुक्स, काठमाण्डौ

२४. पारिजात स्मृति केन्द्र, ***पारिजात, संकलित रचनाहरु, ग्रन्थ दुई***, संस्करण २०१६, फिनिक्स बुक्स, काठमाण्डौ

२५. पारिजात स्मृति केन्द्र, ***पारिजात, संकलित रचनाहरु, ग्रन्थ तीन***, संस्करण २०१६, फिनिक्स बुक्स, काठमाण्डौं

२६. पारिजात स्मृति केन्द्र, ***पारिजात, संकलित रचनाहरु, ग्रन्थ चार***, संस्करण २०१६, फिनिक्स बुक्स, काठमाण्डौं

२७. पारिजात स्मृति केन्द्र, ***पारिजात, संकलित रचनाहरु, ग्रन्थ पांच***, संस्करण २०१६, फिनिक्स बुक्स, काठमाण्डौं

२८. पारिजात स्मृति केन्द्र, ***पारिजात, संकलित रचनाहरु, ग्रन्थ छ*** , संस्करण २०१६, फिनिक्स बुक्स, काठमाण्डौं

२९. पोखरेल, प्रो. कृष्ण, ***राजनीति शास्त्र***, संस्करण २०१५, सुदिनाम प्रकाशन, काठमाण्डौं

३०. पोखरेल, कृष्ण, ***आधुनिक राजनीति विश्लेषण र शोध***, संस्करण २००२, एम. के पब्लिकेशन एण्ड डिष्ट्रिव्यूटर्स, काठमाण्डौं

३१. पोखरेल, डी.आर, ***पारिजातको साहित्यिक मूल्यांकन***, संस्करण २००५, भृकुटी एकेडेमिक पब्लिकेशनस, काठमाण्डौ

३२. पौड्याल, वीणा, ***विविध आयाममा नेपाली महिला***, संस्करण २०१०, पैरवी प्रकाशन, काठमाण्डौं

३३. प्रतिक्षा, सरस्वती, ***नथिया***, संस्करण २०१७, बुक-हिल पब्लिकेशन, काठमाण्डौं

३४. यमी, हिसीला, ***जनयुद्ध र महिला मुक्ति***, संस्करण २००६, जनध्वनी प्रकाशन, काठमाण्डौं

३५. लुइटेल, लीला, ***नेपाली महिला उपन्यासकार***, संस्करण २०११, साझा प्रकाशन, काठमाण्डौं

३६. लुइटेल, लीला, ***नेपाली महिला साहित्यकार***, संस्करण २०१२, गुंजन नारी साहित्यिक संस्था, काठमाण्डौं

३७. सुवेदी, उमा, ***तोदा***, संस्करण २०१३, सांग्रिला पुस्तक प्रा.लि। काठमाण्डौ

सहायक ग्रन्थ अंग्रेज़ी

1. Adhikari, I, ***Women in Conflict, : The Gender Perspective In Moaist Insuregency***, Year 2006, Adroit publishers, New Delhi
2. Banerjee, Sumanta, ***In The wake of Naxalbari***, year 1980, subarnarekha, Calcatta
3. Brass, Paul, R, ***The Politics in India Since Indipendence***, year1990 , Cambridge University Press
4. Chatterjee, Partha (Ed), ***State and Politics in India***, year1998, Oxford University Press Delhi
5. Chatterjee, Pratha, Panday, ***Gyanendra, subaltern Studies***, year 1992, Vol Vii, Oxford University Press, Delhi
6. De Beauvoir, Simone, Traslation and Edition –H.M Parshely,***The Second Sex***, Year, 1889, Vintage books, New York**,** Pg.98
7. Deasi, N & Thhkar, U. ***Women in Indian Society***, Year 2001, Nainital Book Turst, New Delhi
8 . Jafferlot, Christophe, ***India's Slinte Revolution ; The Rise of law Castes in North Indian Politics***, Year 2003, Permanet Black, Delhi
9. Kandel, D. P, ***Poperty Right of Women in Nepal***, Year 2005, Ratana Pustak Bhandar Kathmandu

10. Sirinivas, M.N, ***The Dominant Cast and Other Eassay***, Year 1987, Oxford University Press, Delhi Srinivas

पत्र-पत्रिकायें

१. ***आजकाल*** (स्त्री लेखन और समाज पर बिशेषांक) मार्च 2014

२. ***आजकल***, मार्च 2008

३. ***आजकल***, मार्च 20011

४. ***इतिहस (नयी शृंखला)***, भारतीय इतिहस अनुसंधान परिषद् भाग 1, संस्करण 2, जुलाई 2010

५. ***कथादेश***, मार्च 2013

६. ***कुरुक्षेत्र*** (पंचायती राज पर बिशेष), जनवरी 2014

७. ***बयान***, अगस्त 2003

८. ***लमही*** (औपन्यासिक अंक) जनवरी-मार्च 2014

९. ***समकालीन जनमत*** (अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस) मार्च 2013

१०. ***समकालीन जनमत*** (इतिहास निर्माण और महिला), मार्च 2006

११. ***समकालीन सरोकार*** (आखिर क्यों लिखती है स्त्रियाँ) मार्च 2013

१२. ***स्त्रीकाल*** अंक 3,4, बर्ष 2022

१३. ***हंस***, अगस्त 2003

१४. ***हंस***, सितम्बर 2013

१५. ***हाशिये की आवाज***, मई,अगस्त,नबम्बर, 2014

ऑनलाइन – श्रोत

http://www.brtnepal.com

Chattopadhyaya, Suhrid Sankar, www.frontline.in, 26 th june 2008, Vol.25, Issue1

https://www.epustakalay.com

https://www.elibrary.tucl.edu.n

https://www.ekantipur.com

https://www.hindai.org

http:/www.ijim.in

https://kavitakosh.org

http:/www.milliyear.com

https//www.nagariknews.com

http://www.Nandnee.blogspot.com

https://www. Nios.ac.in

http://www.niradpr.org.in

https://www.nepjol.info.tuj. View

https://www.rajaneeti.com

http://www.ratopati.com

https://www.sahityapost.com

http://www.samkalinsahitya.com

http://www.samkaleenjanamat.in

https://samvedan–spars.blogspot.com

http://shodhganga.inflibnet.ac.in